गीता दर्शन–भाग–5
अज्ञेय जीवन—रहस्य
अध्याय—10—(प्रवचन—पहला)
श्रीमद्रभगवइगीता अथ दशमोउध्याय

श्रीभगवानुवाच:

भूय एव महाबाहो श्रृणु मे परमं वच: ।
यतेउहं प्रीयमाणाय वक्ष्यामि हितकाम्यया।।1।।
न मे बिंदु:— सुरगणा: प्रभवं न महर्षय:।
अहमादिर्हि देवानां महर्षीणां च सर्वश:।।2।।
यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम्।
असंमूढ़ स मर्त्येषु सर्वपापै: प्रमुच्यते।।3।।
भगवान श्रीकृष्ण बोले हे महाबाहो फिर भी मेरे परम वचन श्रवण कर जो कि मैं तुझ अतिशय प्रेम रखने वाले के लिए हित की हच्छा से कहूंगा।

हे अर्जुन मेरी उत्पति को अर्थात विभूतिसहित लीला से प्रकट होने को न देवता लोग जानते हैं और न महर्षिजन ही जानते हैं क्योंकि मैं सब प्रकार से देवताओं का और महर्षियों का भी आदि कारण हूं।

और जो मेरे को अजन्मा अनादि तथा लोकों का महान ईश्वर तत्व से जानता है वह मनुष्यों में ज्ञानवान पुरुष संपूर्ण पापों से मुक्त हो जाता है।

जीवन है एक रहस्य। गणित की पहेली जैसा नहीं कि श्रम से उसे हल किया जा सके। रहस्य जीवन का कोई सांयोगिक गुण नहीं है; रहस्य जीवन का स्वभाव है। जीवन है रहस्य ही।

अज्ञात है बहुत कुछ, अननोन है बहुत कुछ, लेकिन वह ज्ञात हो जाएगा। आज नहीं कल, हम उसे जान लेंगे। जो आज नहीं जाना है, वह भी कल जाना जा सकेगा। जो कभी भी जाना जा सकता है, उसका नाम रहस्य नहीं है।

रहस्य से अर्थ है, जो कभी भी जाना नहीं जा सकेगा, जो अज्ञेय है, अननोएबल है। जानने की आकांक्षा प्रगाढ़ है जिसके लिए, जिस तक पहुंचने के लिए जीवन दौड़ता है, जिससे मिलने की प्यास है और फिर भी समस्त श्रम और समस्त इच्छाएं और सारी अभीप्सा और सारी प्यासे व्यर्थ रह जाती हैं और हम उसके निकट ही पहुंच पाते हैं, उसका स्पर्श होता है, लेकिन उसे जान नहीं पाते।

अज्ञेय से अर्थ है, जिसे हम किसी भांति पहचान भी लेते हैं, फिर भी नहीं कह सकते कि हमने उसे जान लिया। ऐसे अज्ञात, ऐसे अशेय के संबंध में जो वचन हैं, कृष्ण उन्हें परम वचन कहते हैं। इस सूत्र में जो बहुत कीमती शब्द है, वह है परम वचन। उसे हम थोड़ा समझें।

कृष्ण ने कहा, हे महाबाहो, फिर भी मेरे परम वचन श्रवण कर, जो कि मैं तुझ अतिशय प्रेम रखने वाले के लिए हित की इच्छा से कहूंगा।

साधारणत:, परम वचन शब्द को पढ़ते समय कोई विशेष खयाल मन में नहीं आता है। और इसीलिए उसके विशेष अर्थ भी चूक जाते हैं। एक वचन तो होता है, जिसे हम कहते हैं, सत्य वचन। एक वचन होता है, जिसे हम कहते हैं, असत्य वचन। परम वचन क्या है? अगर भाषाकोश में खोजने जाएंगे, तो भाषाकोश कहेगा, सत्य वचन ही परम वचन है। लेकिन वह ठीक नहीं है बात। सत्य वचन का अर्थ ही होता है, जिसके विपरीत भी असत्य वचन हो सकता है।

परम वचन का अर्थ होता है, जिसके विपरीत कोई वचन नहीं हो सकता, जिसके विपरीत किसी वक्तव्य की कोई संभावना नहीं है। पहली बात।

सत्य, जो आज सत्य मालूम पड़ता है, कल असत्य हो सकता है। जो आज असत्य मालूम पड़ता है, कल खोज से पता चले कि सत्य है। इसलिए विज्ञान जिसे सत्य कहता है, कल उसे असत्य कहने को मजबूर हो जाता है। न्यूटन का जो सत्य था, वह आइंस्टीन का सत्य नहीं है। और आइंस्टीन का जो सत्य है, वह आने वाली सदी का सत्य नहीं होगा। और आज कोई भी वैज्ञानिक यह नहीं कह सकता कि हम जो सत्य उदघोषित कर रहे हैं, वह सदा ही सत्य रहेगा।

सत्य असत्य हो सकते हैं। असत्य भी कल खोजे जाएं और पता चले, तो सत्य बन सकते हैं।

परम वचन का अर्थ है, जिसे हम न सत्य कह सकते हैं और न असत्य कह सकते हैं। क्योंकि हम जिसे सत्य कह सकते हैं, वह हमारे कारण कल असत्य भी हो सकता है। परम वचन का अर्थ है कि हमारे सत्य और असत्य दोनों के जो पार है; हम जिसके संबंध में कभी भी निर्णायक न हो सकेंगे।

इस संबंध में जो लोग आधुनिक चिंतन से परिचित हैं, उन्हें ज्ञात होगा कि बर्ट्रेड रसेल, विट्‌गिस्टीन, ए. जे. अय्यर, ऐसे कुछ पश्चिम के मनीषियों ने, जिन्हें कृष्ण ने परम वचन कहा है, उन्हीं वचनों को नॉनसेंस, उन्हीं वचनों को व्यर्थ वचन कहा है। ए.जे. अय्यर ने बड़ी मेहनत की है यह बात सिद्ध करने की कि कुछ वचन ऐसे हैं, जो अर्थहीन हैं, मीनिंगलेस हैं, नॉनसेंस हैं।

उन वचनों को अय्यर ने अर्थहीन कहा है, जिनको न तो हम सत्य सिद्ध कर सकें, और न असत्य। जिनके पक्ष में भी कोई प्रमाण न दिया जा सके और जिनके विपक्ष में भी कोई प्रमाण न दिया जा सके। जैसे कोई आदमी कहता है कि ईश्वर है। अय्यर, विट्‌गिस्टीन और रसेल कहेंगे कि यह वचन अर्थहीन है। क्योंकि ईश्वर है, यह भी अब तक सिद्ध नहीं किया जा सका, और नहीं है, यह भी सिद्ध नहीं किया जा सका। और आदमी के पास कोई भी उपाय नहीं है इस वचन की सत्यता या असत्यता को परखने के लिए। वेरीफिकेशन के लिए कोई उपाय नहीं है।

तो जिस वक्तव्य की जांच का कोई उपाय ही न हो, उस वक्तव्य को न तो सत्य कहा जा सकता है, और न असत्य। क्योंकि असत्य का अर्थ हुआ कि जांचा और पाया कि गलत है। सत्य का अर्थ हुआ कि जांचा और पाया कि सत्य है।

लेकिन ईश्वर है, इस वक्तव्य के पक्ष या विपक्ष में कोई भी प्रमाण आज तक इकट्ठे नहीं किए जा सके। आस्तिक कहे चले जाते हैं, ईश्वर है; नास्तिक कहे चले जाते हैं, ईश्वर नहीं है। आस्तिकों की दलीलों का नास्तिकों पर कोई प्रभाव नहीं है, और नास्तिकों की दलीलों का आस्तिकों पर कोई प्रभाव नहीं है। और कभी—कभी ऐसा भी होता है कि आस्तिक नास्तिक हो जाते हैं, नास्तिक आस्तिक हो जाते हैं। लेकिन वक्तव्य वैसे के वैसे ही खड़े रहते हैं।

खलील जिब्रान ने एक छोटी—सी कहानी लिखी है। लिखा है, एक गांव में एक महाआस्तिक और एक महानास्तिक था। सारा गांव परेशान था उनके कारण। क्योंकि आस्तिक लोगों को समझाता था कि ईश्वर है, नास्तिक समझाता था कि नहीं है। आखिर गांव ने उन दोनों से कहा कि तुम निर्णय पर पहुंच जाओ कुछ, ताकि हमारी परेशानी कम हो।

पूर्णिमा की एक रात, गांव ने विवाद का आयोजन किया और नास्तिक और आस्तिक ने प्रबल प्रमाण दिए। आस्तिक ने ऐसे प्रमाण दिए, जिनका खंडन मुश्किल था। नास्तिक ने ऐसा खंडन किया कि आस्तिकता के पैर डगमगा जाएं। रातभर विवाद चला और विवाद बड़ा परिणामकारी रहा। आस्तिक के प्रमाण इतने प्रभावशाली सिद्ध हुए कि सुबह होते—होते नास्तिक आस्तिक हो गया, और नास्तिक के तर्क इतने प्रभावशाली सिद्ध हुए कि सुबह होते — होते आस्तिक नास्तिक हो गया। गांव की मुसीबत जारी रही! गांव में एक महाआस्तिक और एक महानास्तिक बना रहा।

अब तक जितने भी वक्तव्य आस्तिकों और नास्तिकों ने दिए हैं, उनसे कुछ भी सिद्ध नहीं होता। न तो यह सिद्ध होता है कि ईश्वर है, और न यह सिद्ध होता है कि ईश्वर नहीं है। और ऐसी कोई कसौटी नहीं है, जिस पर जांचा जा सके कि कौन सही है। इसलिए अय्यर और उनके साथी दार्शनिक कहते हैं कि ये वक्तव्य नानसेंस हैं। इन वक्तव्यों से कुछ अर्थ नहीं निकलता, ये अर्थहीन हैं। तो अय्यर कहता है कि न तो ईश्वर है, यह सत्य वचन है और न यह असत्य वचन है। यह दोनों नहीं है। यह व्यर्थ वचन है।

कृष्ण इसी वचन को परम वचन कहते हैं। तो थोड़ा समझना पड़ेगा कि कृष्ण का प्रयोजन क्या है? अगर अय्यर और विट्‌गिस्टीन सही हैं, तो कृष्ण का वचन अर्थहीन वचन है। लेकिन कृष्ण उसे परम वचन कहते हैं। और अर्जुन से वे कहते हैं कि मैं तुझे तेरे प्रेम के कारण और तेरे हित की दृष्टि से कुछ परम वचन कहूंगा, तू उन्हें सुन।

इसे हम ऐसा बांट लें। सत्य वचन उसे कहते हैं, जिसके लिए यथार्थ से प्रमाण उपलब्ध हो जाएं। अगर मैं कहूं, आग हाथ को जलाती है, तो यह सत्य वचन है। क्योंकि आप आग में हाथ डालकर देख सकते हैं और प्रमाण मिल जाएगा कि आग जलाती है या नहीं जलाती है। अगर मैं कहूं आग शीतल है, तो आप हाथ डालकर देख सकते हैं कि यह वचन असत्य है। क्योंकि आग शीतल नहीं है, इसका प्रमाण मिल जाता है, वचन के अतिरिक्त प्रमाण उपलब्ध हो जाता है।

अय्यर कहता है कि एक तीसरे तरह का वचन है, और समस्त धार्मिक वचन, मेटाफिजिकल स्टेटमेंट्‌स अय्यर के हिसाब से व्यर्थ हैं, क्योंकि उनका कोई भी प्रमाण नहीं मिलता। कृष्ण के हिसाब से ः वे वचन परम हैं, क्योंकि उनका इस जगत के अनुभव में तो कोई प्रमाण नहीं मिलता, लेकिन अगर दूसरे जगत में कोई प्रवेश करने को तैयार हो, तो उनका प्रमाण मिलता है। अप्रमाणित वे नहीं हैं। एक अंधे आदमी के लिए, प्रकाश है, यह अप्रमाणित वचन होगा। क्योंकि अंधे के सामने कोई भी प्रमाण नहीं जुटाया जा सकता कि प्रकाश है या नहीं है। अंधा अय्यर के साथ राजी हो जाएगा और कहेगा कि यह वचन व्यर्थ है, क्योंकि न तो इसके पक्ष में तुम कोई प्रमाण दे सकते हो, और न विपक्ष में। क्योंकि अंधा तैयार है, अगर प्रकाश हो तो मैं उसे हाथ से छूकर देख लूं; कान से सुनकर देख लूं; या जीभ से

चखकर देख लूं। अंधा राजी है। उसके पास जो भी इंद्रिया हैं, उन इद्रियों के माध्यम से प्रमाण मिल सकता हो, तो अंधा प्रमाण खोजने के लिए राजी है।

लेकिन हाथ प्रकाश को छू नहीं सकते, फिर भी प्रकाश है। और कान प्रकाश को सुन नहीं सकते, फिर भी प्रकाश है। और जीभ प्रकाश का स्वाद नहीं ले पाएगी, फिर भी प्रकाश है। और नासारंध्र प्रकाश की गंध नहीं पा सकेंगे, फिर भी प्रकाश है। और अंधे की चार इंद्रियां, जिसको कहें कि कोई प्रमाण नहीं है, अंधा कैसे मानने को राजी हो कि जो वक्तव्य है, वह व्यर्थ नहीं है! अंधे की सीमा के भीतर प्रमाण नहीं जुटाए जा सकते, इससे कोई चीज गलत नहीं हो जाती। इससे यह भी हो सकता है कि अंधे की सीमा बहुत सीमित है। अंधे की सीमा भी बड़ी की जा सकती है। अंधे की आंखें ठीक की जा सकती हैं। आंखों के ठीक होते ही प्रकाश का प्रमाण मिल जाएगा।

लेकिन हमारी कठिनाई यह है कि स्वभावत: हम सभी अंधे हैं। जिस आख से जीवन के परम सत्य का अनुभव हो सके, वह आख सबके पास है, लेकिन बंद है। इसलिए कभी अगर एक व्यक्ति की आख भी खुल जाए, तो वह प्रमाण उसके लिए ही प्रमाण होता है, शेष के लिए प्रमाण नहीं होता है।

हमने मीरा को नाचते देखा है, लेकिन मीरा हमें पागल मालूम पड़ती है। क्योंकि हमें मीरा का नाच ही दिखाई पड़ता है; वह नहीं दिखाई पड़ता है, जिसको देखकर मीरा नाच रही है। हमने कबीर को गीत गाते देखा है। लेकिन हमें कबीर के गीत ही सुनाई पड़ते हैं, कबीर के भीतर गीत का जन्म हुआ है जिसके स्पर्श से, उसका हमें कोई पता नहीं चलता। हमने बुद्ध को मौन होते देखा है, हमने बुद्ध को शांत होते देखा है, ऐसी शांति जैसी कि पृथ्वी पर कभी—कभार उभरती है, कभी—कभार उतरती है। लेकिन क्या देखकर बुद्ध शांत हो गए हैं, क्या देखकर उनका मन ठगा रहकर चुप हो गया है, उसका हमें कोई भी पता नहीं।

तो हमारे भीतर जिसकी आख भी खुलती है, वह हम अंधों के बीच अंधा मालूम पड़ने लगता है, क्योंकि हमने अपने अंधेपन को आख समझा हुआ है। हमसे जो भिन्न होता है, वह हमें अंधा मालूम पड़ता है।

परम वचन कृष्ण की दृष्टि में वे वचन हैं, जो हमारी मौजूद हालत में तो प्रमाण नहीं बन सकते, लेकिन अगर हम अपनी हालत बदलने को राजी हों, तो उनके हमें प्रमाण मिल सकते हैं। परम वचन का अर्थ हुआ, हम जैसे हैं, वैसे ही रहकर अगर हम उनका प्रमाण चाहें, तो प्रमाण नहीं मिलेंगे। अगर हम अपने को बदलने को राजी हों, तो प्रमाण मिल जाएंगे।

यहां दो बातें खयाल में ले लेनी चाहिए।

विज्ञान आदमी को बदलने की कोई जरूरत नहीं मानता। विज्ञान मानता है कि आदमी जैसा है, सत्य वैसे ही पाया जा सकता है। विज्ञान चीजों को बदलता है, चीजों को तोड़ता है, चीजों का विश्लेषण करता है। अगर अणु की खोज करनी पड़ी है, तो दो हजार वर्ष लग गए हैं। हेराक्लतु से लेकर आइंस्टीन तक दो हजार वर्षों तक अणु का चिंतन चला है, अणु की शोध चली है, अणु का खंडन चला है, और तब जाकर हमें अणु के सत्य का पता चला है। दो हजार साल हमें अणु के साथ मेहनत करनी पड़ी है।

विज्ञान वस्तु के साथ मेहनत करता है, धर्म व्यक्ति के साथ मेहनत करता है। विज्ञान कहता है, वस्तु को हम ऐसी स्थिति में ले आएं, जहां सत्य का उदघाटन हो जाए। धर्म कहता है, व्यक्ति को हम ऐसी स्थिति में ले आएं, जहां वह सत्य को देखने में समर्थ हो जाए।

विज्ञान की सारी चेष्टा वस्तु के साथ है, धर्म की सारी चेष्टा व्यक्ति के साथ है। व्यक्ति बदले, तो सत्य का पता चलेगा। विज्ञान कहता है, वस्तु को हम समझ लें, तो सत्य का पता चल जाएगा। स्वभावत:, विज्ञान की खोज पदार्थ की खोज है, धर्म की खोज चेतना की खोज है।

कृष्ण कहते हैं, ये परम वचन हैं। परम वचन का अर्थ है, अर्जुन, अगर तू बदले, तो इनके प्रमाण को जान सकेगा। पहली बात। अर्जुन की बदलाहट पर ही तय होगा कि ये वचन सत्य हैं या असत्य। अर्जुन जैसा है, वैसा रहते हुए इन वचनों के संबंध में कुछ भी नहीं बोल सकता है।

इसलिए धर्म ने श्रद्धा को आधारभूत बनाया है। क्योंकि इन परम वचनों को मानकर चले बिना कोई उपाय नहीं है।

एक सूफी बोध—कथा मुझे स्मरण आती है। एक छोटी—सी नदी सागर से मिलने को चली है। नदी छोटी हो या बड़ी, सागर से मिलने की प्यास तो बराबर ही होती है, छोटी नदी में भी और बड़ी नदी में भी। छोटा—सा झरना भी सागर से मिलने को उतना ही आतुर होता है, जितनी कोई बड़ी गंगा हो। नदी के अस्तित्व का अर्थ ही सागर से मिलन है।

नदी भाग रही है सागर से मिलने को, लेकिन एक रेगिस्तान में भटक गई, एक मरुस्थल में भटक गई। सागर तक पहुंचने की कोशिश व्यर्थ मालूम होने लगी, और नदी के प्राण संकट में पड़ गए। रेत नदी को पीने लगी। दो—चार कदम चलती है, और नदी खोती है, और सिर्फ गीली रेत ही रह जाती है।

नदी बहुत घबड़ा गई। सागर तक पहुंचने के सपने का क्या होगा? नदी ने रोकर, चीखकर रेगिस्तान की रेत से पूछा कि क्या मैं सागर तक कभी भी नहीं पहुंच पाऊंगी? क्योंकि रेगिस्तान मालूम पड़ता है अनंत, और चार कदम मैं चलती नहीं हूं और रेत में मेरा पानी खो जाता है, मेरा जीवन सूख जाता है! मैं सागर तक पहुंच पाऊंगी या नहीं?

रेत ने कहा कि सागर तक पहुंचने का एक उपाय है। ऊपर देख, हवाओं के बवंडर जोर से उड़े चले जा रहे हैं। रेत ने कहा कि अगर तू भी हवाओं की तरह हो जा, तो सागर तक पहुंच जाएगी। लेकिन अगर नदी की तरह ही तूने सागर तक पहुंचने की कोशिश की, तो रेगिस्तान बहुत बड़ा है, यह तुझे पी जाएगा। और हजारों—हजारों साल की कोशिश के बाद भी तू एक दलदल से ज्यादा नहीं हो पाएगी, सागर तक पहुंचना बहुत मुश्किल है। तू हवा की यात्रा पर निकल।

उस नदी ने कहा कि रेत, तू पागल तो नहीं है? मैं नदी हूं मैं आकाश में उड़ नहीं सकती! रेत ने कहा कि तू अगर मिटने को राजी हो, तो आकाश में भी उड़ने का उपाय है। अगर तू तप जाए, वाष्पीभूत हो जाए, तो तू हवाओं पर सवार हो सकती है, हवाएं तेरे वाहन बन जाएंगी और तुझे सागर तक पहुंचा देंगी।

उस नदी ने कहा, मिटने को! मैं स्वयं रहते ही सागर से मिलने की आकांक्षा रखती हूं, मिटकर नहीं। मिटकर मिलने का मजा ही क्या? अगर मैं मिट गई और सागर से मिलना भी हो गया, तो उसका सार क्या है? मैं बचते हुए, रहते हुए सागर से मिलना चाहती हूं।

नदी की बात को सुनकर रेत ने कहा, तब फिर कोई उपाय नहीं है। आज तक सागर से मिलने जो भी चला है, मिटे बिना नहीं मिल पाया है। और जिसने अपने को बचाने की कोशिश की है, वह मरुस्थल में खो गया है। मैंने और नदियों को भी मरुस्थल में खोते देखा है, और मैंने कुछ नदियों को आकाश पर चढ़कर सागर तक पहुंचते भी देखा है। तू मिटने को राजी हो जा। तुझे अभी पता नहीं कि मिटकर ही तू वस्तुतः सागर हो पाएगी।

लेकिन नदी को भरोसा कैसे आए! नदी ने कहा, यह मेरा अनुभव नही है। मिटने की हिम्मत नहीं जुटती। और फिर अगर मैं सागर से मिल भी गई मिटकर, तो सागर में मेरा होना रहेगा! मैं बचूंगी! क्या भरोसा? कैसे श्रद्धा करूं? जो मेरा अनुभव नहीं है, उसे कैसे मानूं?

तो उस मरुस्थल की रेत ने कहा, दो ही उपाय हैं। या तो अनुभव हो, तो मानना आ जाता है; और या मानना हो, तो अनुभव की यात्रा शुरू होती है। अनुभव तुझे नहीं है, और बिना यह माने कि मिटकर भी तू बचेगी, तुझे अनुभव भी कभी नहीं होगा। इसे तू श्रद्धा से स्वीकार कर ले।

परम वचन का अर्थ है, जो हमारा अनुभव नहीं है, लेकिन जिसकी हमें प्यास है। जिससे हमारा परिचय नहीं है, लेकिन जिसकी हमारे हृदय में आकांक्षा है। जिसे हमने जाना नहीं है, लेकिन जिसे खोजना है। ऐसी जिसकी अभीप्सा है, उसे कहीं न कहीं किसी न किसी क्षण में ऐसा कदम भी उठाना पड़ेगा, जो अज्ञात में है, अननोन में है।

अर्जुन सरिता की भांति है। उसे कुछ भी पता नहीं है। वह जिस अज्ञात सत्य को जानने की प्रेरणा से भर गया है, उसका उसे कोई भी अनुभव नहीं है। वह जिस परम गुह्य की तलाश कर रहा है, प्रश्न पूछ रहा है, जिज्ञासा कर रहा है, उसकी उसे कोई भी प्रतीति नहीं है। इसलिए कृष्ण उससे कहते हैं कि मैं परम वचन तुझसे कहता हूं।

परम वचन का दूसरा अर्थ हुआ कि अर्जुन, अभी तुझे श्रद्धा से ही मान लेना पड़ेगा। जैसा तू है, ऐसी स्थिति में तेरी बुद्धि काम नहीं पड़ेगी। अगर तू श्रद्धा से मान ले और यात्रा पर निकल जाए रूपांतरण की, तो तू भी जान सकेगा। जो मैं कह रहा हूं, वह सत्य है। लेकिन वह सत्य तेरे रूपांतरित चित्त को ही अनुभव में आएगा। तू जैसा है, वैसा ही उस सत्य से तेरा कोई संबंध नहीं हो सकता। परम वचन का यह भी अर्थ है कि उसे श्रद्धा से ही स्वीकार कर लेना पड़ेगा।

और तीसरा अर्थ भी खयाल में ले लें, तो फिर यह सूत्र हमारी समझ में आसान हो जाएगा।

परम वचन का अर्थ तीसरा, आत्यंतिक अर्थ है, ऐसा वचन, जो समय और काल से रूपांतरित नहीं होता, परिवर्तित नहीं होता। हमारे सारे सत्य सामयिक हैं। समय बदल जाए, सत्य को बदलना पड़ता है। हमारे सभी सत्य समय की शर्तों से बंधे हुए हैं। लेकिन क्या कोई ऐसा सत्य भी है, जो समय की शर्त से बंधा हुआ नहीं है? कितना ही समय बदले और जीवन का कितना ही रूपांतरण हो जाए, उस सत्य में कोई अंतर नहीं पड़ेगा।

आपने रास्ते पर बैलगाड़ी को चलते हुए देखा है। चाक चलता है, चलता चला जाता है। प्रतिपल चलना ही उसका काम है। लेकिन उस चाक के बीच में एक कील है, जो खड़ी रहती है, जो चलती नहीं। मीलों चल जाए चाक, कील अपनी जगह ही बनी रहती है। कील ठहरी हुई है। और मजा यह है कि ठहरी हुई कील के आधार पर ही चाक का घूमना होता है। अगर कील भी घूम जाए, तो चाक इसी वक्त गिर जाए और रुक जाए। चाक चलता है इसलिए, क्योंकि कील ठहरी है। इस कील और चाक के बीच गहरा समझौता है। कील के ठहरे होने पर चाक की गति है।

जीवन तो पूरा ही बदलता रहता है चाक की तरह, इसलिए हमने उसे संसार कहा है। संसार का अर्थ होता है, दि व्हील, उसका अर्थ होता है, चाक, घूमता हुआ। चाक की तरह है संसार तो। लेकिन क्या कुछ कील भी है इस संसार में?

क्योंकि भारतीय मनीषा का ऐसा अनुभव है कि जहां भी परिवर्तन हो, उसके आधार में कुछ जरूर होगा, जो अपरिवर्तित है। जहां गति हो, वहां केंद्र में कुछ होगा, जो ठहरा हुआ है। जहां तूफान हो, वहां बिंदु होगा बीच में कोई एक, जहां परम शांति है। क्योंकि जीवन विपरीत के बिना असंभव है। जन्म होगा, तो मृत्यु होगी। गति होगी, तो कोई ठहरा हुआ होगा। चाक होगा, तो कील होगी।

विपरीत अनिवार्य है। दिखाई पड़े, न दिखाई पड़े; समझ में आए, न समझ में आए; विपरीत अनिवार्य है। विपरीत के बिना जीवन के खेल का कोई उपाय नहीं है।

परम वचन का अर्थ है, जब सारे सत्य बदल जाते हैं, सारे दर्शन और धर्म बदल जाते हैं, सिद्धांत बदल जाते हैं, चिंतन की धाराएं बदल जाती हैं, तब भी जो ठहरा ही रहता है, जिसमें कोई अंतर नहीं पड़ता। ऐसे कुछ वचन कृष्ण अर्जुन से कहना चाहते हैं।

एक और कीमती बात इस सूत्र में उन्होंने कही है। और वह कहा है कि तुझ अतिशय प्रेम रखने वाले के लिए, तेरे हित की इच्छा से कहूंगा।

एक तो परम सत्य केवल उनसे ही कहे जा सकते हैं, जो अतिशय प्रेम से भरे हों। एक सिम्पैथी, एक गहरी सहानुभूति चाहिए। क्षुद्र बातें कहने के लिए सहानुभूति की कोई भी जरूरत नहीं है। जितनी गहरी कहनी हो बात, उतना गहरा संबंध चाहिए। दो व्यक्तियों के बीच जितना गहरा हो संबंध, उतने ही गहरे सत्य संवादित किए जा सकते हैं। तो सत्य कह देना, सिर्फ कह देने वाले पर निर्भर नहीं है। सत्य कहना, सुनने वाले पर भी उतना ही निर्भर है, जितना कहने वाले पर।

कृष्ण अर्जुन से ये सत्य कह सके, क्योंकि एक बहुत गहरी मैत्री और गहरे प्रेम का संबंध था। ठीक यही सत्य हर किसी से नहीं कहे जा सकते। जब सत्य कहा जाता है, तो कहने वाला और सुनने वाला, दोनों एक ऐसी समरसता में होने चाहिए, जहां सत्य कहा जा सके, और सुना भी जा सके। प्रेम वैसा द्वार है, जहां से गहरी बातें की जा सकती हैं।

सिर्फ पूरब ही इस राज को समझ पाया। पश्चिम में शिक्षक होते हैं, लेकिन गुरु केवल पूरब की उत्पत्ति है। गुरु मात्र शिक्षक नहीं है। गुरु और शिक्षक में यही फर्क है। शिक्षक को प्रयोजन नहीं है कि विद्यार्थी का कोई संबंध भी है उससे या नहीं। उसे जो कहना है, वह कह देगा; वह एकतरफा है, वन वे ट्रैफिक है।

शिक्षक स्कूल में पढ़ा रहा है, यूनिवर्सिटी में पढ़ा रहा है। विद्यार्थी सहानुभूति से सुन रहा है, श्रद्धा से सुन रहा है, सुन भी रहा है, नहीं सुन रहा है, ये बातें प्रयोजनीय नहीं हैं। शिक्षक जैसे दीवाल से बोल रहा हो। यह प्रोफेशनल, व्यावसायिक वक्तव्य है। दूसरे से कोई प्रयोजन नहीं है, शिक्षक को बोलने से प्रयोजन है। उसे जो कहना है, वह कह देगा।

गुरु और शिक्षक में यही अंतर है। गुरु जो कहना है, वह तभी कह सकेगा, जब सुनने वाला तैयार हो। जब सुनने वाला खुला हो, उन्मुक्त हो, उसके हृदय के द्वार बंद न हों। और जब सुनने वाला सिर्फ सुनने वाला ही न हो, बल्कि अपने को रूपांतरित करने की आकांक्षा से भी, अभीप्सा से भी भरा हो। और जब कि सुनने वाला केवल सत्य की खोज में ही न आया हो, बल्कि उस व्यक्ति के प्रेम का आकर्षण भी उसे खींचा हो।

ध्यान रहे कि जहां प्रेम नहीं है, जहां एक आंतरिक संबंध, एक इटिमेसी नहीं है, वहां सत्य नहीं कहे जा सकते।

महावीर के पास एक युवक आया है। और वह जानना चाहता है कि सत्य क्या है। तो महावीर कहते हैं कि कुछ दिन मेरे पास रह। और इसके पहले कि मैं तुझे कहूं, तेरा मुझसे जुड़ जाना जरूरी है।

एक वर्ष बीत गया है और उस युवक ने फिर पुन: पूछा है कि वह सत्य आप कब कहेंगे? महावीर ने कहा कि मैं उसे कहने की निरंतर चेष्टा कर रहा हूं लेकिन मेरे और तेरे बीच कोई सेतु नहीं है, कोई ब्रिज नहीं है। तू अपने प्रश्न को भी भूल और अपने को भी भूल। तू मुझसे जुड्ने की कोशिश कर। और ध्यान रख, जिस दिन तू जुड़ जाएगा, उस दिन तुझे पूछना नहीं पड़ेगा कि सत्य क्या है? मैं तुझसे कह दूंगा।

फिर अनेक वर्ष बीत गए। वह युवक रूपांतरित हो गया। उसके जीवन में और ही जगत की सुगंध आ गई। कोई और ही फूल उसकी आत्मा में खिल गए। एक दिन महावीर ने उससे पूछा कि तूने सत्य के संबंध में पूछना अनेक वर्षों से छोड़ दिया? उस युवक ने कहा, पूछने की जरूरत न रही। जब मैं जुड़ गया, तो मैंने सुन लिया। तो महावीर ने अपने और शिष्यों से कहा कि एक वक्त था, यह पूछता था, और मैं न कह पाया। और अब एक ऐसा वक्त आया कि मैंने इससे कहा नहीं है और इसने सुन लिया!

महावीर की परंपरा कहती है कि महावीर ने अपने गहनतम सत्य वाणी से उदघोषित नहीं किए, उन्होंने वाणी से नहीं कहे। जो सुन सकते थे, उन्होंने सुने; महावीर ने कहे नहीं।

यह बहुत मजेदार बात है। इससे उलटी बात भी सही है, कि जो नहीं सुन सकते हैं, उनसे महावीर कितना ही कहें, तो भी नहीं सुन सकते। सुनना एक बहुत बड़ी कला है।

इसलिए कृष्ण कहते हैं कि तुझसे कहूंगा, क्योंकि तू अतिशय प्रेम से भरा है। अतिशय प्रेम! साधारण प्रेम भी कृष्ण ने नहीं कहा। कहा, अतिशय प्रेम। इतने प्रेम से भरा है, जहां आदमी प्रेम में पागल हो जाता है।

पागल होने से कम में वह घटना नहीं घटती, जिसे हम आंतरिक संबंध कहें। अगर प्रेम भी बुद्धिमान हो, तो होता ही नहीं। अगर प्रेम भी गणित की तरह हिसाब—किताब से हो, तो होता ही नहीं। प्रेम तो जब होता है, तब अतिशय ही होता है।

एक मजे की बात है, प्रेम में कोई मध्य स्थिति नहीं होती; अतियां होती हैं, एक्सट्रीम्स होती हैं। या तो प्रेम होता ही नहीं, एक अति। और या प्रेम होता है, तो बिलकुल पागल होता है; दूसरी अति। प्रेम में मध्य नहीं होता। इसलिए प्रेम में बुद्धिमान आदमी खोजने बहुत मुश्किल हैं। कोई मध्य बिंदु नहीं होता।

कनफ्यूशियस ने कहा है कि बुद्धिमान आदमी मैं उसको कहता हूं जो मध्य में ठहर जाए। कनफ्यूशियस एक गांव में गया। गांव के रास्ते पर ही था कि एक गांव के निवासी से मिलना हुआ। तो कनफ्यूशियस ने पूछा कि तुम्हारे गांव में सबसे ज्यादा बुद्धिमान आदमी कौन है? तो उस आदमी ने उस आदमी का नाम लिया, जो गांव मे सबसे ज्यादा बुद्धिमान था। कनफ्यूशियस ने पूछा कि उसे बुद्धिमान मानने का कारण क्या है? तो उस ग्रामीण ने कहा, कारण है कि वह अगर एक कदम भी उठाए, तो तीन बार सोचता है। इसलिए गांव उसे बुद्धिमान कहता है। कनफ्यूशियस ने कहा कि मैं उसे बुद्धिमान न कहूंगा। क्योंकि जो एक ही बार सोचता है, वह कम बुद्धिमान है। और जो तीन बार सोचता है, वह दूसरी अति पर चला गया। दो बार सोचना काफी है। मध्य में रुक जाना चाहिए।

बुद्धिमान आदमी को मध्य में रुक जाना चाहिए। लेकिन प्रेम में कोई मध्य नहीं होता, इसलिए तथाकथित बुद्धिमान आदमी प्रेम से वंचित रह जाते हैं। प्रेम में होती है अति। कनफ्यूशियस खुद भी प्रेम नहीं कर सकता। प्रेम में मध्य होता ही नहीं। या तो इस पार, या उस पार।

तो कृष्ण कहते हैं, तेरा अतिशय प्रेम है मेरे प्रति, इसलिए तुझसे कहूंगा। अतिशय, टु दि एक्सट्रीम, आखिरी सीमा तक, जहां अति हो जाती है।

जब प्रेम अतिशय होता है, तो सोच—विचार बंद हो जाता है। और जहां सोच—विचार बंद होता है, वहीं आंतरिक संवाद हो सकते हैं। जहां तक सोच—विचार जारी रहता है, वहां तक संदेह काम करता है, वहां तक डाउट काम करता है।

अगर कृष्ण को परम वचन कहने हैं, तो ऐसी अवस्था चाहिए अर्जुन की, जहां सोच—विचार बंद हो। जहां अर्जुन सुने तो जरूर, सोचे नहीं। जहां अर्जुन खुला तो हो, लेकिन उसके भीतर विचारों की बदलिया न हों। जहां अर्जुन आतुर तो हो, लेकिन अपनी कोई धारणाएं न हों। जहां अर्जुन के पास अपने कोई सिद्धात न हों, अपनी कोई समझ न रह जाए।

शिष्य बनता ही कोई तभी है, जब उसे पता चलता है कि अपनी कोई समझ काम नहीं पड़ेगी। तभी समर्पण है, उसी अतिशय क्षण में समर्पण है।

कृष्ण कहते हैं, तेरे अतिशय प्रेम के कारण मैं तुझसे परम वचन कहूंगा। और एक बात कहते हैं कि तेरे हित के लिए। इसे थोड़ा समझ लें।

ऐसे सत्य भी कहे जा सकते हैं, जिनसे किसी का हित न होता हो। ऐसे सत्य भी कहे जा सकते हैं, जिनसे किसी का अहित होता हो। ऐसे सत्य भी खोजे जा सकते हैं, जिनसे अकल्याण हो। विज्ञान ऐसे बहुत—से सत्यों को खोज रहा है, जिनसे अहित होगा, अहित हो रहा है। अभी पश्चिम के अनेक विचारशील वैज्ञानिक यह सोचने लगे हैं कि सभी सत्य हितकारी नहीं हैं। इसलिए किसी बात का सत्य होना काफी नहीं है।

और फ्रेड्रिक नीत्शे ने तो एक बहुत अनूठी बात कही है। उसने कहा है कि बहुत बार तो असत्य भी हितकारी होते हैं। अगर सभी सत्य हितकारी नहीं होते, तो दूसरी बात भी सही हो सकती है कि असत्य भी हितकारी हो सकते हैं। और नीत्शे ने यह भी कहा है कि यह जो आज के मनुष्य के चित्त की इतनी विकृत दशा है, इसका एक मात्र कारण यह है कि हम बिना समझे—जूझे कि क्या हितकर है और क्या अहितकर है, निपट सत्य की खोज में लगे हुए हैं। सत्य अपने आप में मूल्यवान नहीं है। सत्य भी एक डिवाइस, एक उपाय है। सत्य भी कहीं पहुंचने का साधन है।

मनुष्य का परम मंगल, जिस सत्य से फलित हो, कृष्ण कहते हैं, वह मैं तुझसे कहूंगा, तेरे हित के लिए।

अब यह बहुत सोचने जैसी बात है। हम आमतौर से सोचते हैं कि सत्य तो अपने आप में हितकारी है। और हममें से बहुत—से लोग सत्य का इस तरह उपयोग करते हैं, जिससे दूसरे को नुकसान पहुंचे। इतना काफी नहीं है। मंगल ध्यान में रखना जरूरी है। और इसलिए कृष्ण उसी सत्य की बात करेंगे, जो अर्जुन के लिए मंगलकारी है, जो उसके जीवन को रूपांतरित करे।

सत्य की भी अंतिम कसौटी आनंद ही होगी। इसे थोड़ा ठीक से समझ लें। सत्य की एक कसौटी तो तर्क है, कि जो तर्क से सिद्ध हो वह सत्य है। सत्य की परम कसौटी आनंद है, कि जिससे आनंद फलित हो, वह सत्य है।

बुद्ध ने कहा है, जो पहुंचा दे परम स्थिति तक, वह सत्य है। और हम दूसरी कसौटी नहीं जानते हैं। बुद्ध ने कहा है, नाव हम उसे कहते हैं, जो उस पार पहुंचा दे। हम और दूसरी कसौटी नहीं जानते। कई बार यह भी हो सकता है कि तर्क से जो सही मालूम पड़ता है, वह इसी किनारे पर बांधकर रोक रखे। तर्क से जो सही मालूम पड़ता है, वह उस पार भी ले जा सकेगा या नहीं! और कई बार यह भी हो सकता है कि इस पार के तर्क से जो गलत मालूम पड़ता है, वह भी उस पार ले जाने की नाव बन जाए।

बुद्ध ने कहा है, सवाल यह नहीं है कि तुम क्या मानते हो। सवाल यह है कि तुम क्या हो जाते हो उसे मानकर। सवाल यह नहीं है कि तुम्हारा क्या है मार्ग। सवाल यह है कि तुम किस मंजिल पर पहुंचते हो उस मार्ग पर चलकर। मार्ग अपने आप में व्यर्थ है— मंजिल!

तर्क अपने आप में व्यर्थ है— निष्पत्ति! और सत्य अपने आप में अर्थपूर्ण नहीं है— आनंद!

कृष्ण कहते हैं, तेरे हित की कामना से, तेरे हित की इच्छा से कहूंगा। यहां कोई सत्य को कहना ही मेरा प्रयोजन नहीं है। और न ही सत्य को सिद्ध करना प्रयोजन है। तेरा हित, तेरा कल्याण, तेरा आनंद फलित हो सके, इस दृष्टि से कहूंगा।

यहां धर्म और साधारण विचार में फासले पड़ जाते हैं। एक आदमी कहता है, ईश्वर है, क्या यह सत्य है? एक आदमी कहता है, मुक्ति है, क्या यह सत्य है? सवाल यह नहीं है। सवाल यह है कि जिन्होंने मुक्ति की बात कही, उनके चेहरों में देखें और उनकी आंखों में झांकें। और जिन्होंने ईश्वर को कहा कि है, उनके जीवन की सुगंध और उनके जीवन के प्रकाश को देखें। और जिन्होंने कहा, ईश्वर नहीं है, उनके जीवन के आस—पास जो अंधेरा घिर गया है, उसे देखें।

ईश्वर का होना सत्य है या नहीं, यह उतना महत्वपूर्ण नहीं है। जो, ईश्वर है, इस आधार पर जीता है, उसके होने में एक और तरह की सुगंध है, एक और तरह के जगत का आविर्भाव हो जाता है, पंख लग जाते हैं, वह किसी और आकाश में उड़ने लगता है।

यह सवाल नहीं है कि बुद्ध ने जो कहा है, वह सही है या गलत। बुद्ध का होना ही काफी प्रमाण है। यह भी सवाल नहीं है कि नीत्शे ने जो कहा, वह सही है या गलत। नीत्शे का होना ही काफी प्रमाण है। नीत्शे ने बहुत तर्कयुक्त बातें कहीं, लेकिन जीवन का अंत पागलखाने में हुआ। नीत्शे ने बहुत तर्कयुक्त बातें कही हैं। संभवत: मनुष्य—जाति के इतिहास में नीत्शे के मुकाबले दूसरा आदमी खोजना कठिन है, जो इतना तर्कयुक्त हो, और जिसने सत्य के संबंध में ऐसी तार्किक खोज की हो। लेकिन नीत्शे का अंत एक पागलखाना है। और नीत्शे का पूरा जीवन दुख की एक लंबी कथा है, जहां सिवाय उदासी के और पीड़ा के और संताप के कुछ भी नहीं है। नीत्शे का तर्क हम देखें या नीत्शे को देखें?

कृष्ण ने जो कहा, वह तर्कयुक्त है या नहीं, उसे हम देखें, या कृष्ण को और कृष्ण की बांसुरी को देखें? नीत्शे को और कृष्ण को देखने चलें, तो ही पता चलेगा कि सत्य भी सप्रयोजन है। समस्त सिद्धांत सप्रयोजन हैं। उनसे मनुष्य का हित, उनसे मनुष्य का मंगल सधता है या नहीं सधता है?

तो कृष्ण ने कहा है कि मैं तेरे हित की दृष्टि से यह परम वचन कहूंगा।

हे अर्जुन, मेरी उत्पत्ति को अर्थात विभूतिसहित लीला से प्रकट होने को न देवता लोग जानते हैं और न महर्षिजन, क्योंकि मैं सब प्रकार से देवताओं और महर्षियों का भी आदि कारण हूं।

मेरी उत्पत्ति को, मेरी विभूति को, मेरे सत्य को न देवता जानते हैं और न महर्षि!

बहुत आश्चर्यजनक वचन है। और परम श्रद्धा हो, तो ही समझ में आ सकता है। देवता भी नहीं जानते, और जिन्हें हम जानने वाले कहते हैं, वे महर्षि भी नहीं जानते मेरी उत्पत्ति को। क्यों नहीं जानते? तीन बातें।

एक तो, इस जगत का जो भी मूल आधार है, उस मूल: आधार को कोई भी नहीं जान सकेगा, क्योंकि वह मूल आधार सभी के होने के पहले है। देवता नहीं थे, तब भी वह था; और महर्षि जब नहीं थे, तब भी वह था।

मैं अपनी आंखों से सबको देख सकता हूं अपनी आंखों भर को नहीं देख सकता। मैं अपनी आंखों से आंखों के बाहर सब कुछ देख सकता हूं आंखों के पीछे नहीं देख सकता। मैं अपनी इस मुट्ठी से सब कुछ पकड़ सकता हूं लेकिन इस मुट्ठी को ही नहीं पकड़ सकता। जो मौलिक है, जो मूल है, जिससे देवता भी पैदा होते और महर्षि भी, जिससे सब पैदा होते हैं और जिसमें सब लीन हो जाते हैं, उसके जन्म को, उसके होने को, उसके अस्तित्व के मूल कारण को कोई भी नहीं देख पाएगा। कोई उपाय नहीं है। उसका स्वयं का वक्तव्य ही केवल एकमात्र वक्तव्य है। और उस वक्तव्य को श्रद्धा के अतिरिक्त स्वीकार करने का और कोई उपाय नहीं है।

महर्षि तो हम कहते ही उसे हैं, जो जानता है। लेकिन कृष्ण के इस सूत्र का अर्थ हुआ कि जो जानते हैं, वे भी नहीं जानते। तब महर्षि का एक और भी परम गुह्य अर्थ प्रकट होगा। तब जो सोचते हैं कि महर्षि हैं, वे महर्षि नहीं हैं। तब तो केवल वे ही जानते हैं, जो इस अनुभव पर आ जाते हैं कि उन्हें कुछ भी पता नहीं है। कोई सुकरात, कोई उपनिषद का ऋषि, जो कहता है कि मुझे कुछ भी पता नहीं, वही, शायद उसे ही थोड़ा पता लगा है।

नहीं जान सकेगा कोई भी, क्योंकि हम सब उसके हिस्से हैं। सागर तो बूंद को जान सकता है, बूंद सागर को जानेगी भी तो कैसे! और वृक्ष की पत्तियां जड़ों से बंधी हैं, लेकिन जड़ों को जानेगी तो कैसे! और वृक्ष की पत्तियां अगर उस बीज को जानना चाहें, जिससे वृक्ष हुआ, तो उस बीज को कैसे जानेगी! जिससे सब हुआ है, वह अज्ञात ही रहेगा, अज्ञेय ही रहेगा।

मेरी उत्पत्ति को न देवता जानते, न महर्षि, क्योंकि मैं सब प्रकार से देवताओं और महर्षियों का भी आदि कारण हूं।

समस्त दिव्यता मेरा ही रूप है, और समस्त शान मेरा ही ज्ञान है। मेरा ही ज्ञान लौटकर मुझे नहीं जान पाएगा, जैसे मेरी ही आख लौटकर मुझे नहीं जान पाएगी। लेकिन आख एक काम कर सकती है। दर्पण में अपने को देख सकती है। यद्यपि दर्पण में जो दिखाई पड़ता है, वह आख नहीं है; केवल प्रतिबिंब है, केवल छाया है। ऋषियों ने भी जिसे जाना है, वह भी परमात्मा की छाया है, परमात्मा नहीं। और देवता भी जिसकी अर्चना करते हैं, वह परमात्मा का प्रतिबिंब है, परमात्मा नहीं।

जिस दिन प्रतिबिंब भी छूट जाते हैं, जिस दिन जानने वाला भी अपने को भूल जाता है, जिस दिन जानने वाला भी शेष नहीं रहता, उस दिन! लेकिन उस दिन ऋषि ऋषि नहीं होता; देवता देवता नहीं होता; उस दिन तो लहर खो जाती है सागर में और सागर ही हो जाती है।'

कृष्ण महर्षि नहीं हैं, और उन्हें महर्षि न कहने का यही कारण है। वे कोई ज्ञाता नहीं हैं, और न कृष्ण कोई देवता हैं। कृष्ण अपने को छोड़ दिए हैं उस परम के साथ। कृष्ण अब नहीं हैं, अब वह परम ही अपनी अभिव्यक्ति उनके द्वारा कर रहा है।

इसलिए एक बहुत मजे की बात, और बहुत विचित्र, और जिसके कारण बहुत विवाद दुनिया में चला है, वह आपको इस संदर्भ में कहूं।

हिंदू मानते हैं कि वेद ईश्वरीय वचन है। इस्लाम मानता है कि कुरान इलहाम है, रिवीलेशन है; ईश्वर से सीधा प्रकट हुआ है। ईसाई भी मानते हैं कि बाइबिल ईश्वरीय, रूहानी किताब है। लेकिन ये कोई भी ठीक से सिद्ध नहीं कर पाते कि इनका मतलब क्या है। और जो भी सिद्ध करने जाते हैं, वे बहुत बचकानी बातें इकट्ठी कर लेते हैं। और उनको गलत करना बहुत कठिन नहीं है।

जो कहते हैं कि वेद ईश्वर की किताब है, उनको गलत करना बहुत कठिन नहीं है। क्योंकि वेद में जो भी बातें हैं, वे बिलकुल मानवीय हैं और मनुष्यों के वक्तव्य मालूम होते हैं। कुरान में भी जो बातें हैं, वे भी मानवीय हैं और मनुष्यों के वक्तव्य मालूम होते हैं। अत्यंत बुद्धिमत्तापूर्ण, लेकिन फिर भी मनुष्यों के। और बाइबिल में भी वही बात है। कोई भी, एक भी वचन ऐसा नहीं है, जो मनुष्य न दे सके। कोई भी वचन मनुष्य दे सकता है। कोई भी वचन ऐसा नहीं है, जो कि मानने को मजबूर करे कि वह ईश्वरीय है।

अत्यंत बुद्धिमान लोगों के वचन होंगे, श्रेष्ठतम प्रतिभाओं के वचन होंगे, लेकिन ईश्वरीय होने का कोई कारण नहीं मालूम पड़ता। इसलिए जो इनके विपरीत बातें करते हैं, वे सरलता से बातें कर सकते हैं। लेकिन ईश्वरीय मानने का कारण दूसरा है, वह इस सूत्र में है।

इस जगत के मौलिक आधार के संबंध में जो भी वक्तव्य है, वह वक्तव्य इस जगत के मूल से ही आ सकता है, किसी दूसरे के द्वारा नहीं दिया जा सकता। और अगर दूसरा उस वक्तव्य को देगा, तो वह वक्तव्य मिथ्या होगा, फाल्स होगा।

यह जगत ही अपने संबंध में अपना वक्तव्य है। ईश्वर ही कहे अगर, तो ही सार्थक है बात। सागर ही अगर कहे कि मैं ऐसा हूं तो ठीक है। कितनी ही बड़ी लहर सागर के संबंध में कुछ भी कहे, वह वक्तव्य अधूरा होगा, और लहर का ही होगा।

यह वेद, बाइबिल या कुरान का जो आग्रह है कि ये वचन ईश्वरीय हैं, इनका क्या कारण है? इनका कारण यह है कि इन वचनों को मानकर जो भी यात्रा करता है, एक दिन उसका लहर होना मिट जाता है और सागर होना हो जाता है। इन वचनों को मानकर जो भी यात्रा पर निकलता है, वह खुद भी एक दिन मिट जाता है और ईश्वर ही शेष रह जाता है।

जिन लोगों ने इन्हें ईश्वरीय कहा, उनके कहने का प्रयोजन इतना ही है कि इन वचनों को मानकर अगर कोई चले, तो अंततः मनुष्य और मनुष्यता की सीमा के पार चला जाता है। और जिस क्षण इन वचनों की अंतिम घड़ी उपलब्ध होती है, उस क्षण व्यक्ति स्वयं भी मौजूद नहीं रहता, बूंद खो जाती है, सागर ही शेष रह जाता है। तो जिन वक्तव्यों को मानकर अंततः बूंद मिट जाती हो और सागर ही बचता हो, वे वक्तव्य बूंद के नहीं हो सकते। वे वक्तव्य सागर के ही होंगे। क्योंकि बूंद तो जान ही कैसे सकती है!

लेकिन हमारी तकलीफ है। हम अगर कुरान या बाइबिल या वेद को पढ़ते हैं, तो हम जैसे हैं, वैसे ही पढ़ना शुरू करते हैं, बिना किसी यात्रा पर गए। हम अपनी आरामकुर्सी पर बैठकर वेद पढ़ सकते हैं। बिना किसी रूपांतरण में गए, बिना जीवन को बदले, बिना किसी अल्केमी से गुजरे, बिना अपने अनगढ़ पत्थर को हीरा बनाए, हम जैसे हैं, वैसे ही वेद को पढ़ें, कुरान को पढ़ें, बाइबिल को पढ़ें— वे वक्तव्य हमें मनुष्य के ही वक्तव्य मालूम पड़ेंगे। क्योंकि हम वही पढ़ सकते हैं, जो हमारी क्षमता है। जो हमारी क्षमता नहीं है, वह हमारी सीमा के बाहर छूट जाता है।

सूफियों के ग्रंथ हैं। एक—एक ग्रंथ के सात—सात अर्थ हैं। और सूफी फकीर जब किसी साधक को साधना में प्रवेश करवाता है, तो किताब को पढ़वाता है। एक किताब है सूफियों की, किताबों की किताब उसका नाम है, दि बुक आफ दि बुक। छोटी—सी है; वह साधक को पढ़ाई जाएगी। और उससे कहा जाएगा, इसका अर्थ तू लिख डाल। जो भी अर्थ तुझे सूझता हो, वह लिख।

फिर छह महीने साधना चलेगी। और छह महीने के बाद वही किताब, वही छोटी—सी किताब फिर पढ़ाई जाएगी। और साधक से कहा जाएगा, इसके अर्थ अब तू जो भी चाहे लिख। उसे पहले अर्थ नहीं दिखाए जाएंगे। लेकिन इन छह महीनों में उसने यात्रा की है, वह ध्यान की किसी अवस्था को पार हुआ है, वह दूसरे अर्थ लिखेगा। और ऐसा सात बार किया जाएगा। ध्यान की सात सीढ़ियां पार कराई जाएंगी, और यह किताब सात बार पढ़ाई जाएगी, और सात बार अर्थ लिखवाए जाएंगे।

जब सातों अर्थ पूरे हो जाएंगे, तो उस साधक को वे सातों अर्थ दिए जाएंगे, और उससे कह जाएगा, क्या तू भरोसा कर सकता है कि ये सातों तेरे ही अर्थ हैं? आज लौटकर वह खुद भी भरोसा नहीं कर सकता कि ये उसके ही अर्थ हैं। और उसी एक ही आदमी ने एक ही किताब से ये सात अर्थ निकाल लिए!

हम जो भी अर्थ निकालते हैं, वह निकालते कम हैं, डालते ज्यादा हैं। जब भी हम वेद पढ़ते हैं, तो हम वेद नहीं पढ़ते, वेद के द्वारा अपने को पढ़ते हैं। तो जो हम होते हैं, वह अर्थ निकलता है। जब हम बदल जाते हैं तब वेद पढ़ते हैं, तब जो अर्थ होता है, वह दूसरा होता है। और जब हम स्वयं उस जगह पहुंच जाते हैं, जहां व्यक्ति का अहंकार खो जाता है और परमात्मा ही शेष रह जाता है, तब जो अर्थ निकलता है, वह दूसरा ही अर्थ होता है।

जिन्होंने ये सात सीढ़ियां पूरी की हैं ध्यान की, उन्होंने जाना है कि यह वक्तव्य कुरान में जो है, मोहम्मद का नहीं है। उन्होंने जाना कि ये जो वेद में वक्तव्य हैं, ये ऋषियों के नहीं हैं। उन्होंने जाना कि ये जो बाइबिल में वक्तव्य हैं, ये मनुष्य से इनका कोई संबंध नहीं है। ये मनुष्य के पार से आए हुए हैं। मनुष्य के पार से लेकिन तभी कोई चीज आती है, जब मनुष्य मिटने को और दरवाजा बनने को राजी हो जाता है।

तो कृष्ण कहते हैं, न मुझे ऋषि जानते हैं, न मुझे देवता जानते हैं, क्योंकि मैं उनका भी आदि कारण हूं, मैं उनसे भी पहले हूं। और जो मेरे को अजन्मा, अनादि तथा लोकों का महान ईश्वर तत्व से जानता है, वह मनुष्यों में ज्ञानवान पुरुष संपूर्ण पापों से मुक्त हो जाता है।

तब फिर क्या किया जाए? महर्षि नहीं जानते, ज्ञानी नहीं जानते, दिव्य पुरुष नहीं जानते, फिर क्या किया जाए? फिर इस परम तत्व को जानने के लिए क्या है उपाय?

तो कृष्ण कहते हैं, जो मेरे को अजन्मा.।

अब यह बड़ी कठिन बात शुरू हुई। और मनुष्य की श्रद्धा की कसौटी वहां है, जहां कठिन बात शुरू होती है। अति कठिन, बल्कि कहें असंभव।

ईसाई फकीर तरतूलियन ने कहा है कि मैं ईश्वर को मानता हूं क्योंकि ईश्वर असंभव है। उसके भक्तों ने उससे कहा, आपका मस्तिष्क तो ठीक है? तरतूलियन ने कहा कि अगर ईश्वर संभव है, तो फिर मुझे उसे मानने की कोई जरूरत ही न रही। सूरज को मैं मानता नहीं, क्योंकि सूरज संभव है। आकाश को मैं मानता नहीं, क्योंकि आकाश है। मैं ईश्वर को मानता हूं क्योंकि ईश्वर का होना बुद्धि के लिए असंभावना है, इंपासिबल है।

और जब बुद्धि किसी असंभव को मानती है, तो बुद्धि टूट जाती है और शून्य हो जाती है। असंभव से टकराकर नष्ट होती है बुद्धि। असंभव से टकराकर विचार खो जाते हैं। असंभव की स्वीकृति के साथ ही अहंकार को खड़े होने की जगह नहीं मिलती। यह असंभव की बात शुरू होती है। यह आपने बहुत बार गीता में पढ़ी होगी और आपको कभी खयाल में न आया होगा कि असंभव है।

और जो मेरे को अजन्मा, कृष्ण कहते हैं, जो मुझे मानते हैं अजन्मा, अनबॉर्न, जो कभी पैदा नहीं हुआ। अनादि, जिसका कोई प्रारंभ नहीं है। ऐसा जो मुझे तत्व से मानते हैं, ऐसा ईश्वर, वे मनुष्यों में ज्ञानवान पुरुष संपूर्ण पापों से मुक्त हो जाते हैं।

यह अत्यंत कठिन बात है। इसे हम थोड़ा समझें। हम सभी जानते हैं, तथाकथित धार्मिक लोग लोगों को समझाते हैं कि ईश्वर है। क्योंकि अगर ईश्वर न होगा, तो जगत को बनाया किसने? आस्तिक सोचते हैं, बडी गहरी दलील दे रहे हैं। बहुत बचकानी है दलील। आस्तिक सोचते हैं कि बड़ी गहरी दलील दे रहे हैं कि अगर ईश्वर न होगा, तो जगत को बनाया किसने? आस्तिक कहते हैं कि एक छोटा—सा घड़ा भी बनाना हो, तो कुम्हार की जरूरत होती है। अगर घड़ा है, तो कुम्हार भी रहा होगा। होगा। बिना बनाए घड़ा भी नहीं बन सकता। और इतना विराट, इतना व्यवस्थित जगत बिना ईश्वर के बनाए नहीं बन सकता।

आस्तिक यह दलील शायद इसलिए देते हैं कि उनकी बुद्धि भी, जगत बिना बनाया है, ऐसा मानने के लिए तैयार नहीं है। लेकिन उन्हें पता नहीं है कि एक ही कदम आगे बढ़कर मुसीबत शुरू हो जाएगी। और नास्तिक पूछते हैं कि अगर जगत बिना बनाया नहीं बन सकता, तो तुम्हारे ईश्वर को किसने बनाया है? और तब आस्तिक के पैर के नीचे से जमीन खिसक जाती है। तब अक्सर आस्तिक क्रोध में आ जाएगा, क्योंकि आस्तिक बड़े कमजोर हैं। वह कहेगा, ईश्वर को बनाने वाला कोई भी नहीं है।

लेकिन तब उसके अपने ही तर्क के प्राण निकल गए। और नास्तिक उससे कहता है कि अगर ईश्वर को बनाने वाले की कोई जरूरत नहीं है, तो तुम स्वीकार करते हो कि बिना बनाए भी कुछ हो सकता है। तो फिर जगत के ही बिना बनाए होने में कौन—सी तकलीफ है! तत्वत: यह स्वीकार करते हो कि कुछ हो सकता है जो बिना बनाया है, तो इस जगत को क्या अड़चन है! और जब यह मानना ही है, तो जगत पर ही रुक जाना बेहतर है, और एक ईश्वर को बीच में लाने की क्या जरूरत है? यहां आपको तकलीफ होगी।

कृष्ण कहते हैं कि वही मुक्त होगा अज्ञान से, जो मुझे अजन्मा जानता है। जो मुझे मानता है कि मेरा कोई जन्म नहीं, और मैं हूं; और मेरा कोई प्रारंभ नहीं, और मैं हूं।

इसलिए जो छोटा—मोटा आस्तिक है, वह तो दिक्कत में पड़ेगा, क्योंकि उसकी तो सारी तर्क की व्यवस्था ही यही है कि अगर कुछ है, तो उसका बनाने वाला चाहिए। इसलिए हमने ईश्वर को भी स्रष्टा, दि क्रिएटर, बनाने वाला, इस तरह के शब्द खोज लिए हैं, जो कि गलत हैं।

ईश्वर बनाने वाला नहीं है, ईश्वर अस्तित्व है। वही है। उसके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। जो हमें दिखाई पड़ रहा है, वह कोई ईश्वर से भिन्न और अलग नहीं है। उसकी ही अभिव्यक्ति है, उसका ही एक अंश है, उसका ही एक हिस्सा है। सागर का ही एक हिस्सा लहर बन गया है। अभी थोड़ी देर बाद फिर सागर हो जाएगा। फिर लहर बन जाएगा। लहर सागर से अलग नहीं है।

यह जो सृष्टि है...। हमारे शब्द में ही कठिनाई घुस गई है, हमने सोचते—सोचते इसको सृष्टि ही, क्रिएशन ही कहना शुरू कर दिया है। यह जो दिखाई पड़ रहा है हमें चारों तरफ, यह जो प्रकृति है, यह प्रकृति परमात्मा का ही हिस्सा है। यह उतनी ही अजन्मी है, जैसा परमात्मा अजन्मा है।

लेकिन तब बिना बनाए कोई चीज हो सकती है? बिना प्रारंभ के कोई चीज हो सकती है? हमारा प्रारंभ है, हमारा जन्म होता है; हमारी मृत्यु होती है। हम जगत में ऐसी किसी चीज को नहीं जानते, जिसका प्रारंभ न होता हो और अंत न होता हो। सभी चीजें शुरू होती हैं, और सभी चीजें समाप्त हो जाती हैं। आप किसी ऐसे अनुभव को जानते हैं जिसका प्रारंभ न हो, अंत न हो? हमारे अनुभव में ऐसा कोई भी अनुभव नहीं है। इसीलिए इस सूत्र को स्वीकार करने में बुद्धि को अड़चन है, भारी अड़चन है।

अजन्मा, अनादि, ऐसा जो मुझे मानता है, ऐसा जो मुझे जानता है, वह मनुष्यों में ज्ञानवान है और संपूर्ण पापों से मुक्त हो जाता है। यह ज्ञान कुछ दूसरे ही प्रकार का ज्ञान है। जितना हम सोचेंगे, जितना हम विचार करेंगे, उतना ही हमें मालूम पड़ेगा कि सब चीजों का प्रारंभ है और सब चीजों का अंत है। कहीं चीज शुरू होती है और कहीं समाप्त होती है। जन्म होता है कहीं, मृत्यु होती है कहीं। हम खुद अपने ही भीतर खोज करें, तो कुछ पता नहीं चलता कि जन्म के पहले भी हम थे, कि मृत्यु के बाद भी हम होंगे!

झेन फकीर जापान में अपने साधकों को कहते हैं कि ध्यान करो, और खोजो उस चेहरे को, जो जन्म के पहले तुम्हारा था, ओरिजिनल फेस। जब तुम पैदा नहीं हुए थे, तब तुम्हारी शक्ल कैसी थी? या तुम जब मर जाओगे, तब तुम कैसे होओगे, इसकी तलाश करो ध्यान में!

जब भी कोई साधक अपने भीतर खोज लेता है उस सूत्र को, जो जन्म के भी पहले था या मृत्यु के भी बाद बचेगा, तभी इस सूत्र को समझने में समर्थ हो पाता है।

नहीं, इस अस्तित्व का न कोई प्रारंभ है, और न कोई अंत है। हो भी नहीं सकता। वैज्ञानिक स्वीकार करते हैं कि हम रेत के एक छोटे—से कण को भी नष्ट नहीं कर सकते। तोड़ सकते हैं, बदल सकते हैं, रूप दूसरा हो सकता है, लेकिन विनाश असंभव है। और वैज्ञानिक यह भी कहते हैं कि हम रेत के एक छोटे—से नये कण को निर्मित भी नहीं कर सकते।

इस जगत की जो भी गुणात्मक, परिमाणात्मक स्थिति है, वह उतनी की उतनी ही है, उसमें रत्तीभर न कभी बढ़ता है और न कभी घटता है। क्योंकि घटने या बढ़ने का अर्थ होगा, या तो शून्य से कोई चीज पैदा हो और जगत में बढ जाए; घटने का अर्थ होगा, कोई चीज खो जाए और शून्य में लीन हो जाए। लेकिन इस जगत के बाहर न कोई स्थिति है, न कोई स्थान है, न कोई उपाय है।

ईश्वर का अर्थ है, दि टोटेलिटी। इस संपूर्ण अस्तित्व का धार्मिक नाम ईश्वर है। वितान जिसे एक्सिस्टेंस कहता है, अस्तित्व कहता है, प्रकृति कहता है, धर्म उसे ही परमात्मा कहता है।

कृष्ण कहते हैं, जो मुझे अजन्मा, अनादि, ऐसा जानने में समर्थ हो जाए, वह सब पापों के पार हो जाता है।

लेकिन क्यों? अगर आप जान भी लें कि ईश्वर का कोई प्रारंभ नहीं, कोई अंत नहीं, तो आप पाप के पार कैसे हो जाएंगे? यह बहुत अजीब—सी बात है। मैं चोर हूं मैं बेईमान हूं मैं हत्यारा हूं। अगर मैं यह जान भी लूं कि ईश्वर का कोई जन्म नहीं और ईश्वर का कोई अंत नहीं, तो मैं पाप के क्यों पार हो जाऊंगा? मेरे इस जान लेने से मेरे पाप के विसर्जन का क्या संबंध है? यह और भी जटिल बात है। लेकिन बहुत महत्वपूर्ण है।

जैसे ही मैं यह जान लूं कि ईश्वर का कोई प्रारंभ नहीं है और ईश्वर का कोई अंत नहीं है, वैसे ही मुझे यह भी पता चल जाता है कि मेरा भी कोई प्रारंभ नहीं है और मेरा भी कोई अंत नहीं है। वैसे ही मुझे यह भी पता चल जाता है कि आपका भी कोई प्रारंभ नहीं है, आपका भी कोई अंत नहीं है। तो मैंने जो हत्याएं की हों या मेरी हत्या की गई हो, मैंने जो पाप किए हों या मेरे साथ पाप किए हों, वे सब मूल्यहीन हो जाते हैं। एक शाश्वत जगत में खेल से ज्यादा उनकी स्थिति नहीं रह जाती। एक अभिनय और एक नाटक से ज्यादा उनका मूल्य रह जाता।

अगर मैं मृत्यु के बाद भी शेष रहता हूं और जन्म के पहले भी मैं था, तो जीवन में जिन बातों का हम बहुत मूल्य मान रहे हैं, वे मूल्यहीन हो जाती हैं। तब स्थिति केवल यह हो जाती है कि जैसे एक मंच पर एक नाटक चलता हो, रामलीला चलती हो, और मंच के पात्र पर्दे के पीछे जाकर गपशप करते हों। यहां राम की सीता खो जाती हो और राम छाती पीटते हों और वृक्षों से पूछते हों कि सीता कहां है! और पीछे, पर्दे के पीछे बैठकर भूल जाते हों सीता को, सीता के खो जाने को, आंसुओ को। क्यों?

अगर यह मंच ही सब कुछ है और मंच के पहले राम का कोई अस्तित्व नहीं है और मंच के बाद भी राम का कोई अस्तित्व नहीं है, तो फिर बहुत कठिनाई है, फिर जिंदगी बहुत वास्तविक हो जाएगी।

लेकिन मंच पर आने के पहले भी राम हैं, मंच से उतर जाने के बाद भी राम हैं, तो राम होना एक पात्र, एक लीला का हिस्सा रह गया; और राम की जो सातत्यता है, जो कंटिन्युटी है, जो भीतर का अस्तित्व है, वह अंतहीन, अनादि हो गया। उसमें न मालूम कितनी लीलाएं होंगी, न मालूम कितनी लीलाएं होंगी और न मालूम कितने युद्ध होंगे, लेकिन अब उन युद्धों का मूल्य एक नाटक से ज्यादा नहीं रहा।

इसलिए हमने राम के इस पूरे खेल को रामलीला कहा है। उसको हमने बहुत सोचकर लीला कहा है। कृष्ण के जीवन को हमने कृष्णलीला कहा है, बहुत सोचकर। लीला का अर्थ है कि इसका मूल्य अब खेल से ज्यादा नहीं है।

एक लहर उठी है सागर में, हवाओं में, थपेड़ों में। उछलेगी, कूदेगी, नाचेगी, सूरज से मिलने की होड़ करेगी, फिर गिर जाएगी, खो जाएगी। अनेक बार उठी है यह लहर पहले भी, अनेक बार बाद में भी उठेगी। अगर यह लहर यह जान जाए कि जब मैं नहीं उठी। थी,

तब भी थी, और जब गिर जाऊंगी, तब भी रहूंगी, तो फिर इस ' लहर का होना एक खेल हो गया। तब इसमें से भार, गंभीरता, बोझ विलीन हो गया। तब मिटना भी एक आनंद है, होना भी एक आनंद है, न हो जाना भी एक आनंद है। क्योंकि न होकर भी हम मिटते नहीं हैं, और होकर भी हम नये नहीं होते हैं। एक सातत्य है, एक कंटीनम है।

यह शब्द वैज्ञानिक है। आइंस्टीन ने इस शब्द का उपयोग किया है, कंटीनम, एक सातत्य। चीजें सदा हैं। इसलिए चीजों का जो रूप आज दिखाई पड़ता है, वह बहुत मूल्यवान नहीं रह जाता। तब पाप भी मूल्यवान नहीं है और पुण्य भी मूल्यवान नहीं है। तब मैंने जो किया, वह मूल्यवान नहीं है, वरन मैं जो हूं वही मूल्यवान है। तब मेरे साथ जो किया गया, वह भी मूल्यवान नहीं है; तब होना, बीइंग कीमत की चीज है। डूइंग, करना गैर—कीमती चीज है।

इसलिए कृष्ण कहते हैं, जो जान लेगा इस सातत्य को—जो मेरे अजन्मा होने को, अनादि, अनंत होने को जान लेगा—वह सब पापों के पार हो जाएगा।

लेकिन कोई चाहे कि पापों के पार होना है, इसलिए मान लो कि कृष्ण अनादि हैं, अजन्मा हैं, भगवान का होना सदा से है— इस भूल में आप मत पड़ना। इससे पाप नष्ट नहीं होंगे। यह आप जान लेंगे, तो पाप नष्ट हो जाएंगे। लेकिन आप पाप नष्ट करने के लिए ही अगर इसको मान लेंगे, तो पाप नष्ट नहीं होंगे।

पाप तो हम सभी नष्ट करना चाहते हैं, लेकिन बिना ज्ञान की उस ज्योति को उपलब्ध हुए, जहां पाप का अंधेरा गिर जाता है। पाप हम नष्ट करना चाहते हैं, लेकिन ज्ञान की ज्योति को जन्माने की चेष्टा नहीं करना चाहते। तो फिर हम मानकर बैठ जाते हैं कि ठीक है, हम मानते हैं कि जान की ज्योति है, मानते हैं कि ईश्वर अजन्मा है। लेकिन जो भी हम करते हैं, उससे सिद्ध होता है कि न हमें ईश्वर का पता है, न उसके अजन्मा होने का पता है।

कृष्ण के सामने अर्जुन की तकलीफ यही है। अर्जुन कह यह रहा है कि मेरे मित्र हैं, प्रियजन हैं, सगे—संबंधी हैं, युद्ध में इनको काटू, यह बड़ा पाप है। इनसे लडूं, यह बड़ा पाप है। इससे तो अच्छा है, मैं संन्यास ले लूं। मैं यह सब छोड़ दूं। मैं भाग जाऊं, मैं विरत हो जाऊं।

कृष्ण उससे कह रहे हैं कि जब तक तू देख नहीं पा रहा है कि इन सारी लहरों के भीतर एक ही सागर है। जब ये लहरें नहीं थीं, तब भी वह सागर था; और जब कल ये लहरें सब गिर जाएंगी, तब भी सागर रहेगा। अगर तू इस अनादि, अजन्मा को देख ले, तो फिर तुझे यह जो पाप की और पुण्य की धारणा पैदा होती है, यह तत्काल विसर्जित हो जाए।

परम ज्ञानी के लिए न कोई पाप है और न कोई पुण्य। इसका यह अर्थ नहीं कि वह पाप करता है। वह पाप कर ही नहीं सकता। इसका यह अर्थ नहीं है कि वह पुण्य नहीं करता। वह पुण्य ही कर सकता है। पुण्य और पाप की परिभाषा ज्ञानी के जीवन में दूसरी ही हो जाती है।

अभी हम उसे पाप कहते हैं, जो नहीं करना चाहिए, यद्यपि करते हैं। और उसे पुण्य कहते हैं, जो करना चाहिए और नहीं करते हैं। जैसे ही कोई व्यक्ति ईश्वर के इस सातत्य को अनुभव करता है, वैसे ही पाप और पुण्य की परिभाषा बदल जाती है। तब वह व्यक्ति जो करता है, वह पुण्य कहलाता है। और वह जो नहीं करता है, वह पाप कहलाता है। और जो नहीं करता है, वह करना भी चाहे, तो नहीं कर सकता है। और वह जो करता है, अगर चाहे भी कि न करूं, तो बच नहीं सकता है।

पुण्य अनिवार्यता है ज्ञान में। और पाप अनिवार्यता है अज्ञान में। लाख उपाय करो, अज्ञान में पाप से बचा नहीं जा सकता, पाप होगा ही। और लाख उपाय करो, ज्ञान में पुण्य से बचा नहीं जा सकता; पुण्य होगा ही। ज्ञान में जो होता है, उसका नाम पुण्य है; और अज्ञान में जो होता है, उसका नाम पाप है। इसलिए अज्ञान में जिन्हें हम पुण्य समझकर करते हैं, वह हम समझते ही होंगे कि पुण्य हैं, वे पुण्य होते नहीं।

अज्ञान में एक आदमी मंदिर बनाता है भगवान का, तो सोचता है, पुण्य कर रहा है। लेकिन मंदिर जिस ढंग से बनाता है, जहां से पैसा खींचकर लाता है, उसे उसका कोई हिसाब नहीं है। मंदिर बनाता है शोषण से, सोचता है, पुण्य कर रहा हूं! और जिस पुण्य को करने के लिए भी पाप करना पड़ता हो, वह कितना पुण्य होता होगा!

और मंदिर बनाता है भगवान के नाम से, लेकिन तख्ती अपनी लगाता है। वह भगवान तो गौण है, वह जो मंदिर पर पत्थर लगता है अपने नाम का, वही असली बात है। मंदिर उसी के लिए बनाया जाता है। भगवान की प्रतिमा भी उसी पत्थर के लिए भीतर रखी जाती है। अहंकार जिस मंदिर में प्रतिष्ठित हो रहा हो, वह कितना पुण्य है?

इसलिए अज्ञानी कुछ भी करे, कितने ही मंदिर बनाए और कितनी ही तीर्थयात्राए करे—मक्का जाए, और जेरूसलम जाए, और काशी जाए, और जो भी करना चाहे करे— अज्ञानी कुछ भी करे, अज्ञान के कारण वह जो भी करेगा, वह पाप ही होगा। पुण्य के कितने ही मुलम्मे चढ़ाए और पुण्य के कितने ही वस्त्र ढांके, भीतर जब भी खोदकर जाएंगे, तो पाप ही मिलेगा।

इससे उलटी बात और भी कठिन है समझनी, कि ज्ञानी कुछ भी करे, पुण्य ही होगा। इसलिए तो कृष्ण उससे कह रहे हैं कि तू लड़ने की फिक्र छोड़, ज्ञान की फिक्र कर। और अगर तुझे ज्ञान मिल जाए, तो मैं तुझसे कहता हूं तू काट डाल इन सारे लोगों को, जो तेरे सामने खड़े हैं, और पाप नहीं होगा। और अगर ज्ञान न हो, तो तू भाग जा जंगल, चींटी को भी मत मार, फूंक—फूंककर पैर रख, और मैं तुझसे कहता हूं कि पाप ही होगा।

यह परम ज्ञान उस सातत्य के साथ अपना एकत्व अनुभव होने से होता है।

यह कठिन सूत्र है। फिर इस सूत्र को समझाने के लिए ही पूरा अध्याय है। इस सूत्र को ख़याल में ले लें। इसमें परम वचन, ऐसा वचन कृष्ण कहने जाने की घोषणा कर रहे हैं, जिसे बुद्धि से नहीं समझा जा सकता, तर्क से जिस तक पहुंचने का उपाय नहीं है। हां, प्रेम और श्रद्धा का संबंध हो, तो संवाद हो सकता है। अर्जुन के हित की दृष्टि से कह रहे हैं। कहने का कोई मजा नहीं है।

एक तो आदमी होते हैं, जिन्हें कहने का मजा होता है। जिन्हें इससे प्रयोजन नहीं होता कि आपका कोई हित होगा, इसलिए कह रहे हैं। जिन्हें कहना है, जैसे कि खुजली खुजलानी है। उन्हें कुछ कहना है, वे कह रहे हैं। दिनभर हम जानते हैं चारों तरफ लोगों को, जो सुबह अखबार पढ़ लिए और फिर निकले किसी से कहने!

उनको कहना है। कहना उनके लिए बीमारी है। बिना कहे उनसे नहीं चलेगा। अगर उनको चार दिन अकेले बंद कर दो, तो वे दीवालों से बातचीत शुरू कर देंगे। जाना गया है ऐसा।

कारागृह में कैदी बंद होते हैं, तो थोड़े दिन के बाद दीवालों से बातचीत शुरू कर देते हैं। मकड़ी हो ऊपर, तो उससे बातचीत करने लगते हैं; छिपकली हो, तो उससे बातचीत करने लगते हैं। कोई न हो, तो अपने को ही दो हिस्सों में बांट लेते हैं। एक तरफ से प्रश्न उठाते हैं, दूसरी तरफ से जवाब देते हैं।

हम सभी करते रहते हैं। कोई न मिले, जरूरी भी नहीं। हमेशा श्रोता मिलना आसान नहीं। और जैसे दिन खराब आते जा रहे हैं, श्रोता बिलकुल नाराज है; सुनने को कोई राजी नहीं है। पति कुछ कहना चाहता है, पत्नी सुनने को राजी नहीं है। मां कुछ कहना चाहती है, बेटा सुनने को राजी नहीं है। बाप कुछ कहना चाहता है, कोई सुनने को राजी नहीं है! श्रोता मुश्किल होता जा रहा है। और बोलना है, कहना है! एक बीमारी है।

बर्ट्रेंड रसेल ने इक्कीसवीं सदी की कहानी लिखी है एक। उसमें उसने लिखा है कि जगह—जगह हर बड़े नगर में तख्तियां लगी हैं, जो बड़ी अजीब हैं। उन तख्तियों पर लिखा हुआ है कि आपको कुछ भी कहना हो, तो हम सुनने को राजी हैं। सुनने की इतनी फीस! और अभी ऐसा हो रहा है। पश्चिम में जिसको साइकोएनालिसिस कहते हैं, मनोविश्लेषण कहते हैं, वह कुछ भी नहीं है, आपकी बकवास सुनने की फीस! सालों चलता है एनालिसिस। पैसा जिनके पास है, वे एक बड़े मनोवैज्ञानिक के पास सप्ताह में तीन दफा, चार दफा जाकर घंटेभर, जो उनको बकना है, बकते हैं। वह बड़ा मनोवैज्ञानिक शांति से सुनता है।

सालभर की इस बकवास से मरीजों को लाभ होता है। लाभ इलाज से नहीं होता है, इस बकवास के निकल जाने से होता है। यह बीमारी है; कैथार्सिस हो जाती है सालभर। और एक बुद्धिमान आदमी, प्रतिष्ठित आदमी, योग्य आदमी, सुशिक्षित आदमी बड़ी लगन से आपकी बात सुनता है, क्योंकि आप उसको सुनने के पैसे देते हैं। वह आपकी लगन से बात सुनता है। आप कुछ भी कहिए, वह उसको ऐसे सुनता है, जैसे कि परम सत्य का उदघाटन किया जा रहा हो!

तो पश्चिम में बड़े घरों के लोग एक—दूसरे से पूछते हैं, कितनी बार साइकोएनालिसिस करवाई? कितने दिन तक? पैसे वाले का लक्षण आज अमेरिका में यही है; खास कर स्त्रियों का। पैसे वाली

स्त्रियों का लक्षण यही है कि उन्होंने कितने बड़े मनोवैज्ञानिक के साथ कितने साल तक मनोविश्लेषण करवाया है!

और मनोविश्लेषण का कुल मतलब इतना है कि मनोवैज्ञानिक कहता है, लेट जाओ इस कोच पर, और जो भी मन में आए, फ्री एसोसिएशन ऑफ थॉट्स, जो भी मन में आए, कहे चले जाओ। जो भी आए! संगत—असंगत का कोई सवाल नहीं। लोग बड़े हल्के होकर लौटते हैं।

एक तो कहने वाले वे लोग हैं, जिन्हें कहना एक बीमारी है। उनके भीतर कुछ भरा है, उसे निकालना है। लेकिन उससे दूसरे का हित कभी नहीं होता।

कृष्ण कहते हैं, मैं तेरे हित के लिए कहूंगा। कुछ कहने का सवाल नहीं है। लेकिन तेरे सुनने की घड़ी आ गई, तेरे सुनने का क्षण आ गया, वह परिपक्व मौका आ गया, जब तेरा हृदय राजी है, तो मैं तुझसे परम सत्य कहूंगा। और यह परम सत्य, इस सूत्र की व्याख्या होगी अंततः, कि जीवन अजन्मा है, अनादि है। अस्तित्व का न कोई प्रारंभ है, न कोई अंत। और हम इस अस्तित्व में छोटी लहरों से ज्यादा नहीं। हमारे कृत्य इस परम विस्तार को ध्यान में रखकर सोचे जाएं, तो लीला मात्र, खेल मात्र रह जाते हैं।

अगर इस परम विस्तार को छोड़ दिया जाए, तो हमारे कृत्य बड़ी महिमा ले लेते हैं, बड़ी गरिमा ले लेते हैं, बड़े महत्वपूर्ण हो जाते हैं। और हम सबकी नजर इतनी छोटी है कि इस विस्तार को हम नहीं देख पाते।

अपने घर में आप बैठे हैं अपनी कुर्सी पर, अपने कमरे के भीतर, तो आप सम्राट मालूम होते हैं। थोड़ा बाहर आइए; फिर फैले हुए इस विराट आकाश को देखिए, फिर इन चांद—तारों को देखिए, तब आपको अपना अनुपात अलग मालूम पड़ेगा। तब आपके छोटे—से कमरे में आप जो सम्राट मालूम होते थे, वह अब नहीं मालूम पड़ेंगे। यह छोटे—छोटे दड़बों में आदमी बंद है, फ्लैट्स में, छोटी—छोटी कोठरियों में आदमी बंद है, उसकी वजह से उसकी अकड़ बहुत बढ़ गई है। उसे थोड़ा खुले आकाश के नीचे लाना चाहिए, तो उसे पता चले कि अपना अनुपात कितना है!

विराट आकाश! और जितना आकाश आपको दिखता है, उतना ही नहीं है, यह तो आपकी आख की कमजोरी की वजह से इतना दिखता है। यह आकाश और भी विराट है। तो एक बड़े दूरदर्शी यंत्र से देखिए। तब आपको दिखाई पड़ेगा कि जितने तारे आपको दिखाई पड़ते हैं, ये तो कुछ भी नहीं हैं। आपने हालांकि सोचा होगा, क्योंकि हमारी गणना कितनी है! आप रात में तारे देखते हैं? तो कहते हैं, असंख्य! गलती में मत पड़ना।

आम आख से आदमी चार हजार तारों से ज्यादा तारे नहीं देखता। अच्छी से अच्छी आख चार हजार तारे देखती है, बस। चूंकि आप गिन नहीं पाते, इसलिए सोचते हैं, असंख्य। लेकिन दूरदर्शक यंत्र से देखिए, तो तीन अरब तारे अब तक देखे जा चुके हैं। लेकिन वे तीन अरब तारे जगत की सीमा नहीं हैं। जगत उनके भी पार, उनके भी पार, उनके भी पार है। अब वैज्ञानिक कहते हैं, हम कहीं भी तय न कर पाएंगे कि जगत की सीमा है।

अगर इस असीम का पता चले, तो आपको अपना कमरा और आपका राजा होना उस कमरे में, कितना मूल्यवान मालूम पड़ेगा? अगर आपको इस अनंत विस्तार का पता चले, तो पड़ोसी से आपकी एक इंच जमीन के लिए जो अदालत में मुकदमा चल रहा है, वह मुकदमा कितना मूल्यवान मालूम पड़ेगा? उसकी कोई रेलिवेंस, उसकी कोई संगति मालूम नहीं पड़ेगी।

अगर आप पीछे लौटकर देखें, तो अरबों— अरबों लोग इस जमीन पर रहे हैं। वैज्ञानिक कहते हैं कि जहां आप बैठे हैं, उस जगह पर कम से कम दस आदमियों की कब्र बन चुकी है, हर जगह पर। जहां आप बैठे हैं, वहां दस मुर्दे गड़े हैं। इतने आदमी हो चुके हैं कि अगर हम पूरी जमीन पर भी गड़ाएं, तो हर इंच पर दस मुर्दे गड़ जाएंगे! उनके भी झगड़े थे, उनकी भी अकड़ थी, उनकी भी राजनीति थी, उनके भी छोटी—छोटी बातों पर बड़े—बड़े विवाद थे, वे सब खो गए। आज उनका कोई विवाद नहीं है। कल हमारा भी कोई विवाद नहीं होगा।

अगर हम इस सातत्य को, इस विस्तार को अनुभव करें, तो कहां टिकेगा पाप? कहां टिकेगा पाप? कहां टिकेगा अहंकार? कहां टिकूंगा मैं? वे सब खो जाएंगे। और उनके खो जाने पर व्यक्ति नहीं बचता, परमात्मा ही बचता है।

गीता दर्शन–भाग–5
रूपांतरण का आधार—निष्कंप चित्त और जागरूकता—(प्रवचन—दूसरा)
अध्याय—10

सूत्रः

बुद्धिर्ज्ञानमसम्मोह क्षमा सत्यं दमः शमः ।
सुखं—–दुखं भवोऽभावो भयं चाभयमेव च।।4।।
अहिंसा समता तुष्टिस्तयो दानं यशोउयश।
भवन्ति भावा भूतानां मल एव पृथग्विधा।।5।।

महर्षयः सप्त पूर्वे चत्वारो मनवस्तथा।
मद्भावा मानसा जाता येषां लोक इमाः प्रजाः ।।6।।
और हे अर्जुन निश्चय करने की शक्ति एवं तत्वज्ञान और अमूढ़ता क्षमा सत्य तथा इंद्रियों का वश में करना और मन का निग्रह तथा सुख—दुख, उत्पत्ति और प्रलय एवं भय और अभय भी तथा अहिंसा समता संतोष तय दान कीर्ति और अपकीर्ति ऐसे ये प्राणियों के नाना प्रकार के भाव मेरे से ही होते हैं।

और हे अर्जुन सात महर्षिजन और चार उनसे भी पूर्व में होने वाले सनकादि तथा स्वायंभुव आदि चौदह मनु ये मेरे में भाव वाले सब के सब मेरे संकल्प से उत्पन्न हुए हैं कि जिनकी संसार में यह संपूर्ण प्रजा है।

जैसे आकाश ने सबको घेरा हुआ है, जैसे जीवन की ऊर्जा सभी में परिव्याप्त है, वैसे ही कण—कण, चाहे पदार्थ का हो, चाहे चेतना का, परमात्मा की ही अभिव्यक्ति है। कृष्ण इस सूत्र में अर्जुन से कह रहे हैं कि मेरे अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। पहले इस मौलिक धारणा को समझ लें, फिर हम सूत्र को समझें।

जैसा हम देखते हैं, तो सभी चीजें अलग—अलग मालूम पड़ती हैं। कोई एक ऐसा तत्व दिखाई नहीं पड़ता, जो सभी को जोड़ता हो। जब हम देखते हैं, तो माला के गुरिए ही दिखाई पड़ते हैं। वह माला के भीतर जो पिरोया हुआ सूत का धागा है, जो उन सबकी एकता है, वह हमारी आंखों से ओझल रह जाता है। जब भी हम देखते हैं, तो हमें खंड दिखाई पड़ते हैं, लेकिन अखंड का कोई अनुभव नहीं होता। यह अखंड का जब तक अनुभव न हो, तब तक परमात्मा की कोई प्रतीति भी नहीं है। इसीलिए हम कहते हैं कि परमात्मा को मानते हैं, मंदिर में श्रद्धा के फूल भी चढ़ाते हैं, मस्जिद में उसका स्मरण भी करते हैं, गिरजाघर में उसकी स्तुति भी गाते हैं। लेकिन फिर भी वह परमात्मा, जिसके चरणों में हम सिर झुकाते हैं, हमारे हृदय के भीतर प्रवेश नहीं कर पाता है।

आश्चर्य की बात कि हम जिस अखंड की खोज में मंदिर और मस्जिद और गुरुद्वारे में जाते हैं, हमारा मंदिर, हमारा मस्जिद, हमारा गुरुद्वारा भी हमें खंड—खंड करने में सहयोगी होते हैं। हम मंदिर और मस्जिद के बीच भी एक को नहीं देख पाते हैं। हिंदू और मुसलमान और ईसाई के पूजागृहों में भी हमें फासले की दीवालें और शत्रुता की आड़े दिखाई पड़ती हैं। मंदिर भी अलग—अलग हैं, तो यह पूरा जीवन तो कैसे एक होगा?

मंदिर अलग नहीं हैं, लेकिन हमारे देखने का ढंग केवल खंड को ही देख पाता है, अखंड को नहीं देख पाता है। तो हम जहां भी अपनी दृष्टि ले जाते हैं, वहां ही हमें टुकड़े दिखाई पड़ते हैं। वह समग्र, जो सभी को घेरे हुए है, हमें दिखाई नहीं पड़ता है।

अर्जुन की भी तकलीफ वही है। उसे भी अखंड का कोई अनुभव नहीं हो रहा है। उसे दिखाई पड़ता है, मैं हूं। उसे दिखाई पड़ता है, मेरे मित्र हैं, प्रियजन हैं, शत्रु हैं। उसे दिखाई पड़ता है कि सुख क्या है, उसे दिखाई पड़ता है कि दुख क्या है। उसे दिखाई पड़ता है कि पाप क्या है, पुण्य क्या है। उसे सब दिखाई पड़ता है, सिर्फ एक, जो सभी के भीतर छिपा हुआ है, वह भर दिखाई नहीं पड़ता है। और इसलिए कृष्ण और अर्जुन के बीच जो चर्चा है, वह दो दृष्टियों के बीच है।

अर्जुन खंडित दृष्टि का प्रतीक है और कृष्ण अखंडित दृष्टि के। कृष्ण समग्र की, दि होल, वह जो पूरा है, उसकी बात कर रहे हैं और अर्जुन टुकड़ों की बात कर रहा है। शायद इसीलिए दोनों के बीच बात तो हो रही है, लेकिन कोई हल नहीं हो पा रहा है। उन दोनों का जीवन को देखने का ढंग ही भिन्न है।

इस सूत्र में कृष्ण अर्जुन को एक—एक बात गिना रहे हैं कि मैं कहां—कहां हूं। इतना ही कहना काफी होता कि मैं सब जगह हूं। इतना ही कहना काफी होता कि सभी कुछ मैं ही हूं। लेकिन यह बात अर्जुन को स्पष्ट न हो पाएगी। अर्जुन को खंड—खंड में ही गिनाना पड़ेगा कि कहां—कहां मैं हूं। शायद उसे खंड—खंड में यह एक की झलक मिल जाए, तो खंड खो जाएं और अखंड की प्रतीति हो सके। इसलिए कृष्ण कहते हैं, हे अर्जुन, निश्चय करने की शक्ति एवं तत्वज्ञान और अमूढ़ता.।

ये तीन शब्द बहुत कीमती हैं। निश्चय करने की शक्ति!

जैसा हमारे पास मन है, अगर हम ठीक से समझें, तो हम कह सकते हैं, मन है अनिश्चय करने की शक्ति। मन का सारा काम ही भीतर यह है कि वह हमें निश्चित न होने दे। मन जो भी करता है, अनिश्चय में ही करता है। कोई भी कदम उठाता है, तो भी पूरा मन कभी कोई कदम नहीं उठाता। एक हिस्सा मन का विरोध करता ही रहता है।

अगर आप किसी को प्रेम करते हैं, तो भी मन पूरा प्रेम नहीं करता; मन का एक हिस्सा, जिसे आप प्रेम करते हैं, उसी के प्रति घृणा से भी भरा रहता है। और इसीलिए किसी भी दिन प्रेम घृणा बन सकता है। मन में घृणा तो मौजूद ही है। जिसे आप प्रेम करते हैं, किसी भी क्षण उसी के प्रति क्रोध से भर सकते हैं। एक क्षण में प्रेम की शीतलता क्रोध की अग्नि बन सकती है, क्योंकि मन तो क्रोध से भरा ही है।

और पूरे मन से न हम प्रेम करते हैं, और न पूरे मन से हम शांत होते हैं, और न पूरे मन से हम सच्चे होते हैं। पूरा मन जैसी कोई चीज ही नहीं होती। यह समझने में थोड़ी कठिनाई पड़ेगी।

जहां पूरा हो जाता है मन, वहां मन समाप्त हो जाता है। जब तक अधूरा होता है, तभी तक मन होता है। इसे हम ऐसा समझें कि अधूरा होना, मन का स्वभाव है। अपने ही भीतर बंटा होना, मन का स्वभाव है। अपने ही भीतर लड़ते रहना, मन का स्वभाव है। द्वंद्व, कलह, खंडित होना, मन की नियति और प्रकृति है।

आपने जीवन में बहुत बार निर्णय लिए होंगे, रोज लेने पड़ते हैं, लेकिन मन से कभी कोई निर्णय पूरा नहीं लिया जाता। मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, संन्यास हमें लेना है, लेकिन अभी सत्तर प्रतिशत मन तैयार है; अभी तीस प्रतिशत मन तैयार नहीं है। कोई आता है, वह कहता है, नब्बे प्रतिशत मन तैयार है; अभी दस प्रतिशत मन तैयार नहीं है। जब मेरा पूरा मन तैयार हो जाएगा, तब मैं संन्यास में छलांग लगाऊंगा। मैं उनसे कहता हूं कि पूरा मन तुम्हारा किसी और चीज में कभी तैयार हुआ है?

पूरा मन कभी तैयार होता ही नहीं। और जब कोई व्यक्ति पूरा तैयार होता है, तो मन शून्य हो जाता है; मन तत्क्षण विदा हो जाता है। अधूरे आदमी के पास मन होता है, पूरे आदमी के पास मन नहीं होता। बुद्ध, या राम, या कृष्ण जैसे व्यक्तियों के पास मन नहीं होता। और जहां मन नहीं होता, वहीं आत्मा के दर्शन, वहीं परमात्मा की झलक मिलनी शुरू होती है।

साधारण—सी बात में भी मन झिझकता है! बाएं रास्ते से जाऊं या दाएं से, तो भी मन सोचता है। तो भी आधा मन कहता है बाएं से, आधा मन कहता है दाएं से। और अगर हम कभी जाते भी हैं, तो वह निर्णय डेमोक्रेटिक होता है, पार्लियामेंटरी होता है। मन का ज्यादा हिस्सा जहां कहता है, वहां हम चले जाते हैं। साठ प्रतिशत मन जो कहता है, वही हम हो जाते हैं। चालीस प्रतिशत जो मन कहता है, उसे हम नहीं करते। बहुमत मन का जो कहता है, हम उसके पीछे चले जाते हैं।

लेकिन जो अभी बहुमत है, वह कल सुबह तक बहुमत रहेगा, यह पक्का नहीं है। ठीक वैसे ही जैसे पार्लियामेंट में भी पक्का नहीं है कि जो अभी बहुमत है, वह कल सुबह तक भी बहुमत रहेगा। दलबदलू वहां ही नहीं हैं, मन के भीतर भी हैं।

सांझ जिसने तय किया था कि सुबह चार बजे उठूंगा और सोचा था, दुनिया की कोई ताकत नहीं रोक सकेगी, सुबह चार बजे घड़ी का अलार्म बजता है, वही आदमी करवट लेकर कहता है, ऐसी भी क्या बात है, अभी सर्दी बहुत है और अगर आधी घड़ी सो भी लिए, तो हर्ज क्या है! वही आदमी सुबह सात बजे उठकर पछताता है और कहता है, यह कैसे हुआ! क्योंकि मैंने संकल्प किया था कि चार बजे उठूंगा ही, चाहे कुछ भी हो जाए। फिर मैं चार बजे उठा क्यों ' नहीं? दुखी होता है।

ये तीन बातें एक ही आदमी कर लेता है! सांझ तय करता है, उठूंगा, चाहे कुछ भी हो जाए। चार बजे तय कर लेता है, छोड़ो भी, कुछ ऐसा उठना अनिवार्यता नहीं है, किसी की गुलामी तो नहीं है। घड़ी बज जाए, हम कोई घड़ी के गुलाम तो नहीं हैं कि उठ जाएं। और सुबह सात बजे यही आदमी पछताता है।

यह एक ही आदमी इसलिए कर पाता है, क्योंकि मन का बहुमत बदल जाता है। सांझ नब्बे प्रतिशत से निर्णय लिया था, लेकिन उसे भी पता नहीं कि छह घंटे सोने के बाद आलस्य की ताकतें बढ़ गई होंगी, और नींद के क्षण में मन का वह हिस्सा वजनी हो जाएगा, जो रात को कमजोर था, सांझ अल्पमत में था, सुबह चार बजे बहुमत में हो जाएगा। फिर वही आदमी सात बजे पछताता है, क्योंकि सुबह जागकर सांझ की बुद्धि का खयाल आता है। होश बढ़ता है। सुबह के सूरज के साथ भीतर भी प्रकाश बढ़ता है। वह जो अल्पमत में हो गया था चार बजे रात के अंधेरे में, वह फिर बहुमत में हो गया है। पछतावा शुरू हो जाता है। यह आदमी सांझ फिर तय करेगा, रात फिर बदलेगा, सुबह फिर पछताएगा। पूरी जिंदगी आदमी की ऐसी है।

मन कोई भी निर्णय पूरा नहीं ले पाता।

सुना है मैंने, बंगाल में एक भक्त हुआ। कभी मंदिर में नहीं गया। पिता बहुत धार्मिक थे। तो पिता चिंतित थे, स्वभावत:। लेकिन बेटा बड़ा ज्ञानी था, शास्त्रों का बड़ा ज्ञाता था। दूर—दूर तक बड़ी ख्याति थी। नव्य न्याय का, न्याय का, तर्क का बड़ा पंडित था। साठ वर्ष का हो गया, तो अस्सी वर्ष के पिता ने कहा कि अब बहुत हो गया, अब तू भी का हो गया, अब मंदिर जाना जरूरी है!

उस साठ वर्ष के के बेटे ने कहा, मंदिर तो मैं कई बार सोचा कि जाऊं, लेकिन पूरा मन कभी मैंने पाया नहीं कि मंदिर जाऊं। और अगर अधूरे मन से गया, तो मंदिर में जा ही कैसे पाऊंगा? आधा बाहर रह जाऊंगा, आधा भीतर जाऊंगा, तो जाना हो ही नहीं पाएगा। और फिर मैं आपको भी रोज मंदिर जाते देखता हूं वर्षों से, चालीस वर्ष का तो कम से कम मुझे स्मरण है; लेकिन आपकी जिंदगी में मैंने कोई फर्क नहीं देखा। तो मैं मानता हूं कि आप मंदिर अभी पहुंच ही नहीं पाए हैं। आप जाते हैं, आते हैं, लेकिन पूरा मंदिर और पूरा मन कहीं मिल नहीं पाते। तो आपको देखकर भी मेरी हिम्मत टूट जाती है। जाऊंगा एक दिन जरूर, लेकिन उसी दिन, जिस दिन पूरा मन मेरे पास हो।

और दस वर्ष बीत गए। बाप मरने के करीब पहुंच गया। अभी तक वह प्रतीक्षा कर रहा है कि किसी दिन उसका बेटा जाएगा। सत्तरवीं उसकी वर्षगांठ आ गई। और बेटा उस दिन सुबह बाप के, पैर छूकर बोला कि मैं मंदिर जा रहा हूं।

बेटा मंदिर गया। घड़ी, दो घड़ी, तीन घड़ी बीती। बाप चिंतित हुआ; बेटा मंदिर से अब तक लौटा नहीं है! फिर आदमी भेजा। मंदिर के पास तो बड़ी भीड़ लग गई है। फिर का बाप भी पहुंचा। पुजारियों ने कहा कि इस बेटे ने क्या किया, पता नहीं! इसने आकर सिर्फ एक बार राम का नाम लिया और गिर पड़ा!

एक पत्र वह अपने घर लिखकर रख आया था। जिसमें उसने लिखा था कि एक बार राम का नाम लूंगा, पूरे मन से। अगर कुछ हो जाए, तो ठीक, अगर कुछ न हो, तो फिर दुबारा नाम न लूंगा। क्योंकि फिर दुबारा लेने का क्या प्रयोजन है?

एक ही बार राम का नाम पूरे मन से लिया गया, वह शरीर से मुक्त हो गया! लेकिन पूरे मन से तो हम कुछ ले नहीं पाते। पूरे मन का मतलब ही होता है कि मन समाप्त हुआ। मन का कोई अर्थ ही नहीं होता, जब मन पूरा हो जाए।

तो कृष्ण पहला सूत्र का हिस्सा कहते हैं, निश्चय करने की शक्ति मैं हूं।

तो जिस दिन भी अर्जुन, तू पूर्ण निश्चय कर पाएगा, उस दिन तू मुझे समझ लेगा कि मैं कौन हूं मैं किसकी बात कर रहा हूं। लेकिन जब तक तू उस पूरे निश्चय को नहीं कर पाएगा, तब तक मुझे नहीं समझ पाएगा।

पूर्ण निश्चय हमने कभी भी नहीं किया है। छोटे—मोटे निश्चय भी हमने पूर्ण नहीं किए हैं। अगर आप पांच मिनट के लिए भी तय करें कि मैं आंख को नहीं झपकूंगा, तो भी आपको परमात्मा की झलक मिल जाए। लेकिन पांच मिनट में आंख पच्चीस बार शाक जाएगी। ' अगर आप तय करें कि मैं पांच मिनट बिना हिले खड़ा रहूंगा, तो भी परमात्मा की झलक मिल जाए। लेकिन पांच मिनट में पच्चीस बार आप हिल जाएंगे। जिस मन से आप तय कर रहे हैं, उस मन का स्वभाव कंपन है। तो पूर्ण निश्चय तभी होता है, जब कोई व्यक्ति मन के पार उठ पाए।

समस्त ध्यान की प्रक्रियाएं मन के पार उठने के उपाय हैं। मन का। अर्थ है, विचलित चेतना। और ध्यान का अर्थ है, अविचलित चेतना। ध्यान का अर्थ है, मन की मृत्यु।

इसलिए झेन फकीरों ने ध्यान के लिए नाम दिया है, नो माइंड। कबीर ने भी ध्यान को अ—मनी अवस्था कहा है; ए स्टेट आफ नो माइंड। ध्यान का अर्थ है, जहां मन न रह जाए, जहां मन न बचे, जहां कोई विकल्प न हो, जहां कोई द्वंद्व न हो।

अगर एक क्षण को भी मैं इस आंतरिक समता को पा जाऊं, जहां मन में कोई द्वंद्व न हो, जहां कोई विपरीत भाव न हो, जहां कोई कलह न हो, कोई कांफ्लिक्ट न हो—एक क्षण को भी अगर यह समरसता भीतर आ जाए, तो मैं निश्चय को उपलब्ध हुआ।

उसी क्षण मुझे परमात्मा उपलब्ध हो जाए; उसी क्षण उसकी मुझे झलक मिल जाए; धागे की झलक मिल जाए, मनकों के भीतर जो छिपा है।

सूफी फकीर एक ध्यान का अभ्यास करते और करवाते हैं। पश्चिम में जार्ज गुरजिएफ ने भी उस ध्यान के प्रयोग को बहुत प्रचलित किया इस सदी में। सूफी फकीर उस प्रयोग को कहते हैं, दि एक्सरसाइज आफ हाल्ट। और गुरजिएफ ने उसे कहा है, स्टाप , एक्सरसाइज—रुक जाने का प्रयोग।

गुरजिएफ अपने साधकों को कहता था कि जब मैं कहूं स्टाप, रुक जाओ, तो तुम जो भी कर रहे होओ, वैसे ही रुक जाना। अगर तुम्हारा बायां पैर चलने के लिए ऊपर उठा हो, तो वह वहीं ठहर जाए। अगर तुम्हारा ओंठ खुला हो बोलने के लिए, तो वहीं रुक जाए। अगर तुम्हारी आंख खुली हो, तो ठहर जाए। तुम फिर कुछ भी बदलाहट मत करना, वैसे ही रुक जाना।

सूफी फकीर कहते हैं कि अगर एक क्षण को भी कोई पूर्णता से रुक जाए, तो उसी पूर्णता के रुकावट के क्षण में, ठहरे होने के क्षण में, उस अगति में, उसे निश्चय का अनुभव हो जाएगा।

गुरजिएफ यह प्रयोग कर रहा था, तिफलिस, रूस के एक छोटे— से नगर में। एक नहर के पास पड़ाव डालकर अपने साधकों के साथ पड़ा था। तंबू के भीतर बैठा था सुबह ही और पास में ही नहर थी। लेकिन नहर बंद थी, पानी उसमें था नहीं। अचानक उसने चिल्लाकर तंबू के भीतर से कहा, स्टाप, रुक जाओ!

तीन साधक नहर को पार कर रहे थे, सूखी नहर को, वे वहीं रुक गए। जो साधक ऊपर थे, वे ऊपर रुक गए। और तभी अचानक नहर किसी ने खोल दी। पानी आ गया।

पानी को देखकर एक साधक ने सोचा कि गुरजिएफ तो भीतर है तंबू के, उसे क्या पता कि हम कहा फंस गए हैं! अगर मैं रुका, तो जान को खतरा है। लेकिन फिर भी वह जब तक गले तक पानी आया, तब तक रुका रहा। गले के ऊपर पानी जाने लगा, वह छलांग लगाकर बाहर निकल गया। दूसरे साधक ने सोचा कि और थोड़ी देर रुकूं; शायद गुरजिएफ आज्ञा दे दे। लेकिन जब नाक भी पानी में डूबने लगी, तो उसने सोचा कि अब पागलपन है। हम यहां ध्यान सीखने आए हैं, कोई जान गंवाने नहीं। और वह पागल भीतर बैठा हुआ है, उसे शायद पता भी नहीं है कि बाहर हम नहर में फंस गए हैं। वह भी छलांग लगाकर बाहर निकल गया। लेकिन तीसरे साधक ने सोचा कि जब तय ही कर लिया, तो अब कोई बदलाहट नहीं। उसके सिर पर से पानी बहने लगा।

गुरजिएफ भागा हुआ तंबू के बाहर आया, छलांग लगाकर नहर में कूदा। उस तीसरे साधक को बेहोश बाहर निकाला गया। बेहोश, बाहर से। शरीर में पानी भर गया; शरीर से पानी निकाला गया। लेकिन जैसे ही उसका शरीर होश में आया, उस व्यक्ति ने गुरजिएफ के चरणों में सिर रख दिया; और उसने कहा कि अब मुझे सीखने को कुछ भी नहीं बचा, मैंने जान लिया। गुरजिएफ ने कहा कि इन सब शेष को भी कह दो कि तुमने क्या जाना।

उसने कहा कि जिस क्षण मैं जान को भी खोने के लिए तैयार हो गया, उसी क्षण मैंने जाना कि मन भी खो गया। जब तक मेरे मन में जरा—सा भी द्वंद्व था कि निकल जाऊं या रुकूं, तब तक मन था, तब तक भीतर कोई चीज चल रही थी, गति थी, विचार थे, हलन— चलन था। लेकिन जैसे ही मैंने तय किया कि ठीक है, जान बचे या जाए, लेकिन हटना नहीं है, वैसे ही सारे विचार खो गए। पानी तो मेरे भीतर भर गया, लेकिन मैं पहली दफा भीतर विचारों से खाली हो गया। बाहर से तो मेरे प्राण संकट में पड़ गए, लेकिन पहली दफा मैंने भीतर उसके दर्शन कर लिए जिस पर कभी कोई संकट नहीं पड़ सकता है। मैं मर भी जाता, तो अब कोई हर्ज न था, क्योंकि मैंने उसकी झलक पा ली, जो कभी नहीं मरता है।

निश्चय का अर्थ है, ऐसी अवस्था, जहां मन का कोई कंपन न हो।

तो कृष्ण कहते हैं, निश्चय में मैं हूं तत्वज्ञान में मैं हूं।

तत्वज्ञान का अर्थ फिलॉसफी नहीं होता। तत्वज्ञान का अर्थ विचारशास्त्र, दर्शनशास्त्र नहीं होता। बड़ी भूल हुई है। पश्चिम में एक चितना की धारा विकसित हुई है, जिसे फिलासफी कहते हैं। उस अर्थ में भारत में फिलासफी जैसी कोई भी चीज कभी विकसित नहीं हुई। भारत में जो विकसित हुआ, वह तत्वज्ञान है।

जर्मनी के एक विचारशील आदमी हरमन हेस ने तत्वज्ञान के लिए एक नया शब्द प्रयोग किया है, फिलोसिया। वह ठीक है। फिलॉसफी उसका अनुवाद नहीं है। फिलॉसफी का अर्थ होता है, चिंतन, मनन, विचार। तत्वज्ञान का अर्थ होता है, दर्शन, साक्षात्कार, अनुभूति। एक अंधा आदमी प्रकाश के संबंध में सोचता रहे, तो वह फिलासफी है, और अंधे आदमी की आंख खुल जाए और वह प्रकाश को देख ले, तो वह तत्वज्ञान है।

तत्वज्ञान का अर्थ है, अनुभूति। फिलॉसफी का अर्थ है, मानसिक। तत्वज्ञान का अर्थ है, वास्तविक। फिलॉसफी का अर्थ है, सोचा हुआ। तत्वज्ञान का अर्थ है, जाना हुआ। सोचना तो बहुत आसान है, जानना बहुत कठिन है। क्योंकि सोचने के लिए बदलने की कोई भी जरूरत नहीं, जानने के लिए तो स्वयं को बदलना अनिवार्य है।

तो भारत का जोर तत्वज्ञान पर है, चितना पर नहीं, विचारणा पर नहीं। कोई कितना ही सोचे, सोचकर कहीं कोई पहुंचता नहीं। कोई कितना ही सोचे, हाथ में विचार की राख के सिवाय कुछ भी लगता नहीं। कोई कितना ही सोचे, खाली शब्द का संग्रह बढ़ जाता है। लेकिन प्रतीति, प्रत्यभिज्ञा नहीं होती, उसकी पहचान नहीं होती। उसे तो जानना पड़े आमने—सामने। उससे तो पहचान करनी पड़े, मुलाकात करनी पड़े। सोचने से नहीं होगा।

कोई आदमी प्रेम के संबंध में बहुत सोचे, तो भी प्रेम का उसे पता नहीं चलता, जब तक वह प्रेम में डूब ही न जाए। प्रेम में डूबना बिलकुल दूसरी बात है। और ऐसा भी हो सकता है कि जो प्रेम में डूब जाए, वह प्रेम के संबंध में कुछ भी न सोचा हो। और यह भी हो सकता है, और अक्सर होता है, कि जिन्होंने प्रेम के संबंध में बहुत सोचा है, वे प्रेम करने में असमर्थ ही हो जाएं। सोचने से ही उनको परितृप्ति मिल जाए, या सोचने को ही वे परिपूरक, सब्जीटभूट समझ लें।

बहुत—से लोग ईश्वर के संबंध में सोचते रहते हैं। उस सोचने को ही वे समझते हैं कि अनुभव हो रहा है! सोचना अनुभव नहीं है। सोचना सहयोगी हो सकता है, सोचना उपयोगी हो सकता है, लेकिन सोचना अनुभव नहीं है। और सोच—सोचकर कोई कहीं भी नहीं पहुंचता है, कभी नहीं पहुंचा है। जानना पड़े। तो तत्वज्ञान से अर्थ है, जानना।

कृष्ण कहते हैं, जानना मैं हूं। विचारणा नहीं, थिंकिंग नहीं, नोइंग। विचार का अर्थ है कि जिसका मुझे पता नहीं है, उसके संबंध में, जो मुझे पता है, उसके आधार पर कुछ धारणा बनानी है। जिसका मुझे पता नहीं है, उस संबंध में, जिन चीजों का मुझे पता है, उनके आधार पर कोई धारणा निर्मित करनी है, बौद्धिक कोई खयाल निर्मित करना है। कोई इमेज, कोई प्रतिमा निर्मित करनी है। लेकिन विचारों की। और विचार क्या हैं? शब्दों के संग्रह हैं। शब्दों से— न तो शब्द की आग से कोई जल सकता है, और न शब्द के फूल से कोई सुगंध मिलती है। शब्द के परमात्मा से भी कोई अनुभव नहीं मिलता।

शब्द परमात्मा परमात्मा नहीं है। तो कोई कितना ही शब्द को रटता रहे और परमात्मा— परमात्मा दोहराता रहे, शब्द को ही दोहराता रहे, तो कहीं पहुंचेगा नहीं। यह भी हो सकता है कि दोहराते—दोहराते इस भ्रम में पड़ जाए कि मैं जानता हूं। बहुत लोग पड जाते हैं। पंडित की यही भूल है।

और इसलिए अक्सर ऐसा होता है कि पंडित अज्ञानियों से भी ज्यादा भटक जाते हैं। पंडित की यही भूल है। शब्द का धनी होता है। शास्त्र का ज्ञाता होता है। सिद्धांत उसे स्मरण होते हैं। उसके पास धनी स्मृति होती है। उसी स्मृति को दोहराते—दोहराते वह इस भ्रांति में पड़ जाता है कि जो मैं दूसरों को कहता हूं वह मैं भी जानता हूं। अपने ही शब्द सुनते—सुनते आत्म—सम्मोहित हो जाता है। अपने ही शब्दों को दोहराते—दोहराते एक गहरी तंद्रा में खो जाता है और लगता है कि मैं जानता हूं।

जानना बड़ी दूसरी बात है। जानने का संबंध बुद्धि से कम, जानने का संबंध पूरे अस्तित्व से है। जानने का संबंध सोचने से कम, मौन हो जाने से ज्यादा है। जानने का संबंध शब्द से कम, निःशब्द, शून्य, शांत से ज्यादा है।

जब कोई शांत हो जाता है शब्दों से, तो दर्पण बन जाता है। और उस दर्पण में जो झलक मिलती है, वह जानना है। और जब कोई शब्दों के धुएं से भरा रहता है, तो कोई झलक नहीं मिलती। कोई झलक नहीं मिलती।

पंडित अपने ही शब्दों में भटकता है, अपने ही शब्दों में उलझता रहता है, अपने ही शब्दों को हल करता रहता है। अपने ही सवाल, अपने ही जवाब देता रहता है। दर्शनशास्त्र—फिलॉसफी के अर्थों में— अपना ही सवाल है, अपना ही जवाब है।

तत्वज्ञान सवाल अपना है, जवाब उसका है। सवाल पूछकर साधक चुप हो जाता है, शून्य हो जाता है। जैसे झील शांत हो जाए और सारी लहरें बंद हो जाएं और आकाश का चांद झील में झलकने लगे। और झील में लहरें हों, तो भी आकाश का चांद तो झलकता है, लेकिन लहरें उसे हजार खंडों में तोड़ देती हैं।

देखें, पूर्णिमा के दिन कभी झील पर जाकर देखें। चांद तो एक है ऊपर, लेकिन झील में हजार टुकड़ों में बिखरा होता है। हजार खंडों में बंटा हुआ झील की लहरों पर बहता होता है। चांद नहीं टूट गया है, लेकिन झील का दर्पण टूटा हुआ है, इसलिए हजार चांद दिखाई पड़ते हैं। झील शांत हो जाए, ऐसी शांत कि दर्पण बन जाए, तो चांद जो ऊपर है, वही एक चांद नीचे दिखाई पड़ने लगता है। फिर झील जब बिलकुल शांत होती है, तो पता ही नहीं चलता कि झील है भी। सिर्फ दर्पण ही रह जाता है।

ठीक ऐसे ही मन पर जब विचार होते हैं, तो तरंगें होती हैं। उन्हीं तरंगों से जो व्यक्ति सोच—सोचकर तय करता है कि चांद कैसा है, उसका चांद खंडों में बंटा हुआ होगा।

कृष्ण कहते हैं, तत्वज्ञान मैं हूं।

जब कोई पूर्ण शांत हो जाता है, तब उसे तत्व का पता चलता है। वह जो है, दैट व्हिच इज, उसका पता चलता है। जो है, उसका नाम तत्व है। उसका कोई और नाम नहीं है। जो भी है, शांत हो गए व्यक्ति के भीतर झलकता है। और तब जो अनुभूति होती है, जो ज्ञान होता है, वह मैं हूं। और उस क्षण में अखंड का अनुभव होता है। जब तक मन है खंडित, तब तक हम जो भी जानेंगे, वह खंडित होगा। जब मन होगा अखंडित, तब जो हम जानेंगे, वह अखंड होगा।

तीसरा शब्द कृष्ण ने कहा है, अछूता मैं हूं असम्मोह।

यह शब्द साधकों के लिए बहुत उपयोगी है। मूढ़ता का अर्थ है, ऐसा व्यक्ति, जो जागा हुआ मालूम पड़ता है, लेकिन जागा हुआ नहीं है। सोया—सोया व्यक्ति, जैसे नींद में चल रहा हो।

कभी रास्ते के किनारे खड़े हो जाएं, और रास्ते से गुजरते हुए लोगों को देखें। गौर से देखें, आंख गड़ाकर देखें कि लोग कैसे चल रहे हैं! तो थोड़ी ही देर में आपको लगेगा कि लोग सोए—सोए चल रहे हैं। कोई आदमी चलते—चलते बात करता जा रहा है। कोई उसके साथ नहीं है, अकेला है। अपने हाथ से इशारा कर रहा है। उसके ओंठ चल रहे हैं। वह किसी से बात कर रहा है। उसके चेहरे के भाव बदल रहे हैं।

यह आदमी होश में है या नींद में है? यह कोई सपना देख रहा है। यह इस सड़क पर बिलकुल नहीं है। यह किसी और सड़क पर होगा, यह किसी और के साथ होगा। यह किससे बातें कर रहा है? यह किसकी तरफ हाथ के इशारे कर रहा है? यह किसी के साथ है, सपने में।

हम सब सपने में चल रहे हैं। हम सबके भीतर सपने चल रहे हैं। हम कुछ भी कर रहे हों, हमारे भीतर एक सपनों का जाल चल रहा है। और ध्यान रहे, सपना तभी चल सकता है, जब भीतर निद्रा हो। बिना नींद के सपना नहीं चल सकता। और सपने हम सबके भीतर चौबीस घंटे चलते हैं। जरा आंख बंद करो, सपना दिखाई पड़ना शुरू हो जाएगा। आंख जब आप बंद नहीं करते, तब आप यह मत सोचना कि भीतर सपना नहीं चलता है। भीतर तो सपना चलता है, लेकिन बाहर की जरूरत के कारण आपको उस सपने का पता नहीं चलता। आंख बंद करो, सपने का पता चलना शुरू हो जाएगा।

दिन में आप देखते हैं आकाश की तरफ, तारे दिखाई नहीं पड़ते। लेकिन आप यह मत सोचना कि तारे खो जाते हैं। तारे तो अपनी जगह होते हैं। दिन में दिखाई नहीं पड़ते, क्योंकि सूरज की रोशनी इतनी तेजी से बीच में आ जाती है कि आपकी आंखें तारों को नहीं देख पातीं। लेकिन दिन की भरी रोशनी में ही आप किसी गहरे कुएं में चले जाएं, तो गहरे कुएं में से देखें, तो आपको तारे दिखाई पड़ेंगे। क्योंकि तब बीच का अंधेरा तारों को उघाड़ने में सहयोगी होता है।

ठीक ऐसे ही, हमारे भीतर रात सपने चलते हैं, ऐसा मत सोचना, दिनभर सपने चलते हैं, चौबीस घंटे सपने चलते हैं। दिन की जरूरत में, दिन की रोशनी में, उलझन में, दूसरे काम में, बाहर उलझे होने की वजह से भीतर के सपने दिखाई नहीं पड़ते। इसलिए आरामकुर्सी पर जरा लेट जाएं, बाहर की दुनिया से आंख बंद कर लें, और दिवास्वप्न, डे—ड्रीमिंग शुरू हो जाती है। वह चल ही रही थी, आपने आंख बंद की, तो दिखाई पड़ने लगती है। आप आंख खोलकर बाहर लग जाते हैं, तो भूल जाते हैं। लेकिन भीतर चौबीस घंटे, भीतर के छबिगृह में सपने चल रहे हैं। वे सपने इस बात की खबर हैं कि हम सोए हुए हैं।

बुद्ध के पास कोई आता था, तो बुद्ध उससे पूछते थे कि तेरे सपने अभी बंद हो गए या नहीं? अगर सपने बंद हो गए हैं, तो करने को बहुत कम काम बाकी है। और अगर सपने बंद नहीं हुए, तो बहुत बड़ा काम बाकी है। क्योंकि सपनों से लड़ना, इस जगत में सबसे बड़ी लड़ाई है। सपने दिखाई तो पड़ते हैं कि सपने हैं, लेकिन जब कोई उन्हें तोड्ने जाता है, तब पता चलता है कि कितना कठिन है। इतनी कमजोर चीज, सपना भी हम तोड़ नहीं पाते! उसका कारण है कि हम उससे भी कमजोर हैं।

मूढ़ता का अर्थ है, एक तरह की निद्रा। मूढ़ता का अर्थ मूर्खता नहीं है। इसलिए पंडित भी फू हो सकता है। तथाकथित ज्ञानी भी मूढ़ हो सकता है। अज्ञानी भी मूढ़ हो सकता है। मूढ़ होना अलग ही बात है।

मूढ़ का अर्थ है, निद्रित चलना, सोए—सोए जीना। भीतर सपने चलते रहते हैं और हम बाहर चलते रहते हैं। हम जागे हुए नहीं हैं। हम ठीक से जागे हुए नहीं हैं। इसकी आप कोशिश करें, तो आपको पता चलेगा कि कितनी गहरी नींद है। अपनी हाथ की घड़ी पर आंख गड़ाकर बैठ जाएं और तय कर लें कि पूरा एक मिनट, जो सेकेंड का कांटा है, उसको आप देखते रहेंगे स्मृतिपूर्वक, और बीच में कोई दूसरा विचार और सपना नहीं आने देंगे—एक मिनट सिर्फ।

आप पाएंगे कि दस दफा बीच में सपने आ गए, दस दफे झोंक आ गई, दस दफे निद्रा लग गई, दस दफे आप चूक गए। कांटे को भूल गए; मन कहीं और चला गया। कोई और खयाल बीच में आ गया और आपको ले गया। एक मिनट में दस बार आपके मन में सपना आपको झकझोर डालेगा। तब आपको पता चलेगा कि मैं कैसा सोया हुआ आदमी हूं!

रास्तों पर कोई रात तीन बजे और चार बजे के बीच अधिक एक्सिडेंट होते हैं। तो ड्राइवर्स के लिए सबसे ज्यादा खतरनाक वक्त रात के तीन और चार के बीच में है। मनोवैज्ञानिक बहुत दिन से इस खोज में थे कि बात क्या होगी? यह तीन और चार के बीच में जो इतनी दुर्घटनाएं होती हैं, अधिकतम दुर्घटनाएं, इसका कारण क्या होगा?

अब वे इस नतीजे पर पहुंचे हैं कि तीन और चार के बीच में सपने इतने प्रगाढ़ हो जाते हैं। सोया आदमी हो, तब तो पता नहीं चलता। जागा हुआ आदमी हो, तो आंख खुली भी रहे, तो भी ड्राइवर सपनों में खो जाता है। सपने में कुछ भी हो सकता है फिर। और इसलिए बहुत—से ड्राइवर कहते हैं कि मैं बिलकुल जागा हुआ था। आंख मेरी खुली थी। और मेरी समझ के बाहर है कि यह दुर्घटना कैसे हो गई! एक क्षण को भी अगर सपने ने खींच लिया हो, तो दुर्घटना होने में देर नहीं लगती। और आंख खुली हो, तो भ्रम पैदा हो सकता है कि आंख खुली थी, इसलिए मैं जागा हुआ था।

इस भूल में कोई भी न रहे। आंख का खुला होना और जागे होने का कोई भी संबंध नहीं है। बुद्ध की आंख भी बंद हो, कृष्ण की आंख भी बंद हो, तो भी वे जागे हुए होते हैं। हमारी आंख भी खुली हो, तो हम सोए हुए होते हैं। सोना और जागना आंतरिक घटनाएं हैं, आंख से इसका कोई संबंध नहीं है।। तो सोने का अर्थ हुआ कि हमारे भीतर विचारों की, सपनों की, चित्रों की एक भीड़ है, वह चल रही है। उस भीड़ के कारण हमें कुछ भी दिखाई नहीं पडता, कुछ भी सूझता नहीं। हम अंधे की तरह जी रहे हैं; टटोल—टटोल कर जी रहे हैं। किसी

तरह रास्ते से गुजर जाते हैं, घर आ जाते हैं, काम कर लेते हैं, तो सोचते हैं कि हम जागे हुए हैं। लेकिन आध्यात्मिक अर्थों में यह जागरण नहीं है, इसे मूढ़ता..।

कृष्ण कहते हैं, अमूढ़ता मैं हूं।

अमूढ़ता का अर्थ है, जागरण, बुद्धत्व।

बुद्ध का नाम था सिद्धार्थ गौतम, लेकिन जब वे जाग गए, तब उन्हें नाम मिला गौतम बुद्ध। गौतम दि अवेकंड, दि एनलाइटेंड; जागा हुआ गौतम। बुद्ध को जब ज्ञान हुआ, तो जो घटना घटी, वह क्या थी? वह घटना थी, उनकी नींद टूट गई। उनके भीतर कोई बेहोशी न रही। वे भीतर परम जाग्रत हो गए। फिर वे सोते भी तो भी भीतर की नींद जैसी कोई घटना नहीं घटती थी; शरीर ही सोता, भीतर जागरण बना रहता।

आनंद, उनका शिष्य, वर्षों तक उनके साथ रहा। एक दिन आनंद ने बुद्ध को पूछा कि मैं बहुत चकित हूं। आप जिस भांति सोते हैं सांझ, जहां रखते हैं दायां पैर, जहां रखते हैं बायां पैर, जिस तरह रखते हैं हाथ, जिस तरह एक हाथ रखते हैं सिर के नीचे, आप रातभर वैसे ही रखे रहते हैं! करवट भी आप बदलते नहीं। इंचभर भी पैर आपका हिलता नहीं, हटता नहीं। बात क्या है? क्या रातभर भी सम्हलकर सोते हैं?

तो बुद्ध ने कहा, सम्हलने की कोई जरूरत नहीं। शरीर ही सोया होता है, मैं सोता ही नहीं। मैं जागा ही रहता हूं। तो अगर करवट मुझे बदलनी हो, तो वह मेरे निर्णय से होगा। शरीर करवट नहीं बदल सकता। मैं बेहोश नहीं हूं मैं पूरे होश में हूं।

और जब कोई व्यक्ति नींद में भी जाग जाए, तो योग को उपलब्ध हुआ। कृष्य ने कहा है कि जो नींद में भी जागा हुआ है, वही योगी है। इससे उलटा सूत्र भी हम बना सकते हैं कि जो जागकर भी सोया हुआ है, वही भोगी है।

इस जागरण का क्या अर्थ हुआ? कभी आपने जागरण का कोई क्षण अनुभव किया है?

थोड़ा मुश्किल है। कभी—कभी अचानक भी हो जाता है। अगर अचानक दो आदमी एकांत रास्ते पर आपको पकड़ लें और एक आदमी छुरा आपकी छाती पर रख दे, तो उस क्षण में आपके भीतर कोई विचार होंगे? अचानक! उस क्षण आपके भीतर कोई विचार नहीं होंगे। उस क्षण आपके भीतर सब सपने छूट जाएंगे। उस क्षण एक क्षण को आप पूरे जागे होंगे, जैसे कोई बुद्ध कभी जाया हो। लेकिन यह बाहर की परिस्थिति पर होगा। छुरा हट जाए, या चेहरा पहचान में आ जाए कि मित्र ही है, मजाक कर रहा है, सपने वापस दौड़ पड़ेंगे। या छुरा न भी हटे, तो एक क्षण को आकस्मिक था, इसलिए आपके भीतर की बंधी हुई धारा को तोड्ने में सफल हुआ। अगर न हटे, तो आप तत्काल सोचने में लग जाएंगे कि अब मैं क्या करूं, कैसे बचूं कैसे भाग र क्या जवाब दूं!

खतरे के क्षण में हमें कभी—कभी नैसर्गिक रूप से जागरूकता उपलब्ध होती है, खतरे के क्षण में। और हमने अब जिंदगी ऐसी बना ली है कि उसमें खतरे का कोई ज्यादा क्षण नहीं है। सब तरफ से हमने व्यवस्था कर ली है कि कोई खतरा न हो। इसलिए जागरण का क्षण और भी कम होता जाता है।

एक झेन फकीर था, बोकोजू। वह अपने साधकों को वृक्षों पर चढ़ना सिखाता था— ध्यान के लिए। ऊंचे वृक्षों पर चढ़ना। राजकुमार देश का, उसके पास ध्यान सीखने आया था। तो बोकोजू ने उससे कहा कि तू वृक्ष पर चढ़। वृक्ष देखकर वह मुश्किल में पड़ा। उसने कहा कि चढ़ना मैं बिलकुल नहीं जानता। गिर पड़ा तो हाथ—पैर चकनाचूर हो जाएंगे।

बोकोजू ने कहा कि मैंने जानने वालों को तो कभी—कभी गिरते देखा है, न जानने वालों को मैंने कभी गिरते नहीं देखा। तू चढ़। क्योंकि न जानने वाला इतना खतरे से भरा रहता है कि भीतर होश रहता है, एक—एक कदम सम्हालकर रखता है। जो सोचता है कि मैं चढ़ना जानता हूं वृक्ष पर, वह कभी—कभी गिर भी जाता है, क्योंकि उसे होश रखने की कोई जरूरत नहीं होती।

वह राजकुमार चढ़ा। कोई सौ फीट ऊंचा वृक्ष! वह चढ़ता आखिरी कगार पर पहुंच गया, तब तक उसका गुरु नीचे आंख बंद करके बैठा रहा। उसने कई बार नीचे झांककर भी देखा कि गुरु कुछ सुझाव देगा, कोई मार्ग—दर्शन देगा, लेकिन वह आंख बंद करके बैठा है। फिर जब वह ऊपर पहुंच गया, तो उसे आशा थी कि ऊपर से पहुंचकर वापस लौटना शुरू कर देना, आखिरी सीमा तक पहुंचकर लौट आना।

जब राजकुमार दस फीट के करीब था जमीन से वापस लौटते वक्त, तब गुरु अचानक चौंककर उठा और उसने चिल्लाकर कहा कि जरा सावधानी से उतरना! उस राजकुमार ने कहा, आप भी पागल मालूम पड़ते हैं! क्योंकि जब तुम्हारी सहायता की और चेतावनी की जरूरत

थी, तब तुम आंख बंद किए बैठे रहे। और जब मैं जमीन के अब करीब आ गया हूं जब कि अब कोई खतरा ही नहीं है, तब तुम चेतावनी दे रहे हो!

जब वह राजकुमार नीचे उतर आया, तब उसके गुरु ने कहा कि निश्चित ही, मैंने तभी तुझे चेतावनी दी, जब तू निश्चिंत हो गया। जब तुझे लगा कि जमीन करीब आ गई और तेरे भीतर के सपने शुरू हो गए, तभी तू चूक सकता था और गिर सकता था। नींद शुरू हो गई। ऊपर के शिखर पर जब था, तब तो नींद के आने का कोई उपाय न था। तू खुद ही जागा हुआ था, हमारी कोई जरूरत ही न थी। वह तो जब मुझे लगा कि अब जमीन है करीब, और अब तू सो सकता है...। मैं तुझसे पूछता हूं कि जब मैंने चेतावनी की आवाज दी, तब तेरे भीतर कोई फर्क पड़ा था?

तब उस राजकुमार को स्मरण आया— हम इतने सोए हुए हैं कि हमारे भीतर भी क्या होता है, उसका भी हमें स्मरण कहां है— तब उसे स्मरण आया कि यह बात ठीक है। जब तक वह शिखर के ऊपर था, तब तक उसके भीतर ऐसी ताजगी और जागरूकता थी, जैसे सुबह का सूरज निकला हो और सब तरफ ताजगी हो। जैसे फूल खिले हों ताजे, और सब तरफ ताजगी हो। जैसे दीया जल रहा हो और सब तरफ रोशनी हो। और जैसे ही वह गुरु ने चिल्लाकर कहा कि सावधान! तभी उसे याद आया, तभी उसके भीतर ताजगी खो गई थी, भीतर के द्वार बंद हो गए थे। दीया बुझ गया था। सूरज डूब गया था। अंधेरा पकड़ रहा था। और उसे सपने आने शुरू हो गए थे। नींद घिर गई थी।

कभी खतरे के क्षण में हमें थोड़ा—बहुत होश आता हो, तो आता हो। लेकिन हम इतने कुशल हैं नींद में कि हम खतरे के क्षण को भी धोखा देकर, बचकर निकल जाते हैं।

एक मित्र के घर मैं गया था, उनके घर में कोई मर गए थे। अब घर में कोई मर जाए, तो बड़ा खतरा है। जो मर गया उसको नहीं, वह तो खतरे के बाहर हुआ; जो जिंदा हैं उनको। अगर उनमें थोड़ी भी समझ हो, तो मौत उनके लिए जिंदगी का रूपांतरण हो सकती है। क्योंकि एक की मौत सबकी मौत की खबर है। और जब भी मैं किसी को मरते देखता हूं तो उसका मतलब है कि फिर मुझे खबर आई कि मैं मरूंगा।

लेकिन घर में मैं गया, तो वे सारे लोग रो—पीट रहे थे। जो चल बसे थे, उनकी पत्नी ने मुझसे पूछा कि आपका आत्मा की अमरता में तो विश्वास है न? मेरे पति की आत्मा तो बचेगी?

मैंने उस पत्नी को कहा कि तू और नये सपनों में खोने का उपाय कर रही है। यह शरीर मर गया है, इस मौके को मत चूक। तेरा शरीर भी मरेगा। यह तीर तेरे भीतर इस क्षण अगर गहरे में प्रवेश कर जाए, तो तेरी नींद टूट जाए। लेकिन तू होशियार है। तू अपने बाबत सोच ही नहीं रही है! तू सोच रही है कि मेरे पति की आत्मा तो अमर है न! थोड़ी ही देर में यह खतरा समाप्त हो जाएगा, यह लाश घर से उठ जाएगी। दो—चार दिन में यह घाव पुरना शुरू हो जाएगा। साल, छह महीने में यह बात पुरानी पड़ जाएगी। इस क्षण में, इस खतरे के क्षण में, जब कोई निकटतम मर गया है, तब इस मौत के तीर को अपनी तरफ मोड़, तो शायद तुझे ध्यान उपलब्ध हो जाए।

लेकिन उसने मुझसे कहा, आप भी कैसी बातें कर रहे हैं! मेरे पति मर गए हैं और आप ध्यान की बात कर रहे हैं! आपको ध्यान के सिवाय कुछ और सूझता ही नहीं? मेरे पति मर गए हैं! वह अपनी छाती पीटने लगी।

यह छाती पीटना मौत के तथ्य को भुलाने का उपाय है। वह रोने लगी। उसकी आंख आंसू से भर गई। वह अपने पुराने सपने देखने लगी, जब उसकी शादी हुई होगी और जब बैंड—बाजे बजे होंगे, और जब वह इस घर की तरफ आई होगी बहुत सपनों को लेकर, और वह सब याददाश्त। और यह जो तथ्य का क्षण, एक सत्य का क्षण, एक तीर की तरह चुभ जाए चेतना में कोई घड़ी सामने खड़ी है, वह इसे खो देगी। हम ऐसा अपने को धोखा देते हैं।

अमूढ़ता मैं हूं कृष्ण कहते हैं। उसका अर्थ है, जागरूकता मैं हूं। जब भी कोई जागता है भीतर, तभी मैं उपलब्ध हो जाता हूं। जब भी कोई जागता है भीतर, तब वह जागा हुआ व्यक्ति मेरा ही भाग हो जाता है।

ये तीन शब्द खयाल में ले लें, निश्चय करने की शक्ति, तत्वज्ञान, अमूढ़ता मैं हूं।

क्षमा, सत्य, इंद्रियों को वश में करना—दम, और मन का निग्रह— शम, तथा सुख—दुख, उत्पत्ति—प्रलय एवं भय और अभय भी मैं हूं।

इन सूत्रों को भी थोड़ा—सा समझ लें।

क्षमा। थोड़ा कठिन है। कठिन इसलिए कि हम क्षमा से जो अर्थ लेते हैं, वह कृष्ण का अर्थ नहीं है। हो भी नहीं सकता। असल में हमारी और कृष्ण की भाषा एक नहीं हो सकती। और जब भी हम कृष्ण को अपनी भाषा में अनुवादित करते हैं—संस्कृत से हिंदी में नहीं— कृष्ण की भाषा को अपनी भाषा में जब हम अनुवादित करते हैं, तब बुनियादी भूलें हो जाती हैं। जैसे क्षमा, अगर हम पूछें अपने से कि क्षमा का क्या अर्थ है? तो साफ है अर्थ कि अगर किसी पर क्रोध आ जाए तो उसे क्षमा कर देना।

लेकिन कृष्ण की भाषा में क्षमा का यह अर्थ नहीं होता। कृष्ण की भाषा में क्षमा का अर्थ होता है, क्रोध का न आना। हमारी भाषा में अर्थ होता है, क्रोध का आना और क्षमा करना। कृष्ण की भाषा में अर्थ होता है, क्रोध का न आना, क्रोध का अभाव। हमारा अर्थ है, क्रोध को लीपना—पोतना।

मुझे आप पर क्रोध आ गया। पीछे पछतावा आता है, फिर मैं क्षमा मांग लेता हूं। तो क्रोध से जो भूल हुई थी, उसे मैं पोंछ देता हूं। एक लकीर गलत पड़ गई थी, उसे काट देता हूं। लेकिन क्रोध हो गया। और यह जो क्षमा है, यह केवल क्रोध को पोंछने का उपाय करती है, नकारात्मक है, निगेटिव है। इस क्षमा का बहुत उपयोग नहीं है। यह तो हम करते रहते हैं। चलता रहता है। अगर इसी क्षमा में अनुभव होता हो परमात्मा का, तो हम सबको हो गया होता। कृष्ण का क्षमा से अर्थ है, जहां क्रोध पैदा नहीं होता। जहां क्रोध जन्मता नहीं, जहां क्रोध की घड़ी मौजूद होती है और भीतर क्रोध का कोई रिएक्शन, कोई प्रतिक्रिया पैदा नहीं होती, कोई प्रतिकर्म पैदा नहीं होता।

बुद्ध एक गांव से गुजरते हैं, कुछ लोग गालियां देते हैं। और बुद्ध उनसे कहते हैं कि अगर तुम्हारी बात पूरी हो गई हो, तो मैं जाऊं! उनमें से एक आदमी ०० है, आप पागल तो नहीं हैं! क्योंकि हमने

बातें नहीं की हैं, गालियां दी हैं। बुद्ध कहते हैं, अगर पूरी न हुई हो बातचीत, तो जब मैं लौटूंगा, तब थोड़ा ज्यादा समय लेकर यहां रुक जाऊंगा। लेकिन अभी मुझे दूसरे गांव जल्दी पहुंचना है।

निश्चित ही, वे दो तरह की भाषाएं बोल रहे हैं। उस गांव के लोग गालियां समझ सकते हैं; गालियों के उत्तर में गालियां दी जाएं, यह भी समझ सकते हैं। गालियां क्षमा कर दी जाएं; बुद्ध कह दें कि जाओ मैंने माफ किया तुम्हें, यह भी समझ सकते हैं। लेकिन बुद्ध कहते हैं, तुम्हारी बात अगर पूरी हो गई हो, तो मैं जाऊं! न क्रोध है, न क्षमा है। गालियां जैसे दी ही नहीं गईं। और अगर दी भी गई हैं, तो कम से कम ली तो गई ही नहीं हैं।

एक आदमी पूछता है, लेकिन हम ऐसे न जाने देंगे। हम जानना चाहते हैं कि पागल आप हैं कि पागल हम हैं? हम गालियां दे रहे हैं, इनका उत्तर चाहिए! बुद्ध ने कहा, अगर तुम्हें इनका उत्तर चाहिए था, तो तुम्हें दस वर्ष पहले आना था। तब मैं तुम्हें उत्तर दे सकता था। लेकिन जो उत्तर दे सकता था, वह तो समय हुआ, मर गया। तुम गालियां देते हो, यह तुम्हारा काम है, लेकिन मैंने तो बहुत समय हुआ जब से गालियां लेना ही बंद कर दीं। देने की जिम्मेवारी तुम्हारी है, लेकिन अगर मैं न लूं तो तुम क्या करोगे? कम से कम इतनी स्वतंत्रता तो मेरी है कि मैं न लूं। और अब मैं व्यर्थ चीजें नहीं लेता। तो मैं जाऊं, अगर तुम्हारी बात पूरी हो गई हो!

पर लोगों को बड़ी मुश्किल है। बुद्ध गालियां दे दें, तो भी लोग घर शांति से लौट जाएं। बुद्ध क्षमा कर दें और कहें कि नासमझ हो तुम, तुम्हें कुछ पता नहीं, तो भी लोग घर शांति से लौट जाएं। लेकिन अब इन लोगों की नींद हराम हो जाएगी, क्योंकि यह बुद्ध इनको अधर में लटका हुआ छोड़ गए। इन्होंने गाली दी थी, नदी के एक तरफ से सेतु बनाया था; दूसरा किनारा ही न मिला! इन्होंने तीर छोड़ा था, निशाना ठीक जगह लगे, हर्ज नहीं, गलत जगह लगे, लगे तो। निशाना लगा ही नहीं। और तीर चलता ही चला जाए और निशाना लगे ही नहीं, तो जैसी मजबूरी में, जैसी तकलीफ में तीर पड़ जाए, वैसी तकलीफ में ये पड़ जाएंगे।

तो बुद्ध उन्हें तकलीफ में देखकर कहते हैं कि तुम बड़ी तकलीफ में पड़ गए मालूम पड़ते हो। तुम्हारी सूझ—बूझ खो गई, तो मैं तुम्हें एक सुझाव देता हूं। पिछले गांव में कुछ लोग मिठाइयों का थाल लेकर मुझे देने आए थे, लेकिन मेरा पेट था भरा और मैंने उनसे कहा कि तुम इन्हें वापस ले जाओ। तो वे अपनी मिठाइयों का थाल वापस ले गए। मैं तुमसे पूछता हूं उन्होंने क्या किया होगा? तो एक आदमी ने भीड़ में से कहा, क्या किया होगा! गांव में जाकर मिठाई बांट दी होगी। तो बुद्ध ने कहा, अब तुम क्या करोगे? तुम गालियों का थाल भरकर लाए, और मैं लेता नहीं हूं। तुम जाकर गांव में इन्हें बांट लेना, ताकि तुम रात शांति से सो सको!

क्षमा का अर्थ है, वैसी चित्त की दशा, जहां क्रोध व्यर्थ हो जाता है। क्षमा का अर्थ है, चित्त की वैसी भाव—दशा, जहां क्रोध जन्मता ही नहीं।

यह बहुत मजे की बात है कि क्रोध हमें इसलिए जन्मता है— इसलिए नहीं कि लोग क्रोध जन्मा देते हैं— क्रोध हमें इसलिए जन्मता है कि क्रोध हमारे भीतर सदा है। जब कोई आपको गाली देता है, तो आप इस भ्रांति में मत पड़ना कि उसने आपमें क्रोध पैदा करवा दिया। क्रोध तो आपके भीतर मौजूद था। उसकी गाली तो केवल उसे बाहर लाने का काम करती है।

जैसे कोई एक बाल्टी को रस्सी में बांधकर कुएं में डाल दे और खींचे और पानी भरकर बाहर आ जाए, तो क्या आप यह कहेंगे कि इस आदमी ने कुएं में पानी भर दिया? यह सिर्फ बाल्टी डालता है, कुएं में जो पानी भरा ही था, वह बाहर निकल आता है। अगर यह आदमी खाली कुएं में, सूखे कुएं में बाल्टी डाले, तो बाल्टी भड़भड़ाएगी, परेशान होगी; खाली वापस लौट आएगी।

बुद्ध में जब कोई गाली डालता है, तो खाली, सूखे कुएं में बाल्टी डाल रहा है। बाल्टी वापस लौट आएगी। मेहनत व्यर्थ जाएगी। हमारे भीतर जब कोई बाल्टी डालता है, गाली डालता है, तो भरी हुई लौटती है, लबालब लौटती है; ऊपर से बहती हुई लौटती है। और हम सोचते हैं, इस आदमी ने गाली दी, इसलिए मुझमें क्रोध पैदा हुआ! नहीं। क्रोध आपके भीतर था, इस आदमी ने कृपा की, गाली दी और आपको आपके क्रोध के दर्शन करवाए। इसने आपके क्रोध को आपके समक्ष प्रकट किया।

क्रोध किसी की गाली से पैदा नहीं होता, नहीं तो बुद्ध में भी पैदा होगा। क्रोध तो है ही, मौके उसे प्रकट करने में सहयोगी हो जाते हैं। और अगर मौके न मिलें और क्रोध भीतर हो, तो हम मौके खोज लेते हैं।

आप सबको पता होगा, अगर दो—चार—आठ दिन क्रोध करने का कोई मौका न दे, तो जैसी बेचैनी होती है, वैसी बेचैनी क्रोध करने से भी नहीं होती। मनस्विद इस नतीजे पर पहुंचे हैं कि आदमी को क्रोध करने का मौका न मिले, तो वह मौका खोज लेता है। वह ऐसी बात में से मौका निकाल लेता है, जहां कि आप कल्पना भी नहीं कर सकते थे कि यहां क्रोध की कोई जरूरत है। वह चारों तरफ तलाश में रहता है। वह चारों तरफ अपने आस—पास अशात फीलर्स छोड़ देता है; खोजते रहते हैं कि कहीं जरा मौका मिल जाए और वह क्रोध से भर जाए।

अगर इस आदमी को बंद कर दें तीन महीने एकांत में, तो यह दीवालों से लड़ेगा। यह दीवालों से सिर फोड़े—गा। यह खाली आकाश में गालियां देगा। यह अपने को भी चोट पहुंचा सकता है, अपने को भी मार सकता है। क्रोध अपने पर भी प्रकट कर सकता है।

क्रोध आपकी एक अवस्था है। ध्यान रखें, अगर क्रोध सिर्फ एक प्रतिक्रिया है किसी के द्वारा पैदा की गई, तब तो क्षमा असंभव है। क्रोध आपकी एक अवस्था है, और अगर आप अपने को बदल लें, तो क्षमा भी आपकी अवस्था हो सकती है। और तब कोई आपके भीतर बाल्टी डाले, तो क्षमा भरकर बाहर निकले।

जीसस को सूली पर लटकाया है। और जीसस से कहा गया है कि अगर तुम्हें कोई अंतिम प्रार्थना करनी हो, तो मृत्यु के पहले कर लो। तो वे प्रार्थना करते हैं कि हे परमात्मा! इन सबको क्षमा कर देना, क्योंकि इन्हें पता नहीं कि ये क्या कर रहे हैं।

गाली नहीं, सूली डाली गई है भीतर! और यह आदमी कहता है, इन्हें क्षमा कर देना, क्योंकि इन्हें पता नहीं, ये क्या कर रहे हैं! भीतर क्षमा हो, तो क्षमा निकलेगी। भीतर क्रोध हो, तो क्रोध निकलेगा। इस बात को एक मौलिक सूत्र की तरह अपने हृदय में लिखकर रख छोड़े कि जो आपके भीतर है, वही निकलेगा। इसलिए जब भी कुछ आपके बाहर निकले, तो दूसरे को दोषी मत ठहराना। वह आपकी ही संपदा है, जिसको आप अपने भीतर छिपाए थे।

इसलिए कबीर ने कहा है, निंदक नियरे राखिए आयन कुटी छबाय। अपनी निंदा करने वाले को आंगन और कुटी छवाकर अपने पास ही रख लेना चाहिए, ताकि भीतर जो भी कचरा है, वह उसका दर्शन करवाता रहे। वह बार—बार ऐसी बातें कहता रहे कि भीतर जो भी है, वह दिखाई पड़ता रहे। ताकि किसी दिन उससे छुटकारा भी हो जाए।

लेकिन हम प्रशंसकों को पास रखना पसंद करते हैं। क्योंकि जो हमारे भीतर नहीं है, वह वे बताते रहते हैं। जो हमारे भीतर नहीं है वह! और जो हमारे भीतर है, उसे छिपाते रहते हैं। हम मित्र उनको कहते हैं—नासमझी हमारी हद्द की है—हम मित्र उनको कहते हैं, जो हमारे भीतर नहीं है, उसका हमें दर्शन कराते रहते हैं। और हम शत्रु उनको कहते हैं—नासमझी हमारी हद्द की है— कि जो हमारे भीतर है, उसका दर्शन कराएं, तो हम उन्हें शत्रु मान लेते हैं!

अगर कोई गाली दे और भीतर क्रोध आए, तो उसे धन्यवाद देना कि उसने एक अवसर दिया, एक मौका जुटाया, एक परिस्थिति बनाई, जिसमें आपका क्रोध आपको दिखाई पड़ा। और अगर कोई व्यक्ति गाली देने वाले को भी धन्यवाद दे पाए, तो एक दिन उसके भीतर क्षमा की शक्ति पैदा होगी। वह क्षमा पाजिटिव है। वह क्षमा किसी किए गए क्रोध का पछतावा नहीं है, किसी क्रोध के लिए मांगी गई माफी नहीं है।

मैं यह नहीं कह रहा हूं कि आप क्रोध करना, तो माफी मत मांगना। यह मैं नहीं कह रहा हूं। लेकिन उस माफी को कृष्ण की क्षमा मत समझना। वह हमारे बाजार की क्षमा है। हमारी दुनिया की क्षमा है। वह कारगर है, लुब्रिकेटिंग है, उसका बड़ा उपयोग है।

आप मुझे गाली दे गए, फिर अगर आप मुझसे क्षमा न मांगें, तो मेरे और आपके बीच चका बिलकुल जाम हो जाएगा, लुब्रिकेशन मुश्किल हो जाएगा। थोड़ा तेल चाहिए; चके चलते रहते हैं। और जिंदगी बड़े चकों का जाल है। चके में चके उलझे हुए हैं। यहां अगर बिलकुल

क्षमा वगैरह मत करिए, तो आप जाम हो जाएंगे, अटक जाएंगे; हिलना मुश्किल हो जाएगा। मांग ली क्षमा; थोड़ा तेल पड़ गया चके में, चके फिर चलने लगे। बस हमारी क्षमा का तो इतना ही उपयोग है। लेकिन उपयोग है, और जिंदगी चलती है इस लुब्रिकेशन से।

लेकिन कृष्ण की क्षमा कोई और बात है। इस क्षमा में उस अखंड का दर्शन नहीं होगा। अगर क्षमा आपका स्वभाव बन जाए, क्रोध संभव ही न हो, अक्रोध सहज हो जाए। कोई नींद में भी आपको डाल दे आपके भीतर कुछ, तो क्षमा ही बाहर आए। आपके रोएं— रोएं से आशीष ही बहने लगें, आपका कण—कण शुभकामना और मंगल से भर जाए, तो क्षमा है।

कृष्ण कहते हैं, क्षमा मैं हूं सत्य मैं हूं इंद्रियों का वश में करना मैं हूं मन का निग्रह मैं हूं।

मन का निग्रह, इंद्रियों को वश में करना— इस संबंध में थोड़ी— सी बात खयाल में ले लें।

एक, व्यापक रूप से गलत धारणा हमारे भीतर है। जब भी हम सोचते हैं, इंद्रियों को वश में करना, तो कोई संघर्ष, कोई युद्ध, कोई लड़ाई, कोई भीतरी कलह का खयाल आता है। जब भी हम सोचते हैं, मन का निग्रह करना, तो कोई जबरदस्ती, कोई दमन, कोई रिप्रेशन करने का खयाल मन में आता है।

वे बड़े गलत खयाल हैं। और जो व्यक्ति भी अपनी इंद्रियों को दुश्मन की तरह वश में करने जाएगा, वह मुसीबत में पड़ेगा। वह मालिक तो कभी न हो पाएगा, विक्षिप्त हो सकता है। और जो व्यक्ति जबरदस्ती अपने मन को ठोक—पीट कर वश में करने की चेष्टा में लगेगा, उसका मन विद्रोही हो जाएगा, मन बगावती हो जाएगा; और मन उसे ऐसी जगह ले जाने लगेगा, जहां—जहां वह चाहता है कि मन न जाए। जहां—जहां चाहेगा कि न जाए मन, वहां— वहां जाने लगेगा। जहां—जहां रोकेगा मन, मन वहां—वहां और भी बहने लगेगा। इंद्रियों पर जितनी जबरदस्ती करेगा, उतना ही पाएगा कि ऐंद्रिक और सेंसुअल होता चला जा रहा है।

इसलिए अक्सर ऐसा हो जाता है कि अगर कोई जबरदस्ती ब्रह्मचर्य को थोपने बैठ जाए, तो उसके चित्त में कामवासना जितनी भयंकर हो जाती है, तूफान ले लेती है, उतना किसी गहरे से गहरे कामी के मन में भी नहीं होती।

आपको पता होगा, अगर किसी दिन उपवास करें, तब आपको पता चलेगा कि भोजन की याद उपवास के दिन ही आती है। ऐसे भोजन की कोई याद आती है! आदमी भोजन कर लेता है और भूल जाता है। आप सड़क पर निकलते हैं, आपको कभी खयाल आया कि आप कपड़े पहने हुए हैं! एक दिन नग्न निकलकर सड़क पर देखें, तब आपको कपड़े ही कपड़े याद आएंगे।

जबरदस्ती किसी चीज को रोका जाए, तो वह स्मृति में गहन हो जाती है। जोर से आती है, प्रगाढ़ हो जाती है। उसका बल, उसकी ताकत बढ़ जाती है।

इंद्रिय—निग्रह या मन—निग्रह जबरदस्तिया नहीं हैं, वैज्ञानिक विधियां हैं। इसे खयाल में ले लें। वैज्ञानिक विधियां हैं। लड़ाई का सवाल नहीं है, समझ का सवाल है। और जो व्यक्ति मन से लड़ेगा, वह कभी मन का मालिक न होगा। जो व्यक्ति मन को समझेगा, वह मन का मालिक तत्काल हो जाएगा। समझ सूत्र है, दमन नहीं।

लेकिन हम लड़ते रहते हैं। एक आदमी को क्रोध आता है, तो वह क्रोध को दबाता है कि क्रोध करना अच्छा नहीं है। शास्त्र में पढ़ा है, गुरुओं से सुना है, क्रोध करना बुरा है। क्रोध आता है; अब वह क्या करे? उसे दबा लेता है। दबाया हुआ और भीतर पहुंच जाता है। दबाया हुआ और रग—रग, रोएं—रोएं में फैल जाता है। दबाया हुआ नये रास्तों से निकलना शुरू हो जाता है। दबाया हुआ धीरे— धीरे स्वभाव में जहर की तरह फैल जाता है।

इसलिए देखें आप, जो आदमी को यह वहम हो कि मैंने क्रोध पर काबू पा लिया है, उसके आप रोएं—रोएं में क्रोध को झलकता हुआ देखेंगे। जिस आदमी को खयाल हो कि मेरा अहंकार बिलकुल समाप्त हो गया है, मैं तो बिलकुल विनम्र हो गया हूं उसकी आंख की झलक में, उसके चेहरे के भाव में, जगह—जगह आप अहंकार की छाप पाएंगे।

जिस आदमी को खयाल हो कि मैंने संसार को लात मार दी है, संसार को छोड़ दिया है, त्याग कर दिया है, उसको अगर आप थोड़ा भी गौर से देखेंगे, तो उसे संसार में इस बुरी तरह फंसा हुआ पाएंगे, जिसका हिसाब नहीं। संसार नहीं होगा उसके चारों तरफ, तो भी फंसा हुआ पाएंगे। क्योंकि एक छोटी—सी लंगोटी भी पूरा साम्राज्य बन सकती है।

जो दबाया जाता है, वह विषाक्त कर देता है।

नहीं; कृष्ण का अर्थ दमन से नहीं है। इसलिए जो दमित करेगा अपने को, वह तो और भी परमात्मा की झलक से दूर हो जाएगा। कृष्ण का प्रयोजन है रूपांतरण से, ट्रांसफामेंशन से, एक क्रांति से, जो ज्ञान से संभव होती है।

जिस व्यक्ति को क्रोध के बाहर जाना हो, उसे क्रोध को समझना चाहिए, उसे क्रोध को पहचानना चाहिए। क्रोध ताकत है। जैसे आकाश में बिजली कौंधती है। एक दिन हम उससे डरते थे और घबड़ाते थे। आज वही बिजली प्रकाश देती है। एक दिन आकाश में कौंधती थी, तो हम घुटने टेककर जमीन पर, प्रार्थना करते थे, कि जरूर परमात्मा नाराज है, देवता रुष्ट हैं। आज उस बिजली को हमने बांध दिया। आज कोई आकाश में चमकती बिजली को देखकर घबड़ाता नहीं है, क्योंकि अब हम जानते हैं उस बिजली के विज्ञान को।

क्रोध भी आपके भीतर कौंधती हुई बिजली है। और मजा तो यह है कि आकाश की बिजली को बांधने में हम समर्थ हो गए, आदमी के भीतर की बिजलियां अभी भी गैर—सम्हली पड़ी हैं।

क्रोध शक्ति है। अगर एक बच्चा ऐसा पैदा हो, जिसमें क्रोध हो ही नहीं, तो वह बच्चा जिंदा नहीं रह सकेगा, मर जाएगा। नपुंसक होगा, उसमें बल ही नहीं होगा। क्रोध शक्ति है। लेकिन शक्ति का दुरुपयोग हो सकता है, सदुपयोग हो सकता है। जब कोई उस शक्ति का दुरुपयोग करता है, तो जीवन नर्क हो जाता है। क्रोधी का जीवन शक्ति का दुरुपयोग है। और जब कोई उसी शक्ति का सदुपयोग करता है, तो वही शक्ति क्षमा बन जाती है। और क्षमाशील का जीवन स्वर्ग हो जाता है।

कृष्ण जब कहते हैं, इंद्रियों के निग्रह में मैं हूं मनोनिग्रह में मैं हूं तो उनका अर्थ है कि जो व्यक्ति इंद्रियों को जानकर, इंद्रियों को समझकर, ज्ञान से उनके पार हो जाता है; जो व्यक्ति मन को पहचानकर, मन के प्रति जागरूक होकर, मन के ऊपर उठ जाता है, उसे मेरी झलक मिलनी शुरू।

दमन से नहीं, रूपांतरण से। लड़कर नहीं, जानकर।

यह सूत्र थोड़ा बारीक है। क्योंकि जानने का क्या अर्थ? कभी आपने सोचा है कि आपने क्रोध को जाना? आप कहेंगे, बहुत जाना। रोज जानते हैं! लेकिन फिर भी मैं आपसे कहूंगा, आपने कभी नहीं जाना। क्योंकि जब क्रोध होता है, तब आपका जानना बिलकुल ही नहीं होता है। आपका जानना खो गया होता है। तब आप बिलकुल पागल होते हैं।

क्रोध जो है, वह अस्थायी पागलपन है। उस वक्त होश वगैरह आपके भीतर बिलकुल नहीं होता। उस वक्त आप जो करते हैं, वह आप करते हैं, ऐसा कहना भी ठीक नहीं है। आप से होता है, ऐसा ही कहना ठीक है। क्योंकि क्रोध के बाद आप ही पछताते हैं और कहते हैं कि मेरे बावजूद, इंस्पाइट ऑफ मी, मुझसे हो गया। यह मैं सोचता तो नहीं था कि इस बच्चे को उठाकर खिड़की के बाहर फेंक दूंगा और यह मर जाएगा। यह मैंने सोचा ही नहीं था, लेकिन यह हो गया। यह मैंने किया नहीं है, यह हो गया है। लेकिन फिर किसने किया? क्रोध इतना हावी हो गया था कि आपकी चेतना बिलकुल खो गई थी और आप बिलकुल मूढ़ हो गए थे, सो गए थे, बेहोश थे।

एक मुसलमान खलीफा हारुन अल रशीद अपने घोड़े पर राजधानी से निकल रहा है बगदाद में। एक आदमी अपने छप्पर पर खड़े होकर खलीफा को गालियां देने लगा। अभद्र गालियां थीं। खलीफा ने सुना और अपने सिपाहियों को कहा कि कल सुबह इस आदमी को दरबार में पकड़कर ले आओ। वह आदमी उसी समय पकड़कर बंद कर दिया गया। दूसरे दिन सुबह उस आदमी को दरबार में लाया गया।

तो खलीफा ने उससे पूछा कि कल तुमने छप्पर के ऊपर खड़े होकर गालियां किस प्रयोजन से दी थीं? उस आदमी ने कहा कि क्षमा करें, जिसने गालियां दी थीं, वह अब मैं नहीं हूं। खलीफा ने, कहा कि तुम वह नहीं हो? शक्ल मैं तुम्हारी ठीक से पहचानता हूं। और सिपाहियों ने कहा कि यही आदमी है। लेकिन उस आदमी ने कहा कि और सब ठीक है। शक्ल भी वही है। आदमी भी वही है एक अर्थ में। लेकिन फिर भी मैं कहता हूं वह मैं नहीं हूं क्योंकि कल मैंने शराब पी रखी थी। और जब सुबह मैं होश में आया, तो मैंने सोचा, अरे, यह मैंने क्या किया!

खलीफा ने उसे मुक्त कर दिया।

लेकिन आपको पता है कि जब आप क्रोध में होते हैं, तब भी शराब आपके रग—रग रेशे—रेशे में दौड़ जाती है! अब तो वैज्ञानिक कहते हैं कि आपके शरीर के भीतर ग्रंथियां हैं जहर की। जब आप क्रोध में होते हैं, तो वे ग्रंथियां जहर को छोड़ देती हैं और आप बेहोश हो जाते हैं; केमिकली आप बेहोश हो जाते हैं।

तो आपने क्रोध को कभी जाना नहीं। क्योंकि जब क्रोध होता है, तब आप नहीं होते। और जब आप लौटते हैं, तब तक क्रोध जा चुका होता है। आपकी मुलाकात नहीं हुई है क्रोध से अभी। क्रोध को जानने का, या और वासनाओं को जानने का एक ही उपाय है कि जब क्रोध मौजूद हो, तब आप आंख बंद करें और क्रोध पर। ध्यान करें कि यह क्या है? कैसे उठ रहा है? कहां से आया है? कहां जा रहा है? क्या प्रयोजन है? यह क्या है शक्ति? इसका क्या है रूप? यह क्या करना चाहता है?

लेकिन जब आप क्रोध में होते हैं, तो आपकी नजर दूसरे पर होती है, जिसने क्रोध करवाया। उसी में आप चूक जाते हैं। जब आप क्रोध में हों, तो नजर अपने पर रखें। दूसरे को भूल जाएं, जिसने गाली दी। उससे तो घडीभर बाद भी मुलाकात हो सकती है। लेकिन यह क्रोध जो आपके भीतर है, यह घडीभर बाद नहीं होगा, यह बह गया होगा। फिर इससे मुलाकात नहीं होगी। इस मौके को मत चूके।

गुरजिएफ ने लिखा है अपने संस्मरणों में कि मेरे पिता ने मरते वक्त मुझसे कहा था—एक छोटी—सी बात, वही मेरे जीवन में बदलाहट बन गई— उन्होंने मरते वक्त मुझसे कहा था कि मेरे पास! देने को तुझे कुछ भी नहीं है, सिर्फ एक छोटी—सी सलाह है, जिसने मेरी जिंदगी को सोना बना दिया, वह मैं तुझे देता हूं। और वह सलाह। यह थी कि जब तुझे कभी कोई गाली दे, तो तू चौबीस घंटेभर बाद! जवाब देना; चौबीस घंटे बाद जवाब देना, इसके पहले जवाब मत देना। उससे कह देना कि मैं आऊंगा। चौबीस घंटे का मुझे मौका दें, ताकि मैं सोचूं विचारूं। मैं चौबीस घंटेभर बाद आकर जवाब दे दूंगा।

गुरजिएफ ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि मुझे जवाब देने का मौका कभी नहीं आया। चौबीस घंटे बहुत लंबा वक्त था, इतनी देर जहर टिकता नहीं। वह तत्काल हो जाए, तो हो जाए।

मगर हम बड़े होशियार लोग हैं। अगर कोई भला काम करना हो, तो हम कहते हैं, जरा सोचेंगे। बुरा काम करना हो, तो हम बड़े तत्काल! फिर हम कभी नहीं कहते कि सोचेंगे। अगर कोई कहे कि एक दो पैसे दान कर दो, तो हम कहेंगे, सोचेंगे। और कोई एक गाली दे, तो हम कभी नहीं कहते कि जरा सोचेंगे। फिर सोचने का कोई सवाल नहीं है। फिर हम तत्काल! फिर हमसे ज्यादा त्वरा और तीव्रता में और जल्दी में कोई नहीं होता।

यह जल्दी क्या है, आपको पता नहीं। यह जल्दी केमिकल है, यह जल्दी रासायनिक है। वह जहर जो आपके खून में छूटा है, वह कहता है, जल्दी करो! क्योंकि अगर दो क्षण भी चूक गए, तो वह जहर तब तक खून में विलीन हो जाएगा। वह जहर जो आपकी नसों में फैलकर अकड़ गया है, वह कहता है, उठाओ घूंसा और मारो! क्योंकि अगर नहीं मारा, तो यह जहर तो बेकार चला जाएगा।

क्रोध जब हो, तब ध्यान का क्षण समझें। आंख बंद कर लें। बीच सड़क पर भी हों, तो वहीं आंख बंद कर, एक किनारे पर बैठकर ध्यान कर लें कि भीतर क्या हो रहा है! लोग शायद आपको पागल समझें, लेकिन आप पागल नहीं हैं। क्योंकि क्रोध को जो जान लेगा, वह सब पागलपन के ऊपर उठ जाता है। जब कामवासना आपको पकड़े, तब रुक जाएं। ध्यान करें उस पर। उस वासना को पहचानें भीतर से, क्या है? कौन—सी ऊर्जा भीतर उठकर इतना धक्का दे रही है कि आप पागल हुए जा रहे हैं?

तो आप बहुत शीघ्र उस ज्ञान को उपलब्ध हो जाएंगे, जिस जान में ये इंद्रिय—निग्रह, मनो—निग्रह सरलता से फलित हो जाते हैं। कृष्ण कहते हैं, वह भी मैं ही हूं।

वे कहते हैं, सुख और दुख, उत्पत्ति और प्रलय, भय और अभय भी मैं ही हूं।

इन तीन द्वंद्वों को एक साथ उपयोग करने का प्रयोजन है। हम सब सोचते हैं, हम सबने सोचा है बहुत बार कि परमात्मा आनंद है। लेकिन कभी सोचा है कि परमात्मा दुख भी है? यह सूत्र बहुत खतरनाक है।

कृष्ण कहते हैं, सुख भी मैं और दुख भी मैं।

हम सब सोचते हे कि परमात्मा सुख का धाम। परम सुख अगर चाहिए, तो परमात्मा की तरफ जाओ। लेकिन कृष्ण कह रहे हैं कि सुख भी मैं और दुख भी मैं! तो क्या वे वेदों की, उपनिषदों की जो परम उक्ति है, सच्चिदानंद की, उसके खिलाफ बोल रहे हैं?

नहीं, उसके खिलाफ नहीं बोल रहे हैं। लेकिन अगर उस तक जाना हो, तो इस सूत्र को मानकर चलने वाला ही उस तक पहुंचता है, जहां परमात्मा मात्र आनंद रह जाता है। इस सूत्र को मानने वाला— सुख और दुख, दोनों में जो परमात्मा को देखता है, वह एक दिन परम आनंद को उपलब्ध होता है।

हम सुख में तो परमात्मा को देख सकते हैं, लेकिन दुख .में! दुख में नहीं देख सकते। और जो दुख में नहीं देख सकता, वह समता को उपलब्ध नहीं होगा, शांति को उपलब्ध नहीं होगा। लेकिन जो दुख में भी देख सकता है, वह समता को उपलब्ध हो जाएगा। अगर आपको दुख में भी परमात्मा दिखाई पड़े, तो आप दुख से भागना न चाहेंगे। परमात्मा से कोई भागना चाहता है? अगर दुख में परमात्मा दिखाई पड़े, तो आप प्रार्थना न करेंगे कि दुख से मुझे छुडाओ! क्योंकि परमात्मा से कोई छूटना चाहता है?

और जिसको दुख में भी परमात्मा दिखाई पड़ जाए, उसके लिए फिर कोई दुख जगत में नहीं रह जाएगा। क्योंकि दुख का मतलब ही तभी तक है, जब तक हम उससे बचना चाहते हैं, भागना चाहते हैं। जिस दिन कोई दुख को भी आलिंगन करके गले लगा ले; और जिस दिन

दुख को भी कोई कहे कि प्रभु आए द्वार मेरे, स्वागत है; उस दिन फिर कोई दुख नहीं बचेगा। और जिसके जीवन में कोई दुख नहीं बचता, उसके जीवन में सभी कुछ सुख हो जाता है।

हमारे जीवन में दुख से बचने की और सुख को पकड़ने की आकांक्षा होती है। लेकिन परिणाम क्या है? परिणाम इतना है कि दुख ही दुख हो जाता है; सुख तो कहीं मिलता नहीं।

कृष्ण कहते हैं, सुख भी मैं, दुख भी मैं; उत्पत्ति भी मैं, प्रलय भी मैं; जन्म भी मैं, मृत्यु भी मैं। सारे द्वंद्व मैं हूं। भय भी मैं, अभय भी मैं। जहां—जहां द्वंद्व दिखाई पड़े, दोनों में मैं ही हूं। ऐसा जो मुझे देखेगा, वह आगे के सूत्रों को समझना और आसान हो जाएगा।

तथा अहिंसा, समता, संतोष, तप, दान, कीर्ति, अपकीर्ति, ऐसे ये जो नाना प्रकार के भाव प्राणियों में होते हैं, वे मेरे से ही होते हैं। और हे अर्जुन, सात महर्षिजन, और चार उनसे भी पूर्व में होने वाले सनकादि तथा स्वायंभुव आदि चौदह मनु, ये मेरे भाव वाले सब के सब मेरे संकल्प से उत्पन्न हुए, जिनकी संसार में यह संपूर्ण प्रजा है।

इस सूत्र का अर्थ है कि जितने भी जानने वाले हुए है अब तक जिन्होंने भी जाना है इस सत्य को, इस जीवन को, वे भी मेरे ही संकल्प थे, मेरे ही भाव थे, वे भी मुझसे अलग नहीं हैं। जिन्होंने भी कभी उस परम अनुभव को पाया है, चाहे वे पहले हुए ऋषि—महर्षि हों, चाहे मनु आदि हों, वे सब भी मेरे ही भाव की अवस्थाएं हैं। कृष्ण यह कह रहे हैं कि इस जगत में जो भी श्रेष्ठतम फूल खिलते हैं अनुभव के, वे सब मेरी ही सुगंध से परिव्याप्त हैं। और जब भी कोई अपनी परम दशा में पहुंचता है, तो मुझको ही उपलब्ध हो जाता है।

लेकिन उस परम दशा में वे ही लोग पहुंच पाते हैं, जो द्वंद्व के बीच अपने को समता में ठहरा लेते हैं। जो दो के बीच चुनाव नहीं करते, जो यह नहीं कहते कि हमें सुख चाहिए, दुख नहीं चाहिए। जो कहते हैं, दुख में भी तू है, और सुख में भी तू है। जो यह नहीं कहते कि जन्म तो प्यारा है, जीवन तो प्यारा है, मृत्यु नहीं चाहिए, हमें तो अमर जीवन चाहिए। जो ऐसा नहीं कहते हैं। जो कहते हैं, मृत्यु भी तेरी, जन्म भी तेरा। दोनों हमें प्रीतिकर हैं, क्योंकि दोनों ही तेरे हैं।

इस जगत में जो चुनाव नहीं करते हैं, इस जगत में जो च्वाइसलेस, चुनावरहित जीने के उपक्रम में प्रवेश करते हैं, वे सभी, चाहे किसी काल में हुए हों, वे सभी महर्षिगण, मुझको ही, मेरे ही संकल्प को, मेरे ही भाव को उपलब्ध होते हैं। कहें कि वे मेरे ही भाव के अंश हैं, वे मेरी ही लहरें हैं। लेकिन वे ऐसी लहरें हैं, जो मेरे सागर होने को भी अनुभव कर लेती हैं।

गीता दर्शन–भाग–5
ईश्वर अर्थात ऐश्वर्य—(प्रवचन—तीसरा)
अध्याय—10

सूत्र:

एतां विभूति योगं च मम यो वेत्ति तत्वतः ।
सोऽविकम्पेन योगेन युज्यते नात्र संशयः ।।7।।
अहं सर्वस्व प्रभवो मनः सर्वं प्रवर्तते।
ड़ति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विता।।8।।
और जो पुरुष इस मेरी परम ऐश्वर्यपूर्ण विभूति को और योगशक्ति को तत्व से जानता है वह पुरुष निश्चल ध्यान योग द्वारा मेरे में ही एकीभाव से स्थित होता है ड़समें कुछ भी संशय नहीं है।

मैं ही संपूर्ण जगत की उत्पति का कारण हूं और मेरे से ही जगत सब चेष्टा करता है हम प्रकार तत्व से समझ कर श्रद्धा और भक्ति से युक्त हुए बुद्धिमान जन मुझ परमेश्वर को ही निरंतर भजते हैं।

और जो पुरुष इस मेरी परम ऐश्वर्यपूर्ण विभूति को और योगशक्ति को तत्व से जानता है, वह पुरुष निश्चल ध्यान योग द्वारा मेरे में ही एकीभाव से स्थित होता है, इसमें कुछ भी संशय नहीं है।

इस सूत्र में प्रवेश के लिए कुछ बातें प्राथमिक रूप से समझें। जीवन के परम रहस्य को हमने ईश्वर कहा है। जीवन के परम आधार को हमने ईश्वर कहा है। और रोज हम ईश्वर शब्द का प्रयोग

भी करते हैं। लेकिन शायद हमें खयाल न हो कि ईश्वर शब्द ऐश्वर्य का ही रूप है। जहां भी ऐश्वर्य प्रकट होता है, जिस आयाम में भी, वहां ईश्वर की झलक निकटतम हो जाती है।

जब कोई फूल अपने परम सौंदर्य में खिलता है, तो उस परम सौंदर्य का नाम ऐश्वर्य है। और जब कोई ध्वनि संगीत की आत्यंतिक ऊंचाई को छू लेती है, तो उस ध्वनि का नाम भी ऐश्वर्य है। और जब कोई आंखें सौंदर्य की गहनतम स्थिति में डूब जाती हैं, तो उस सौंदर्य का नाम भी ऐश्वर्य है।

ऐश्वर्य का अर्थ है, किसी भी दिशा में और किसी भी आयाम में जो परम उत्कर्ष है, जो अंतिम सीमा है, जिसके पार नहीं जाया जा सकता है। चाहे वह सौंदर्य हो, चाहे वह सत्य हो, चाहे वह शिवम् हो, कोई भी हो आयाम, लेकिन जहां जीवन अपनी अत्यंत आत्यंतिक स्थिति को छू लेता है, अपने परम शिखर को पहुंच जाता है, गौरीशंकर को छू लेता है, वहां ईश्वर निकटतम प्रकट होता है।

ईश्वर तो सब जगह छिपा है, उस पत्थर में भी जो रास्ते के किनारे पड़ा है। लेकिन वही पत्थर जब एक सुंदर मूर्ति बन जाता है, तब उससे प्रकट होना उसे आसान हो जाता है। ईश्वर तो कण—कण में है, लेकिन उसके दो रूप हैं। छिपा हुआ रूप, गुप्त रूप, जब वह दिखाई नहीं पड़ता और अनुभव में नहीं आता; और उसका प्रकट रूप, जब उसकी अभिव्यक्ति होती है और वह दिखाई पड़ता है। ऐश्वर्य का अर्थ है, जीवन के परम रहस्य की अभिव्यक्ति, उसका एक्सप्रेशन, उसकी अभिव्यक्ति की आखिरी सीमा।

कृष्ण ने इस सूत्र में कहा है कि जो पुरुष मेरी परम ऐश्वर्यपूर्ण विभूति को......।

हम सभी सुनते हैं और कहते भी हैं कि सब जगह ईश्वर छिपा है, लेकिन बड़े आश्चर्य की बात है कि जब भी उस ईश्वर की परम विभूति प्रकट होती है, तो हम उसे नहीं पहचान पाते हैं। जिन लोगों ने जीसस को सूली दी, वे भी कहते थे, कण—कण में ईश्वर छिपा है, लेकिन जीसस को वे न पहचान पाए। जिन लोगों ने बुद्ध को पत्थर मारे, वे लोग भी कहते थे कि कण—कण में परमात्मा का वास है, लेकिन बुद्ध को वे न पहचान पाए। जिन्होंने महावीर के कानों में खीले ठोक दिए, वे भी सोचते थे कि परमात्मा तो सब जगह छिपा है, लेकिन महावीर में उन्हें वह परमात्मा दिखाई न पड़ा।

यह बहुत आश्चर्य की बात है कि जो लोग मानते हैं कि सब जगह छिपा है, वे भी जब उसकी परम अभिव्यक्ति होती है, तो न केवल उसे नहीं पहचान पाते, बल्कि उसके विपरीत खड़े हो जाते हैं। निश्चित ही, इनका कहना सिर्फ कहना ही होगा; इन्होंने जाना नहीं है, इन्होंने पहचाना नहीं है। अन्यथा जीसस को सूली लगनी असंभव थी, क्योंकि वह परमात्मा को ही सूली है। अन्यथा बुद्ध को पत्थर मारे जाने असंभव थे, क्योंकि वे परमात्मा को ही मारे गए पत्थर हैं।

और मजे की बात तो यह है कि पत्थर में भी परमात्मा छिपा है, लेकिन उसे कोई पत्थर मारने नहीं जाता है। लेकिन बुद्ध में जब परमात्मा प्रकट होता है, तो लोग पत्थर मारने पहुंच जाते हैं! जहां परमात्मा दिखाई नहीं पड़ता, वहां शायद हम पूजा भी कर लें, लेकिन जहां परमात्मा दिखाई पड़ता है, वहां हम शत्रु हो जाते हैं। जरूर कुछ गहरा कारण होगा। और गहरा कारण समझने जैसा है।

जहां परमात्मा दिखाई नहीं पड़ता, वहां हम कितना ही कहें कि परमात्मा है, हम उस परमात्मा से बड़े बने रहते हैं और हमारे अहंकार को कोई बाधा नहीं पहुंचती। लेकिन जब परमात्मा अपने परम ऐश्वर्य में प्रकट होता है कहीं भी, तो हमारे अहंकार को चोट लगनी शुरू होती है। हम छोटे पड़ जाते हैं, हम नीचे हो जाते हैं।

तो हम पत्थर की मूर्ति पूज सकते हैं, लेकिन जीवित बुद्ध को हम पत्थर मारेंगे ही। फिर हम मरे हुए जीसस के आस—पास बड़े—बड़े चर्च और बड़े कैथेड्रल खड़े कर सकते हैं, लेकिन जीसस को तो हम सूली देंगे ही। जीसस में पहचानना तो तभी संभव है, जब हम कृष्ण के इस सूत्र को समझ जाएं, कि जो व्यक्ति तत्व से मेरे परम ऐश्वर्य को पहचानता है!

मान लेना परंपरा से, तत्व से पहचानना नहीं है। मान लेना सुनकर, संस्कार से, तात्विक पहचान नहीं है। क्योंकि वह. पहचान हमारी क्षणभर में डगमगा जाती है। और सबसे ज्यादा वहां डगमगाती है, जहां परमात्मा का ऐश्वर्य प्रकट होता है।

कृष्ण को आज भगवान मान लेना बहुत आसान है। कृष्ण की मौजूदगी में भगवान मानना बहुत कठिन था। कृष्ण की गैर—मौजूदगी में भगवान मान लेने में कोई अड़चन नहीं है, क्योंकि हमारे अहंकार को कोई भी पीड़ा, कोई तुलना नहीं होती। लेकिन कृष्ण की मौजूदगी में भगवान मानना बहुत कठिन है।

शायद अर्जुन भी मन के किसी कोने में कृष्ण को भगवान नहीं मान पाता होगा। शायद अर्जुन के मन में भी कहीं न कहीं किसी अंधेरे में छिपी हुई यह बात होगी कि कृष्ण आखिर कर मेरे सखा हैं, मेरे मित्र हैं, और फिलहाल तो मेरे सारथी हैं! किन्हीं ऊंचाई के क्षणों में मन के भला लगता हो कि कृष्ण अद्वितीय हैं, लेकिन अहंकार के क्षण में तो लगता होगा कि मेरे ही जैसे हैं।

अगर अर्जुन भी मान पाता कि कृष्ण भगवान हैं, तो शायद इतनी चर्चा की कोई जरूरत भी न थी। इतना समझाना पड़ रहा है उसे कृष्ण को, उसका कारण यही है। उसका कारण यही है। कृष्ण जो कह रहे हैं, इसके लिए भी कृष्ण को तर्क देने पड़ रहे हैं, क्योंकि अर्जुन की समझ—कृष्ण जो कह रहे हैं, वह परमात्मा का वचन है—ऐसी नहीं है। एक मित्र की सलाह है। तो विवाद जरूरी है, चर्चा जरूरी है।

और राजी हो जाए चर्चा से, तो ठीक है, मान भी लेगा। लेकिन परमात्मा की आवाज हो, तो फिर सोचने—विचारने का उपाय नहीं रह जाता। फिर सोचना—विचारना गिर ही गया।

कृष्ण का अर्जुन से यह कहना महत्वपूर्ण है कि जो मेरे परम ऐश्वर्य को तत्व से जान पाता है!

यह परम ऐश्वर्य बहुत रूपों में प्रकट होता है। अगर ठीक से समझें, तो ऐश्वर्य के सभी रूप परमात्मा के रूप हैं। और जहां भी श्रेष्ठतर दिखाई पड़े, दिशा वह कोई भी हो, वहां परमात्मा पारदर्शी हो जाता है। चाहे कोई एक संगीतज्ञ अपने संगीत की ऊंचाई को छूता हो। और चाहे कोई एक चित्रकार अपनी कला की अंतिम सीमा को स्पर्श करता हो। चाहे कोई बुद्ध अपने मौन में डूबता हो। चाहे कोई भी हो दिशा, जहां भी अभिजात्य है, जहां भी जीवन किसी अभिजात्य को छूता है, वहीं परमात्मा अपनी सघनता में प्रकट होता है और पारदर्शी हो जाता है, ट्रांसपैरेंट हो जाता है।

नीचे भी वही है; हमारे पैरों के नीचे भी जो जमीन है, वहां भी वही है, लेकिन वहां उसे देखना बहुत मुश्किल होगा। वहां हम मान भी लें, तो भी देखना मुश्किल होगा। आसान होगा कि हम आंखें उठाएं और आकाश के तारों की विभूति में उसे देखें। वहां आसान होगा।

लेकिन हमें कठिनाई है। हम पैर के नीचे की जमीन में मान लें, लेकिन आकाश के तारों में मानना बहुत मुश्किल हो जाता है। जो भी हमसे ऊपर है, उसे मानना बहुत मुश्किल हो जाता है। जो हमसे नीचे है, उसे हम मान भी लें, क्योंकि उसे मानकर भी हम ऊपर बने रहते हैं।

इसलिए यह दुर्घटना मनुष्य के इतिहास में घटी कि हमने क्षुद्र लोगों को मान लिया है। मंदिर के पुजारी को मानना बहुत कठिन नहीं है, लेकिन अगर मंदिर की मूर्ति जीवित हो जाए, तो पूजा करने वाले ही दुश्मन हो जाते हैं!

दोस्तोवस्की ने एक छोटी—सी कथा लिखी है। लिखा है कि जीसस के मरने के अठारह सौ वर्ष बाद जीसस को खयाल आया कि मैं पहले जो गया था जमीन पर, तो बेसमय पहुंच गया था। वह ठीक वक्त न था, लोग तैयार न थे और मुझे मानने वाला कोई भी न था। मैं अकेला ही पहुंच गया था। और इसलिए मेरी दुर्दशा हुई; और इसलिए लोग मुझे स्वीकार भी न कर पाए, समझ भी न पाए। और लोगों ने मुझे सूली दी, क्योंकि लोग मुझे पहचान ही न सके। अब ठीक वक्त है। अगर मैं अब वापस जमीन पर जाऊं, तो आधी जमीन तो ईसाइयत के हाथ में है। हर गांव में मेरा मंदिर है। जगह— जगह मेरे पुजारी हैं। जगह—जगह मेरे नाम पर घंटी बजती है, और जगह—जगह मेरे नाम पर मोमबत्तियां जलाई जाती हैं। आधी जमीन मुझे स्वीकार करती है। अब ठीक वक्त है, मैं जाऊं।

और जीसस यह सोचकर एक रविवार की सुबह बैथलहम, उनके जन्म के गांव में वापस उतरे। सुबह है। रविवार का दिन है। लोग चर्च से बाहर आ रहे हैं। प्रार्थना पूरी हो गई है। और जीसस एक वृक्ष के नीचे खड़े हो गए हैं। उन्होंने सोचा है कि आज वह अपनी तरफ से न कहेंगे कि मैं जीसस क्राइस्ट हूं। क्योंकि पहले एक दफा कहा था, बहुत चिल्लाकर कहा था कि मैं जीसस क्राइस्ट हूं; मैं ईश्वर का पुत्र हूं मैं तुम्हारे लिए संदेश लेकर आया परम जीवन का, और जो मुझे समझ लेगा, वह मुक्त हो जाएगा, क्योंकि सत्य मुक्त कर देता है। लेकिन इस बार, अब तो वे लोग मुझे वैसे ही पहचान लेंगे, घर—घर में तस्वीर है। अब तो कोई जरूरत न होगी मुझे घोषणा करने की। वे चुपचाप खड़े रहे।

लोगों ने पहचाना जरूर, लेकिन गलत ढंग से पहचाना। भीड़ इकट्ठी हो गई, और लोग हंसने लगे, और मजाक करने लगे। और किसी ने कहा कि बिलकुल बन—ठन कर खड़े हो! बिलकुल जीसस जैसे ही मालूम पड़ते हो! खूब स्वांग रचा है! अभिनेता कुशल हो, जरा भी भूल—चूक निकालनी मुश्किल है!

जीसस को कहना ही पड़ा कि तुम गलती कर रहे हो। मैं कोई अभिनय नहीं कर रहा हूं। मैं वही जीसस क्राइस्ट हूं जिसकी तुम पूजा करके बाहर आ रहे हो। तो लोग हंसने लगे और उन्होंने कहा कि जल्दी से तुम यहां से भाग जाओ, इसके पहले कि मंदिर का प्रधान पुरोहित बाहर निकले। नहीं तो तुम मुसीबत में पड़ोगे। और रविवार का दिन है, चर्च में बहुत लोग आए हुए हैं, व्यर्थ तुम्हारी मारपीट भी हो जा सकती है। तुम भाग जाओ।

जीसस ने कहा, क्या कहते हो, ईसाई होकर! पहली दफा जब मैं आया था, तो यहूदियों के बीच में आया था, कोई ईसाई न था; तो मुझे कोई पहचान न सका। यह स्वाभाविक था। लेकिन तुम भी मुझे नहीं पहचान पा रहे हो!

और तभी पादरी आ गया। चर्च के बाहर और लोग आ गए और बाजार में भीड़ लग गई। जीसस पर जो लोग हंस रहे थे, वे जीसस के पादरी के चरणों में झुक—झुक कर नमस्कार करने लगे! लोग जमीन पर लेट गए। बड़ा पादरी! बड़ा पुरोहित मंदिर के बाहर आया है!

जीसस बहुत चकित हुए। फिर भी जीसस के मन में एक आशा थी कि लोग भला न पहचान पाएं, लेकिन मेरा पुजारी तो पहचान ही लेगा! लेकिन पादरी के जब लोग चरण छू चुके, और उसने आंखें ऊपर उठाकर देखा, तो कहा कि बदमाश को पकड़ो और नीचे उतारो! यह कौन शरारती आदमी है? जीसस एक बार आ चुके, और अब दुबारा आने का कोई सवाल नहीं है।

लोगों ने जीसस को पकड़ लिया। जीसस को अठारह सौ साल पहले का खयाल आया। ठीक ऐसे ही वे तब भी पकडे गए थे। लेकिन तब पराए लोग थे और तब समझ में आता था। लेकिन अब अपने ही लोग पकडेंगे, यह भरोसे के बाहर था। और जीसस को जाकर चर्च की एक कोठरी में ताला लगाकर बंद कर दिया गया। आधी रात किसी ने दरवाजा खोला, कोई छोटी—सी लालटेन को लेकर भीतर प्रविष्ट हुआ। जीसस ने उस अंधेरे में थोड़े से प्रकाश में देखा, पादरी है, वही पुरोहित!

उसने लालटेन एक तरफ रखी, दरवाजा बंद करके ताला लगाया। फिर जीसस के चरणों में सिर रखा और कहा कि मैं पहचान गया था। लेकिन बाजार में मैं नहीं पहचान सकता हूं। तुम हो पुराने उपद्रवी! हमने अठारह सौ साल में किसी तरह व्यवसाय ठीक से जमाया है। अब सब ठीक चल रहा है, तुम्हारी कोई जरूरत नहीं; हम तुम्हारा काम कर रहे हैं। तुम हो पुराने उपद्रवी! अगर तुम वापस आए, तो तुम सब अस्तव्यस्त कर दोगे, तुम हो पुराने अराजक। तुम फिर सत्य की बातें कहोगे और सब नियम भ्रष्ट हो जाएंगे। और तुम फिर परम जीवन की बात कहोगे, और लोग स्वच्छंद हो जाएंगे। हमने सब ठीक—ठीक जमा लिया है, अब तुम्हारी कोई भी जरूरत नहीं है। अब तुम्हें कुछ भी करना हो, तो हमारे द्वारा करो। हम तुम्हारे और मनुष्य के बीच की कड़ी हैं। तो मैं तुम्हें भीड़ में नहीं पहचान सकता हूं। और अगर तुमने ज्यादा गड़बड़ की, तो मुझे वही करना पड़ेगा, जो अठारह सौ साल पहले दूसरे पुरोहितों ने तुम्हारे साथ किया था। हम मजबूर हो जाएंगे तुम्हें सूली पर चढ़ाने को। तुम्हारी मूर्ति की हम पूजा कर सकते हैं और तुम्हारे क्रास को हम गले में डाल सकते हैं, और तुम्हारे लिए बड़े मंदिर बना सकते हैं, और तुम्हारे नाम का गुणगान कर सकते हैं, लेकिन तुम्हारी मौजूदगी खतरनाक है।

जब भी ईश्वर अपने परम ऐश्वर्य में कहीं प्रकट होगा, तब उसकी मौजूदगी खतरनाक हो जाती है। वे जो हमारे क्षुद्र अहंकार हैं, उन क्षुद्र अहंकारों को बड़ी पीड़ा शुरू हो जाती है। जब भी विराट ईश्वर सामने होता है, तो हमारा क्षुद्र अहंकार बेचैन हो जाता है। हम मरे हुए ईश्वर को पूज सकते हैं, जीवित ईश्वर को पहचानना मुश्किल है।

कृष्ण का यह सूत्र कीमती है। इसमें ऐश्वर्य शब्द को ठीक से पहचान लेना। और जहां भी, जहां भी कोई झलक मिले उसकी, जो पार है, दूर है, तो उसे प्रणाम करना, उसे स्वीकार करना।

पदार्थ में भी झलक मिलती है उसकी। फूल पदार्थ ही है। लेकिन जीवंत होकर जब खिलता है, तो पदार्थ के पार जो है, उसकी खबर आती है उसमें। वीणा भी पदार्थ है। लेकिन जब कोई गहरे प्राणों से उसके तारों को छूता है, तो उन स्वरों में भी उसका ही स्वर आता है।

जहां भी कोई चीज श्रेष्ठता को छूती है, अभिजात्य को छूती है, वहीं उसकी झलक मिलनी शुरू हो जाती है। लेकिन उतनी ऊंची आंखें उठाना हमें बड़ा मुश्किल है।

मंसूर को सूली लगी, और मैसूर के लोगों ने हाथ—पैर काट डाले। क्योंकि मंसूर ने कहा कि मैं परमात्मा हूं। और जब मैसूर को सूली पर लटकाया गया और उसके पैर काट डाले गए, .तो एक आदमी ने मंसूर की तरफ आंख उठाकर देखा।

यह थोड़ी बारीक घटना है। भीड़ इकट्ठी थी। एक लाख आदमी थे सूली देने को। सूली देने में हमारी इतनी उत्सुकता है, जिसका हिसाब नहीं! दूर—दूर से लोग चलकर आए थे। और उस आदमी का कसूर कुल इतना था कि उसने घोषणा की थी कि मैं मिट गया हूं और केवल परमात्मा है। उसकी घोषणा में इतनी ही गलती थी कि उसने परम ऐश्वर्य को घोषित किया था। और उस आदमी में था। उसकी आंखों में थी बात। उसके हृदय में थी बात।

और जब कोई मैसूर से कहता था कि तुम अपने को ईश्वर कहते हो! तो मंसूर कहता था, जब तक मैं था, तब तक तो मैंने अपने को आदमी भी नहीं कहा। जब से मैं नहीं रहा हूं तब से ही मैंने कहा है कि ईश्वर हूं। मैं नहीं हूं ईश्वर ही है। लेकिन लोग कहते कि सब बातें हैं।

भीड़ इकट्ठी थी, लेकिन कम ही लोगों की आंखें ऊपर की तरफ थीं, जहां मैसूर के गले में सूली लगने वाली थी। लोग तो नीचे पत्थर उठा रहे थे झुके हुए; पत्थर मारने की तैयारियां कर रहे थे।

एक आदमी ने मैसूर की तरफ देखा तो चकित हुआ, क्योंकि उसके ओंठों पर मुस्कुराहट थी। और मैसूर बड़े आनंद से भरा था। तो उस आदमी ने पूछा कि मैसूर, तुम किस आनंद से भरे हो? तो मैसूर ने जो कहा था, उसे मैं बहुत धीरे से आपसे कहता हूं। मैसूर ने कहा, मैं इसलिए खुश हो रहा हूं कि शायद मुझे देखने को ही तुम्हारी आंखें थोड़ा ऊपर उठ सकें। सूली लंबी है, शायद मुझे देखने को ही तुम्हारी आंखें थोड़ी ऊपर उठ सकें। इस बहाने ही सही, तुम एक बार ऊपर देख सको, तो मेरा सूली लगना भी सार्थक हुआ। लेकिन पता नहीं, वे लोग समझ पाए कि नहीं समझ पाए। क्योंकि यह तो बडी प्रतीक की बात थी। हम ऊपर देखने के आदी ही नहीं हैं। हमारी आंखें जमीन में गड़ गई हैं। हमारी आंखें जमीन की कशिश से बंध गई हैं। ऊपर उठाने में हमें आंखों को बड़ी पीड़ा होती है। क्षुद्र को देखकर हम बड़े

प्रसन्न होते हैं। उससे हमारी बड़ी सजातीयता है। श्रेष्ठ को देखकर हम बड़े बेचैन होते हैं। उससे हम अपना कोई समझौता नहीं कर पाते, उसके साथ हमें बड़ी अड़चन होने लगती है।

नीत्शे ने कहा है कि अगर कहीं कोई ईश्वर है, तो मैं उसे तभी बर्दाश्त कर सकता हूं, जब उसी के बराबर के सिंहासन पर मैं भी विराजमान होऊं। और अगर कहीं कोई ईश्वर है, तो मैं इनकार करता ही रहूंगा तब तक, जब तक कि मैं भी उसी ऊंचाई पर न बैठ जाऊं।

इसलिए श्रेष्ठ को स्वीकार करना बड़ा कठिन हो जाता है।

यही तो कठिनाई है। अगर कोई आदमी आपसे आकर कहे कि फलां आदमी असाधु है, बेईमान है, चोर है, तो हम बड़ी प्रफुल्लता से स्वीकार कर लेते हैं। कोई आकर कहे कि फलां आदमी साधु है, सज्जन है, संत है, तो कभी आपने खयाल किया है कि आपके भीतर स्वीकार का भाव बिलकुल नहीं उठता। आप कहते हैं कि तुम्हें पता नहीं होगा अभी, पीछे के दरवाजों से भी पता लगाओ कि वह आदमी साधु है? क्योंकि हमने बहुत साधु देखे हैं। तुमने सुन लिया होगा किसी से। कोई दलाल, कोई एजेंट तुम्हें मिल गया होगा साधु का, उसने तुमसे प्रशंसा कर दी। जरा सावधान रहना। इस तरह के जाल में मत फंस जाना।

अगर हम यह न भी कहें, तो यह भाव हमारे भीतर होता है। अगर यह भाव हमें पता भी न चले, तो भी हमारे भीतर होता है। कोई श्रेष्ठ है, इसे स्वीकार करने में बड़ी बेचैनी है। कोई निकृष्ट है, इसे स्वीकार करने में बड़ी राहत है।

जब हमें पता चलता है कि दुनिया में बहुत बेईमानी हो रही है, चोरी हो रही है, हत्याएं हो रही हैं, तो हमारी छाती फूल जाती है। तब हमें लगता है, कोई हर्ज नहीं, कोई मैं ही बुरा नहीं हूं सारी दुनिया बुरी है। और इतने बुरे लोगों से तो मैं फिर भी बेहतर हूं। रोज लोग अखबार पढ़ते हैं, उसमें पहले वे देखते हैं, कहां हत्या हो गई, कहां चोरी हो गई, कौन किस की स्त्री को लेकर भाग गया है। तब वे छाती फुलाकर बैठते हैं कि मैं बेहतर हूं इन सबसे। किसी की स्त्री को भगाने की योजना तो मैं भी करता हूं लेकिन कार्यरूप में कभी नहीं लाता! हत्या करने का मेरे मन में भी कई बार विचार उठता है, लेकिन सिर्फ विचार है। ऐसे तो मैंने किसी को कभी कंकड़ भी नहीं

मारा। ऐसे चोरी तो मेरे .मन में भी आती है, लेकिन सपनों में ही आती है; बस्तुत: मैं चौर हूं।

अखबार में अगर गलत खबरें न हों, तो पढ़ने में रस ही नहीं आता। इसलिए अखबार साधुओं की कोई खबर नहीं दे सकते, क्योंकि उनको पढ़ने में किसी की कोई उत्सुकता नहीं है। अखबारों को चोरों को खोजना पड़ता है, बेईमानों को खोजना पड़ता है, हत्यारों को, बीमारों को, रूग्ण—विक्षिप्तो को खोजना पड़ता है। इसलिए अखबार अगर निन्यानबे प्रतिशत राजनीतिज्ञों की खबरों से भरा रहता है, तो उसका कारण है, क्योंकि राजनीति में निन्यानबे प्रतिशत चोर और बेईमान और सब हत्यारे इकट्ठे हैं।

लेकिन हमें क्यों रस आता है इतना?

आप भागे चले जा रहे हैं दफ्तर। और रास्ते पर दो आदमी छुरा लेकर लड़ने खड़े हो जाएं, तो आप भूल गए दफ्तर! साइकिल टिकाकर आप भीड़ में खड़े हो जाएंगे। और अगर झगड़ा ऐसे ही निपट जाए; कोई बीच में आकर छुड़ा दे, तो आप बड़े उदास लौटेंगे कि कुछ भी नहीं हुआ। कुछ होने की घड़ी थी, एक्साइटमेंट था, उत्तेजना थी, रस आने के करीब था। कुछ होता; लेकिन कुछ भी नहीं हुआ! कोई नासमझ बीच में आ गया और सब खराब कर दिया। इतना बुराई को देखने का इतना रस क्यों है? बुराई में इतनी उत्सुकता क्यों है?

उसका कारण है। जब भी हमें कोई बुरा दिखाई पड़ता है, हम बड़े हो जाते हैं। जब भी हमें कोई भला दिखाई पड़ता है, हम छोटे हो जाते हैं।

लेकिन जो बड़े को देखने में असमर्थ है, वह परमात्मा को समझने में असमर्थ हो जाएगा। इसलिए जहां भी कुछ बड़ा दिखाई पड़ता हो, श्रेष्ठ दिखाई पड़ता हो, कोई फूल जो दूर आकाश में खिलता है बहुत कठिनाई से, जब दिखाई पड़ता हो, तो अपने इस मन की बीमारी से सावधान रहना। परम ऐश्वर्य को कोई समझ पाए, तो ही आगे गति हो सकती है।

दूसरा शब्द कृष्ण ने कहा है, और मेरी योगशक्ति को।

यह थोड़ा कठिन है। क्योंकि आदमी के लिए योग तो अर्थपूर्ण है, क्योंकि योग का अर्थ होता है, वह शक्ति, जो व्यक्ति को परमात्मा से जोड़ दे। इसे थोड़ा समझें। योग का अर्थ है आदमी के लिए, क्योंकि योग का अर्थ है, वह जोड़ने वाली शक्ति, जो परमात्मा से जोड़ दे व्यक्ति को, जो क्षुद्र को विराट से जोड़ दे, जो बूंद को सागर से जोड़ दे। लेकिन परमात्मा की योगशक्ति क्या होगी? आदमी की योग की प्रक्रिया समझ में आती है, कि आदमी योग साधे और परमात्मा को उपलब्ध हो जाए। लेकिन परमात्मा की तरफ से योगशक्ति क्या होगी?

ठीक विपरीत शक्ति परमात्मा की तरफ से योगशक्ति है। जिसके द्वारा परमात्मा की विराटता क्षुद्रता से जुड़ी होती है, और जिसके द्वारा सागर बूंद से जुड़ा होता है।

कबीर ने कहा है कि मेरी बूंद सागर में गिर गई, अब मैं उसे कैसे खोजूं!

हेरत हेरत हे सखी, रह्या कबीर हेराई।

बुंद समानी समुंद में, सो कत हेरी जाई।।

बूंद खो गई सागर में, उसे कैसे निकालूं वापस। और कबीर खोजते—खोजते खुद ही खो गया। खोजने निकला था प्रभु को, खुद खो गया। बूंद उसके सागर में गिर गई। अब मैं उस बूंद को कैसे वापस पाऊं!

यह पहला वक्तव्य है। लेकिन कबीर ने तत्काल दूसरा वक्तव्य इसी के नीचे लिखा है और उसमें लिखा है

हेरत हेरत हे सखी, रह्या कबीर हेराई।

समुंद समाना बुंद में, सो कत हेरा जाई।।

खोजते—खोजते कबीर खो गया। और यह तो बड़ी मुश्किल हो गई। पहले तो मैंने समझा था, बूंद सागर में गिर गई, अब उसे कैसे वापस पाऊं! अब मैं पाता हूं कि यह तो सागर ही बूंद में गिर गया, अब मैं बूंद को कैसे वापस पाऊं!

बूंद सागर में गिरती है, वह हमारा योगशास्त्र है। और जब सागर बूंद में गिरता है, तब वह भगवान का योग, वह भगवान की योगशक्ति है।

निश्चित ही, मिलन तो दो का होता है। यात्रा दो तरफ से होगी। एक यात्रा के संबंध में हमने सुना है कि आदमी परमात्मा की तरफ जाता है। एक और भी यात्रा है, जिसमें परमात्मा आदमी की तरफ आता है। सच तो यह है कि हम एक कदम चलते हैं परमात्मा की तरफ, तो तत्काल परमात्मा का एक कदम हमारी तरफ उठ जाता है। यह संतुलन कभी नहीं खोता। जितना आप बढ़ते हैं, उतना परमात्मा आपकी तरफ बढ़ आता है।

आप यह मत सोचना कि जब परमात्मा से मिलना होता है, तो परमात्मा के घर में होता है। बिलकुल नहीं। यह बीच यात्रा में होता है। आप चलकर पहुंचते हैं कुछ, परमात्मा चलकर आता है कुछ, और ठीक बीच में यह मिलन होता है।

आप ही मिलने को आतुर हैं परम से, ऐसा अगर होता, तो जीवन बड़ा साधारण होता। परम भी आतुर है आपसे मिलने को। वही जीवन का रस और आनंद है। अगर आदमी ही परमात्मा की तरफ दौड़ रहा है और यह वन वे ट्रैफिक है, एक ही तरफ से यात्रा होती हो, और परमात्मा जरा भी उत्सुक नहीं है आदमी के भीतर आने को, तो आप परमात्मा से मिल भी जाते, तो भी तृप्ति न होती, क्योंकि यह प्रेम एकतरफा होता।

नहीं, जितने आतुर आप हैं, उतना ही आतुर परमात्मा भी है। सागर भी उतना ही आतुर है सरिता से मिलने को, जितनी सरिता आतुर है सागर से मिलने को। ये प्रेम की धाराएं दोनों तरफ से प्रवाहित हैं।

वह जो परमात्मा के मिलने की शक्ति है, उस शक्ति का नाम यहां योगशक्ति है।

इसके तो बहुत अर्थ होंगे। इससे तो पूरा एक जीवन—दर्शन विकसित होगा। इसका अर्थ यह हुआ कि जब आप परमात्मा की तरफ चलते हैं..। सूफी फकीरों में कहावत है कि उसे खोजने तब तक कोई नहीं निकलता, जब तक वह खुद ही उसे खोजने न निकल आया हो। कहावत है कि परमात्मा की तरफ तब तक कोई नहीं चलता, जब तक कि परमात्मा ने ही साधक की तरफ चलना शुरू न कर दिया हो। कहावत है कि प्यास ही नहीं जगती, जब तक उसकी पुकार न आ गई हो।

सूफी फकीर हुआ झुनून, इजिप्त में हुआ। कहा है झुनून ने अपने संस्मरणों में कि जब मेरी मुलाकात हुई उस परम शक्ति से— प्रतीक कथा है— कि जब मैं प्रभु से मिला, तो मैंने प्रभु से कहा कि कितना तुझे मैंने खोजा! तो प्रभु मुस्कुराए और उन्होंने कहा कि क्या तू सोचता है, तूने ही मुझे खोजा? काश, तुझे पता हो कि कितना मैंने तुझे खोजा! और परमात्म शक्ति ने झुनून को कहा कि तूने मुझे खोजना ही तब

शुरू किया, जब मैं तुझे खोजना शुरू कर चुका था। क्योंकि अगर मैं ही तुझे खोजने न निकलूं तो तू मुझे खोजने में कभी समर्थ न हो सकेगा!

अज्ञानी कैसे खोज पाएगा? नासमझ कैसे खोज पाएंगे? जिन्हें कुछ भी पता नहीं है, जिन्हें यह भी पता नहीं है कि वे खुद कौन हैं, वे कैसे खोज पाएंगे? अगर यह परम विराट ऊर्जा भी साथ न दे रही हो इस खोज में, अगर उसका भी हाथ न हो इसमें, अगर उसका भी सहारा न हो, अगर उसका भी इशारा न हो, तो यह खोज न हो पाएगी।

इसलिए धर्म व्यक्ति से परमात्मा की तरफ संबंध का नाम ही नहीं है। धर्म व्यक्ति से परमात्मा की तरफ और परमात्मा से व्यक्ति की तरफ संवाद, मिलन, आलिंगन का संबंध है। यह खोज इकतरफा नहीं है।

लेकिन कृष्ण कहते हैं, तत्व से जो इसे जान ले कि परमात्मा भी खोज रहा है।

वह भी खोज रहा है। विराट भी आपको पुकार रहा है। सागर ने भी आह्वान दिया है, आओ! तो बूंद की शक्ति हजार गुना हो जाती है। सामर्थ्य बढ़ जाता है, साहस बढ़ जाता है, यात्रा बड़ी सुगम हो जाती है। यात्रा फिर यात्रा ही नहीं रह जाती है, बहुत हलकी हो जाती है, निर्भार हो जाती है।

अगर विराट भी मुझे खोज रहा है, तो फिर मिलन सुनिश्चित है। अगर मैं ही उसे खोज रहा हूं तो मिलन सुनिश्चित नहीं हो सकता। मैं क्या खोज पाऊंगा उसको! मेरी सामर्थ्य क्या? मेरी शक्ति कितनी? लेकिन अगर वह भी मुझे खोज रहा है, तो मैं कितना ही भटकूं, और कितना ही भूलूं और कितना ही चूकूं, कुछ भी हो जाए, मिलन होकर रहेगा।

परमात्मा की तरफ से योगशक्ति का अर्थ है, परमात्मा की हमसे मिलने की शक्ति। निश्चित ही, हम जिस दिन परमात्मा को पा लेंगे, उस दिन हम कहेंगे कि पा लिया। लेकिन परमात्मा तो अभी भी जानता है कि उसने हमें पाया हुआ है।

बुद्ध को ज्ञान हुआ, तो बुद्ध को देवताओं ने पूछा कि तुम्हें क्या मिला? तो बुद्ध ने कहा, मुझे कुछ मिला नहीं। जो मुझे मिला ही हुआ था, केवल उसका पता चला। जो मेरे पास था ही, जो मेरी संपत्ति ही थी, मेरे ही भीतर, लेकिन मुझे जिसका कोई स्मरण न था, उसकी स्मृति आई। तो मुझे कुछ मिला नहीं है, जो मिला ही हुआ था, उसका मुझे पता चला।

परमात्मा से जिस दिन हमारा मिलन होगा, हमें पता चलेगा कि मिलन हुआ। परमात्मा को पता चलने का कोई कारण नहीं कि मिलन हुआ; मिलन हुआ ही हुआ है। वह हमारे चारों तरफ मौजूद है। बाहर— भीतर, रोएं—रोएं में, श्वास—श्वास में वह मौजूद है। हम उसमें मौजूद नहीं हैं। वह हममें मौजूद है; हम उसमें मौजूद नहीं हैं। जैसे अंधा आदमी खड़ा हो सूरज की रोशनी में। बरसती हो रोशनी चारों तरफ। रोएं—रोएं पर चोट करती हो कि द्वार खोलो। और उस आदमी को कोई भी पता न हो कि सूरज है। और फिर वह आदमी आंख खोले, और तब वह पाए कि चारों तरफ सूरज है।

आंख का मिलन हुआ सूरज से। सूरज तो तब भी मिल रहा था आंख से, भला आंख बंद रही हो। सूरज तो तब भी द्वार पर ही खड़ा था। सूरज के लिए कोई नई घटना नहीं घट रही है। लेकिन सूरज भी दस्तक दे रहा था, वह भी द्वार खटखटा रहा था।

परमात्मा के लिए तो हम उसके ही भीतर हैं, लेकिन वह हमारे भीतर नहीं है। जब मैं कहता हूं वह हमारे भीतर नहीं है, तो यह कोई अस्तित्वगत वक्तव्य नहीं है। जब मैं कहता हूं, वह हमारे भीतर नहीं है, तो इसका कुल इतना मतलब हुआ कि वह तो हमारे भीतर है, लेकिन हमें उसके भीतर होने का कोई भी पता नहीं है। यह ज्ञानगत वक्तव्य है।

आपके खीसे में हीरा रखा है। आपको पता नहीं है। आप सड़क पर भीख मांग रहे हैं। हीरे के होने और न होने में कोई फर्क नहीं है। न होता, तो भी आप भीख मांगते, है, तो भी भीख मांग रहे हैं। आप भिखारी हैं। हीरा आपकी जेब में पड़ा है। हीरा है या नहीं है, बराबर है। उसके होने, न होने का कोई भी बाजार के मूल्य में फर्क नहीं है।

लेकिन आपका हाथ खीसे में जाए। कोई आपको खीसे का पता बता दे। आप हाथ भीतर डालें। हीरा आपको मिल जाए। तो आप यही कहेंगे कि हीरा मुझे मिला। लेकिन ज्यादा उचित होगा कहना

कि हीरा मेरे पास था, मुझे मिला ही हुआ था, सिर्फ मुझे पता नहीं था। मुझे स्मरण आया। मुझे पहचान आई। मैंने जाना कि हीरा है। कृष्ण का अर्थ है यहां कि जो पुरुष मेरी योगशक्ति को तत्व से जानता है, वह निश्चित हो जाता है। वह जानता है कि परमात्मा में मैं स्थापित ही हूं मिला ही हुआ हूं। उसका हाथ मेरे हाथ तक आ ही गया है। सिर्फ मुझे मेरे हाथ को बांधना है, सिर्फ मुझे मेरे हाथ को उसके हाथ में दे

देना है। हाथ उसका दूर नहीं है। उसके हृदय की धड़कन मेरे हृदय की ही धड़कन है। मेरे हृदय की धड़कन ही उसके हृदय की धड़कन भी है।

ऐसा जो तत्व से जानता है!

यह 'तत्व' शब्द का बहुत प्रयोग कृष्ण जगह—जगह करते हैं, सिर्फ एक फासला बनाने को कि सुनकर जान लेने से नहीं कुछ होगा। मैंने आपसे कहा, आपने सुन लिया। एक अर्थ में आपने जान लिया। आप मान सकते हैं कि ठीक है। मान लिया। लेकिन इससे कुछ भी न होगा। आपकी जिंदगी तो वैसी ही चलती रहेगी, जैसी तब चलती थी, जब आपने यह नहीं जाना था। और जिंदगी में कोई फर्क न पड़ेगा। आदमी क्या मानता है, इससे उसके धार्मिक होने का कोई पता नहीं चलता। आदमी कैसा जीता है, इससे उसके धार्मिक होने का पता चलता है।

अठारह सौ सत्तावन में एक मौन संन्यासी को अंग्रेजों ने छाती में भाला भोंक दिया था, भूल से। नग्न संन्यासी था, मौन था वर्षों से। रास्ते से गुजर रहा था नाचता हुआ। अंग्रेजों की छावनी पड़ी थी, गदर का मौसम था, हवा खराब थी। अंग्रेजों के लिए संकट का समय था। उन्होंने पकड लिया उसे। उससे पूछा, कौन हो? संदिग्ध पाया, क्योंकि न वह आदमी बोले। नाचे जरूर, हंसे जरूर, बोले नहीं! तो समझा कि कोई जासूस है और छावनी के इर्द—गर्द कुछ पता लगाने आया है। तो उसकी छाती में भाला मार दिया।

उस संन्यासी ने प्रतिज्ञा ले रखी थी कि मरते वक्त एक बार बोलूंगा। छाती में भाला लगा, तो बस एक मौका था उसे जीवन में बोलने का। उसने जो शब्द बोले, वह तत्व से जानता होगा, इसलिए बोले।

उसने उपनिषद के महावचन का उपयोग किया, तत्वमसि श्वेतकेतु। उसने कहा, दैट आर्ट दाउ श्वेतकेतु। उस अंग्रेज से, जिसने छाती में भाला भोंका, उससे कहा कि तुम भी परमात्मा हो, श्वेतकेतु। और गिर गया।

मृत्यु के क्षण में जब कोई छुरा भोंक रहा हो छाती में या भाला भोंक रहा हो, तब भी उसमें परमात्मा को देखने की क्षमता तत्व से आती है, विश्वास से नहीं आती। मान लेने से नहीं आती, समझ लेने से नहीं आती, जान लेने से आती है।

तो एक तो ईश्वर की धारणा है, जो हम समझ लेते हैं बुद्धिगत रूप से, इंटलेक्ट्अली। उसका बहुत मूल्य नहीं है। एक ईश्वर की प्रतीति है, जो हम संवेदना से जानते हैं, सेसिटिवली। इन थोड़े दो शब्दों को ठीक से समझ लें—इंटलेज्यूअली, बुद्धि से, संवेदना से, सेसिटिवली, प्रतीति से।

हवाएं छूती हैं शरीर को, तो अनुभव होता है, वही छू रहा है। आंख उठती है सूरज की तरफ, तो अनुभव होता है, उसी की रोशनी है। फूल खिलता है, तो लगता है, उसी की सुगंध है। कोई सुंदर चेहरा दिखाई पड़ता है, तो लगता है, उसी का सौंदर्य है। रोएं—रोएं से, उठते—बैठते, सोते—चलते, जो भी संवेदना होती है, सभी संवेदनाओं में उसी का संदेश प्रतीत होता है। तो धीरे— धीरे जीवन के सब द्वार उसी की खबर लाने लगते हैं। और भीतर एक क्रिस्टलाइजेशन, एक तत्व संगृहीत होता है। और भीतर एक केंद्र, एक सेंटरिग घटित होती है।

उस जानने को, कृष्ण तत्व से जानना कहते हैं। उस जानने को, तत्व से जानना कहते हैं।

क्या करें इसके लिए? हमारी तो संवेदना बोथली हो गई है, मर गई है। किसी का हाथ भी छूते हैं, तो कुछ पता नहीं चलता। चमड़ी से चमड़ी भला स्पर्श करती हो, लेकिन चमड़ी के पार भी कोई चीज छुई जा रही है, इसका पता नहीं चलता।

अभी योरोप और अमेरिका में बड़े व्यापक पैमाने पर प्रयोग चलते हैं सेसिटिविटी के, संवेदना के। लोग गिरोहों में इकट्ठे होते हैं, एक—दूसरे के शरीर को छूने और जानने के लिए कि छूने का अनुभव क्या है। उसका प्रशिक्षण चलता है। आपको मैं थोड़ा—सा कोई उदाहरण दूं तो खयाल में आ जाए।

आप गए हैं जुहू के तट पर, रेत में बैठे हुए हैं। आंख बंद कर लें, रेत को हाथ से छुए, कांशसली। रेत तो बहुत बार छुई है, बहुत बार उस पर चले हैं। लेकिन मैं आपसे कहता हूं रेत की आपको कोई संवेदना नहीं है। आंख बंद कर लें, शांत हो जाएं, विचार शांत हो जाने दें, फिर रेत को हाथ से छुए। उसका टेक्सचर, उसको अनुभव करें—क्या है— हाथ से छूकर। उलटे हाथ से छुए; उसकी ठंडक, उसकी गर्मी, एक—एक दाने का अलग—अलग भाव। लेट जाएं, सिर रेत में रख लें। आंखें रेत में गपा दें, बंद आंखें। अनुभव करें आंखों की पलकों पर— रेत की प्रतीति, रेत का फैलाव, रेत का अस्तित्व। मुट्ठी में बांधें, अनुभव करें।

एक घंटेभर रेत के साथ संवेदना को विकसित करें। और तब आप पहली दफा अनुभव करेंगे कि रेत में भी बड़े आयाम हैं। उसका भी अपना होना है। रेत के भी बड़े अनुभव हैं, रेत की भी बड़ी स्मृतियां हैं, रेत का भी बड़ा लंबा इतिहास है। रेत भी सिर्फ रेत नहीं है। वह भी अस्तित्व की एक दिशा है। और तब बहुत कुछ प्रतीति होगी। बहुत कुछ प्रतीति होगी।

हरमन हेस ने किताब लिखी है, सिद्धार्थ। उसमें सिद्धार्थ एक पात्र है, वह नदी के किनारे वर्षों रहता है, नदी को अनुभव करता है। कभी नदी जोर में होती है, तूफान होता है, आंधी होती है, तब नदी का एक रूप प्रकट होता है। कभी नदी शांत होती है, मौन होती है, लीन होती है अपने में, लहर भी नहीं हिलती है, तब नदी का एक और ही रूप होता है। कभी नदी वर्षा की नदी होती है, विक्षिप्त और पागल, सागर की तरफ दौड़ती हुई, उन्मत्त। तब नदी में एक उन्माद होता है, एक मैडनेस होती है, उसका भी अपना आयाम है, अपना अस्तित्व है। और कभी धूप आती है, गर्मी के दिन आते हैं, और नदी सूख जाती है, क्षीण हो जाती है; दीन—दुर्बल हो जाती है, पतली, एक नांदी की चमकती धार ही रह जाती है। तब उस नदी की दुर्बलता में, उस नदी के मिट जाने में कुछ और है।

धीरे—धीरे सिद्धार्थ उस नदी के किनारे रहते—रहते नदी की वाणी समझने लगता है। धीरे— धीरे नदी के भाव समझने लगता है, मूड समझने लगता है। नदी कब नाराज है, नदी कब खुश है, कब नदी नाचती है और कब नदी उदास होकर बैठ जाती है! कब दुखी होती है, कब संतप्त होती है, कब प्रफुल्लित होती है, वह उसके सारे स्वाद, उसके सारे अनुभव, नदी की अंतर्व्यथा और नदी का अंतर्जीवन, नदी की आत्मकथा में डूबने लगता है।

धीरे—धीरे नदी उसके लिए बड़ी शिक्षक हो जाती है। वह इतना संवेदनशील हो जाता है कि वह पहले से कह सकता है कि आज सांझ नदी उदास हो जाएगी। वह पहले से कह सकता है कि आज रात नदी नाचेगी। वह पहले से कह सकता है कि आज नदी कुछ गुनगुना रही है, आज उसके प्राणों में कोई गीत है। वर्षों—वर्षों नदी के किनारे रहते—रहते, नदी और उसके बीच जीवंत संबंध हो जाते हैं।

तब नदी ही परमात्मा हो जाएगी। इतनी संवेदना अगर आ जाए, तो अब किसी और परमात्मा को खोजने जाना न पड़ेगा।

जिन ऋषियों को गंगा में परमात्मा दिखा, वे कोई आप जैसे गंगा के तीर्थयात्री नहीं थे, कि गए, और दो पैसे वहां फेंके, और पंडे से पूजा करवाई, और भाग आए अपने पाप गंगा को देकर! जिन्होंने

अपने पुण्य गंगा को नहीं दिए, वे गंगा को कभी नहीं जान पाएंगे। पाप भी देकर कहीं कोई जान पा सकता है?

इसलिए हमारे लिए गंगा एक नदी है। हम कितना ही कहें कि पवित्र है, हम भीतर जानते हैं कि बस नदी है। हम कितना ही कहें, पूज्य है, लेकिन सब औपचारिक है।

लेकिन जिन्होंने वर्षों—वर्षों गंगा के तट पर रहकर उसके जीवन की धार से अपनी जीवन की धार मिला दी होगी, उनको पता चला होगा। तब किसी भी गंगा के किनारे पता चल जाएगा। तब किसी खास गंगा के किनारे ही जाने की जरूरत नहीं है, तब कोई भी नदी गंगा हो जाएगी और पवित्र हो जाएगी।

संवेदना— रेत में भी, वृक्ष के पत्ते में भी, फूल में भी, व्यक्ति के हाथों में भी, लोगों की आंखों में भी—जीवन को एक संवेदना बनाएं। सब तरफ से जितना ज्यादा जीवन को स्पर्श कर सकें, उतना स्पर्श करें। इस स्पर्श से आपके भीतर एक केंद्र का जन्म होगा। वही केंद्र परमात्मा की योगशक्ति को जान पाता है। —उसी केंद्र को पता चलता है कि जब मैं बहता हूं संवेदना में, और जब मेरे द्वार खुलते हैं संवेदना के लिए, जब मैं एक नदी के लिए अपने हृदय के द्वार खोल देता हूं जैसे कोई प्रेमी अपनी प्रेयसी के लिए खोल दे या कोई प्रेयसी अपने प्रेमी के लिए खोल दे, तब एक नदी से भी परमात्मा का ही आगमन शुरू हो जाता है। और जो व्यक्ति अपनी संवेदना के सभी द्वार खुले रख दे, उस व्यक्ति को, परमात्मा भी मुझसे मिलने को आतुर है, इसका पता चलेगा।

बुद्धि से यह पता नहीं चलेगा। बुद्धि बहुत आशिक घटना है, और बहुत पुरानी और बासी। संवेदना ताजी, जीवंत घटना है। और मजा यह है किं बुद्धि तो उधार भी मिल जाती है, संवेदना उधार नहीं मिलती। अगर पानी को छूकर मैंने जाना है कि वह ठंडा है या गर्म, अगर पानी को छूकर मैंने जाना है कि मैत्रीपूर्ण है कि मैत्रीपूर्ण नहीं, तो यह मैं ही जान सकता हूं। पानी की ठंडक या पानी की गर्मी, या पानी की मैत्री या अमैत्री, मेरा ही अनुभव होगी। यह दूसरे के अनुभव से मैं नहीं जान सकता हूं।

संवेदनाएं उधार नहीं मिलती। लेकिन बुद्धि उधार मिल जाती है। हमारे विश्वविद्यालय, विद्यालय बुद्धि को उधार देने का काम कर रहे हैं। बुद्धि उधार मिल जाती है, शब्द उधार मिल जाते हैं, संवेदनाएं स्वयं जीनी पड़ती हैं। और इसीलिए तो हम संवेदनाओं से धीरे— धीरे टूट गए। क्योंकि हम इतने उधार हो गए हैं कि जो उधार मिल जाए, बाजार से खरीदा जा सके, वह हम खरीद लेते है। जो उधार मिल जाए, वह हम ले लेते हैं, चाहे जिंदगी ही उसके बदले में क्यों न चुकानी पड़े। लेकिन जो खुद जानने से मिलता है, उतनी झंझट, उतना श्रम कोई उठाने को तैयार नहीं है।

तो हमने धीरे— धीरे जीवन के सब संवेदनशील रूप खो दिए। और उन्हीं की वजह से हमें पता नहीं चलता कि परमात्मा भी पुकारता है, वह भी आता है, वह भी हम से मिलने को आतुर है। चारों तरफ से उसके हाथ हमारी तरफ आते हैं, लेकिन हमें संवेदनहीन पाकर वापस लौट जाते हैं।

परमात्मा की योगशक्ति का अर्थ आपको तभी पता चलना शुरू होगा, जब आप उसके मिलन की संभावनाएं जहां—जहां हैं, वहां— वहां अपने हृदय को खोलें।

लेकिन जिसको हम साधक कहते हैं आमतौर से, वह तो और बंद कर लेता है। वह अपनी संवेदनाएं और सिकोड़ लेता है। वह अपने द्वार—दरवाजे और घबड़ाहट से सब तरफ खीलें ठोक देता है कि कहीं से कुछ भीतर न आ जाए। सौंदर्य देखकर डरता है कि कहीं वासना न जग जाए। सुंदर फूल देखकर डरता है कि कहीं यह शारीरिक सौंदर्य का स्मरण न बन जाए। गीत सुनने में भयभीत होता है, क्योंकि गीत की कोई गहरी कड़ी भीतर छिपी किसी वासना को जगा न दे। संगीत से डरता है। सब तरफ से भयभीत हो जाता है। जिसको हम धार्मिक कहते हैं, तथाकथित धार्मिक, वह धार्मिक कम, पैथालाजिकल, रुग्ण ज्यादा है। और सब तरफ से अपने को बंद कर लेता है।

ठीक धार्मिक तो सब तरफ से अपने को खोल देगा। ठीक धार्मिक तो जहर में भी अमृत को खोज लेगा। और गलत धार्मिक अमृत में भी जहर को खोज लेता है। ठीक धार्मिक तो निकृष्ट में भी श्रेष्ठ को अनुभव कर लेगा, और गलत धार्मिक श्रेष्ठ में भी निकृष्ट को ही पकड़ पाता है।

यह हम पर निर्भर करता है। अगर हमारी संवेदनशीलता प्रगाढ़ है, तीव्र है, तो हम जीवन में कहीं से भी प्रवेश कर सकते हैं। और परमात्मा हममें कहीं से भी प्रवेश कर सकता है। परमात्मा की विभूति, उसका ऐश्वर्य हमारे स्मरण में हो, हम उसके ऐश्वर्य को स्वीकार करने की क्षमता जुटाएं, इतने विनम्र हों कि उसके ऐश्वर्य को स्वीकार कर सकें और इतने संवेदनशील हों कि उसकी जो योगशक्ति है, वह भी हमारी प्रतीति का विषय बन सके।

तो कृष्ण ने कहा है, वह पुरुष निश्चल ध्यान योग द्वारा मेरे में ही एकीभाव से स्थित होता है, इसमें कुछ भी संशय नहीं है। ऐसा जो पुरुष है, वह निश्चल ध्यान योग द्वारा मुझमें ही एकीभाव से स्थित हो जाता है, यह निस्संदिग्ध है।

इसमें एक बात है, निश्चल ध्यान योग द्वारा।

व्यक्ति का परमात्मा की तरफ जाने का जो उपक्रम है, वह जाने जैसा कम और ठहर जाने जैसा ज्यादा है। व्यक्ति की परमात्मा की तरफ जो यात्रा है, वह दौड़ने जैसी कम और सब भांति रुक जाने जैसी ज्यादा है। इसे थोड़ा ठीक से समझ लें।

जगत में हम जो भी खोजते हैं, वह दौड़कर खोजते हैं। इसलिए जगत में जो जितनी तेजी से दौड़ सकता है, उतना सफल होगा। जो दूसरों की लाशों पर से भी दौड़ सकता है, वह और भी ज्यादा सफल होगा। जो पागल होकर दौड़ सकता है, उसकी सफलता सुनिश्चित हो जाएगी, जगत में। जितनी तेजी से दौड़ेंगे, उतना ज्यादा इस जगत में आप सफल हो जाएंगे। लेकिन भीतर आप विक्षिप्त और पागल भी हो जाएंगे। ठीक परमात्मा की तरफ जाने वाली बात बिलकुल दूसरी है। वहां तो जो जितना शांति से खड़ा हो जाता है, उतना ज्यादा सफल हो जाता है।

जब आप दौड़ते हैं, तो आपका मन भी दौड़ता है। मन दौड़ता है, इसीलिए तो आप दौड़ते हैं। आप तो पीछे जाते हैं मन के, मन बहुत पहले जा चुका होता है। अगर आपको लाख रुपए पाने हैं, तो मन तो पहुंच गया लाख पर, अब आपको दौड़कर यात्रा पूरी कर लेनी है। मन तो पहुंच चुका, अब आप आ जाएं।

अगर आपको एक बड़ा मकान बनाना है, मन ने बना डाला। अब आप जो और जरूरी काम रह गए करने के, वे कर डालें और वहां पहुंच जाएं। लक्ष्य तो मन पहले ही पा लेता है, फिर शरीर. उसके पीछे घसिटता रहता है। और जब आप बड़े महल में पहुंचते हैं, तब तक आपके मन ने दूसरे बड़े महल आगे बना लिए होते हैं। इसलिए मन आपको कहीं रुकने नहीं देता, दौड़ाता रहता है।

मन दौड़ता है, इसलिए आप दौड़ते हैं। आपकी दौड़ आपके मन का ही प्रतिफलन है। जब मन ठहर जाता है, तो आप भी ठहर जाते हैं। परमात्मा में जिसे जाना है, उसे संसार से ठीक उलटा उपक्रम पकड़ना पड़ता है। उसे ठहर जाना पड़ता है, उसे रुक जाना पड़ता है।

निश्चल ध्यान योग का अर्थ है, मन की ऐसी अवस्था, जहां कोई दौड़ नहीं है। मन की ऐसी अवस्था, जहां कोई भविष्य नहीं है। मन की ऐसी अवस्था, जहां कोई लक्ष्य नहीं है। मन की ऐसी अवस्था कि मन कहीं आगे नहीं गया है; यहीं है, अभी, इसी क्षण, कहीं नहीं गया है। इसका नाम है, निश्चल ध्यान योग।

आमतौर से लोग सोचते हैं, ध्यान का मतलब है, परमात्मा पर ध्यान लगाना। अगर आपने परमात्मा पर ध्यान लगाया, तो परमात्मा तो बहुत दूर है, आपका ध्यान दौड़ेगा; परमात्मा की तरफ दौड़ेगा, लेकिन दौड़ेगा। और जब तक चित्त किसी भी तरफ दौड़ता है, तब तक परमात्मा को नहीं जान सकता। एक बहुत पैराडाक्सिकल, विरोधाभासी बात है।

जो लोग परमात्मा को पाना चाहते हैं, उन्हें परमात्मा को पाने की चिंता भी छोड़ देनी पड़ती है। वह चिंता भी बाधा है। वह भी वासना है। आखिरी वासना है, लेकिन वासना है। तो जो परमात्मा को भी पाने के लिए बेचैन है..। कोई धन पाने के लिए बेचैन है, कोई यश पाने के लिए बेचैन है, कोई ईश्वर को पाने के लिए बेचैन है। लेकिन बेचैनी है।

ध्यान रहे, धन मिल सकता है बेचैनी के साथ। यश भी मिल सकता है बेचैनी के साथ। परमात्मा को पाने की तो पहली शर्त ही यही है कि चैन उन। जाए, भीतर सब चुप और मौन हो जाए, सब ठहर जाए। ईश्वर को वे पाते हैं, जो खड़े हो जाते हैं, ठहर जाते हैं, रुक जाते हैं। उलटी बात है। सूत्र बना सकते हैं हम।

संसार में कुछ पाना हो तो दौड़ो; और परमात्मा में कुछ पाना हो तो ठहरो, स्टाप। जहां हो भीतर, वहीं ठहराव हो जाए; कोई चीज दौड़ती न हो, कोई तरंग न उठती हो। बड़ा कठिन है। हम तरंगें बदल सकते हैं, वह आसान है।

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, हम समझे। लेकिन कुछ सहारा चाहिए! आप कहते हो, धन के बाबत मत सोचो, नहीं सोचेंगे। लेकिन फिर हम क्या सोचें? कुछ सोचने को दें। तो हम धर्म के बाबत सोचेंगे। आप कहते हैं, हिसाब—किताब, खाता— बही को भूल जाएं; ठीक। तो हमें कोई रामायण, कोई महाभारत, कोई गीता, कुछ हमें पकड़ा दें, हम उसमें लग जाएं। लेकिन कुछ चाहिए!

ध्यान रहे, खाते—बही में लगा हुआ मन, दूसरा खाता—बही मिल जाए, तो उसे कोई अड़चन नहीं है; उसमें लग जाएगा। नाम कुछ भी हो, उसमें लग जाएगा। लेकिन उससे कहो, नहीं, किसी में भी मत लगो। बस, खाली रह जाओ थोड़ी देर। तो बहुत घबड़ाहट होती है कि यह कैसे हो सकता है! यह कैसे हो सकता है!

एक पागल आदमी पश्चिम की तरफ दौड़ रहा है। हम उससे कहते हैं, रुक जाओ। व्यर्थ मत दौड़ो। वह कहता है, मैं रुक सकता हूं पश्चिम की तरफ नहीं दौड़ूगा; तो मुझे पूरब की दिशा में दौड़ने दो। मगर दौड़ने दो।

अब पागलपन उसका पश्चिम में दौड़ने के कारण नहीं है, दौड़ने के कारण है। तो पूरब में दौड़े, तो कोई फर्क नहीं पड़ता; कि दक्षिण में दौड़े, कि उत्तर में दौड़े, कोई फर्क नहीं पड़ता। लेकिन वह पागल यह कहता है कि पश्चिम से दिक्कत होती है? पश्चिम न दौड़ेंगे! पूरब दौड़ने दो, दक्षिण दौड़ने दो, उत्तर दौड़ने दो। कहीं भी दौड़ने दो। पूरब को छोड़ देते हैं, लेकिन दौड़ को नहीं छोड़ सकते।

पागलपन दौड़ में है, पूरब में नहीं है। धन में पागलपन नहीं है, ध्यान रहे। इसलिए जनक जैसा आदमी धन के बीच भी गैर—पागल हो सकता है। धन में कोई पागलपन नहीं है। यश में भी कोई पागलपन अपने में नहीं है। पागलपन दौड़ में है। धन का पागल जब कभी—कभी धन से ऊब जाता है— और सभी चीजों से जिंदगी में हम ऊब जाते हैं— धन हो गया, हो गया, दौड़ भी हो गई, तो वह कहता है, अब धर्म के लिए दौड़ेंगे, लेकिन दौड़ेंगे जरूर।

दुनिया के तर्क अंत तक पीछा करते हैं। दौड़ एक तर्क है, कि सब चीजें दौड़कर पाई जा सकती हैं। कोई चीज ऐसी भी है, जो दौड़ छोड्कर पाई जा सकती है, वह हमारे तर्क का हिस्सा नहीं है।

परमात्मा अगर कहीं और होता, तो आपको दौड़कर मिल जाता। लेकिन परमात्मा वहीं है, जहां आप हैं। इसलिए दौड़कर वह नहीं मिलेगा। दूसरे को पाना हो, तो दौड़कर पा सकते हैं। खुद को पाना हो, तो दौड़कर कैसे पाइका! खुद को पाने के लिए दौड़ बिलकुल बेमानी है, पागलपन की बात है।

इसलिए झेन फकीर हुवांग पो ने कहा है कि जो ईश्वर को खोजने निकलेगा, वह खो देगा। निकलना ही मत खोजने।

बुद्ध घर लौटे। रवींद्रनाथ ने एक बहुत व्यंग्य—कथा लिखी है, एक व्यंग्य—गीत लिखा है। बुद्ध घर लौटे। यशोधरा नाराज थी। छोड्कर, भागकर चले गए थे। गुस्सा स्वाभाविक था। और बुद्ध इसीलिए घर लौटे कि उसको एक मौका मिल जाए। बारह वर्ष का लंबा क्रोध इकट्ठा है, वह निकाल ले। तो एक ऋण ऊपर है, वह भी छूट जाए।

बुद्ध वापस लौटे। तो रवींद्रनाथ ने अपने गीत में यशोधरा द्वारा बुद्ध से पुछवाया है; और बुद्ध को बड़ी मुश्किल में डाल दिया है। यशोधरा से पुछवाया है रवींद्रनाथ ने। यशोधरा ने बुद्ध को बहुत— बहुत उलाहने दिए और फिर कहा कि मैं तुमसे यह पूछती हूं कि तुमने जो घर से भागकर पाया, वह क्या घर में मौजूद नहीं था?

बुद्ध बड़ी मुश्किल में पड़ गए। यह तो वे भी नहीं कह सकते कि घर में मौजूद नहीं था। और अब पाकर तो बिलकुल ही नहीं कह सकते। अब पाकर तो बिलकुल ही नहीं कह सकते। आज से बारह साल पहले यशोधरा ने अगर कहा होता कि तुम जिसे पाने जा रहे हो, क्या वह घर में मौजूद नहीं है? तो बुद्ध निश्चित कह सकते थे कि अगर मौजूद घर में होता, तो अब तक मिल गया होता। नहीं है, इसलिए मैं खोजने जा रहा हूं। लेकिन अब तो पाने के बाद बुद्ध को भी पता है कि जो पाया है, वह घर में भी पाया जा सकता था। तो बुद्ध बड़ी मुश्किल में पड़ गए।

रवींद्रनाथ तो बुद्ध को मुश्किल में देखना चाहते थे, इसलिए उन्होंने बात आगे नहीं चलाई। लेकिन मैं नहीं मानता हूं कि बुद्ध उत्तर नहीं दे सकते थे। वह रवींद्रनाथ बुद्ध को दिक्कत में डालना चाहते थे, इसलिए बात यहीं छोड़ दी उन्होंने। यशोधरा ने पूछा, और बुद्ध मुश्किल में पड़ गए। लेकिन निश्चित मैं जानता हूं कि अगर बुद्ध से ऐसा यशोधरा पूछती, तो बुद्ध क्या कहते!

बुद्ध ने निश्चित कहा होता कि मैं भलीभांति जानता हूं कि जिसे मैंने पाया, वह यहां भी पाया जा सकता है। लेकिन बिना दौड़े यह पता चलना मुश्किल था कि दौड़ व्यर्थ है। यह दौड़कर पता चला। दौड़—दौड़कर पता चला कि बेकार दौड़ रहे हैं। जिसे खोजने निकले थे, वह यहीं मौजूद है। लेकिन बिना दौड़े यह भी पता नहीं चलता। दौड़कर भी पता चल जाए, तो बहुत है। हम काफी दौड़ लिए, फिर भी कुछ पता नहीं चलता। एक चीज चूकती ही चली जाती है; जो हम हैं, जो भीतर है, जो यहां और अभी है, वह हमें पता नहीं चलता। निश्चल ध्यान योग का अर्थ है, दौड़ को छोड़ दें और कुछ घड़ी बिना दौड़ के हो जाएं; कुछ घड़ी, घडीभर, आधा घड़ी, बिना दौड़ के हो जाएं। ध्यान का इतना ही अर्थ है।

ध्यान का यह मतलब नहीं है कि आप लेकर माला, और माला के साथ दौड़ने लगें। वह दौड़ है। एक गुरिया हटाया, दूसरा हटाया, जल्दी हटाए, चक्कर लगाए माला का। लंबा दौड़ नहीं लगा रहे हैं आप, माला में चक्कर मार रहे हैं। छोटे बच्चे होते हैं न, उनको एक कोने में खड़ा कर दो, तो वहीं कूदते रहेंगे। यह माला वाला वही काम कर रहा है। छोटे बच्चे हैं, उनसे कहो, मत दौड़ो। ठीक है। आन दि स्पाट! वे वहीं उछल—कूद करते रहेंगे। उछल—कूद जो उनके भीतर चल रही थी, वह जारी रहेगी। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि जगह कितनी घेरी। एक छोटे—से गोल घेरे में आदमी दौड़ सकता है। माला फेर रहा है कोई। कोई बैठकर राम—राम, राम—राम, राम— राम किए चला जा रहा है। लेकिन दौड़ जारी है।

मैं यह नहीं कह रहा हूं कि आप माला मत फेरना। बुरा नहीं है। आधा घंटा माला फेरी, न मालूम कितने उपद्रव नहीं किए, वह भी काफी है। अपनी जगह पर ही कूद रहे हैं, दूसरे के घर में नहीं कूदे, यह भी काफी है।

मैं यह नहीं कह रहा कि आप माला मत फेरना। फेरना जरूर, लेकिन मत यह समझ लेना कि वह ध्यान है। वह ध्यान नहीं है। मैं यह भी नहीं कह रहा कि आप राम—राम मत करना। मजे से कर लेना। क्योंकि कुछ तो आप करेंगे ही। कुछ तो करेंगे ही, बिना किए तो रह नहीं सकते। तो एक फिल्म स्टार का नाम लेने से राम— राम का नाम लेना बहुत बेहतर है। कुछ न कुछ तो भीतर चलेगा ही, खोपड़ी आपकी चुप नहीं रह सकती। तो ठीक है, राम प्यारा शब्द है, उसको दोहरा लेना। लेकिन उसे ध्यान मत समझ लेना।

ध्यान का तो मतलब ही निश्चल ध्यान होता है। ध्यान का तो मतलब ही निश्चल हो जाना होता है, मन का बिलकुल न दौड़ना—न माला में, न राम में, न स्वर्ग में, न मोक्ष में—कहीं भी न दौड़ना। मन का ठहर जाना, रुक जाना। एक क्षण को भी ऐसी घड़ी बन जाए, एक क्षण को भी ऐसा परम मुहूर्त आ जाए, जब आपका मन कुछ भी न कर रहा हो, कहीं भी न जा रहा हो, गोइंग नो व्हेयर, वहीं रह गया हो जहां आप हैं।

तो कृष्ण कहते हैं, निश्चल ध्यान योग द्वारा मेरे में ही एकीभाव से स्थित होता है। जैसे ही यह निश्चल ध्यान फलित होता है, वैसे ही व्यक्ति मुझ में एकीभाव से स्थित हो जाता है। तब उसमें और मुझमें जरा भी फासला नहीं है। तब उसके और मेरे बीच जरा भी दूरी नहीं है।

इसका मतलब हुआ, दौड़ ही दूरी है। जितना आप दौड़ते हैं, उतना ही आप दूर हैं। इसका अर्थ हुआ, रुक जाना ही पहुंच जाना है। इसका अर्थ हुआ, ठहर जाना ही मंजिल है। जैसे ही कोई शांत ठहर जाता है, अचानक द्वार खुल जाता है। उस ठहरेपन में ही, उस शांत क्षण में ही, वह एक हो जाता है परमात्मा से। द्वैत टूट जाता है, दुई मिट जाती है।

एकीभाव से स्थित होता है, इसमें कुछ भी संशय नहीं है।

कृष्ण को न मालूम कितनी बार गीता में अर्जुन से कहना पड़ता है, इसमें कुछ भी संशय नहीं है। अर्जुन की आंख में संशय दिखाई पड़ता होगा बार—बार, इसलिए वे कहते हैं, इसमें कुछ भी संशय नहीं है। यह अर्जुन के बाबत खबर है। क्योंकि कृष्ण इसे दोहराएं, यह सार्थक नहीं है। इसको बार—बार कहने की कोई जरूरत नहीं है कि इसमें कोई संशय नहीं है। लेकिन अर्जुन की आंख में संशय दिखाई पड़ता होगा।

अभी जब मैं कह रहा था, अगर उस वक्त आपकी आंखों के चित्र पकड़े जा सकें, जब मैं कह रहा था कि दौड़े मत, ठहर जाएं; एक क्षण को मन बिलकुल रुक जाए, तो आप परमात्मा के साथ एक हो जाएंगे; उस वक्त अगर आपकी आंख के चित्र लिए जा सकें, तो मुझे भी

कहना पड़ेगा कि इसमें कोई भी संशय नहीं! क्योंकि आपकी आंख बता रही है कि यह नहीं होने वाला। यह कैसे होगा! इतनी सरल बात कह रहे हैं आप!

लेकिन यह बहुत कठिन है, यह रुकना हो नहीं सकता। मन तो चलता ही रहेगा, मन तो चलता ही रहेगा, वह रुकेगा ही नहीं। और उसके चलने के ढंग इतने अजीब हैं, जिसका हिसाब नहीं है!

मुल्ला नसरुद्दीन अपने तीन मित्रों के साथ एक गुरु के पास गया था ध्यान सीखने। तो गुरु ने कहा कि एक काम करो, ध्यान तो बहुत दूर की बात है; सांझ हो गई है, सूरज ढल गया है, तुम एक घडीभर के लिए चुप बैठ जाओ चारों। एक घंटेभर तुम बिलकुल चुप रहना। फिर मैं तुमसे पीछे बात कर लूंगा।

गुरु आंख बंद करके अपने ध्यान में चला गया। वे चारों बड़ी मुश्किल में पड़े! कुछ करने को दे देता, तो ठीक था। कुछ करने को नहीं दिया, और चुप बैठे रहना! एक दो—चार मिनट ही बीते होंगे, उनमें से एक ने कहा कि रात हो गई और दीया अब तक जला नहीं। दूसरे ने कहा कि क्या कर रहा है! मौन के लिए कहा है! तीसरे ने कहा कि दोनों नासमझ हो। मौन तोड़ दिया। नसरुद्दीन अब तक चुप था, वह खिलखिलाकर हंसा और उसने कहा कि सिर्फ मुझे छोड़कर और कोई भी मौन नहीं है!

एक क्षण चुप रहना भी बहुत मुश्किल है। कोई बहाना मिल ही जाएगा। एक क्षण ठहरना मुश्किल है, दौड़ का कोई कारण मिल ही जाएगा। एक क्षण ठहरना मुश्किल है, कोई न कोई वासना वेग बन जाएगी और आपको उड़ा ले जाएगी। इसलिए जब मैं कह रहा था, तब मैं आपकी आंखों में देख रहा था, तब मुझे खयाल आया कि यह कृष्ण को बार—बार कहना पड़ता है, इसमें कुछ भी संशय नहीं है। ये बेचारे अर्जुन को बार—बार देखकर समझते होंगे कि संशय आ रहा है, अब इसकी पकड़ के बाहर हुई जा रही है बात। तब उन्हें बलपूर्वक कहना पड़ता है कि अर्जुन, इसमें कोई संशय नहीं है। ऐसा करेगा, तो ऐसा हो ही जाएगा। बुद्ध ने बहुत बार कहा है, ऐसा करो और ऐसा होगा ही। ऐसा मत करो, और ऐसा कभी नहीं होगा।

जीवन भी एक गहन कार्य—कारण है, एक गहरी काजेलिटी है। अगर कोई ठहर जाए, तो परमात्मा से मिलन होगा ही। यह हो सकता है कि कभी सौ डिग्री पर पानी भाप न बने, और यह भी हो सकता है कि कभी आपको ऊपर की तरफ फेंक दें और जमीन का गुरुत्वाकर्षण काम न करे, जगत के सब नियम भला टूट जाएं, एक नियम शाश्वत है कि जिसका मन ठहरा, वह परमात्मा से तत्थण एक हो जाता है। उसमें कुछ भी संशय नहीं है। लेकिन वह ठहरना दुरूह और कठिन बात है।

मैं ही संपूर्ण जगत की उत्पत्ति का कारण हूं और मेरे से ही सब जगत चेष्टा करता है। इस प्रकार तत्व से समझकर, श्रद्धा और भक्ति से युक्त हुए बुद्धिमानजन मुझ परमेश्वर को ही निरंतर भजते हैं। आखिरी बात। मैं ही कारण हूं समस्त अस्तित्व का, मुझसे ही सारा जगत चेष्टा करता है, मैं ही गति हूं, इस प्रकार तत्व से समझ कर, श्रद्धा और भक्ति से युक्त हुए बुद्धिमानजन मुझ परमेश्वर को निरंतर भजते हैं।

अभी मैंने कहा कि हम राम—राम, कृष्ण—कृष्ण, हरि—हरि, कुछ कहते रहें, उससे कुछ होगा नहीं। आप कहेंगे, कृष्ण तो कहते हैं कि मुझे निरंतर भजते हैं!

इसमें ध्यान रखना, निरंतर शब्द कीमती है। अगर आप राम—राम कहते हैं, तो भी भजन निरंतर नहीं होगा, क्योंकि दो राम के बीच में थोड़ी—सी जगह तो बिना राम के छूट ही जाएगी। मैंने कहा, राम, मैंने फिर कहा, राम; बीच में थोड़ी जगह छूट ही जाएगी। इसलिए कोई कितनी ही तेजी से राम—राम कहे, वह निरंतर भजन नहीं है; उसमें बीच में गैप होंगे; डिसकटिन्युटी हो जाएगी।

निरंतर भजन का तो एक ही अर्थ हो सकता है कि शब्द न हो, भाव हो, क्योंकि भाव में गैप नहीं होता। भाव में बीच—बीच में अंतराल नहीं होते, शब्द में तो अंतराल होते हैं। शब्द में तो अंतराल होंगे ही, नहीं तो एक शब्द दूसरे शब्द के ऊपर चढ़ जाएगा और शब्दों का अर्थ ही खो जाएगा। वह तो एक्सिडेंट हो जाएगा, जैसे मालगाड़ी टकरा जाएं दो, और डिब्बे एक—दूसरे के ऊपर चढ़ जाएं। शब्दों में तो अंतराल जरूरी है। एक शब्द और दूसरे शब्द के बीच में खाली जगह है। उस खाली जगह में क्या है? जब मैं कहता हूं राम, और जब मैं कहता हूं राम, दो राम के बीच में क्या है? वहां तो राम नहीं होगा। या आप कहेंगे कि हम तीसरा राम वहां रख लेंगे। तो ध्यान रहे, तीसरा राम रख लेंगे, तीन राम हो जाएंगे तीन अंगुलियों की तरह, तो दो अंतराल हो जाएंगे एक ही जगह, दो खाली जगह हो जाएंगी! और आप यह सोचते हों कि हम दो में और दो रख लेंगे, तो ध्यान रखना, अंतराल उतने ही बढ़ जाएंगे। अंतराल, इंटरवल, तो रहेगा ही शब्दों में। सिर्फ भाव अविच्छिन्न होता है।

लेकिन भाव बड़ी और बात है। समझाना कठिन है। कबीर ने कहा है....। किसी ने कबीर से पूछा कि कैसे उसका स्मरण करें कि अविच्छिन्न हो? कैसे उसका भजन हो कि बीच में कुछ अंतराल न हो, सतत हो, निरंतर हो? तो कबीर ने कहा, बड़ी कठिन बात पूछी। जाओ नदी के किनारे, वहां से ग्राम—वधुएं पानी भरकर मटकियां सिर पर लेकर गांव की तरफ लौट रही होंगी। तुम जरा उन्हें गौर से देखना।

गांवों में ग्राम—वधुएं नदी से पानी भरकर घड़ा सिर पर रखकर लौटती हैं, दोनों हाथ छोड़ देती हैं, घड़ा सिर पर होता है। चर्चा करती रहती हैं। गीत भी गा सकती हैं। यात्रा भी करती हैं, चलती भी हैं। लेकिन उस घड़े का स्मरण तो पूरे समय बना रहता है, नहीं तो वह गिर जाए। लेकिन वह स्मरण है शब्दरहित, जस्ट ए रिमेंबरिग विदाउट एनी वर्ड्स; सिर्फ स्मरण है। घड़ा सिर पर है, उसका सिर्फ स्मरण है, भाव है। जरा ही घड़ा डिगेगा, हाथ सम्हाल लेगा। फिर बातचीत वे करने लगेंगी।

भाव का अर्थ है, शब्दरहित बोध।

एक मां है, सो रही है, उसका बच्चा उसके पास सो रहा है। वैज्ञानिक चिंतक बड़े हैरान हुए। तूफान आ जाए, आकाश में बादल गड़गड़ाने लगें, बिजलियां कौंधने लगें, मां की नींद नहीं खुलती। और बच्चा जरा—सा, जरा—सा हिले—डुले, जरा—सी आवाज कर दे, और मां का हाथ बच्चे के ऊपर पहुंच जाता है। क्या मामला होगा? आकाश में बादल गरजते हों, तो मां की नींद नहीं टूटती; और बच्चा जरा—सा कुरमुर कर दे, तो उसकी नींद टूट जाती है!

तो मनोचिकित्सक सोचते थे बहुत कि बात क्या होगी? तब खयाल में आना शुरू हुआ कि कोई एक शब्दरहित स्मरण, जो भीतर रात नींद में भी मौजूद रहता है! शब्दरहित स्मरण, नींद में भी बना रहता है।

वह जो प्रतीति है, कृष्ण उसी प्रतीति के लिए कह रहे हैं। श्रद्धा और भक्ति से युक्त हुए बुद्धिमानजन मुझ परमेश्वर को निरंतर भजते हैं। निरंतर भजते हैं अर्थात निरंतर मेरे भाव में रहते हैं।

भाव क्या है? भाव, वह निश्चल ध्यान के द्वारा एकता की जो प्रतीति हुई है, उस प्रतीति को सतत बनाए रखते हैं। बनाए रखते हैं, कहना ठीक नहीं; बनी रहती है। निश्चल ध्यान योग से जो प्रतीति होती है, उस प्रतीति का स्मरण भीतर ऐसे ही बना रहता है, जैसे श्वास चलती रहती है। श्वास में भी गैप होते हैं, उसमें वह गैप भी नहीं होते। श्वास भी चलती है, फिर थोड़ी रुकती है, फिर निकलती है; उसमें भी अंतराल होते हैं, आना—जाना होता है। लेकिन स्मरण सतत होता है।

उस सतत भाव की दशा का नाम ही भक्ति है। और सतत भाव की दशा का नाम ही भजन है।

गीता दर्शन–(भाग–5)–प्रवचन–116
ध्यान की छाया है समर्पण—(प्रवचन—चौथा)
अध्याय—10

सूत्रः

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्थरम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च।।9।।
तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोग तं येन मामुययान्ति ते।।10।।

तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानज तमः।
नाशयाम्पात्मभावस्थो ज्ञानदीयेन भास्वता।।11।।
और वे निरंतर मेरे में मन लगाने वाले और मेरे में ही प्राणों को अर्पण करने वाले भक्तजन सदा ही मेरी भक्ति की चर्चा द्वारा आपस में मेरे प्रभाव को जनाते हुए तथा गुण और प्रभाव सहित मेरा कथन करते हुए संतुष्ट होते हैं और मुझ में ही निरंतर रमण करते हैं।

उन निरंतर मेरे ध्यान में लगे हुए और प्रेमपूर्वक भजने वाले भक्तों को मैं वह तत्वज्ञान रूय योग देता हूं जिससे वे मेरे को ही प्राप्त होते हैं।

और हे अर्जुन उनके ऊपर अनुग्रह करने के लिए ही मैं स्वयं उनके अंत—करण में एकीभाव से स्थित हुआ अज्ञान से उत्पन्न हुए अंधकार को प्रकाशमय तत्वज्ञान रूप दीयक द्वारा नष्ट करता हूं।

मन की दो अवस्थाएं हैं, एक दौड़ता हुआ मन, एक ठहरा हुआ मन। दौड़ता हुआ मन, निरंतर ही जहां होता है, वहां नहीं होता। ऐसा समझें कि दौड़ता हुआ मन कहीं भी नहीं होता। दौड़ता हुआ मन सदा ही भविष्य में होता है। आज नहीं होता, अभी नहीं होता, यहां नहीं

होता। कल, आगे, कहीं और, कल्पना में, सपने में, कहीं दूर भविष्य में होता है। और भविष्य का कोई अस्तित्व नहीं है। अस्तित्व है वर्तमान का, अभी का, इसी क्षण का।

जब मैं कहता हूं इसी क्षण का, इतना कहने में भी वह क्षण वर्तमान का जा चुका। इतनी भी देर हुई, तो हम वर्तमान के क्षण को चूक जाते हैं। जानने में जितना समय लगता है, उतने में भी वर्तमान जा चुका होता है।

एक क्षण हमारे हाथ में है अस्तित्व का, लेकिन मन सदा वासना में, भविष्य में होता है। भविष्य का कोई अस्तित्व नहीं। इसलिए दौड़ता हुआ मन कहीं होता ही नहीं। जहां हो सकता है, वहां होता नहीं; और जहां हो ही नहीं सकता, वहां होता है। वर्तमान में हो सकता था, लेकिन वर्तमान में दौड़ता हुआ मन नहीं होता।

आप वर्तमान में दौड़ नहीं सकते, जगह नहीं है, स्पेस नहीं है। दौड़ने के लिए भविष्य का विस्तार चाहिए। वासना के लिए अनंत विस्तार चाहिए। वर्तमान का क्षण बहुत छोटा है। उस छोटे—से क्षण में आपकी वासना न समा सकेगी।

यह जो दौड़ता हुआ मन है, यह दौड़ता ही रहता है। कहीं भी ठहरने का इसे उपाय नहीं है। जहां ठहर सकता है, वर्तमान में, वहां ठहरता नहीं। और भविष्य तो है नहीं। वहां सिर्फ दौड़ सकता है। ठहरने की वहां कोई सुविधा नहीं है। यह दौड़ता हुआ मन ही हमारी बीमारी है, रोग है।

अगर अधार्मिक आदमी की हम कोई परिभाषा करना चाहें, तो वह परिभाषा ऐसी नहीं हो सकती है कि वह आदमी, जो ईश्वर को न मानता हो। क्योंकि ऐसे बहुत—से व्यक्ति हुए हैं, जो ईश्वर को नहीं मानते और धार्मिक हैं। महावीर हैं, बुद्ध हैं, वे ईश्वर को नहीं मानते हैं, पर परम धार्मिक हैं। उनकी आस्तिकता में रत्तीभर भी संदेह नहीं। और अगर बुद्ध और महावीर की धार्मिकता में संदेह होगा, तो इस पृथ्वी पर फिर कोई भी आदमी धार्मिक नहीं हो सकता।

अधार्मिक आदमी उसे नहीं कह सकते हैं, जो ईश्वर को न मानता हो। अधार्मिक आदमी उसे भी नहीं कह सकते, जो वेद को न मानता हो, बाइबिल को न मानता हो, कुरान को न मानता हो। अधार्मिक आदमी केवल उसे कह सकते हैं कि जिसके पास केवल दौड़ता हुआ मन है, ठहरे हुए मन का जिसे कोई अनुभव नहीं। फिर वह कुछ भी मानता हो—ईश्वर को मानता हो, आत्मा को मानता हो; वेद को, कुरान को, बाइबिल को मानता हो— अगर दौड़ता हुआ मन है, तो वह आदमी धार्मिक नहीं है। और फिर चाहे वह कुछ भी न मानता हो, लेकिन अगर ठहरा हुआ मन है, तो वह आदमी धार्मिक है। क्योंकि मन जहां ठहरता है, वहीं तत्क्षण उस परम सत्ता से संबंध जुड़ जाता है।

हम उसे क्या नाम देते हैं, यह गौण बात है। कोई उसे ईश्वर कहे, यह उसकी मर्जी। और कोई उसे आत्मा कहे, यह भी उसकी मर्जी। और कोई उसे कोई भी नाम न देना चाहे, यह भी उसकी मर्जी। और कोई उसके संबंध में चुप रह जाए, यह भी उसकी मर्जी। कोई उसे शून्य कहे, कोइ उसे मिट जाना कहे, कोई उसे पूरा हो जाना कहे, यह उसकी मर्जी की बात है। लेकिन जहां मन ठहरा, वहीं आदमी धार्मिक हो जाता है।

इस मन को ठहराने के लिए कल के सूत्र में कृष्ण ने जो शब्द उपयोग किया है, उसे हम थोड़ा ठीक से समझ लें, तो इस सूत्र में प्रवेश आसान हो जाएगा। समझना कहना शायद ठीक नहीं, क्योंकि समझ तो हम बहुत बार लेते हैं, फिर भी कोई समझ पैदा नहीं होती। शायद उचित होगा कहना कि हम उस सूत्र को थोड़ा कर लें, तो यह सूत्र समझ में आ सकेगा।

कृष्ण ने कहा है, निश्चल ध्यान योग को जो उपलब्ध होता है, वह मेरे में एकीभाव से ठहर जाता है।

निश्चल ध्यान योग क्या है, वह मैंने कल आपसे कहा। लेकिन कैसे आप उसे कर सकते हैं, वह मैं आज आपसे कहना चाहूंगा। क्या है, एक बात है; कैसे किया जा सकता है, बिलकुल दूसरी बात है। निश्चल ध्यान योग का अर्थ समझ लेना एक बात है; निश्चल ध्यान योग की प्रक्रिया में उतर जाना बिलकुल दूसरी बात है। और प्रक्रिया में उतरे बिना कोई भी जान नहीं पाएगा; समझ कितना ही ले।

इसलिए बहुत बार जिन्हें हम समझदार कहते हैं, उनसे नासमझ आदमी खोजने मुश्किल होते हैं। वे सब समझते हैं और जानते कुछ भी नहीं। सच तो यह है कि वे इतना समझते हैं कि सोचते हैं, जानने की अब कोई जरूरत ही न रही। शब्द का उनके पास भंडार हो सकता है, अनुभव का उनके पास कण भी नहीं होता। अनुभव का संबंध, ध्यान क्या है, इसे समझने से नहीं है, ध्यान कैसे होता है, इसमें उतर जाने से है।

ध्यान एक अनुभूति है। ध्यान के सैकड़ों प्रकार हैं। और सैकड़ों मार्गों से लोग ध्यान को उपलब्ध हो सकते हैं। निश्चल ध्यान योग की तरफ पहुंचने के लिए भी सैकड़ों रास्ते हैं। और पृथ्वी पर अनेक— अनेक रास्तों से चलकर लोग उस क्षण को उपलब्ध हो गए हैं, जिसे हम मन का ठहर जाना कहें। एक छोटी—सी प्रक्रिया मैं आपसे कहूंगा, सरल, जिसे आप कर सकें।

और आपको निश्चल मन की थोड़ी—सी झलक और छाया भी मिलनी शुरू हो जाए, तो आपकी जिंदगी रूपांतरित होने लगेगी। एक नये आदमी का जन्म आपके भीतर हो जाएगा। पुराना आदमी बिखरने, पिघलने लगेगा, और एक नई चेतना, एक नया केंद्र, देखने का एक नया ढंग, जीने की एक नई प्रक्रिया, होने की एक नई व्यवस्था आपके भीतर पैदा हो जाएगी। जैसे अचानक अंधे की आंख खुल जाए, या जैसे अचानक बहरे को कान मिल जाएं, या जैसे अचानक कोई मरा हुआ पुनरुज्जीवित हो जाए; ठीक ध्यान के अनुभव से ऐसी ही व्यापक क्रांतिकारी घटना चेतना में घटती है। मन तो एक अंडे की तरह है। अंडा जब टूटता है, तो पक्षी पंख फैलाकर आकाश में उड़ता है। और अंडा अगर रुका रह जाए, तो जो अंडा पक्षी को सम्हालने के लिए था, उसकी सुविधा और व्यवस्था के लिए था, उसकी सुरक्षा के लिए था, वही—वही उसके लिए कब्र बन जाएगा। अंडे को टूटना ही चाहिए।

मन जरूरी है। आदमी बिना मन के पैदा हो, तो वैसा ही होगा जैसा बिना अंडे के कोई पक्षी पैदा हो, तो मुश्किल में पड़ जाए। मन बिलकुल जरूरी है; लेकिन अंडे की तरह ही जरूरी है। एक सीमा तक साथी है, एक सीमा के बाद दुश्मन हो जाता है। एक जगह तक बचाता है, एक सीमा के बाद हानि पहुंचाने लगता है। एक सीमा तक सहारा है, एक सीमा के बाद कारागृह हो जाता है।

और हमारा मन करीब—करीब कारागृह है। अनेक—अनेक जन्मों से हम उस मन को लेकर चल रहे हैं, जो हमें कभी का तोड़ देना चाहिए था। लेकिन अंडे के भीतर जो छिपा हुआ पक्षी है, उसे भी तो कुछ पता नहीं आकाश का। और उसे यह भी तो डर समाता होगा कि अंडे को तोड़ दूं तो फिर मेरा क्या होगा! वही तो मेरी सुरक्षा है, वही मेरी आड़ है, उसी से तो मैं बचा हूं; वह मेरा घर है।

स्वाभाविक है कि हम मन को ही अपनी सुरक्षा मानकर जीते हैं। इसलिए अगर कोई आपके शरीर को बीमार कह दे, तो आप नाराज नहीं होते। कोई अगर कह दे कि आप दुबले दिखाई पड़ते हैं, बीमार मालूम होते हैं, तबीयत खराब है! तो सहानुभूति मालूम पड़ती है। लगता है, यह आदमी मित्र है। लेकिन कोई आपसे कह दे कि आपका मन बीमार मालूम पड़ता है, कुछ मन में ज्वर मालूम होता है, मन में कुछ विक्षिप्तता दिखाई पड़ती है, पागलपन मालूम पड़ता है। तो फिर यह आदमी मित्र नहीं मालूम पड़ता, यह दुश्मन मालूम पड़ता है। क्योंकि शरीर को हम अपने से दूर मान पाते हैं, लेकिन मन के साथ तो हम अपने को एक ही मानते हैं। इसलिए जब कोई कहता है, आपका शरीर बीमार है, तो वह यह नहीं कहता कि आप बीमार हैं। आपका शरीर बीमार है। लेकिन जब कोई कहता है कि आपका मन रुग्ण है, तो आपको तत्काल लगता है कि इसका मतलब हुआ कि मैं पागल हूं मैं रुग्ण हूं!

मन के साथ हमारा तादात्म्य, हमारी आइडेंटिटी गहरी है। हमने अपने को मन के साथ एक समझ रखा है। और इस तरह पक्षी अंडे के बाहर होने में असुविधा पाता है, उपाय नहीं रह जाता। अंडे को ही पक्षी समझ ले कि मेरा होना है, तो कठिनाई हो जाती है।

ध्यान मन के तोड्ने का नाम है। या कहें मन के ठहरने का नाम, या कहें मन के तोड्ने का नाम, या कहें मन के पार हो जाने का नाम, इससे कोई भेद नहीं पड़ता। एक छोटी प्रक्रिया आपसे कहता हूं जिससे आप इस अंडे के बाहर आ सकते हैं।

अगर आपने चित्र देखे हों बच्चों के उनके मां के पेट में, गर्भ में। मां के पेट में बच्चा जिस हालत में होता है, गर्भ में, उस अवस्था में मनोवैज्ञानिक कहते हैं, योग की गहरी खोज कहती है, कि मां के पेट में जब बच्चा होता है जिस पोश्चर में, जिस आसन में, उस समय बच्चे के पास न्यूनतम मन होता है, न के बराबर मन होता है। कह सकते हैं, होता ही नहीं। और बच्चे की चेतना मस्तिष्क में नहीं होती मां के पेट में। और न ही बच्चे की चेतना हृदय में होती है। शायद आपको पता न हो कि मां के पेट में बच्चे का हृदय नहीं धड़कता। नौ महीने बच्चा बिना हृदय धड़कने के होता है।

इसलिए एक बात और समझ लेना कि हृदय की धड़कन से जीवन का कोई संबंध नहीं, क्योंकि बच्चा बिना हृदय की धड़कन के नौ महीने जिंदा रहता है। जीवन और गहरी बात है।

हमसे अगर कोई पूछे कि आपकी चेतना कहां है, तो सिर पर हाथ जाएगा। चेतना जब मन में केंद्रित होती है, तो सिर केंद्र हो जाता है। जब प्रेम में केंद्रित होती है, भाव में केंद्रित होती है, तो हृदय केंद्र हो जाता है। इसलिए प्रेमी हृदय पर हाथ रखेगा। और गणित को सुलझाने वाला आदमी अगर गणित में उलझ जाए, तो सिर को खुजलाएगा, हृदय पर हाथ नहीं रखेगा। हाथ जाएगा ही नहीं हृदय पर। और प्रेमी अगर प्रेम में पड़ा हो और सिर पर हाथ रखे, तो बहुत बेहूदा मालूम पड़ेगा। सिर से कोई संबंध नहीं है।

चेतना_ जब भाव में होती है, तो हृदय केंद्र होता है। और चेतना जब विचार में होती है, तो मस्तिष्क केंद्र होता है। लेकिन मस्तिष्क बहुत बाद में विकसित होता है। और हृदय भी नौ महीने के बाद धड़कता है। उसके भी पहले चेतना एक केंद्र पर होती है, वह नाभि है। बच्चा मां से नाभि से जुड़ा होता है। जीवन का पहला अनुभव बच्चे को नाभि पर होता है।

जिन लोगों को मन के पार जाना है, उन्हें हृदय, मस्तिष्क दोनों से उतरकर नाभि के पास वापस लौटना होता है। अगर आप फिर से अपनी चेतना को नाभि के पास अनुभव कर सकें, तो आपका मन तत्क्षण ठहर जाएगा।

तो इस ध्यान की प्रक्रिया के लिए, जिसको मैं निश्चल ध्यान योग की तरफ एक विधि कहता हूं दो बातें ध्यान में रखने जैसी जरूरी हैं। जैसा कि सूफी फकीरों को अगर आपने देखा हो प्रार्थना

करते, या मुसलमानों को आपने नमाज पढ़ते देखा हो, तो जिस भांति घुटने मोड़कर वे बैठते हैं वैसे घुटने मोड़कर बैठ जाएं। बच्चे के घुटने ठीक उसी तरह मुड़े होते हैं मां के गर्भ में। आंख बंद कर लें, शरीर को ढीला छोड़ दें और श्वास को बिलकुल शिथिल छोड़ दें, रिलैक्स छोड़ दें, ताकि श्वास जितनी धीमी और जितनी आहिस्ता आए—जाए, उतना अच्छा। श्वास जैसे न्यून हो जाए, शांत हो जाए। श्वास को दबाकर शांत नहीं किया जा सकता है। अगर आप रोकेंगे, तो श्वास तेजी से चलने लगेगी। रोकें मत, सिर्फ ढीला छोड़ दें।

आंख बंद कर लें, और अपनी चेतना को भीतर नाभि के पास ले आएं। सिर से उतारें हृदय पर, हृदय से उतारें नाभि पर। नाभि के पास चेतना को ले जाएं। श्वास का हल्का—सा कंपन पेट को नीचे—ऊपर करता रहेगा। आप अपने ध्यान को आंख बंद करके वहीं ले आएं, जहां नाभि कंपित हो रही है। श्वास के धक्के से पेट ऊपर—नीचे हो रहा है, आंख बंद करके ध्यान को वहीं ले आएं। शरीर को ढीला छोड़ते जाएं। थोड़ी ही देर में शरीर आपका आगे झुकेगा और सिर जाकर जमीन से लग जाएगा। उसे छोड़ दें और झुक जाने दें।

जब सिर आपका जमीन से लग जाएगा, तब आप ठीक उस हालत में आ गए, जिस हालत में बच्चा मां के पेट में होता है। शांत होने के लिए इससे ज्यादा कीमती आसन जगत में कोई भी नहीं है। आसन ऐसा हो जाए, जैसा गर्भ में बच्चे का होता है; और आपका ध्यान नाभि पर चला जाए। बच्चे का ध्यान और चेतना नाभि में होती है। आपका ध्यान भी नाभि पर चला जाए।

अनेक बार ध्यान उचट जाएगा, कहीं कोई आवाज होगी, ध्यान चला जाएगा। कहीं कोई बोल देगा कुछ, ध्यान चला जाएगा। नहीं कहीं कुछ होगा, तो भीतर कोई विचार आ जाएगा, और ध्यान हट जाएगा। उससे लड़े मत। अगर ध्यान हट जाए, चिंता मत करें। जैसे ही खयाल में आए कि ध्यान हट गया, वापस अपने ध्यान को नाभि पर ले आएं। किसी कलह में न पड़े, किसी कांफ्लिक्ट में न पड़े कि यह मन मेरा क्यों हटा! यह मन बड़ा चंचल है, यह क्यों हटा! नहीं हटना चाहिए। इस सब व्यर्थ की बात में मत पड़े। जब भी खयाल आ जाए, वापस नाभि पर अपने ध्यान को ले आएं।

और चालीस मिनट कम से कम— ज्यादा कितनी भी देर कोई रह सकता है—ठीक ऐसे बच्चे की हालत में मां के गर्भ में पड़े रहें। संभावना तो यह है कि दो—चार—आठ दिन के प्रयोग में ही आपको

एक गहरी निश्चलता भीतर अनुभव होनी शुरू हो जाएगी। ठीक आप बच्चे के जैसी सरल चेतना में प्रवेश कर जाएंगे। मन ठहरा हुआ मालूम पड़ेगा। जितना नाभि के पास होंगे, उतनी देर मन ठहरा रहेगा। और जब नाभि के पास रहना आसान हो जाएगा, तो मन बिलकुल ठहर जाएगा।

मन भी चलता है, हृदय भी चलता है, नाभि चलती नहीं। मन की भी दौड़ है, विचार की भी दौड़ है, भाव की भी दौड़ है, नाभि की कोई दौड़ नहीं। अगर ठीक से समझें, तो मन भी भविष्य में होता है, हृदय भी भविष्य में होता है, नाभि वर्तमान में होती है—जस्ट इन दि मोमेंट, हियर एंड नाउ, अभी और यहीं।

जो आदमी नाभि के पास जितना जाएगा अपनी चेतना को लेकर, उतना ही वर्तमान के करीब आ जाएगा। जैसे बच्चा नाभि से जुड़ा होता है मां से, ऐसे ही एक अज्ञात नाभि के द्वार से हम अस्तित्व से जुड़े हैं। नाभि ही द्वार है।

जिन लोगों को—शायद दो—चार लोगों को यहां भी— कभी अगर शरीर के बाहर होने का कोई अनुभव हुआ हो। पृथ्वी पर बहुत लोगों को कभी—कभी, अचानक, आकस्मिक हो जाता है। अचानक लगता है कि मैं शरीर के बाहर हो गया। तो जिन लोगों को भी शरीर के बाहर होने का आकस्मिक, या ध्यान से, या किसी साधना से अनुभव हुआ हो, उनको एक अनुभव निश्चित होता है, कि जब वे अपने को शरीर के बाहर पाते हैं, तो बहुत हैरानी से देखते हैं कि उनके और उनके शरीर के बीच, जो नीचे पड़ा है, उसकी नाभि से कोई एक प्रकाश की किरण की भांति कोई चीज उन्हें जोड़े हुए है। पश्चिम में वैज्ञानिक उसे सिल्वर कॉर्ड, रजत— रज्जु का नाम देते हैं। जैसे हम मां से जुड़े होते हैं इस भौतिक शरीर से, ऐसे ही इस बड़े जगत, इस बड़े अस्तित्व से, इस प्रकृति या अस्तित्व के गर्भ से भी हम नाभि से ही जुड़े होते हैं। तो जैसे ही आप नाभि के निकट अपनी चेतना को लाते हैं, मन निश्चल हो जाता है।

जीसस का बहुत अदभुत वचन है— शायद ही ईसाई उसका अर्थ समझ पाए—जीसस ने कहा है कि तुम तभी मेरे प्रभु के राज्य में प्रवेश कर सकोगे, जब तुम छोटे बच्चों की भांति हो जाओ।

लेकिन मोटे अर्थ में इसका यही अर्थ हुआ कि हम बच्चों की तरह सरल हो जाएं। लेकिन गहरे वैज्ञानिक अर्थ में इसका अर्थ होता है कि हम बच्चे की उस आत्यंतिक अवस्था में पहुंच जाएं, जब बच्चा होता ही नहीं, मां ही होती है। और बच्चा मां के सहारे ही जी रहा होता है। न अपनी कोई हृदय की धड़कन होती है, न अपना कोई मस्तिष्क होता; बच्चा पूरा समर्पित, मां के अस्तित्व का अंग होता है।

ठीक ऐसी ही घटना निश्चल ध्यान योग में घटती है। आप समाप्त हो जाते हैं और परमात्मा के साथ एकीभाव हो जाता है। और परमात्मा के द्वारा आप जीने लगते हैं।

यह जो कृष्ण ने कहा है कि निश्चल ध्यान योग से मुझमें एकीभाव को स्थित हो जाता है, इसका ठीक वही अर्थ है, जो बच्चे और मां के बीच स्थूल अर्थ है, वही अर्थ साधक और परमात्मा के बीच सूक्ष्म अर्थ है। इस प्रयोग को थोड़ा करेंगे, तो जो अर्थ स्पष्ट होंगे, वे अर्थ शब्दों से स्पष्ट नहीं किए जा सकते।

अब हम इस सूत्र में प्रवेश करें।

और वे मेरे में निरंतर मन लगाने वाले और मेरे में ही प्राणों को अर्पण करने वाले भक्तजन, सदा ही आपस में मेरे प्रभाव को जनाते हुए तथा मेरा कथन करते हुए संतुष्ट होते हैं और मुझमें ही निरंतर रमण करते हैं।

अब इस सूत्र का पूरा अर्थ बदल जाएगा, अगर आपने मेरी पहली बात समझी तो। क्योंकि निश्चल ध्यान योग के बाद ही इस सूत्र का अर्थ खुल सकता है, अन्यथा इस सूत्र का गलत अर्थ किया जाएगा।

गीता पर हजारों टीकाएं हैं। अधिक टीकाएं पंडितों के द्वारा हैं, जिनके पास काफी ज्ञान है, लेकिन शायद ध्यान नहीं है। इसलिए भारी विवाद है शब्दों का। सैकड़ों अर्थ किए गए हैं। स्वाभाविक है। सैकड़ों अर्थ होंगे ही। सैकड़ों मन अर्थ करेंगे, तो सैकड़ों अर्थ होंगे।

ध्यान रहे, ध्यान तो एक ही होता है, चाहे कोई भी ध्यान को उपलब्ध हो; लेकिन मन तो उतने ही होते हैं, जितने लोग होते हैं। शायद यह भी कहना कम है, क्योंकि एक आदमी के पास भी एक ही मन नहीं होता। सुबह दूसरा था, दोपहर दूसरा है, सांझ तीसरा है! शायद यह कहना भी ठीक नहीं है, एक ही आदमी के पास भी एक साथ बहुत—से मन होते हैं। अभी, एक ही साथ कई मन होते हैं। इसलिए पुराने एक मन की धारणा को मनोविज्ञान धीरे— धीरे तिलांजलि दे रहा है। मनोविज्ञान अब कहता है कि आदमी पोलीसाइकिक है, बहु—चित्तवान है। बहुत—से मन हैं उसके पास, एक मन नहीं है।

तो मन से जो अर्थ किए जाएंगे, वे तो अनेक होंगे ही। अगर एक ही आदमी जिंदगी में दो—चार—पाच बार गीता का अर्थ करे, तो दो—चार—पाच अर्थ निकलेंगे, क्योंकि उसका मन बदलता चला जाएगा। तो एक तो वे अर्थ हैं, वे कमेंट्रीज और टीकाएं हैं, जो मन से की गई हैं, उनका बहुत मूल्य नहीं है। वे कितनी ही गहरी हों, फिर भी छिछली होंगी, क्योंकि मन और बुद्धि का कोई गहरा होना होता ही नहीं। बुद्धि कितना ही शोरगुल मचाए, वह सतह पर ही होती है, गहरी कभी जाती नहीं। ध्यान गहरा जाता है।

तो एक तो उपाय यह है कि गीता के शब्दों को समझें, उनकी व्याख्याएं समझ लें, और तृप्त हो जाएं। उसका अर्थ हुआ कि आप गीता से चूक गए; गीता आपके काम न आई। शायद नुकसान भी हुआ, क्योंकि आपको भ्रम होगा कि आपने जान भी लिया।

दूसरा रास्ता है कि ध्यान से प्रवेश करें और फिर गीता को समझें। और तब एक मजेदार बात घटती है। जो लोग मन से गीता को समझेंगे, वे गीता की भी हजार टीकाएं करेंगे। दो टीकाकार दुश्मन की तरह लड़ेंगे। मन से, तो गीता की भी हजार टीकाएं हो जाएंगी, और हर टीकाकार गीता का एक अर्थ करेगा और शेष को गलत कहेगा। अगर ध्यान से कोई प्रवेश करे, तो एक और दूसरी घटना घटती है, गीता का भी वही अर्थ होगा, बाइबिल का भी वही अर्थ होगा, कुरान का भी वही अर्थ होगा।

मन से कोई चले, तो गीता के हजार अर्थ होंगे। और ध्यान से कोई चले, तो दुनिया में जितनी गीताए हैं, जितने धर्म—ग्रंथ हैं, उन सबका अर्थ एक हो जाएगा। ध्यान एक नया पर्सपेक्टिव, एक नया परिप्रेक्ष्य दे देता है, देखने का एक नया ढंग, जानने का, स्पर्श करने की एक नई व्यवस्था।

तो इसलिए मैंने कहा, इस सूत्र को अब समझें, तो फर्क पड़ेगा। अगर हम पहले समझते, तो इसका अर्थ होता, वे मेरे में निरंतर मन लगाने वाले, तो इसका अर्थ होगा कि निरंतर ईश्वर को स्मरण करने वाले, निरंतर उसका नाम लेने वाले। और मेरे में ही प्रायों को अर्पण करने वाले भक्तजन, मुझमें ही जो अपने को समर्पण कर देते हैं, ऐसे लोग, सदा मेरी भक्ति की चर्चा के द्वारा आपस में मेरे प्रभाव को जनाते हुए, एक—दूसरे को मेरा प्रभाव समझाते हुए, तथा गुण और प्रभाव सहित मेरा कथन करते हुए संतुष्ट होते हैं और मुझमें ही निरंतर रमण करते हैं। तब इसका अर्थ बहुत साधारण होगा। जो कि भक्त प्रभु—चर्चा में, सत्संग में, ईश्वर का गुणगान करने में, ईश्वर की स्तुति करने में करते हैं। यह अर्थ ध्यान से बिलकुल बदल जाएगा। ध्यान इसकी सारी की सारी दिशा को मोड़ दे देता है।

मेरे में निरंतर मन लगाने वाले का अर्थ ध्यान से जो जानेगा उसको पता चलेगा, वही, जिसका कोई मन न रहा। क्योंकि परमात्मा में मन वही लगा सकता है, जिसका मन समाप्त हो जाए। अगर आपका मन जारी है, तो मन संसार में ही लगा रहेगा। आप बीच—बीच में परमात्मा का नाम ले सकते हैं, लेकिन मन संसार में ही लगा रहेगा।

इसलिए हम देखते हैं कि भक्तजन, तथाकथित भक्तजन मंदिरों में बैठे हैं, पर आप इस भूल में मत रहना कि उनका मन वहां है। मंदिरों में बैठना आसान है, प्रभु का नाम उच्चार करना भी बहुत आसान है, लेकिन मन का वहां होना उतना आसान नहीं है।

नानक के जीवन में उल्लेख है कि नानक एक गांव में आए। उस गांव के मुसलमान नवाब ने नानक को कहा कि सुना है मैंने, तुम कहते हो कि हिंदू—मुसलमान सब एक हैं! नानक ने कहा, एक हैं ही; मैं कहता हूं इसलिए नहीं। एक हैं, इसलिए मैं कहता हूं। तो उस नवाब ने कहा कि आज नमाज का दिन है, तो हमारे साथ मस्जिद में चलकर नमाज पढ़ो। सोचा उसने कि नानक इनकार करेंगे। एक हिंदू मस्जिद जाने से इनकार करेगा। नानक तो बड़ी खुशी से तैयार हो गए। नवाब थोड़ा चिंतित हुआ। उसने कहा, लेकिन ध्यान रखिए, नमाज में मेरे साथ सम्मिलित होना पड़ेगा। नानक ने कहा कि अगर तुम नमाज पढ़ोगे, तो मैं भी पढ़ूंगा।

लेकिन नवाब न समझा कि यह बात गहरी हो गई। आप भी एकदम से न समझे होंगे कि इसमें क्या गहराई हो गई। नमाज शुरू हुई। नानक एक दीवाल के किनारे सटकर खड़े हो गए। नवाब बीच—बीच में झुककर और आंख खोलकर नानक को देखता है कि वे नमाज पढ़ रहे हैं कि नहीं पढ़ रहे हैं! और नानक नमाज नहीं पढ़ रहे हैं। तो नवाब को बहुत गुस्सा आने लगा। नमाज तो भूल गई, नानक पर गुस्सा आने लगा कि यह आदमी बेईमान है, धोखेबाज है। और उसने जल्दी—जल्दी प्रार्थना पूरी की, ताकि इस आदमी को ठीक कर सके।

प्रार्थना पूरी करने के बाद वह नानक पर टूट ही पड़ा। उसने कहा, तुम धोखेबाज हो। बेईमान हो। अपने वचन का भी कोई खयाल नहीं! तुमने कहा था कि नमाज पढ़ूंगा, फिर तुमने पढ़ी नहीं?

नानक ने कहा, मैंने कहा था, अगर तुम नमाज पढ़ोगे, तो मैं भी पढ़ूंगा। लेकिन तुमने नमाज कहां पढ़ी? तुम हाथ—पैर से कवायद पूरी कर रहे थे नमाज की। व्यायाम तुम पूरा कर रहे थे। लेकिन मन तुम्हारा मेरी तरफ था, परमात्मा की तरफ नहीं। तो मैं तो बड़ी मुश्किल में पड़ा कि अब मैं क्या करूं! वचन देकर बुरा फंस गया। एक नमाज चूक गई मेरी भी! क्योंकि वचन मैंने दिया था, तुम प्रार्थना करोगे, तो मैं भी प्रार्थना करूंगा। तुम ही प्रार्थना में न गए! मन का अर्थ ही आपका जगत से जो संबंध है, उसका जोड़ आपका मन है। तो आप मन को परमात्मा में लगा नहीं सकते। मन तो संसार में ही लगेगा। हां, मन न रह जाए, तो जो लगाव घटित होगा, वह परमात्मा से होगा। इसलिए जब यह सूत्र ध्यान के अर्थ से समझेंगे, तो इसका अर्थ होगा—मेरे में निरंतर मन लगाने वाले, इसका अस्तित्वगत, ध्यानगत अर्थ होगा—जिन्होंने अपना मन खो दिया और मुझमें निरंतर रहने लगे।

मन को आप परमात्मा में लगा ही नहीं सकते। मन का अर्थ ही बीमारी है। मन का अर्थ ही तरंगें है। मन का अर्थ ही बेचैनी है। मन को आप परमात्मा में नहीं लगा सकते। जब तक मन है, तब तक आप भी परमात्मा में नहीं लग सकते। मन जहां शांत, शून्य हो जाता है, वहां आप परमात्मा में लग गए। और यह लगना बहुत अलग तरह का है। क्योंकि मन को लगाते हैं, तो चेष्टा करनी पड़ती है, फिर भी मन भागता है। यह लगना चेष्टा का नहीं है, चेष्टारहित है। अब आप भागना भी चाहें, तो परमात्मा से भाग नहीं सकते।

नानक के जीवन में दूसरा उल्लेख है। वे मक्का गए और पैर करके सो गए पवित्र मंदिर की तरफ। रात पुजारियों ने उन्हें हिलाया, उठाया और जगाया और कहा कि तुम नासमझ मालूम पड़ते हो! यह सोचकर कि तुम एक फकीर हो, हमने ठहर जाने दिया मंदिर में। और तुम पवित्र मंदिर की तरफ पैर करके सो रहे हो? तुम्हें परमात्मा की तरफ पैर करते हुए शर्म नहीं आती! तो नानक ने कहा, शर्म तो मुझे बहुत आती है। लेकिन मेरी भी अपनी मुसीबत है। मैं तुमसे कहता हूं मेरे पैर तुम उस तरफ कर दो, जहां परमात्मा न हो। मैं राजी हूं।

पुजारी मुश्किल में पड़ गए। पैर कहां किए जा सकते हैं, जहां परमात्मा न हो! नानक ने कहा, मेरी मुसीबत यह है कि मैं कहां पैर करूं! जहां भी पैर करूं, वहीं परमात्मा है। इसलिए कहीं भी पैर करूं, अब कोई फर्क नहीं पड़ता।

जिस व्यक्ति का मन खो जाएगा, उसे परमात्मा में ध्यान लगाना नहीं पड़ता; वह जहां भी जाए, जहां भी ध्यान लगाए, परमात्मा ही है। वह जो भी करे, सब तरफ परमात्मा ही है। मन वाले आदमी को कोशिश कर—करके परमात्मा में लगना पड़ता है, फिर भी लग नहीं पाता। और मन खोया कि आप कोशिश भी करें कि परमात्मा से बच जाएं, तो बचने का कोई उपाय नहीं है। आप भागना चाहें, उससे दूर निकल जाएं, तो दूर नहीं निकल सकते। आप आंख बंद करें, तो वह मौजूद होगा। आप आंख खोलें, तो वह मौजूद होगा। आप कुछ भी करें, वह मौजूद होगा। तभी निरंतर मन लगाने का अर्थ जाहिर होगा। फिर कोई उपाय नहीं रह जाता आपके हाथ में। आप होते ही उसमें हैं। जैसे मछली सागर में है, ऐसे आप उसमें होते हैं। चारों ओर वही होता है। लेकिन यह अर्थ ध्यान से खुलेगा। अगर शब्द से खोलने जाएंगे, तो यह सूत्र उलटा मालूम पड़ेगा। मेरे में निरंतर मन लगाने वाले और मेरे में ही प्राणों को अर्पण करने वाले भक्तजन!

कौन करेगा अर्पण प्राणों को? आप कर सकते हैं? सोचकर तो नहीं कर सकते, विचारकर तो नहीं कर सकते, मनपूर्वक तो नहीं कर सकते। क्योंकि जब कोई मनपूर्वक कहता है कि मैं अपने प्राण अर्पित करता हूं, तो भी अंतिम निर्णायक वही रहता है। कल वह कह सकता है कि वापस लिया। प्राण अब अर्पित नहीं करते! तो परमात्मा क्या करेगा? जब आप मंदिर में जाकर सिर रखते हैं चरणों में, तो यह भी आपका निर्णय है। आप चाहें तो रखें और चाहें तो न रखें। और जब आप कहते हैं कि परमात्मा, मैं अपने प्राण तुझे देता हूं तो भी आप हैं देने वाले! कल आप वापस ले सकते हैं। आप मौजूद रहते हैं, मिटते नहीं।

लेकिन ध्यान के बाद जो समर्पण होता है, वह आपका कृत्य नहीं है, वह आपका कर्म नहीं है। ध्यान से जो समर्पण होता है, वह आपकी मजबूरी है, वह आपकी हेल्पलेसनेस है, आप असहाय हैं। जैसे ही ध्यान में कोई उतरता है, फिर ऐसा नहीं लगता है कि मैं अपने प्राण परमात्मा को समर्पित करूं। फिर ऐसा उसे पता चलता है कि मेरे प्राण सदा से उसी को समर्पित हैं। मेरे प्राण उससे ही चल रहे हैं, मेरी श्वास उसकी ही श्वास है। मैं उससे अलग नहीं हूं कि समर्पण कर सकूं। इतना भी अलग नहीं हूं कि समर्पण कर सकूं। मैं समर्पित हूं।

यह बहुत अलग बात है। अब समर्पण वापस नहीं लिया जा सकता। यह अनुभव—कि मैं उसमें ही जी रहा हूं वही मुझमें जी रहा है, मेरी कोई पृथकता नहीं है—इस अनुभव का नाम है, मेरे में ही प्राणों को अर्पण करने वाले।

लेकिन भाषा की अपनी मजबूरियां हैं। यह भाषा में जो भी कहा गया है, यह बहुत उलटा है। भाषा अक्सर चीजों को उलटा कर देती है। क्योंकि भाषा के पास जितने भी शब्द हैं—किसी भी भाषा के पास—वे सभी अहंकार—केंद्रित हैं। आदमी ने बनाई हैं भाषाएं, आदमी उनका स्रष्टा है। अहंकार केंद्र पर है। इसलिए हर चीज अहंकार से जुड़ी हुई है।

तो जब हम अहंकार के पार की कोई बात कहना चाहते हैं, तब बड़ी मुसीबत होती है। कहना पड़ता है, समर्पण करो। यह बिलकुल गलत वाक्य है। क्योंकि समर्पण कोई कैसे करेगा? और जब करेगा, तो वह समर्पण कैसे होगा? कृत्य, कर्म कैसे समर्पण हो सकता है? कर्ता तो मैं रहूंगा। मैंने किया, तो समर्पण नहीं हो सकता। लेकिन हमें कहना पड़ता है, समर्पण करो। जब कि ठीक होगा, उचित होगा कहना, समर्पण होता है, किया नहीं जाता।

लेकिन अगर ऐसा कहा जाए कि समर्पण होता है, किया नहीं जाता, तो हमारा मन तत्काल दूसरी गलत बात समझ लेगा। वह कहेगा, फिर अपने वश की बात न रही। होगा, तब हो जाएगा। हम क्या कर सकते हैं! या तो हम करेंगे समर्पण, तो अहंकार मौजूद रहेगा, समर्पण होगा नहीं। और या फिर हम कहेंगे, हम कर ही क्या सकते हैं! हम प्रतीक्षा करेंगे, होगा, तब हो जाएगा। तब भी हम धोखा दे रहे हैं।

हम समर्पण नहीं कर सकते, लेकिन हम मन को ठहरा सकते हैं। हम समर्पण नहीं कर सकते, लेकिन हम मन को तोड़ सकते हैं। और जब मन टूट जाता है, मन ठहर जाता है, तो समर्पण हो जाता है। समर्पण बाइ—प्रोडक्ट है, ध्यान की छाया है। ध्यान हम कर सकते हैं, समर्पण छाया की तरह पीछे चला आता है। जिनके जीवन में ध्यान आता है, उनके जीवन में समर्पण अचानक, बिना कोई पगध्वनि किए, बिना कोई आहट किए, बिना कोई खबर दिए, अतिथि की भांति चुपचाप, मौन, भीतर प्रवेश कर जाता है। इस समर्पण की तरफ ही इशारा है।

मेरे में ही प्राणों को अर्पण करने वाले, सदा आपस में मेरे प्रभाव को जनाते हुए..।

इसका यह मतलब नहीं है कि एक—दूसरे से प्रभु की स्तुति की बातें कर रहे हैं कि वह बहुत महान है, कि वह बड़ा दयालु है, कि वह बड़ा प्रेमी है। यह सब, यह बातों से कोई किसी को जना नहीं सकता। लेकिन जो व्यक्ति एकीभाव को उपलब्ध हो जाता है, वह आंख की पलक भी उसकी हिलती है, तो भी परमात्मा की ही खबर उसके चारों तरफ फैलती है। उसका पैर भी चलता है, तो परमात्मा ही उससे चलता है। उसके उठने में, उसके बैठने में, उसके चलने में, उसके फिरने में, उसके आचरण में, उसके शब्द में, उसके मौन में, उसके सब ओर, उसके समस्त कृत्यों में परमात्मा का ही गुणगान शुरू हो जाता है।

बुद्ध को सोचें चलते हुए आपके बीच से। उन्हें कहना न पड़ेगा। उनका चलना!

ऐसी घटना घटी कि बुद्ध ने जब साधना शुरू की और छह वर्ष तक कठोर तपश्चर्या की, तो पांच उनके भक्त थे। तरह—तरह के भक्त होते हैं! वे भक्त बुद्ध के भक्त नहीं थे। वे बुद्ध जो तपश्चर्या करते थे, उसके भक्त थे। बुद्ध अपने शरीर को सुखा डालते, इससे वे बड़े प्रभावित थे। बुद्ध से नहीं, शरीर सूख जाए इससे। मानते थे कि बुद्ध महातपस्वी है। भूखा रहता है, लंबे उपवास करता है, काया की चिंता नहीं करता, कंकड़—पत्थरों पर सोता है, कांटों में चलता है, सूख गया, हड्डी—हड्डी हो गया।

उस समय की बनाई गई एक प्रतिछवि और उस समय की बनाई गई एक प्रतिमा है, जिसमें बुद्ध का सिर्फ अस्थिपंजर शेष रहा है। उनका पेट, पीछे पीठ से जुड़ गया है। सिर्फ हड्डियां छाती की भर दिखाई पड़ती हैं। सब मांस खो गया है। वे पांच उनके बड़े भक्त थे। फिर बुद्ध को पता चला कि इस तरह अपने को सताकर मैं कहीं भी नहीं पहुंचा। यह तो एक तरह की क्रमिक आत्महत्या है। तो बुद्ध ने जैसे एक दिन भोग छोड़ दिया था और महल छोड़ दिए थे, वैसे ही एक दूसरा महात्याग किया, त्याग भी छोड़ दिया।

यह जरा कठिन है समझना। क्योंकि कोई महल को छोड्कर जाए, हम सब समझ लेते हैं, क्योंकि महल हमारे पास नहीं है और महल को पाने की आकांक्षा हमारे भीतर है। तो जब कोई महल को छोड़ता है, हमें लगता है, महात्यागी है। बुद्ध ने एक दिन महल छोड़ा, तो वे महात्यागी थे। फिर एक दिन उन्होंने पाया कि यह त्याग भी मेरा ही अहंकार है। यह भी मेरा ही कर्ता का भाव है कि मैं तप कर रहा हूं साधना कर रहा हूं योग कर रहा हूं। यह भी सब मेरा अहंकार है। एक दिन उन्होंने इसे भी त्याग दिया।

यह महात्याग है। त्याग को भी जब कोई छोड़ पाता है— भोग को भी छोड़ देता है, त्याग को भी छोड़ देता है— तब आदमी वीतराग हो जाता है, तब वह परम स्थिति को पहुंचता है।

लेकिन पांचों भक्त बुद्ध को छोड्कर चले गए, उन्होंने कहा, यह तो भ्रष्ट हो गया। इसने उपवास बंद कर दिए। अब कोई भोजन लाता है, तो यह भोजन ग्रहण कर लेता है। कोई कपड़े दे जाता है, तो कपड़े भी पहन लेता है। अब धूप में न बैठकर वृक्ष की छाया में बैठ जाता है, यह भ्रष्ट हो गया। वे पांचों बुद्ध को छोड्कर चले गए।

फिर बुद्ध को परम ज्ञान हुआ। तो बुद्ध को खयाल आया अपने पांच उन शिष्यों का, कि उन्हें जाकर मैं पहली खबर उन्हीं को दूं क्योंकि वर्षों तक वे मेरे साथ थे। तो बुद्ध उनका पता लगाते हुए बोध—गया से काशी आए, क्योंकि सारनाथ में वे पांचों भिक्षु ठहरे हुए थे। बुद्ध बोध—गया से पैदल चलते हुए उन भिक्षुओं को खोजते हुए सारनाथ पहुंचे।

सांझ होने का वक्त था और वे पांचों एक चट्टान के पास बैठकर सत्संग कर रहे थे। देखा बुद्ध को आते हुए, तो उन पांचों ने कहा कि भ्रष्ट हो गया गौतम आ रहा है। देखो, इसके शरीर पर अब हड्डियां नहीं दिखाई पड़ती; अब मांस—मज्जा आ गई है। बिलकुल भ्रष्ट हो गया है। यह आ रहा है। हम इसे उठकर नमस्कार भी न करें। हम इसकी तरफ देखें भी न। अगर यह हमें नमस्कार भी करे, तो हम इसका उपेक्षा से उत्तर दें। हम इससे बैठने को भी न कहें, क्योंकि यह भ्रष्ट हो गया है।

बुद्ध उनके जैसे—जैसे पास आए, वैसे—वैसे उनका संकल्प पिघलने लगा। बुद्ध जैसे—जैसे उनके पास आए, वैसे—वैसे भूल गए वे कि हमने निर्णय किया है कि उठकर नमस्कार न करेंगे। और एक उठकर बुद्ध के चरणों में गिरा, दूसरा बुद्ध के चरणों में गिरा, फिर वे पांचों बुद्ध के चरणों में गिर गए। तब बुद्ध ने उनसे पहली बात कही कि मैं जब दूर था, तब मैंने अंतर्ध्वनि सुनी कि तुमने निर्णय किया है कि तुम उठकर मुझे नमस्कार नहीं करोगे। फिर तुम अपने संकल्प को क्यों छोड़ रहे हो?

तो उन पांचों की आंखों में आंसू बहने लगे और उन्होंने कहा, हम अपने संकल्प को न छोड़ते, लेकिन तुम्हारा आना ठीक वैसा ही आना है, जैसे परमात्मा आ रहा हो। जब तक तुम दूर थे और हम तुम्हें देख न पाए और तुम्हारी आंखों की रोशनी हम पर न पड़ी, तब तक हम अपने संकल्प में दृढ़ थे। जैसे—जैसे तुम पास आने लगे, तो जैसे सूरज उगने लगे और रात छंटने लगे और तारे डूबने लगें, वैसे ही हमारा मन, हमारा संकल्प सब खोने लगा। और तुम जब पास आए, तब हमें याद भी न रहा कि हम क्या कर रहे हैं। यह तो तुमने हमसे कहा कि तुमने अपना संकल्प क्यों छोड़ा, इसलिए हमें अपने पुराने संकल्प की याद आती है।

इस सूत्र का अर्थ ऐसा नहीं है कि हम एक—दूसरे को भगवान की स्तुति का गान करके, और भगवान की तरफ स्मरण दिलाएंगे। ऐसे कोई स्मरण नहीं होता। ऐसा बहुत—सा स्मरण चलता है। लोग माइक लगाकर अखंड कीर्तन कर देते हैं चौबीस घंटे! इसी खयाल से करते हैं कि दूसरों के कान में, चाहे वे सो ही रहे हों, अगर भगवान का नाम पहुंचा, तो बड़ा लाभ होगा।

इधर मैंने सुना है कि ऐसे करने वाले लोग नर्क भेज दिए जाते हैं। क्योंकि वे केवल दूसरों की नींद हराम कर रहे हैं, और कुछ भी नहीं कर रहे हैं। और उन पर तो चिढ़ आती ही है सोने वालों को, इस भगवान के नाम तक से भी धीरे— धीरे चिढ़ आने लगेगी।

कोई जबरदस्ती किसी को भगवान का नाम नहीं दिलवा सकता है। और न ही कोई किसी को भगवान की स्तुति करवाकर प्रभावित कर सकता है। लेकिन जब कोई भगवान को जीता है, तो उसके उठने में, बैठने में, चलने में, उसके बोलने में, उसके चुप होने में, उसकी भाव— भंगिमा में, उसकी मुद्राओं में, सब तरफ भगवान की स्तुति शुरू हो जाती है।

बुद्ध से किसी ने आकर पूछा है कि मैंने सुना है कि आप ईश्वर को नहीं मानते हैं!

बुद्ध ने कहा, सुनने की फिक्र छोड़ो, तुम मुझे गौर से देखो। मैं क्या कहता हूं यह मूल्यवान नहीं है। मैं क्या हूं यह मूल्यवान है। लेकिन वह आदमी जमीन पर अपनी आंखें गड़ाए हुए है, वह कहता है कि मेरे सवाल का जवाब आपने नहीं दिया। आप मेरे प्रश्न का उत्तर दें। मैंने सुना है कि आप लोगों से कहते हैं कि कोई ईश्वर नहीं है!

इस सूत्र को ध्यान से समझेंगे, तो इसका अर्थ हुआ, आपस में मेरे प्रभाव को जनाते हुए; उनके व्यवहार से, उनके होने से, उनके अस्तित्व से मेरी सुगंध को उड़ाते हुए।

वही स्तुति है परमात्मा की। आपके कहने से कोई राजी न होगा, आपके होने से कोई राजी होगा। आप क्या कहते हैं, कौन चिंता करता है! आप क्या हैं?

और यह बड़े मजे की बात है कि आप क्या कहते हैं, वह दो कौड़ी का हो जाता है, अगर आप उसके विपरीत हैं। और आप कुछ भी न कहें, लेकिन जो आप कहना चाहते हैं, अगर उसके अनुकूल हैं, तो बिना कहे भी वह कह दिया जाता है। लेकिन इस सूक्ष्म भाव का खयाल तो, आप भीतर उतरें और उस एकीभाव की झलक मिले, तो ही स्पष्ट हो सकता है।

तथा मेरा कथन करते हुए संतुष्ट होते हैं!

यह बड़ा प्रीतिकर, बड़ा प्रीतिकर वचन है कि मेरा कथन करते हुए संतुष्ट होते हैं। अगर हम कभी ईश्वर का कथन भी किसी से करते हैं, तो हम संतुष्ट कथन करते वक्त नहीं होते। हम संतुष्ट होते हैं, अगर दूसरा राजी हो जाए, कनवर्ट हो जाए। अगर मैं किसी को अपने विचार में ढाल लूं तब मैं संतुष्ट होता हूं।

लेकिन वह संतोष अहंकार का संतोष है। सब कनवर्शन अहंकार—केंद्रित हैं। अगर मैं इस चेष्टा में लगा हूं कि जो मैं मानता हूं वही आपको मनवा दूं; और अगर आपको मनवाने में सफल हो जाता हूं तो जो संतोष मिलता है, वह अहंकार का संतोष है; वह पाप है।

नहीं, यह सूत्र यह नहीं कहता है। यह सूत्र कहता है, मेरा कथन करते हुए संतुष्ट होते हैं। आप राजी हुए या नहीं हुए, आपने सुना भी या नहीं सुना, यह निष्प्रयोजन है, यह व्यर्थ है। इसकी बात ही क्या उठानी! उन्होंने प्रभु की चर्चा कर ली, यह काफी संतोष है। यह काफी संतोष है कि उन्हें प्रभु की चर्चा करने का एक क्षण मिला। उनके जीवन की समस्तता से प्रभु का गुणगान हो सका, यह संतुष्टि है।

इसलिए एक बहुत अदभुत बात है, हिंदू धर्म कनवर्टिंग धर्म नहीं है। हिंदू धर्म किसी को रूपांतरित नहीं करना चाहता। हिंदू धर्म ने अपने इतिहास में दूसरे को रूपांतरित करने की अपने धर्म में, कभी कोई चेष्टा नहीं की। यह बड़ी अदभुत बात है। क्योंकि बड़ा स्वाभाविक यह है, मन की यह स्वाभाविक आकांक्षा होती है कि जो मैं मानता हूं वही दूसरा भी मान ले।

शायद आपने सोचा न हो, यह आकांक्षा क्यों होती है! यह आकांक्षा इसलिए होती है कि मुझे खुद भी पक्का भरोसा नहीं है, जो मैं मानता हूं, उस पर। जब मैं दूसरे को भी राजी कर लेता हूं तो थोड़ा भरोसा आता है। जब भीड़ बढ़ने लगती है और मेरे साथ बहुत लोग राजी होने लगते हैं, तो मैं समझता हूं कि जो मैं कह रहा हूं वह सत्य है। अन्यथा इतने लोग कैसे मानते! मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि भीतरी इनफीरिआरिटी, भीतरी हीनता है, भीतर पक्का भरोसा नहीं है। दूसरे को राजी करवाकर अपने पर भरोसा आता है।

सुना है मैंने कि जिस आदमी ने न्यूयार्क में सबसे पहला बैंक खोला, उससे जब बाद में पूछा गया कि तुझे बैंक खोलने का कैसे खयाल आया और कैसे तूने बैंक खोला? तो उसने कहा कि मैंने बैंक खोला। मेरे पास पचास डालर थे। कोई और धंधा नहीं था, तो मैंने सोचा, चलो बैंकिंग। तो मैंने एक दफ्तर खोला, तख्ती लगाई, बोर्ड लगाया बैंक का, और मैं दफ्तर में बैठ गया। एक आदमी आया और सौ डालर जमा कर गया। दूसरे दिन दूसरा आदमी आया और तीन सौ डालर जमा कर गया। तो तीसरे दिन मेरे जो पचास डालर थे, वे भी मैंने जमा कर दिए। मेरी हिम्मत तब तक बढ़ चुकी थी कि बैंक चलेगा, कोई डर की बात नहीं है!

करीब—करीब कनवर्टिंग माइंड इसी तरह के होते हैं। दूसरा जब बदल जाए, तो खुद भी भरोसा आता है कि ठीक है, हम जो मानते हैं, वह ठीक है। वह किताब, वह शास्त्र, वह संदेश सही होना चाहिए, नहीं तो यह आदमी कैसे राजी हो जाता!

इसलिए जब आपसे कोई राजी नहीं होता, तो आप बड़े नाराज होते हैं। वह आप उस पर नाराज नहीं हो रहे हैं, वह आपको अपने भीतर, आपका खोखलापन आपको अब दिखाई पड़ रहा है कि कोई मुझसे राजी नहीं हो रहा; किसी को मैं सहमत नहीं करवा पा रहा हूं। तब आपकी जड़ें हिलने लगीं, आपका भरोसा टूटने लगा। अगर दो दिन तक ये दो आदमी इसके पास बैंक में जमा करवाने न आते, तो तीसरे दिन यह तख्ती निकालकर अपना कोई दूसरा काम शुरू कर देता।

हिंदू धर्म नॉन—कनवर्टिंग रिलीजन है, किसी को बदलने की आकांक्षा नहीं है। दयानंद ने पहली दफा हिंदू विचार में बदलने का खयाल दिया। इसलिए दयानंद को मैं पक्का हिंदू नहीं कहता हूं। उनमें ईसाइयत और मुसलमान होने के गहरे लक्षण हैं। बुरे हैं, ऐसा नहीं कहता। लेकिन हिंदू की जो एक अपनी धारा थी, उसको तोड्ने वाले हैं, ऐसा जरूर कहता हूं।

क्योंकि हिंदू मानता है, किसी को क्या बदलना! अगर मेरे जीवन की सुगंध किसी को बदल दे, तो काफी है। लेकिन मैं क्यों बदलने जाऊं! और बदलना एक तरह का आक्रमण है, हिंसा है। क्यों मैं चोट करूं किसी के ऊपर कि तुम गलत हो! और क्यों तुम्हें राजी करने के लिए आग्रहशील बनूं! अगर मेरा जीवन तुम्हें बदल दे, तो ठीक है। अगर तुम खुद इस सुगंध से प्रभावित होकर आ जाओ, तो ठीक है। अगर मंदिर की बजती हुई घंटी ही तुम्हें बुला ले, तो काफी है। और अलग से तुम्हें बुलाने जाने की कोई जरूरत नहीं है। और कभी कोई किसी को जबरदस्ती बुलाकर ला भी नहीं पाता। और ले भी आए, तो शरीर ही आता है, आत्मा पीछे छूट जाती है।

ईश्वर की स्तुति— अस्तित्व से, व्यक्तित्व से, होने से। तब फिर संतोष दूसरे को राजी करने में नहीं है। तब संतोष अपनी अभिव्यक्ति में है। तब संतोष जो मेरे भीतर था, उसको सुवासित कर देने में है, उसे बाहर फैला देने में है। दूसरे पर क्या परिणाम हुआ, यह विचारणीय भी नहीं है।

इधर मैं देखता हूं एक बड़े विचारक हैं, अब उम्र के आखिरी दिन हैं उनके। जिंदगी भर उन्होंने कोशिश की लोगों को समझाने की, अब बहुत फ्रस्ट्रेटेड हैं, अब बहुत विषाद है मन में। विषाद यह है कि कुछ भी हो नहीं पाया; कोई राजी नहीं हुआ, कोई बदला नहीं! लेकिन यह विषाद धार्मिक आदमी के मन में होना नहीं चाहिए। नहीं तो फिर तो धर्म भी दुकान हो गई, कि मैं दिनभर दुकान खोले बैठा रहा और कोई ग्राहक आया नहीं! और जिंदगी हो गई, और माल की कोई बिक्री न हुई, तो मेरी जिंदगी बेकार चली गई।

नहीं, यह सवाल ही नहीं है। जो ध्यान में गहरा उतर जाता है, उसे फिर परमात्मा की स्तुति सिर्फ उसका आनंद है, सिर्फ उसका आनंद है; वह उसमें ही संतुष्ट है। इससे आगे, इससे आगे का कोई हिसाब मन में अगर है, तो अभी ध्यान के बिना ही आप परमात्मा की तरफ चल पड़े हैं, इसे समझना। आप मन से ही चल पड़े हैं, इसे समझना।

मन तो सब जगह दुकान खोल लेता है, धंधा बना लेता है। मन तो सब जगह अहंकार के लिए रास्ते खोजने लगता है। मन तो अहंकार का भोजन जुटाता है।

और वे मुझमें ही निरंतर रमण करते हैं!

वे मुझमें ही डूबते—उतराते हैं, वे मुझमें ही डुबकियां लेते रहते हैं। यह मन से संभव नहीं है। यह मन से बिलकुल ही असंभव है। इसलिए मैंने कहा, इस सूत्र को ध्यान का सूत्र समझें।

उन निरंतर मेरे ध्यान में लगे हुए और प्रेमपूर्वक भजने वाले भक्तों को, मैं वह तत्वज्ञान रूपी योग देता हूं जिससे वे मेरे को ही प्राप्त होते हैं। और हे अर्जुन, उनके ऊपर अनुग्रह करने के लिए ही मैं स्वयं उनके अंतःकरण में एकीभाव से स्थित हुआ, अज्ञान से उत्पन्न हुए अंधकार को प्रकाशमय तत्वज्ञान रूप दीपक द्वारा नष्ट करता हूं।

ऐसी जिसकी चित्त—दशा निर्मित हो गई हो, कि जो परमात्मा में डूबता—उतराता हो, उसमें ही डुबकियां लेता हो, उसी में रमण करता हो, उसके अलावा जिसका कोई संसार न बचा हो; कहें, परमात्मा ही जिसका संसार हो गया हो; परमात्मा ही हो जिसकी वासना, परमात्मा ही हो जिसकी इच्छा, परमात्मा ही हो जिसकी प्रार्थना; सभी कुछ, सभी कुछ जिसका परमात्ममय हो गया हो—ऐसे व्यक्ति को, कृष्ण ने कहा है, बुद्धि उपलब्ध होती है, बुद्धियोग उपलब्ध होता है। ऐसे व्यक्ति में प्रतिभा का जन्म होता है। ऐसा व्यक्ति पहली दफा बुद्धिमत्ता को, जिसको बुद्ध ने प्रज्ञा कहा है, उसको पाता है। बुद्ध ने तीन शब्दों का उपयोग किया है, वे उपयोगी होंगे इस सूत्र को समझने के लिए। बुद्ध ने तीन शब्दों पर सारी की सारी अपनी चितना को केंद्रित किया है। वे तीन शब्द हैं, शील, समाधि और प्रज्ञा। शील से अर्थ है, जो आप करते हैं। समाधि से अर्थ है, जो आप हो जाते हैं। और प्रज्ञा से अर्थ है, जो आप में खिलता है।

शील से अर्थ है, आपका जीवन रूपांतरित हो। समाधि से अर्थ है, आपकी चेतना रूपांतरित हो। और प्रज्ञा से अर्थ है कि जब ये दोनों रूपांतरण घटित होते हैं, तो जो संपदा आपको उपलब्ध होती है, जो धन आपको मिलता है, जो परम धन आपको मिलता है। कृष्ण ने उस परम धन को बुद्धियोग कहा है।

हमें थोड़ी हैरानी होगी, क्योंकि हम सब अपने को बुद्धिमान मानते हैं। और कृषण के हिसाब से बुद्धि तब उपलब्ध होती है, जब कोई व्यक्ति परमात्मा के साथ एक हो जाता है। तो जिसको हम बुद्धि कहते हैं, वह क्या होगी?

जैसे कोई आदमी झील के किनारे खड़ा हो। तो आप खयाल करें। झील शांत है, आदमी किनारे खड़ा है, तो उस आदमी का प्रतिबिंब झील में बनता है। लेकिन प्रतिबिंब उलटा बनता है। बनेगा ही। प्रतिबिंब सभी उलटे होते हैं। अगर आपने झील के किनारे खड़े आदमी को न देखा हो और केवल झील में बनने वाले प्रतिबिंब पर ही आपकी आंख हो, तो आदमी आपको सिर के बल खडा हुआ मालूम पड़ेगा। लेकिन अगर आपने झील के ऊपर खड़े आदमी को देखा ही न हो, तो यही आदमी की ठीक स्थिति होगी!

जिसको हम अभी बुद्धि कह रहे हैं, वह हमारे मन की झील पर बनी हुई हमारी बुद्धिमत्ता का केवल प्रतिबिंब है, रिफ्लेक्शन है। हमारी मन की झील पर जो प्रतिबिंब बन रहा है, उसी को अभी हम बुद्धि कह रहे हैं। वह बुद्धि नहीं है, बुद्धि का प्रतिबिंब है। और मजा यह है कि प्रतिबिंब उलटा होता है।

इसलिए अक्सर ऐसा होता है कि जिनको हम बुद्धिमान कहते हैं, वे उस परम बुद्धि की दृष्टि से बिलकुल उलटे आदमी होते हैं। जिनको हम उलटी खोपड़ी के आदमी कहते हैं। वे किसी भी चीज को सीधा नहीं समझ सकते; उसको तत्काल उलटा कर लेते हैं। वे परमात्मा की बात में से भी ऐसी बातें निकालते हैं कि परमात्मा तक पहुंचना असंभव हो जाए। वे धर्म में भी इस तरह का तर्क खोजते हैं कि धर्म तत्काल

व्यर्थ मालूम होने लगे। वे जो भी करते हैं, वह कुछ उलटा होता है। उस उलटे का कारण है। क्योंकि प्रतिबिंब को जिन्होंने बुद्धि समझा, वे उलटे चलेंगे ही।

हमारी इस सदी में, जिसको हम कह सकते हैं कि बुद्धि की सदी— प्रतिबिंब वाली बुद्धि, रिफ्लेक्टेड इंटलेक्ट। निश्चित ही, इतनी बुद्धिमान सदी कभी नहीं थी जमीन पर। लेकिन इतनी बुद्धिहीन सदी भी खोजनी मुश्किल है। यही उलटापन है। न इतनी शिक्षा थी, न इतने शास्त्र थे, न इतने विचार थे, लेकिन आदमी हमसे ज्यादा बुद्धिमान था।

निश्चित ही, अगर बुद्ध को हम मैट्रिक की परीक्षा में बिठाएं, तो मैं नहीं मानता कि अगर वे चोरी वगैरह करें, तब तो बात अलग, नहीं तो पास नहीं हो सकते। सीधे तो पास नहीं हो सकते। नकल वगैरह कर लें, तब तो बुद्ध भी पास हो रहे हैं, बुद्ध भी हो जाएंगे! नहीं तो फेल होना निश्चित है। और हमारे तथाकथित बुद्धिमान आदमी अगर बुद्ध से विवाद करने जाएं, तो निश्चित जीत जाएंगे; बुद्ध हार जाएंगे। लेकिन फिर भी बुद्ध बुद्धिमान हैं और हम जिसको बुद्धिमान कह रहे हैं, वह केवल उलटा है।

बुद्धि का एक और रूप भी है। जब तक हम मन के पार न उठें, तब तक वह सीधा रूप हमें दिखाई नहीं पड़ेगा। हमारी झील से आंख उठे, तब हमें दिखाई पड़ेगा कि कोई आदमी झील पर खड़ा है, उसके पैर नीचे हैं, सिर ऊपर है। और प्रतिबिंब में पैर ऊपर हैं और सिर नीचे है। तब हमें पता चलेगा कि प्रतिबिंब उलटा था। लेकिन जिन्होंने प्रतिबिंब ही देखा है.!

सुना है मैंने कि मुल्ला नसरुद्दीन की काफी बदनामी हो गई थी। बदनामी ऐसी कि गांव के पंडितों ने, पुरोहितों ने जाकर सम्राट को कहा कि यह आदमी इस तरह की बातें कर रहा है कि लोग च्युत हो जाएंगे मार्ग से। यह आदमी खतरनाक है, यह आदमी उलटी बातें करता है लोगों से। तो सम्राट ने उसे बुलाया दरबार में। मुल्ला अपने घर से निकला, अपने गधे पर बैठा और दरबार की तरफ चला। लेकिन एक भीड़ उसके साथ चलने लगी और लोग उस पर हंसी— मजाक करने लगे, क्योंकि वह गधे पर उलटा बैठा हुआ था। लेकिन उसने अपनी गंभीरता कायम रखी।

जब वह दरबार में पहुंचा, तो सम्राट ने खुद देखकर उसे कहा कि नसरुद्दीन, तुम गधे पर उलटे क्यों बैठे हुए हो? नसरुद्दीन ने कहा कि महाराज, अपनी—अपनी नजर की बात है। मैं तो समझता हूं कि गधा उलटा खड़ा है; हम तो सीधे ही बैठे हैं। आप जरा गधे की तरफ देखें! नसरुद्दीन ने कहा, इट डिपेंड्स। यह निर्भर करेगा कुछ बातों पर कि कौन उलटा है। मैं तो बिलकुल सीधा बैठा हूं। गधा इसी तरफ मुंह किए हुए खड़ा था; मैं सीधा बैठ गया। अगर जिसको आप सीधा कहते हैं, वैसा मैं बैठता, तो गधे को मुझे मोड़ना पड़ता और तकलीफ देनी पडती।

लेकिन एक मजे की बात हुई। सम्राट ने कहा कि इस आदमी को ले जाओ, क्योंकि अब आगे बात करनी ठीक नहीं है।

हम कैसे देखते हैं, कहां से देखते हैं, किस बिंदु से देखते हैं, इस पर सब निर्भर करता है।

नसरुद्दीन बैठा है अपने स्कूल में। उसका छोटा मदरसा है, जिसमें वह बच्चों को पढ़ाता है। और एक बच्चे को कहता है कि जाकर कुएं से इस घड़े में पानी भर ला। और जैसे ही वह बच्चा घड़ा लेकर जाने लगता है, उसे वापस बुलाता है, कान पकड़कर दो चांटे उसे रसीद करता है और कहता है कि सम्हलकर, घड़े को फोड़ मत डालना!

एक आदमी मेहमान की तरह मिलने आया था, वह हैरान हो गया। दुनिया में उसने बहुत तरह के दंड देखे थे। लेकिन कसूर करने के पहले दंड उसने कभी नहीं देखा था। अभी लड़का घड़ा लेकर गया ही नहीं, गिराने का तो सवाल ही नहीं है! उसने नसरुद्दीन से कहा कि और सब तो ठीक है, लेकिन यह उलटी बात मेरी समझ में नहीं आती। अभी लड़के ने घड़ा गिराया ही नहीं और आपने उसको दो चांटे मार दिए!

नसरुद्दीन ने कहा, घड़ा गिरा दे, फिर चांटा मारने से फायदा क्या है? नसरुद्दीन ने कहा, यह देखने—देखने की बात है। यह उलटी नहीं है; यह सीधी है। घड़ा गिरा दे, फिर चांटा मारने से फायदा? अब न तो घड़ा गिरेगा और न चांटा मारने की आगे जरूरत पड़ेगी।

उलटा और सीधा सापेक्ष हैं, रिलेटिव हैं। लेकिन अगर दोनों बातें हमारे खयाल में हों। एक ही बात हमारे खयाल में हो, तो सीधे— उलटे का सवाल ही नहीं उठता। जो होता है, उसे हम सीधा मानकर चलते हैं।

हम मन में ही देखे हैं छबि अभी अपनी संभावना की। मन में हमने प्रतिबिंब देखा है, उसको हम बुद्धि समझते हैं। और उसको ही हम शिक्षित करते हैं विश्वविद्यालयों में। ट्रेन करते हैं, प्रशिक्षित करते हैं, उसी प्रतिबिंब को। हमारा बड़े से बड़ा बुद्धिमान प्रतिबिंब से ज्यादा नहीं है।

एक और बुद्धिमत्ता है, कृष्ण उसकी बात कर रहे हैं। वे कहते हैं, जब कोई ध्यान को उपलब्ध होता है और जब कोई मुझमें डूब जाता है, तब उसे बुद्धियोग, तब पहली दफा उसे बुद्धिमत्ता का पता चलता है कि बुद्धि क्या है।

हमारी जो बुद्धि है, वह हमें ही नुकसान पहुंचाती है। कभी आपने खयाल किया है कि आपकी बुद्धि आपको सिवाय नुकसान पहुंचाने के कुछ और भी करती है? आदमी कितने संकट में रोज बढ़ता जाता है, उसका बहुत—कुछ उसकी बुद्धि है। वह जितनी बुद्धिमानी करता है, पाता है, उतने ही संकट उसने बढ़ा लिए, अनंत गुना हो गए।

हमने सोचा था, हमारे बुद्धिमानों ने, तथाकथित बु।द्धमानों ने— अगर हम दो सौ वर्ष के बुद्धिमानों के नाम गिनें, तो हमें पता।? चलेगा— उन सभी तथाकथित बुद्धिमानों ने कहा था कि सारी दुनिया को शिक्षित करने से सुख का साम्राज्य उतर आएगा, यूनिवर्सल एजुकेशन चाहिए। और उनकी बात हम सबको जंचती थी। अब हमने करीब—करीब आधी दुनिया को शिक्षित कर लिया है। और ' जहां—जहां हमने शिक्षित कर लिया है, वहां पहली दफा मुसीबत के ' नये आयाम शुरू हो गए हैं, जिनका हमें पता ही नहीं था।

आज अमेरिका सबसे ज्यादा सुशिक्षित है। लेकिन अमेरिका के बच्चे आज जो कर रहे हैं, वह ज्यादा से ज्यादा सैवेज, ज्यादा से। ज्यादा जंगली हालत में जो किया जाना चाहिए, वह कर रहे हैं।। लेकिन बुद्धिमानों ने कहा था कि सबको सुशिक्षित कर दो, दुनिया 1'? में बड़ा सुख आ जाएगा! लेकिन जितनी शिक्षा बढ़ी है, उतना दुख बढ़ा है।

और शिक्षित आदमी लगता है, सुखी हो ही नहीं सकता। ऐसा मालूम पड़ता है कि वह जो शिक्षित नहीं है, शायद सुखी हो जाए; लेकिन जो शिक्षित है, वह तो सुखी हो ही नहीं सकता। शायद इतनी महत्वाकांक्षा बढ़ जाती है, शायद सुख की इतनी प्रगाढ़ आकांक्षा हो जाती है, शायद सुख पर मुट्ठी बांधने की इतनी तीव्रता हो जाती है कि जिस पर मुट्ठी बांधते हैं, वह मुट्ठी से छूट जाता है। और शायद शिक्षा इतने तनाव बढ़ा देती है कि बुद्धिमान होने का खयाल तो आ जाता है, लेकिन बुद्धिमत्ता बिलकुल नहीं होती। और तब जिंदगी बड़े खिंचाव में, बड़ी बेचैनी में उलझ जाती है।। बुद्धिमान जिनको हम कहते हैं, उनकी मानकर दुनिया चल रही। है। जिनको कृष्ण बुद्धियोगी कहते हैं, उनको मानकर दुनिया अब। तक चली नहीं। पूजा वगैरह हम उनकी कर लेते हैं। वह आसान, तरीका है उनसे निपटने का। जिससे निपटना हो, उसकी पूजा करो और अपने घर जाओ; उससे निपट गए; उससे झंझट खतम हुई। ठीक है; कि नमस्कार कर लेते हैं आपको। अब हमें क्षमा करें। अब हम जाएं।

यह जो दूसरी बुद्धिमत्ता है, जो जीवन को आनंद की तरफ ले जाती है.?.। हमारी बुद्धि तो दुख की तरफ ले गई है। अगर दुख ही

कसौटी हो, तो हम जिसे बुद्धि कहते हैं, वह जहर है। और अगर आनंद कसौटी हो, तो फिर कृष्ण और बुद्ध जिसे बुद्धि कहते हैं, उसी को तरफ ध्यान को हटाना पड़ेगा।

यह बुद्धि कुछ और है। यह उन्हें उपलब्ध होती है, जो निरंतर मेरे ध्यान में लगे हुए हैं, जो निरंतर मेरी भक्ति में, मेरे स्मरण में डूबे हुए है। उन्हें मैं वह तत्वयोग, बुद्धियोग देता हूं जिससे वे अंततः मुझे उपलब्ध हो जाते हैं, अंततः परमात्म रूप हो जाते हैं। और हे अर्जुन, उनके ऊपर अनुग्रह करने के लिए ही मैं स्वयं उनके अंतःकरण में एकीभाव से स्थित हुआ, अज्ञान से उत्पन्न हुए अंधकार को प्रकाशमय दीपक द्वारा नष्ट करता हूं। तत्वज्ञान रूप दीपक द्वारा!'

यह जो बुद्धि जब भीतर पैदा होती है, यह जो बुद्धियोग उपलब्ध होता है; जब जीवन दिखाई पड़ता है उसकी समग्रता में, जैसा वह है; हमारे विचारों के अनुसार नहीं, हमारे चश्मों के अनुसार नहीं, हमारी दृष्टियों के अनुसार नहीं, वरन जैसा है, उसकी वास्तविकता में, उसके तत्वरूप में जब दिखाई पड़ता है, तो यही प्रज्ञा दीया बन जाती है। और यह सारा अज्ञान, जिसमें हम अब तक जीए हैं, जिसको हमने अब तक अपना जीवन समझा है, जिसमें हम भटके हैं, ठुकराए गए हैं, ठोकर खाए हैं, दुखी हुए हैं, नर्कों—नर्कों का परिभ्रमण किया है, वह सारा अंधकार विलीन हो जाता है, शून्य हो जाता है।

मनुष्य एक संभावना है प्रकाश की। मनुष्य बीज है प्रकाश का; एक ज्योति उसमें छिपी है। जैसा मैंने कहा, अंडे में छिपा है एक पक्षी, पंख खोल आकाश में उड़ जाए। ऐसा ही एक ज्योतिर्मय पक्षी आपके भीतर छिपा है। एक ज्योति, जो पंख खोले और आकाश की तरफ लपट बन जाए, वह आपके भीतर छिपी है।

लेकिन मन को तोड़ना पड़े, और अहंकार को ईंधन बनाना पड़े। अहंकार बने तेल और जले, तो वह प्रकाश की ज्योति, वह बुद्धियोग आपके भीतर सघन हो। उस बुद्धियोग से जो जाना गया है, वही धर्म है। उस प्रकाश में जो पाया गया है, वही मोक्ष है। और उसके बिना जो भी हम जान रहे हैं अंधकार में, वह संसार है।

इसे हम ऐसा परिभाषित करें, अज्ञान में जो जाना जाता है, वह संसार है। वही जब ज्ञान से जाना जाता है, तो परमात्मा है। संसार और परमात्मा दो चीजें नहीं हैं। संसार और परमात्मा एक ही अस्तित्व के दो दर्शन हैं, एक ही अस्तित्व के दो अनुभव हैं। अज्ञान में एक अनुभव

होता है, वह संसार है। परमात्मा को हम अज्ञान में जैसा जानते हैं, उसका नाम संसार है। और ज्ञान में हम जैसा संसार को जानते हैं, उसका नाम परमात्मा है। ये दो नाम हैं, ये हमारे मन की दो स्थितियों के अनुरूप नाम हैं; इनका दो चीजों से संबंध नहीं है।

लेकिन आदमी अदभुत है, और होगा, क्योंकि उसकी उलटी बुद्धि है। उलटा खड़ा हुआ वह जगत को देख रहा है। तो अगर हम कभी सोचते भी हैं परमात्मा का, तो हम सोचते हैं, परमात्मा कुछ और है, संसार कुछ और है। दुकान कुछ और है, और मंदिर कुछ और है। शरीर कुछ और है, और आत्मा कुछ और है। पत्थर कुछ और है, और परमात्मा कुछ और है। जब हम सोचते भी हैं, तो हम दो हिस्सों में सोचते हैं। हम दो अस्तित्व बना लेते हैं। उन दो अस्तित्वों के बीच और कठिनाई खड़ी हो जाती है, क्योंकि वे दोनों झूठ हैं। वे दोनों झूठ हैं।

बुद्ध से कोई पूछता है कि जब आपको ज्ञान हुआ, तो फिर संसार और सत्य में क्या संबंध होता है, वह आप बताएं। जब आपको ज्ञान हुआ, तो आत्मा और शरीर में क्या संबंध होता है, वह आप बताएं। जब आपको ज्ञान हुआ, तो आप संसार में किस भांति जीते हैं, वह आप हमें बताएं।

बुद्ध ने कहा कि एक आदमी गुजरता हो रास्ते से, अंधेरा हो, और रस्सी पड़ी हो, और सांप उसे खयाल में आ जाए। भागे, दौड़े, तड़फड़ाए, पसीना—पसीना हो जाए। घबड़ा जाए। खून की रफ्तार बढ़ जाए। रक्तचाप बढ़ जाए। हृदय की धड़कन होने लगे। बेचैन हो जाए। फिर कोई उसे कहे, घबड़ाओ मत। यह लालटेन हाथ में लो और चलो। वह आदमी कहे कि मैं चलूंगा बाद में। मैं आपसे पूछता हूं कि आपने लालटेन लेकर उस सांप को देखा है? अगर आपने लालटेन लेकर उस सांप को देखा है, तो मुझे यह बताइए कि सांप और रस्सी में क्या संबंध है? तो वह आदमी जिसके हाथ में लालटेन है, क्या कहेगा? वह कहेगा, जब लालटेन लेकर वहां कोई जाता है, तो रस्सी ही रह जाती है; सांप होता ही नहीं। और जब अंधेरे में कोई जाता है, तो सांप होता है, रस्सी होती ही नहीं।

लेकिन एक आदमी खबर देता है रस्सी की और एक आदमी खबर देता है सांप की, तो सुनने वाले को लगता है कि दो चीजें हैं, सांप है और रस्सी है। फिर वह पूछता है, सांप और रस्सी के बीच संबंध क्या है? फिर बुद्धिमान लोग हैं हमारे पास, जो संबंध के लिए बड़े—बड़े शास्त्र निर्मित करते हैं कि क्या संबंध है।

न, वे भी नहीं गए हैं। उन्होंने भी खबर सुनी है दो तरह के लोगों से। अज्ञानी तो कम से कम सांप देखकर लौटा है। वे उतने भी नहीं गए हैं कि सांप भी देखकर लौट आएं। वे अपने घर में ही बैठकर खबरों का हिसाब जोड़ रहे हैं। कुछ लोग कहते हैं, सांप है; कुछ लोग कहते हैं, रस्सी है! तो जरूर दो चीजें हैं, इन दोनों के बीच क्या संबंध है?

सारी दुनिया में इन दो के बीच, दो के नाम कुछ भी हों— संसार हो, मोक्ष हो; आत्मा हो, पदार्थ हो; माइंड हो, मैटर हो— कुछ भी नाम हों, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। दो के बीच संबंध क्या है? दुनिया में सैकड़ों दर्शनशास्त्र विकसित हुए हैं। कोई कहता है, दोनों पैरेलल हैं, समानांतर हैं। कोई कहता है, दोनों के बीच संबंध है। कोई कहता है, दोनों के बीच कोई भी संबंध नहीं है, दोनों अपने स्वभाव से ही वर्तन करते रहते हैं। कोई कहता है कि एक झूठ है, दूसरा सत्य है। कोई कहता है, दूसरा झूठ है, पहला सत्य है। लेकिन ये सब वे ही लोग हैं, जिन्होंने प्रकाश ले जाकर देखा नहीं कि वहां दो हैं भी!

कृष्ण कहते हैं कि अज्ञान, अंधकार मिट जाता है। इस बुद्धियोग के द्वारा जो ज्योतिर्प्रज्ञा प्रकट होती है, जो ज्योति प्रकट होती है, अंधकार मिट जाता है।

इस अंधकार मिट जाने में दो नहीं रह जाते, एक ही रह जाता है। शायद यह भी कहना ठीक नहीं कि एक रह जाता है, क्योंकि एक से हमें तत्काल संख्या का बोध होता है। इसलिए इस देश ने बड़ा कीमती शब्द खोजा, अद्वैत। यह भी नहीं कहा कि एक रह जाता है। कहा कि बस, दो नहीं रह जाते। क्योंकि एक रह जाता है, इसमें भी ऐसा लगता है कि हमें संख्या का आग्रह है। और जब भी आप एक का सोचेंगे, तो दो का तत्काल खयाल आएगा।

एक का कोई अर्थ ही नहीं होता, अगर दो न होते हों। एक का कुछ अर्थ ही होता है दो के संदर्भ में। इसलिए फिर जिन्होंने जाना था प्रकाश में, उन्होंने इतना ही कहा कि दो नहीं हैं वहां। एक है, यह भी हम नहीं कहते। हम इतना ही कहते हैं, दो वहां नहीं हैं। वे दोनों वहां नहीं हैं, जो तुमने जाने हैं, जो तुमने सुने हैं। वहां कुछ है, एक्स, अज्ञात, रहस्यमय, और वह जानने से ही जाना जा सकता है। कहे हुए वक्तव्य, सुने हुए वचन, पढ़े हुए शब्द, उसको नहीं जनाते हैं। धर्म एक अंतर—क्रांति है, एक अल्केमी है, एक कीमिया है, जिसमें आदमी अपने को बदले और जानने के नये तलों पर स्थापित हो, नये प्रकाश और नई आंखें उपलब्ध हों, नई ज्योति और नया चैतन्य आविर्भूत हो, तो दिखाई पड़ता है।

हम सब जानने के पहले जानना चाहते हैं। इससे इस दुनिया में बहुत—सा मिथ्या, बहुत—सा फाल्स, सूडो ज्ञान प्रचलित हो जाता करते कि जो हम कह रहे हैं, उन शब्दों के पीछे कोई प्राण हैं? है। हम सब जानने के पहले जानना चाहते हैं! पक्षी उड़ने के पहले उन्हें हमने जाना?

जानना चाहता है कि उड़ना क्या है! तैरने के पहले हम जानना चाहते हैं कि स्वाद क्या है उस तैरने का! स्वतंत्रता के पहले, आकाश में पंख फैलाने के पहले, हम जानना चाहते हैं, स्वतंत्रता का अर्थ क्या है!

तब हमें बताने वाले लोग भी मिल जाते हैं। क्योंकि दुनिया में जब किसी चीज की मांग हो, डिमांड हो, तो सप्लाई भी हो जाती है। अर्थशास्त्री कहते हैं कि जिस चीज की भी मांग करो, कोई न कोई देने वाला जरूर मिल जाएगा। बस मांग होनी चाहिए; बाजार का नियम है।

तो जब हम मांग करते हैं कि बिना जाने हमें जानना है, तो पंडितों का एक बड़ा वर्ग है सारी दुनिया में, जो आपको बिना जाने जनाने के लिए राजी है। जो कहता है, क्या जरूरत है! ठीक है, यह रही किताब, ये रहे शब्द, इन्हें कंठस्थ कर लो। इनको पी जाओ। इनको याद कर लो। इनको दोहराने लगो। तोतों की तरह इनको रट लो। ज्ञान हो जाएगा!

हमारे पास ऐसा ज्ञान है। कभी आपने सोचा है कि आपका ईश्वर, आपकी आत्मा तोते की तरह रटा हुआ ज्ञान है! आपके पिता से आपको मिल गया है। कृपा करके आप अपने बेटे को भी दे जाएंगे। कोई आपको रटा गया, आप किसी और को रटा देंगे। लेकिन अनुभव की, खुद की प्रतीति, खुद के साक्षात्कार की एक किरण भी भीतर नहीं है!

इसीलिए तो धर्म की इतनी चर्चा होती है और धर्म इतना व्यर्थ मालूम होता है। और धर्म का इतना—इतना व्यापक काम चलता है, और परिणाम कहीं भी नहीं दिखाई पड़ता। सारी दुनिया में प्रकाश की चर्चा है और घनघोर अंधकार है! और जहां देखो वहां परमात्मा का विचार चल रहा है—मदिर में, मस्जिद में, चर्च में, गुरुद्वारे में। सब जगह प्रभु की स्तुति चल रही है, और प्रभु की कहीं भी कोई झलक किसी आंख में दिखाई नहीं पड़ती! अजीब धोखा है!

और आदमीयत अपने को धोखा देने में इतनी कुशल मालूम पड़ती है कि जिसका हिसाब नहीं। जो है ही नहीं हमारे जीवन में बिलकुल, उसकी हम कितनी चर्चा कर रहे हैं! और चर्चा से ही तृप्त हैं। और चर्चा करके सोच रहे हैं, समाप्त हुआ काम। एक औपचारिक बात है। कर लेते हैं, सुन लेते हैं बचपन से, फिर उसे दोहराए चले जाते हैं! फिर जिंदगीभर कभी खयाल भी नहीं मैं उस आदमी को धार्मिक कहता हूं जो अपने एक—एक शब्द को तौलेगा। ईश्वर को मैंने जाना हो, तो ही इस शब्द को ओंठ पर लाऊं। अन्यथा यह शब्द बहुत कीमती है और उन ओंठों पर लाने के योग्य नहीं है, जिन ओंठों ने सिर्फ बासे शब्द को उधार ले लिया हो और दोहरा रहे हों।

आत्मा मैंने जानी है? तो मत करें उपयोग उसका, शब्द को ही मत उपयोग करें। अगर शब्द से आप बच सकें, तो शायद बेचैनी अनुभव हो कि मैं भी तो जानूं कि क्या है यह? लेकिन हम शब्दों से इतने राजी हैं, इतने राजी हैं! यह लंबी कंडीशनिंग है।

एक आखिरी बात। रूस में एक बहुत बड़ा मनोवैज्ञानिक हुआ, पावलव। उसने कंडीशंड रिफ्लेक्स का एक सिद्धात प्रस्तावित किया। कीमती सिद्धांत है। और आत्यंतिक रूप से सही नहीं है, फिर भी बहुत दूर तक सही है। एक कुत्ते के सामने वह रोटी करता था, रोटी देता था और तभी घंटी बजाता था। रोटी देखकर कुत्ते की लार टपकती थी, तभी वह घंटी भी सुनता था। फिर पंद्रह दिन के बाद रोटी तो नहीं दी, सिर्फ घंटी बजाई और कुत्ते के मुंह से लार टपकने लगी।

अब घंटी से लार के टपकने का कोई भी संबंध नहीं है। कितनी ही घंटी बजाओ, कुत्ता लार नहीं टपकाएगा। लेकिन यह पावलव का कुत्ता लार टपकाने लगा। तो पावलव कहता था, यह कंडीशनिंग हो गई, यह संस्कार हो गया। रोटी दी, कुत्ते की लार टपकी। रोटी के साथ घंटी बजी, कान ने घंटी सुनी। रोटी और घंटी संयुक्त हो गए, एसोसिएटेड हो गए। अब रोटी तो नहीं दी, सिर्फ घंटी बजाई। घंटी बजते ही कान में घंटी पड़ी, लार की ग्रंथियों ने लार छोड़नी शुरू कर दी।

हम भी करीब—करीब शब्दों के साथ इसी तरह कंडीशंड हो गए हैं। मंदिर दिखा, हाथ जोड़ लिए। यह बिलकुल कंडीशनिंग है। बचपन से पिता के साथ गए होंगे, कहा कि मंदिर है, पिता ने हाथ जोड़े, आपने हाथ जोड़ लिए। अब कंडीशनिंग हो गई। अब मंदिर दिखता है, हाथ जुड़ जाता है। आप सोचते हैं, आप बड़े धार्मिक हैं! यह सिर्फ घंटी बजी और लार टपकने लगी!

इतना आसान नहीं! हाथ जोड़े, चले गए। निपटारा हो गया मंदिर से। कभी कोई उत्सव आ गया धर्म का, मना लिया। तो धर्म एक सामाजिक कृत्य होकर रह जाता है।

इससे जागना पड़े। इससे जागना पड़े, तो हम किसी दिन जान पाएं उस प्रकाश को, उस अमृत को, उस आशीर्वाद को, उस लोक को, जिसकी कृष्ण जैसे लोग चर्चा करते हैं। वह हमारे बिलकुल निकट है, बस जरा ही मुड़ने की बात है। और हम अपने इस तथाकथित बंधे हुए मन से जरा भी हिल सकें, तो वह किनारे ही है हमारे। एक छलांग में वह हमें उपलब्ध हो जाए।

लेकिन हम इस मन को ही पकड़कर बैठे रहें, तो शब्दों की घंटियां बजती रहेंगी और अनुभव की झूठी लार टपकती रहेगी, कहीं उसका कोई संबंध नहीं है। किसी ने कहा, ईश्वर; किसी ने कहा, गीता; और हमारे भीतर जरूर कोई घंटी बज जाती है।

मैं इधर हैरान हुआ। अगर मैं गीता के नाम से वही बात कहूं तो घंटी बज जाती है आपके भीतर। और अगर गीता का नाम न लूं और वही बात कहूं कोई घंटी नहीं बजती! यही बात मैं कुरान का नाम लेकर कहूं मुसलमान के भीतर घंटी बजने लगती है! यही बात गीता का नाम लेकर कहूं घंटी बंद हो जाती है! आश्चर्यजनक है। बहुत आश्चर्यजनक है!

ऐसा बंधा हुआ, ऐसा तोते जैसा मन, यंत्र जैसा मन, धार्मिक नहीं हो सकता। इस मन को तोड़ना, इस मन को रोकना, इस मन के पार होना जरूरी है।

गीता दर्शन–भाग–5
कृष्ण की भगवता और डांवाडोल अर्जुन—(प्रवचन—पांचवां)
अध्याय—10

अर्जुन उवान

परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान्।
गुरुक शाश्वतं दिव्यमादिदेवमज विभुम्।।12।।
आहुस्त्वमृषय सर्वे देवर्षिर्नारदस्तथा।
असितो देवलो व्यासः स्वयं चैव ब्रवीषि मे।।13।।

सर्वमेतद्दतं मन्ये यन्मां वदसि केशव।
न हि ते भगवच्छक्तिं क्ट्रिर्देवा न दानवाः।।14।।
हम प्रकार श्रीकृष्ण के वचनों को सुनकर अर्जुन बोला हे भगवन— आप परम ब्रह्म और परम धाम एवं परम पवित्र हैं क्योंकि आपको सब ऋषिजन सनातन दिव्य पुरुष एवं देवों का भी आदिदेव अजन्मा और सर्वव्यापी कहते हैं वैसे ही देवऋषि नारद तथा असित और देवल ऋषि तथा महर्षि व्यास और स्वयं आप भी ऐसा मेरे प्रति कहते हैं।

और हे केशव जो कुछ भी मेरे प्रति आय कहते हैं ड़स समस्त को मैं सत्य मानता हूं। हे भगवन— आप के लीलामय स्वरूप को न दानव जानते हैं और न देवता ही जानते हैं।

कृष्ण ने जो भी अर्जुन को कहा, वह बुद्धि से मानने जैसा नहीं है; तर्क उसके विरोध में जाएगा, विचार उस पर संदेह करेंगे। अहंकार अस्वीकार करना चाहेगा उस सबको। क्योंकि कृष्ण ने जो कहा है, उससे ज्यादा कठिन बात, अहंकार को मानना, दूसरी नहीं हो सकती।

कृष्ण भी वैसे ही हड्डी—मांस—मज्जा से बने हैं, जैसे हड्डी—मांस— मज्जा से अर्जुन बना है। कृष्ण को भी वैसे ही भूख लगती है, जैसी अर्जुन को लगती है। कृष्ण भी वैसे ही थकते हैं और विश्राम करते हैं, जैसा अर्जुन थकता है और विश्राम करता है। कृष्ण को अर्जुन मान सकता है महामानव सरलता से, लेकिन ईश्वर मानने में बड़ी कठिनाई है। ईश्वर मानने का अर्थ ही ठीक से हम समझ लें, तो कठिनाई भी समझ में आ जाए।

जब हम एक किसी व्यक्ति को महामानव मानते हैं, तो भी हम अपने और उसके बीच जो अंतर देखते हैं, वह क्वांटिटी का, डिग्रीज का, कम का, परिमाण का है। हमारे जैसा ही, हमारे ही आयाम में, हमसे थोड़ा ज्यादा। लेकिन जैसे ही हम किसी व्यक्ति को भगवान मानते हैं, हमारा उससे सब संबंध टूट जाता है। और हमारे और उसके बीच जो अंतर है, वह क्वांटिटेटिव नहीं, क्वालिटेटिव हो जाता है। वह फिर गुण का अंतर है। फिर वह परिमाण और मात्रा का भेद नहीं है। फिर हमारे और उसके बीच कोई सेतु, कोई संबंध नहीं है। वह दूसरे ही लोक का अस्तित्व है। हमारे और उसके बीच एक अलंध्य खाई है।

इसलिए किसी व्यक्ति को महामानव मान लेने में अड़चन नहीं है, महात्मा मान लेने में अड़चन नहीं है। हमसे संबंध नहीं टूटता। हमारे ही रास्ते पर कोई हमसे दो कदम आगे होता है, कोई दस कदम आगे होता है। अहंकार को तकलीफ होती है इसमें भी कि किसी को मैं आगे मानूं! लेकिन फिर भी अहंकार इससे नष्ट नहीं होता। हम किसी को अपने से आगे मान सकते हैं।

कभी—कभी ऐसा भी होता है कि अपने से किसी को आगे मानने में भी अहंकार को तृप्ति मिलती है। वह तृप्ति जरा सूक्ष्म है। जिसे हम अपने से आगे मानते हैं, यह मानने के कारण ही हम उससे संयुक्त हो जाते हैं। और यह मानने के कारण ही हम उसको पहचानने वाले हो जाते हैं। और यह मानने के कारण ही हम भी अपने भविष्य में कभी उस जैसा होने की संभावना का अहंकार पोषित कर सकते हैं।

लेकिन किसी व्यक्ति को ईश्वर मानने में हमारी सारी तर्क—सरणी टूट जाती है, हमारी सारी अंतर्व्यवस्था अस्तव्यस्त हो जाती है। ईश्वर मानने का अर्थ ही यह हुआ कि वह हमसे बिलकुल भिन्न है। भिन्नता इतनी गहरी है कि हम उसे समझ भी नहीं पा सकते कि वह क्या है।

कृष्ण ने जो भी कहा है, वह असंभव है। असंभव है बुद्धि के लिए। अर्जुन उसके उत्तर में जो कह रहा है, वह बहुत सोचने जैसा है। और जैसा ऊपर से दिखाई पड़ता है, वैसा उसका अर्थ नहीं है। और जैसा भी आपको अर्थ दिखाई पड़ता रहा होगा, थोड़ा गहरे उतरेंगे, तो उससे बिलकुल विपरीत अर्थ पाएंगे।

अर्जुन ने कृष्ण की ये सारी बातें सुनकर कि मैं परमात्मा हूं; मैं ही सबमें व्याप्त हूं; सब कुछ मेरे ही द्वारा धारण किया गया है, समस्त ऋषियों में मेरे ही भाव प्रकट हुए हैं; और समस्त श्रेष्ठताओं और समस्त शक्तियों का मैं ही आधार और बीज हूं; और जहां भी जीवन में कोई सुगंध ऊंचाई छूती है, और जब भी कोई शिखर गौरीशंकर होता है, तब उस श्रेष्ठता की अंतिम स्थिति में जो खिलता है, जो फूल खिलता है, वह मैं ही हूं। मैं ही इस जीवन का आभिजात्य, मैं ही इस जीवन का रस, मैं ही इस जीवन का प्राण, मैं ही इस जीवन का केंद्र हूं। ये बातें कृष्ण ने कहीं, जो बड़ी असंभव

हैं किसी बुद्धि को मानने के लिए। अर्जुन ने जो उत्तर दिया, इसलिए बहुत सोचने जैसा है।

इस प्रकार कृष्ण के वचनों को सुनकर अर्जुन ने कहा, हे भगवन्, आप परम ब्रह्म और परम धाम एवं परम पवित्र हैं। आपको सब ऋषिजन सनातन दिव्य पुरुष एवं देवों का भी आदिदेव, अजन्मा और सर्वव्यापी कहते हैं। वैसे ही देवऋषि नारद तथा असित और देवल ऋषि तथा महर्षि व्यास और स्वयं आप भी ऐसी ही घोषणा मेरे प्रति करते हैं। और हे केशव, जो कुछ भी मेरे प्रति आप कहते हैं, इस समस्त को मैं सत्य मानता हूं। हे भगवन्, आपके लीलामय स्वरूप को न दानव जानते हैं और न देवता ही जानते हैं।

ठीक ऊपर से देखने पर लगेगा कि अर्जुन ने सब कुछ स्वीकार कर लिया। काश, अर्जुन यह सब कुछ स्वीकार कर ले, तो गीता यहीं समाप्त हो जाती; आगे गीता निष्प्रयोजन है। फिर कहने को कुछ और बचता नहीं, और समझाने को भी कुछ बचता नहीं। आखिरी बात पूरी हो गई। अल्टिमेट, जो आत्यंतिक घटना घटनी चाहिए अर्जुन के भीतर, वह घट गई। लेकिन गीता समाप्त नहीं होती है और कृष्ण को और भी श्रम लेना पड़ता है। यह वक्तव्य जैसा दिखाई पड़ता है, वैसा नहीं होगा, इसीलिए। इसमें तीन बातें खयाल में ले लेने जैसी हैं।

अर्जुन कहता है कि आप परम ब्रह्म, परम धाम, परम पवित्र हैं, क्योंकि ऐसा ही ऋषियों ने भी कहा है, महर्षियों ने भी कहा है।

अर्जुन को अभी भी यह सीधी प्रतीति नहीं है। अभी भी गवाह की जरूरत है; साक्षी की, विटनेस की जरूरत है। अर्जुन मानता है, क्योंकि सब ऋषिजन सनातन दिव्य पुरुष एवं देवों के भी आदिदेव, अजन्मा और सर्वव्यापी आपको स्वीकार करते हैं। देवऋषि नारद—ये बड़े नाम हैं, उस युग के बड़े नाम हैं— असित और देवल और महर्षि व्यास, और इतना ही नहीं, आप स्वयं भी मेरे प्रति ऐसा ही कहते हैं।

ध्यान रहे, जब भी हमें साक्षी की, गवाह की जरूरत पड़ती है, तो उसका अर्थ होता है, सत्य का साक्षात्कार सीधा नहीं है। अर्जुन यह नहीं कहता कि ऐसा मैं अनुभव करता हूं। अर्जुन कहता है, जिनकी बात मानी जा सके, वे भी ऐसा ही कहते हैं। अर्जुन कहता है, आप जो कह रहे हैं, वह प्रामाणिक मालूम पड़ता है; क्योंकि जो भी विचारशील हैं, जिन्होंने भी जाना है, उन्होंने भी ऐसा ही कहा है।

यह इमीजिएट, यह सीधा—सीधा अनुभव नहीं है। कहीं ऐसा अगर हो कि महर्षि व्यास ऐसा न कहें, और देवल और असित इनकार कर दें, और नारद कह दें कि नहीं, ये कृष्ण भगवान नहीं हैं, तो अर्जुन की क्या गति हो? तो अर्जुन डांवाडोल हो जाए।

उसका सत्य, उसका अपना सत्य नहीं है, गवाहों का सत्य है। किन्हीं की गवाही पर वह अपनी मान्यता को निर्धारित कर रहा है। गवाही बहुत मजबूत है।

साधारण आदमी की यही मनोदशा है। उसके पास अपना कोई सत्य नहीं होता। कोई और कहता है, तो वह मान लेता है। कोई और बदल जाएगा कल, तो वह भी बदल जाएगा।

लेकिन महर्षि व्यास जो कहते हैं, वह सत्य कहते हैं, यह अर्जुन कैसे जानेगा! बड़ी मजे की बात है। तब अर्जुन खोजेगा कि और कौन—कौन ऋषि हैं, जो महर्षि व्यास को महर्षि मानते हैं! वह भी निर्भर करेगा किसी गवाही पर।

यह तो इनफिनिट रिग्रेस है, इसमें तो कहीं कोई उपाय नहीं हो सकता। अ को आप मानते हैं, क्योंकि ब कहता है। ब को आप मानते हैं, क्योंकि स कहता है। स को आप मानते हैं, क्योंकि द कहता है। लेकिन आप दूसरे पर निर्भर हैं। और जो मान्यता दूसरे पर निर्भर है, वह कभी भी गहरी नहीं हो सकती। क्योंकि जब कृष्ण को सीधा सामने पाकर सीधा नहीं माना जा सकता, तो महर्षि व्यास के वक्तव्य को कैसे गहरे में माना जा सकता है?

कृष्ण सामने खड़े हैं—यह बहुत मजे की बात है— यह ऐसी स्थिति है कि अंधा सूरज के सामने खड़ा हो और कहे कि ही, मैं मानता हूं कि तुम सूरज हो और तुममें प्रकाश है, क्योंकि अ ने भी ऐसा कहा है, ब ने भी ऐसा कहा है, स ने भी ऐसा कहा है! बड़े— बड़े ज्ञानी भी यही कहते हैं कि सूरज में प्रकाश है; और तुम भी मेरे प्रति कहते हो कि तुम प्रकाशवान हो!

लेकिन अंधे को खुद दिखाई नहीं पड़ रहा। क्योंकि अगर अंधे को खुद दिखाई पड़ता हो, तो गवाही की कोई भी जरूरत नहीं है। सत्य के लिए गवाही की कोई भी जरूरत नहीं है। केवल असत्य के लिए गवाही की जरूरत पड़ती है। सत्य तो स्वयं ही अपनी गवाही है। और अगर सत्य स्वयं अपनी गवाही नहीं दे सकता, तो फिर और कौन उसकी गवाही दे सकेगा?

अर्जुन को प्रतीति सीधी नहीं है। अर्जुन अभिभूत है, प्रभावित है, लेकिन बड़े गवाहों के नाम से; सीधे कृष्ण से नहीं। अगर उसे पता चल जाए कि महर्षि व्यास ने नहीं कहा है ऐसा, तो उसके सब आधार डगमगा जाएं, उसकी श्रद्धा का पूरा भवन गिर जाए।

दूसरे की गवाही पर निर्भर जो भी व्यक्ति जीता है, वह बहुत दरिद्र है, उसके पास सीधी देखने की आंख नहीं है। एक बात।

दूसरी बात, अर्जुन कृष्ण को प्रेम करता हे, यह जरूर सच। और प्रेम करता है इसीलिए उसने, अर्जुन ने उन लोगों की गवाहियां चुन ली हैं, जो कृष्ण को भगवान कहते हैं। अगर अर्जुन कृष्य को प्रेम न करे, तो वह दूसरे गवाह चुनेगा, जो भगवान कृष्ण को नहीं कहते। और ऐसा नहीं है कि दूसरे गवाह नहीं हैं।

कृष्ण के चचेरे भाई नेमिनाथ जैनियों के तीर्थंकर हैं। वे जैन—दीक्षा लेकर जैन संन्यासी हो गए थे। और फिर जैनों के चौबीस तीर्थंकरों में एक स्थान पर पहुंच गए। लेकिन आप जानकर हैरान होंगे कि जैन मानते हैं कि कृष्ण ने इतना पाप किया और करवाया कि वे सातवें नर्क में सड़ रहे हैं! बहुत कठिनाई मालूम पड़ेगी।

जैनों की दृष्टि से बात में थोड़ा मजा है, सोचने जैसा मजा है। क्योंकि जैन यह कहते हैं कि अर्जुन तो भाग रहा था और अहिंसक होना चाहता था। कहता था, नहीं करूंगा युद्ध। इन अपने लोगों को काटने से क्या है सार? और धन भी पाकर क्या मिलेगा? और राज्य भी मिल गया, तो क्या होगा? वह तो विरत हो रहा था, विराग जग रहा था। वह तो छोड्कर जा रहा था युद्ध को। वह तो संन्यास, त्याग, पलायन में प्रवेश कर रहा था। लेकिन कृष्ण ने उसे समझा— बुझाकर युद्ध में जूझने को राजी कर लिया।

निश्चित ही, महाभारत का अगर कोई भी पाप है, तो कृष्ण के नाम जाएगा, अर्जुन के नाम नहीं जा सकता— अगर कोई पाप है। अर्जुन तो भाग ही रहा था। यह पूरी गीता अर्जुन को समझाने के लिए कृष्ण ने कही है कि वह युद्ध में खड़ा रहे, भागे न। अगर कोई पुण्य है, तो वह कृष्ण के नाम जाएगा; अगर कोई पाप है, तो कृष्ण के नाम जाएगा। अब यह हम पर निर्भर करेगा कि हम उसे पुण्य मानें या पाप मानें।

जैनों की दृष्टि में चूंकि अहिंसा कसौटी है समस्त पाप—पुण्य की; चूंकि भयंकर हिंसा हुई, इसलिए पाप हुआ। जिम्मेवार कृष्ण हैं। इसलिए जैनों ने बड़ी हिम्मत की है। हिम्मत की बात है। कृष्ण जैसे व्यक्ति को नर्क में डालना हिम्मत की बात है। हाथ में तो हमारे है, क्योंकि किताब हम लिखते हैं, नर्क हमारे हैं। कृष्ण नर्क में हैं या नहीं, इसका तो कोई जानने का उपाय नहीं है। लेकिन जैन की दृष्टि में कृष्ण नर्क में होने चाहिए। तो सातवें नर्क में उनको डाला है। लेकिन पीड़ा तो जैनों को भी मन में रही है, क्योंकि आदमी तो लाजवाब था, उनके सिद्धांत से मेल नहीं खाया। आदमी तो गजब का था, प्रतिभा तो उसकी अनूठी थी। सिद्धांत से मेल नहीं खाया, इसलिए सातवें नर्क में डाला है। लेकिन अपराध भी भीतर मन में लगा होगा कि यह आदमी नर्क में डालने जैसा नहीं है, स्वर्ग में बिठाने जैसा है। इसलिए फिर उन्होंने एक तरकीब की व्यवस्था की। आदमी का मन बड़ी चालाकियां करता है, बड़े गणित बिठाता है।

तो जैनों ने एक नियम बनाया कि कृष्ण इस युग में तो सातवें नर्क में हैं, लेकिन आने वाले कल्प में जैनों के पहले तीर्थंकर होंगे! एक बैलेंस, एक संतुलन हो गया। श्रेष्ठतम वे जो कर सकते थे, वह यह कि आने वाले कल्प में जब सृष्टि विनष्ट हो जाएगी और पुनर्निर्मित होगी, तो जो पहला तीर्थंकर होगा जैनों का, वह कृष्ण की आत्मा ही पहली तीर्थंकर होगी।

इस महाभारत की हिंसा में उलझने के कारण तीर्थंकर की हैसियत के आदमी को सातवें नर्क में डालने की मजबूरी है। लेकिन इस दुख को भोगकर और अनुभव से गुजरकर ऐसी भूल कृष्ण अब दुबारा नहीं करेंगे। आदमी तो गजब के हैं, अब यह भूल उनसे दुबारा नहीं होगी। तो वे पहले तीर्थंकर हो सकते हैं।

निश्चित ही, अर्जुन के मन में अगर कृष्ण के प्रति प्रेम न होता, तो उसने गवाही दूसरी चुनी होतीं। ये तीन—चार जो गवाहों के नाम लिए हैं, ये ही गवाह नहीं थे, और भी गवाह थे। वे लोग भी थे, जिन्होंने कृष्ण को नर्क में डाला है।

हम अपने प्रेम से अपनी गवाही चुन लेते हैं। अर्जुन का प्रेम है कृष्ण के प्रति, लगाव है। उसने जो कृष्ण के अनुमोदन में हैं, उन लोगों के नाम चुन लिए हैं। लेकिन यह प्रेम श्रद्धा नहीं है, यह मित्र के प्रति प्रेम है। यह लगाव समान तल पर है। अर्जुन कहता है कि मानता हूं आप जो भी कहते हैं, सत्य मानता हूं। लेकिन यह मान्यता सीधी नहीं है, यह बात ठीक से समझ लें।

काश यह मान्यता सीधी होती, तो उसी क्षण गीता समाप्त हो जाती। बात पूरी हो गई थी। फिर कृष्ण का आदेश मानने के अतिरिक्त और कोई उपाय न था। लेकिन अभी भी आदेश माना नहीं जा सकता। अर्जुन कहता है कि आप भगवान हैं, लेकिन अभी भी संदेह किए चला जाएगा। और जब कृष्ण बुद्धि से उसे सब जगह से काट—छांट डालेंगे और जब उसकी बुद्धि को कोई उपाय नहीं मिलेगा, तो वह कहेगा कि ऐसे मेरी तृप्ति नहीं होती। आप तो अपना विराट भगवान का रूप दिखाएं, तब शायद!

नहीं, अभी उसका स्वयं का राजी होना नहीं हुआ है। बुद्धि से गवाह जुटाकर वह अपने को समझा रहा है। इस सूत्र में जगह—जगह उसकी खबर है।

ऋषि तो कहते हैं कि आप परम ब्रह्म हैं, और इतना ही नहीं, स्वयं आप भी ऐसा मेरे प्रति कहते हैं। वह कृष्ण को भी गवाहियों की कतार में खड़ा कर रहा है। वह इनकी बात भी न मानता। लेकिन बड़ी मुश्किल है। कृष्ण खुद कह रहे हैं कि मैं भगवान हूं। तो वह कहता है कि और आप भी ऐसा ही मेरे प्रति कहते हैं। तो उसकी हिम्मत नहीं जुट पाती कि वह संदेह खड़ा करे। लेकिन संदेह उसके भीतर है।

जिसके भीतर संदेह नहीं है, वह गवाह नहीं जुटाएगा:। गवाह हम जुटाते इसलिए हैं कि भीतर के संदेह को काटने का और कोई उपाय नहीं है। भीतर के संदेह जितने बड़े होंगे, उतने बड़े गवाह हम जुटाएंगे।

अर्जुन को अगर सड़क चलता हुआ कोई भी आदमी कह दे कि कृष्ण भगवान हैं, तो वह मानेगा नहीं; उसका संदेह बड़ा है। जब महर्षि व्यास ही तराजू पर न बैठकर कहें कि हां, ये भगवान हैं, तब तक वह मानेगा नहीं!

जितना बड़ा हो संदेह, उतनी बड़ी गवाही चाहिए। यह थोड़ा उलटा मालूम पड़ेगा! हम जितनी बड़ी गवाही खोजते हैं, उतने बड़े संदेह की खबर देते हैं। अगर संदेह बिलकुल न हो, तो गवाही की बिलकुल जरूरत न पड़ेगी। अगर संदेह शून्य हो, तो सारी दुनिया भी विपरीत गवाही दे, तो भी कोई अंतर नहीं पड़ेगा।

विवेकानंद रामकृष्ण के पास गए पूछने कि क्या ईश्वर है? रामकृष्ण को कहना चाहिए था कि महर्षि फलां कहते हैं कि है, उपनिषद कहते हैं कि है, वेद कहते हैं कि है। ऐसा कहना चाहिए था। ऐसा किसी भी पंडित के पास विवेकानंद जाते, तो वह यही कहता। गए भी थे वे। रवींद्रनाथ के पिता के पास गए थे।

महर्षि देवेंद्रनाथ बड़े ज्ञानी थे, बड़े पंडित थे। उनके पास भी विवेकानंद, रामकृष्ण से मिलने के पहले, गए थे। आधी रात— गंगा में बजरे पर महर्षि का निवास था— तो कूदकर आधी रात अंधेरे में बजरे पर चढ़ गए; द्वार खोला। रात आधी; महर्षि अपने ध्यान में बैठे थे आंख बंद करके। जाकर कालर पकड़कर उनका गला हिलाया और कहा कि मैं यह पूछने आया हूं क्या ईश्वर है?

महर्षि समझा सकते थे, बता नहीं सकते थे। तर्क दे सकते थे, खुद का कोई अनुभव नहीं था। तो महर्षि ने कहा, युवक, बैठो।

मैं तुम्हें शास्त्रानुसार समझाऊंगा। लेकिन विवेकानंद छलांग लगाकर वापस गंगा में कूद गए। महर्षि ने आवाज दी कि लौट आओ, मैं तुम्हें सब तरह से समझाऊंगा। विवेकानंद ने कहा, समझने मैं नहीं आया हूं। अगर आप जानते हों, तो हां कह दें, या न कह दें। आप जानते हों, तो बोलें, अन्यथा चुप रह जाएं। क्योंकि शास्त्र तो मैं भी पढ़ लूंगा। देवेंद्रनाथ की हिम्मत न जुटी कहने की कि हां, मैं जानता हूं।

बाद में विवेकानंद कहते थे कि देवेंद्रनाथ की झिझक ने सब कुछ कह दिया। जानते थे बहुत, लेकिन वह सब किसी और के द्वारा जानते थे; सीधी कोई प्रतीति न थी।

फिर यही युवक रामकृष्ण के पास गया। उतनी ही अकड़ से, उतने ही जोर से। रामकृष्ण को भी हाथ पकड़कर पूछा है कि ईश्वर है? लेकिन हालत बिलकुल बदल गई। जैसे देवेंद्रनाथ कंप गए थे आधी रात इसका सवाल सुनकर; रामकृष्ण ने जब देखा आंख उठाकर विवेकानंद की तरफ, तो विवेकानंद खुद कंप गए। रामकृष्ण ने कहा, है या नहीं, यह छोड़ो। तुम्हें जानना हो तो बोलो? और

अभी जानना है? हाथ—पैर कंप गए विवेकानंद के। विवेकानंद ने कहा कि मैं जरा सोचकर आऊं। यह मैं सोचकर नहीं आया! रामकृष्ण ने कहा, है या नहीं, यह सवाल बेकार है। तुम्हें जानना, तो मैं जना सकता हूं।

रामकृष्ण ने विवेकानंद का हाथ पकड़ लिया। इस बातचीत में विवेकानंद ने जो हाथ पकड़ा था, वह छूट गया था। रामकृष्ण ने हाथ पकड़ लिया और कहा कि ऐसे नहीं जाने दूंगा। जब आ ही गए हो, तो अच्छा होगा, जानकर ही जाओ! विवेकानंद ने कहा है कि फिर मेरी हिम्मत रामकृष्ण से कभी कुछ पूछने की न पड़ी। क्योंकि यहां पूछना आग से खेलना था—सीधा।

रामकृष्ण ने नहीं कहा कि उपनिषदों ने कहा है, वेद ने कहा है, बुद्ध ने कहा है, कृष्ण ने कहा है। बेकार हैं बातें। अगर रामकृष्ण को खुद ही पता है, तो ये सब गवाहियां हैं या नहीं, निर्मूल्य है। और अगर रामकृष्ण को खुद पता नहीं है, तो दुनिया में सबने कहा हो, तो भी उनकी सबकी गवाहियों का जोड़ भी सत्य नहीं बन सकता। कितनी ही गवाहियों का जोड़ भी सत्य नहीं बन सकता; और एक छोटे—से सत्य को भी सारी दुनिया के गवाह मिलकर विपरीत कहें, तो भी असत्य नहीं कर सकते।

लेकिन यह अर्जुन जो कह रहा है, इसकी बात को ठीक से समझ लेना जरूरी है। क्योंकि उस पर ही आगे की पूरी समझ निर्भर करेगी। अर्जुन को भरोसा जरा भी गहरे में नहीं है, ऊपर— ऊपर है। लगाव है उसका। मानना चाहता है कि कृष्ण भगवान हों; मान नहीं पाता है। अपने को मनाना भी चाहता है। यह चेष्टा वास्तविक है, प्रामाणिक है। चाहता है कि मान ले कि कृष्ण भगवान हैं, इसलिए गवाही भी जुटाता है। लेकिन फिर भी गवाहियां ऊपर ही रह जाती हैं। और तब वह कहता है, स्वयं आप भी ऐसा ही मेरे प्रति कहते हैं।

और हे केशव, जो कुछ भी मेरे प्रति आप कहते हैं, इस समस्त को मैं सत्य मानता हूं।

यह मानना जानना नहीं है। यह मानना वस्तुत: मानना नहीं है, क्योंकि इतने बड़े सत्य को मानते ही तो जीवन रूपांतरित हो जाता है। यह तो मानते ही अर्जुन का दूसरा जन्म हो जाए। लेकिन अर्जुन वही का वही रहता है यह मानने के बाद भी।

जिस धर्म को मानने के बाद आपका जीवन न बदले, तो आप समझना कि आपने धर्म को माना नहीं। जिस आग में हाथ डालें और हाथ भी न जले, तो समझना कि वह आग झूठी होगी, सपने की होगी, कल्पना की होगी, कागजी होगी। होगी नहीं। चित्र पुता होगा आग का, उसमें आप हाथ डाल रहे हैं।

ऐसा अगर अर्जुन जान ले कि कृष्ण भगवान हैं, तो अर्जुन वैसे ही खो जाएगा, जैसे बूंद सागर में खो जाती है। इसी क्षण खो जाएगा। लेकिन यह भी उसकी चेष्टा है, यह मानना भी उसका बौद्धिक प्रयास है। यह भी प्रयत्न है, यह भी एक श्रम है, यह भी एक कोशिश है। और इसलिए कोशिश कभी भी गहरी नहीं जाती, ऊपर—ऊपर रह जाती है; और भीतर विपरीत दशा मौजूद रहती है। भीतर विपरीत दशा मौजूद रहती है। वह विपरीत दशा अर्जुन के भीतर भी मौजूद है। यद्यपि उसे थोड़ा आनंद आ रहा है यह बात कहने में कि इस समस्त को मैं सत्य मानता हूं।

हे भगवन्, आपके लीलामय स्वरूप को न दानव जानते हैं और न देवता ही जानते हैं।

इससे उसके अहंकार को थोड़ा आनंद भी आ रहा है, लेकिन मैं जानता हूं। न देवता जानते हैं, न दानव जानते हैं। आपके इस लीलामय स्वरूप को कोई भी नहीं जानता, लेकिन मैं, अर्जुन, जानता हूं। यह उसकी सारी मान्यता भी उसके गहन अहंकार को संपुष्ट करती है। मैं जानता हूं! इसीलिए वह माने ले रहा है।

इसमें एक बात ध्यान देने योग्य है कि बहुत बार हम इसलिए मान लेते हैं कि मानने से अहंकार पुष्ट होता है। इसलिए आप देखकर हैरान होंगे कि अगर आपको नास्तिकों के बीच में छोड़ दिया जाए, तो आप नास्तिक हो जाएंगे। आपको आस्तिकों के बीच में छोड़ दिया जाए, आप आस्तिक हो जाएंगे। क्योंकि जिनकी भीड़ होती है, उनके विपरीत जाने में अहंकार को तकलीफ होती है।

रूस उन्नीस सौ सत्रह के पहले ऐसा ही आस्तिक था, जैसा भारत आज है। और करीब—करीब सब तरह से हालत ठीक वैसी है भारत की, जैसी उन्नीस सौ सत्रह के पहले रूस की थी। परम आस्तिक था रूस। चर्चों में भीड़ होती थी। लोग धर्म—प्रवचन सुनते थे। बाइबिल पढ़ते थे। मस्जिदों में प्रार्थना करते थे। बड़े आस्तिक लोग थे!

फिर क्रांति हुई और कम्युनिस्टों ने आस्तिकता के विपरीत पहली दफा दुनिया में एक राष्ट्र निर्मित किया। दस साल के भीतर आस्तिक खो गए! हजारों साल पुराने आस्तिक दस साल में पिघलकर बह गए; उनका पता चलना बंद हो गया। समाज नास्तिक हो गया। जो कल आस्तिक होकर जीसस की पूजा करते थे, वे ही नास्तिक होकर लेनिन के चरणों में सिर रख दिए। जो कल चर्च और जेरूसलम की तरफ नमस्कार करते थे, या मक्का और मदीना की तरफ जिनके सिर झुकते थे, उनके ही सिर क्रेमलिन के लाल सितारे की तरफ झुकने लगे। सारा मुल्क नास्तिक हो गया।

बड़ी हैरानी की बात है! इतनी सस्ती बात है कि पूरा का पूरा मुल्क दस साल, दस—पंद्रह साल में आस्तिक से नास्तिक हो जाए! नास्तिक होना आसान हो गया, आस्तिक होना कठिन हो गया। अभी आपकी आस्तिकता, हमारी आस्तिकता भी ऐसी ही है। क्योंकि आस्तिक होना आसान है, इसलिए हम आस्तिक हैं। और नास्तिक होना आसान हो जाए, तो हम नास्तिक हो जाएं। जो भी कनवीनिएंट है। हमारा धर्म एक तरह की कनवीनिएंस है, एक तरह की सुविधा है। जिस बात में सुविधा होती है, वह हम करते रहते हैं। मंदिर जाने में सुविधा होती है, तो हम करते रहते हैं।

एक मित्र मेरे पास आए थे कुछ दिन हुए। उन्होंने कहा कि मुझे भरोसा बिलकुल नहीं है, न मंदिर में, न भगवान में। लेकिन लड़की की शादी करनी है, इसलिए मंदिर जाना पड़ता है। और किसी से कह भी नहीं सकता कि मेरा भगवान में कोई भरोसा नहीं है, क्योंकि छोटे बच्चे हैं। इन सबको पालना और बड़ा करना है।

एक सामाजिक कृत्य है, एक सामाजिक सुविधा है। और फिर अहंकार है। अहंकार को जिसमें भी तृप्ति मिलती हो, अहंकार मानने को राजी हो जाता है।

अर्जुन को सुख मालूम हो रहा है। क्योंकि न देवता जानते हैं, न दानव जानते हैं; कोई भी नहीं जानता कि कृष्ण क्या हैं, क्या है उनका रहस्य, लेकिन मैं मानता हूं।

ये दो बातें ध्यान में रखने की हैं इस सूत्र में। एक तो अर्जुन मानता नहीं, गहरे में अस्वीकार है। उस अस्वीकार को भरने की, गवाही से, चेष्टा है। हम अपने मतलब की गवाही सदा खोज लेते हैं।

सुना है मैंने कि मुल्ला नसरुद्दीन एक तीर्थयात्रा पर निकला था। अकेला था। रास्ते में एक मौलवी और साथ हो लिया। फिर एक योगी भी साथ हो लिया। फिर तीनों एक गांव में रुके। लेकिन मौलवी ने कहा कि मेरा तो अभी नमाज का समय है, और योगी ने कहा कि अभी तो मैं अपने योगासन, अपनी साधना करूंगा। तो नसरुद्दीन से कहा कि तू जाकर गांव से कुछ थोड़ी—सी भिक्षा जुटा ला!

तो नसरुद्दीन कुछ पैसे जुटाकर हलुवा खरीदकर ले आया। आते ही उसने कहा कि बेहतर हो कि हम जल्दी इस हलुवे का विभाजन कर लें। और स्वभावत: पहला हिस्सा मुझे मिलना चाहिए, क्योंकि इस हलुवे को उपस्थित करने में मैंने साधन का काम किया है। लेकिन मौलवी ने कहा कि अभी तो मुझे भूख नहीं है, और योगी ने कहा कि मैं तो सूरज डूबने के पहले ही सिर्फ तीन दिन में एक बार भोजन करता हूं इसलिए सांझ को ही भोजन लूंगा। तो अभी रखो, अभी हम यात्रा करें, सांझ को देखेंगे।

सांझ भी आ गई, लेकिन तब सवाल बड़ा गहन यह हो गया कि उस हलुवे को बांटा किस तरह जाए! मौलवी ने कहा कि मैं एक धर्म का दीक्षित पुरोहित हूं तो पहला हक और बड़ा हक मेरा है। और योगी ने कहा, आप हों कितने ही दीक्षित पुरोहित, लेकिन मुझसे बड़ी योग की आपकी कोई संपदा नहीं है। मैं समाधि को उपलब्ध हो चुका हूं इसलिए हक पहला मेरा है। और नसरुद्दीन ने कहा कि आप भला कितने ही पहुंच गए हों, लेकिन हलुवा लाने में साधन रूप मैं ही सिद्ध हुआ हूं।

बात इतनी झगड़ने की हो गई कि सांझ भी हो गई, सूरज भी डूब गया। और तब तो योगी ने कहा कि अब सुबह ही कुछ हो सकता है, क्योंकि सूरज डूब चुका है; मैं सुबह सूरज उगने पर ही भोजन ले सकता हूं। तो यह तय पाया गया कि हम तीनों सो जाएं और जो रात सबसे अच्छा सपना देखे, श्रेष्ठतम, सुबह हम अपने सपने कहें, जो श्रेष्ठतम सपना देखे, वही हलुवे का मालिक हो, और वह जिसको जितना दे दे। वे रात सो गए।

सुबह ब्रह्ममुहूर्त में ही तीनों उठ आए। मौलवी ने कहा कि मैंने देखा कि मेरे धर्म का संस्थापक मेरे सिर पर हाथ रखे हुए सपने में खड़ा है। और मुझे आशीर्वाद दे रहा है और मुझसे कह रहा है कि तुझसे श्रेष्ठ शिष्य मेरा कोई दूसरा नहीं है।

योगी ने कहा, यह कुछ भी नहीं है। क्योंकि मैंने देखा कि मैं परम मोक्ष में प्रवेश कर गया सपने में और मेरे ऊपर फूलों की अनंत वर्षा हो रही है। और ऐसी शांति है कि जिसको कभी कोई बुद्ध उपलब्ध हो पाता है। मैं उसका दर्शन करके सपने से लौटा हूं।

दोनों ने मुल्ला नसरुद्दीन से कहा कि तुम्हारा क्या है? उसने कहा कि मेरा तो सपना बड़ा साधारण है। मेरा गुरु, सूफियों का गुरु खिज़, मुझे दिखाई पड़ा। उसने कहा कि मुल्ला नसरुद्दीन, उठ। तू मेरा शिष्य है, तो मेरी आज्ञा मान, इसी वक्त उठ और हलुवा खा। दिस वेरी मोमेंट! गुरु की आज्ञा मानने के लिए मजबूरी हो गई। मैं आधी रात उठकर हलुवा खा चुका हूं।

आदमी अपने मतलब से सब कुछ खोजता है। उसके सपने भी उसके मतलब से निर्मित होते हैं, उसके सत्य भी। उसकी कल्पनाएं भी उसके मतलब से जन्मती हैं, उसके सिद्धांत भी। आदमी बहुत जटिल, बहुत जटिल घटना है।

अर्जुन की जटिलता को खयाल में लें। जटिलता यह है कि वह मानना भी नहीं चाहता कि कृष्ण भगवान हैं और मानना भी चाहता है, ईदर—ऑर। दोनों उसके सामने हैं। और ऐसे दोनों ही हम सबके सामने सदा होते हैं।

हम सब का ही प्रतीक है अर्जुन। हम सबके भीतर ही ऐसा द्वंद्व है। हम मानना भी चाहते हैं और नहीं भी मानना चाहते हैं। हम करना भी चाहते हैं और नहीं भी करना चाहते हैं। हम जीना भी चाहते हैं और नहीं भी जीना चाहते हैं। हम शांत भी होना चाहते हैं और नहीं भी होना चाहते हैं। दोनों विरोध हमारे भीतर एक साथ खड़े हुए हैं। और हम जीवनभर यही करते रहते हैं। कि जैसे कोई एक सिक्का हो आपके

पास, तो कभी उसे उलटा कर लें और कभी उसे सीधा कर लें। दूसरा पहलू नीचे दब जाता है, लेकिन मौजूद रहता है। फिर ऊब जाते हैं एक पहलू से, तो दूसरा ऊपर कर लेते हैं। हम जिंदगीभर इस द्वंद्व के बीच ही डोलते रहते हैं।

हम सबका मन एक ही साथ विपरीत को करना चाहता है। हम श्रद्धा भी करना चाहते हैं और अश्रद्धा भी हमारी गहरी है। यह जटिलता है। और इस जटिलता को बिना समझे जो चलेगा, वह इस जटिलता के बाहर कभी भी नहीं हो पाएगा। इस जटिलता को जो समझ लेगा, वह इसके बाहर हो सकता है।

अर्जुन को भी पता नहीं है। यह बहुत अनकांशस, यह बहुत अचेतन है। अगर अर्जुन से भी हम यह कहें कि नहीं, ये तू जो गवाहियां इकट्ठी कर रहा है, ये इसलिए इकट्ठी कर रहा है कि तुझे संदेह है। तो वह भी चौंकेगा कि आप क्या कह रहे हैं! मैं भगवान मानता हूं। और अगर कृष्ण जिद्द करें कि नहीं, तू मानता नहीं है। तो वह और भी जिद्द करेगा कि मैं मानता हूं।

लेकिन उसकी जिद्द भी यही बताएगी। हम जिद्द ही उन बातों की करते हैं, जिनके विपरीत हमारे भीतर कोई स्वर होता है। जितने जिद्दी लोग होते हैं, वे द्वंद्वग्रस्त लोग होते हैं। जिसके भीतर का द्वंद्व विसर्जित हो जाता है, उसकी जिद्द भी चली जाती है।

मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन अपने बुढ़ापे में गांव में मजिस्ट्रेट बना दिया गया था, आनरेरी मजिस्तेट। पहला ही मुकदमा आया, तो एक पक्ष ने अपनी कहानी प्रस्तुत की। मुल्ला इतना अभिभूत और प्रभावित हो गया, तो उसने कहा कि बिलकुल ठीक, बिलकुल सत्य! कोर्ट के क्लर्क ने झुककर मुल्ला से कहा, आप यह क्या कर रहे हैं! अभी दूसरा, दूसरा पहलू तो आपने सुना ही नहीं! अभी एक ही आदमी बोला है; अभी इसका दुश्मन मौजूद है। और मजिस्ट्रेट को इस तरह का वक्तव्य देना उचित नहीं है। मुल्ला ने कहा, दूसरे का भी सुन लेते हैं।

दूसरे ने उसके खिलाफ सारी बातें कहीं और मुल्ला इतना प्रभावित हो गया कि उसने कहा कि बिलकुल ठीक, बिलकुल सत्य! क्लर्क ने झुककर कहा कि महानुभाव, आप कर क्या रहे हैं! थोड़ा सोचिए—विचारिए। और दोनों ही एक साथ सत्य कैसे हो सकते हैं? पहला भी सत्य, दूसरा भी सत्य! मुल्ला क्लर्क से इतना प्रभावित हो गया, उसने क्लर्क से कहा कि तुम जो कह रहे हो, वह बिलकुल सत्य है। दोनों सत्य कैसे हो सकते हैं? बिलकुल ठीक कह रहे हो।

हमें कठिनाई मालूम पड़ेगी कि यह आदमी नासमझ है। लेकिन हम सब ऐसे ही आदमी हैं। हां, इतने स्पष्ट हम नहीं हैं।

मुल्ला ने तीनों बातों में कह दिया कि तीनों सत्य हैं। अगर हम होते, तो हम थोड़ी होशियारी करते। हम एक में कहते, सत्य। दूसरा भी हमें ठीक लगता, तो उसे फिर हम छिपाते, क्योंकि यह इनकसिस्टेंट हो जाएगा। जब पहले को सत्य कह दिया, तो अब दूसरे को सत्य कैसे कहें! तो दूसरे को हम दबाते। और तीसरे को तो हम कहते ही कैसे! क्योंकि यह बात बिलकुल पागलपन की हो जाएगी। लेकिन हमारा मन भी ऐसा ही चलता है। ऐसा ही चलता है।

कृष्ण को कोई अगर नर्क में डालने की बात कहे, वह भी हमें सत्य मालूम पड़ सकती है। नहीं तो कुछ लोगों ने डाला ही क्यों होता! उनको सत्य मालूम पड़ी है। और आप भी अगर जिद्द न करें और समझने की कोशिश करें और दूसरे पहलू को बिलकुल भूल जाएं कि आप कृष्ण को भगवान मानते हैं—मानकर ही बैठे हैं, तब तो बहुत मुश्किल है— तो आपको भी दलील में कुछ रस मालूम पड़ेगा कि बात में कुछ सचाई है। यही आदमी तो जिम्मेवार है सारी हिंसा का, हत्या का, उपद्रव का। तो नर्क में डालना ठीक मालूम पड़ता है। और अगर इसको भी नर्क में नहीं डालते, तो जो छोटी— मोटी हत्या कर रहे हैं, इनको काहे के लिए डालना!

लेकिन अगर कृष्ण के भगवान होने की तरफ विचार करें, तो वह बात भी उतनी ही बलशाली मालूम पड़ती है। वहां भी मन हां कहने की कोशिश करेगा कि बिलकुल ठीक है। और फिर अगर कोई आपसे कहे कि दोनों ठीक? दोनों कैसे ठीक हो सकते हैं! तो निश्चित आपको कहना पड़ेगा कि बिलकुल ठीक कह रहे हैं आप; दोनों ठीक कैसे हो सकते हैं!

यह हमारा मन ऐसा काम करता है। लेकिन हम संगत होने की दृष्टि से एक को ऊपर रखते हैं, दूसरे को नीचे दबा देते हैं। जिसको हम नीचे दबा देते हैं, आज नहीं कल वह बदला लेगा। वह ऊपर उभरेगा, वह निकलकर बाहर आएगा। और जिसे हमने आज ऊपर रखा है, उससे हम ऊब जाएंगे। सब चीजों से आदमी ऊब जाता है। और जिन चीजों के साथ रहता है सचेतन रूप से, उनसे जल्दी ऊब जाता है। तो जिसको आपने ऊपर रखा है, थोड़ी देर में दिल बदल जाएगा और मन ऊब जाएगा; फिर नीचे की बात ज्यादा सार्थक मालूम होने लगेगी। इस तरह मन घड़ी के पेंडुलम की तरह डोलता रहता है।

अर्जुन इस सूत्र में दोनों बातें कह रहा है। अगर आपको दोनों बातें दिखाई पड़ जाएं, तो आगे गीता को समझना बहुत सुगम हो जाए। कृष्ण को दोनों बातें दिखाई पड़ रही हैं। इसलिए गीता समाप्त नहीं की गई। गीता को जारी रखना पड़ा है। कृष्ण को पता है कि अर्जुन जो कह रहा है, यह अभी भी उसका अपना सत्य नहीं है।

और उधार सत्य, दूसरे के सत्य, असत्य से भी बदतर होते हैं। असत्य भी अपना हो, तो उसमें एक प्रामाणिकता होती है, एक सिंसिअरिटी होती है। और सत्य भी दूसरे का हो, तो इनसिंसिअर होता है, अप्रामाणिक होता है। दूसरे के सत्य का क्या अर्थ? मेरा असत्य भी मेरा अनुभव बनेगा। दूसरे का सत्य भी मेरा अनुभव नहीं बन सकता है।

महर्षि व्यास क्या कहते हैं, इससे अर्जुन का क्या लेना—देना? और महर्षि व्यास को मानने का अर्जुन को कारण क्या है? कृष्ण को मानने में जिसे कठिनाई हो रही हो, वह महर्षि व्यास को इतनी सुविधा से कैसे माने ले रहा है?

नहीं; वह ऊपर से लीपापोती कर रहा है। वह अपने मन को समझा रहा है। वह कोशिश कर रहा है कि मान जाऊं कि कृष्ण भगवान हैं। लेकिन भीतर प्रबल प्रवाह है अहंकार का। वह कहता है कि यह कैसे माना जा सकता है?

और ध्यान रहे, क्षत्रिय का अगर कोई सबसे ज्यादा विकसित हिस्सा है, तो वह अहंकार है। वही उसकी सबसे बड़ी कमजोरी है। क्षत्रिय का अगर कोई सबसे विकसित हिस्सा है, तो वह अहंकार है। वही उसकी कमजोरी भी है। वही उसकी हिंसा है, वही उसकी कलह है। उसी को वह बर्दाश्त नहीं कर सकता। और अर्जुन तो कहना चाहिए, क्षत्रियों में श्रेष्ठतम क्षत्रिय है; शुद्धतम अहंकार है। उसके पास जो अस्मिता है, जो ईगो है, वह शुद्धतम क्षत्रिय की है। उसको बहुत मुश्किल है यह बात मानने की कि कृष्ण भगवान हैं। उसे सिर उनके चरणों में रखना बहुत कठिन है। अति कठिन है।

लेकिन कृष्ण की प्रतिभा, कृष्ण की आभा, कृष्ण का प्रकाश भी उसे छूता है। कृष्ण का प्रेम, उनकी अनुकंपा भी उसे स्पर्शित करती है। उसकी हृदय की पंखुड़ियां उनकी निकटता में खिलती भी हैं। उसके भीतर कुछ प्रतिध्वनित भी होता है। उनको पास पाकर वह जानता है कि सिर्फ आदमी के निकट नहीं है। यह कहीं गहरे में अहसास भी होता है। एक तल पर इनकार भी चलता है, एक तल पर इसका स्वीकार भी होता है। और इन दोनों द्वंद्व के बीच में फंसा हुआ अर्जुन है। यह द्वंद्व इस वक्तव्य में पूरी तरह साफ है। लेकिन एक मजा वह ले लेना चाहता है, और वह मजा यह है कि कुछ भी हो, आप जो कहते हैं, वह मैं सत्य मानता हूं। और देवता और दानव भी जिसे नहीं जान पाते, वह भी कम से कम मैं तो मानता हूं।

इस मानता शब्द पर भी थोड़ा विचार कर लेना उपयोगी है। आप मानते किन चीजों को हैं, कभी आपने खयाल किया है?

आप उन्हीं चीजों को मानते हैं, जिन पर आपको शक होता है। आप कभी कहते हैं, घोषणा करते हैं कि मैं सूरज में विश्वास करता हूं? आप कभी घोषणा करते हैं कि पृथ्वी पर मेरा पक्का विश्वास है? कभी आप कहते हैं कि शरीर में मेरी बड़ी श्रद्धा है?

न, आप कहते हैं, आत्मा में मेरी बड़ी श्रद्धा है। परमात्मा में मेरा बड़ा विश्वास है। मोक्ष में, मैं मानता हूं कि मोक्ष है।

कभी आपने खयाल किया है कि आप उन्हीं चीजों पर मान्यता का बल डालते है, जिनको आप नहीं जानते हैं। जिनको मानना बिलकुल असंभव मालूम पड़ता है, उन्हीं को आप कहते हैं, मैं मानता हूं। और जिनको मानना बिलकुल आसान है, प्रत्यक्ष है, उनको आप कभी मानने की बात नहीं करते।

शरीर को आप जानते हैं, आत्मा को आप मानते हैं। यह फर्क समझ लें। पदार्थ को आप जानते हैं, परमात्मा को आप मानते हैं। जिस दिन परमात्मा भी जानना बनता है और जिस दिन आत्मा भी जानना बन जाती है, उसी दिन, उसी दिन आपके भीतर एकस्वर का जन्म होता है। अन्यथा आपके भीतर द्वंद्व और कलह मौजूद ही रहेंगे।

फिर जो आदमी जितना मान्यता में कमजोर होगा, उस मान्यता को वह जिद्द से पूरा करता है। इसलिए कमजोर आस्था वाले लोग डाग्मैटिक हो जाते हैं। जितनी कमजोर आस्था वाले लोग होंगे, उतने ज्यादा मतांध होंगे। क्योंकि उन्हें खुद से ही डर लगता है कि अगर कहीं दूसरा मेरी मान्यता को खंडित कर दे या गलत कर दे, तो उन्हें खुद ही पता है कि हम तो भीतर तैयार ही हैं कि अगर कोई गलत कर दे, तो हम भी गलत मान लेंगे। इसलिए किसी की बात मत सुनो, विपरीत विचार को मत सुनो, विपरीत शास्त्र को मत पढ़ो।

हिंदुस्तान में.. .हिंदुस्तान को हम कहते हैं, बहुत उदार देश है। लेकिन एक अनुदार धारा भी इसके नीचे गहरे में प्रवाहित रही है। और हमारा मन होता है अच्छी—अच्छी बातें मान लेने का, लेकिन खतरनाक है। क्योंकि बुरी बातें भी भीतर प्रवाहित होती हैं, और उनको अगर हम भूले बैठे रहें, तो वे नासूर बन जाती हैं, घाव बन जाती हैं; भीतर फोड़े पैदा करती हैं।

हिंदू शास्त्रों में लिखा है, और ऐसा ही जैन शास्त्रों में भी लिखा है, और ऐसा ही बौद्ध शास्त्रों में भी लिखा है। करीब—करीब वक्तव्य एक से हैं। वह मैं आपको कहूं।

शास्त्रों में लिखा है हिंदू जैनों और बौद्धों के, वक्तव्य एक से हैं। लिखा है कि अगर कोई जैन मंदिर हो और हिंदू मंदिर के सामने से गुजर रहा हो और पागल हाथी हमला कर दे, तो पागल हाथी के पैर के नीचे दबकर मर जाना बेहतर है, लेकिन जैन मंदिर में शरण लेना ठीक नहीं है! ठीक ऐसा ही जैन शास्त्रों में भी लिखा है कि पागल हाथी के पैर के नीचे दबकर मर जाना बेहतर, लेकिन हिंदू देवालय में शरण लेना बेहतर नहीं है। कैसा यह डर! कैसा यह भय!

ये तो खैर हिंदू और जैन तो दो धर्म हैं, लेकिन राम— भक्त हैं जो कान में अंगुली डाल लेंगे, अगर कोई कृष्ण का नाम ले! कृष्य— भक्त हैं, जो अंगुली डाल लेंगे, अगर कोई राम का नाम ले!

सुना है मैंने एक बौद्ध भिक्षुणी के संबंध में, कि उसके पास एक स्वर्ण की बुद्ध की प्रतिमा थी। वह रोज उसकी पूजा करती, धूप जलाती, धुंआ देती, फूल चढ़ाती। एक बार उसे चीन के बड़े बौद्ध मंदिर में ठहरने का मौका मिला। दस हजार बुद्धों का मंदिर, उस मंदिर का नाम है; उसमें दस हजार बुद्ध की छोटी—बड़ी प्रतिमाएं हैं। वहां वह ठहरी। कोने—कोने में बुद्ध की प्रतिमा है, दीवाल—दीवाल में बुद्ध की प्रतिमा है। दस हजार प्रतिमाएं हैं। प्रतिमाओं के सिवाय मंदिर में कुछ भी नहीं है।

जब उसने सुबह अपने बुद्ध की— अपने बुद्ध की— प्रतिमा रखी और धूप जलाई, तो उसे लगा कि धूप तो उड़ जाएगी और दूसरे बुद्धों की नाक में चली जाएगी। और अपने बुद्ध की धूप और दूसरे बुद्धों की नाक में चली जाए! तो उसने एक बांस की पोंगरी बनाई। धूप के ऊपर पोंगरी लगाई और अपने बुद्ध की नाक के पास पोंगरी लगाई। बुद्ध का मुंह काला हो गया। हो ही जाएगा। हो ही जाएगा! सुगंध तो न मिली, मुंह काला हो गया। और मतांध भक्तों ने सबके मुंह काले कर दिए हैं—चाहे राम, चाहे बुद्ध, चाहे कृष्ण, चाहे क्राइस्ट, चाहे मोहम्मद—सबके मुंह काले कर दिए हैं। इसमें भी भय पकड़ता है कि दूसरा बुद्ध! बुद्ध की दूसरी प्रतिमा, वह भी दूसरा बुद्ध!

मैं एक गांव में रहता था। वहां गणेशोत्सव पर बड़ी गणेश की प्रतिमाएं निकलती हैं, प्रवाहित करने के लिए, विसर्जन करने के लिए। लेकिन नियमित बंधा हुआ क्रम है। ब्राह्मणों के मुहल्ले की प्रतिमा आगे होती है, चमारों के मुहल्ले की प्रतिमा पीछे होती है। एक वर्ष ऐसी भूल हो गई कि ब्राह्मणों की प्रतिमा के आने में देर लग गई और चमारों के टोले की प्रतिमा पहले आ गई, तो जुलूस के आगे हो गई। तो जब ब्राह्मणों की प्रतिमा आई, तो उन्होंने कहा, हटाओ चमारों के गणेश को पीछे!

चमारों के गणेश! ब्राह्मणों के गणेश, बात ही अलग है। चमार और ब्राह्मण तो ठीक, गणेश भी चमारों के और ब्राह्मणों के! बेचारे चमारों के गणेश को पीछे जाना पड़ा। अपना— अपना भाग्य! चमारों के गणेश हो, पीछे जाना ही पड़ेगा!

यह मतांधता, यह संकीर्णता, यह अनुदारता पैदा होती है। भीतर एक भय है। भीतर एक भय है कि कहीं दूसरा सही न हो। कहीं दूसरे की बात सुनाई पड़ जाए, वह सही न हो। अपना तो कोई सत्य नहीं है, भीतर तो कोई सत्य नहीं है। दूसरे पर ही निर्भर है। कहीं औरों की बात सुनकर डांवाडोल न हो जाऊं। इसलिए सुनो ही मत, पढ़ो ही मत, समझो ही मत, दूसरे को जानो ही मत। और दूसरे से लड़ते भी रहो, और दूसरे से बचते भी रहो, और अपने को ही अंधे की तरह ठीक मानो और सबको गलत मानो।

यह सारा का सारा खेल एक बहुत मनोवैज्ञानिक बीमारी है। और वह बीमारी यह है कि मुझे ठीक पता नहीं है कि सत्य क्या है। तो जब तक मैं दूसरों को असत्य सिद्ध करता रहूं तभी तक मुझे भरोसा रहता है कि मैं सत्य हूं। और अगर मैं दूसरों की भी गौर से सुनने लगू तो मेरे भीतर सब डांवाडोल हो जाता है कि मैं सत्य हूं या नहीं हूं! सत्य क्या है?

मुल्ला नसरुद्दीन जिस राजधानी में था, वहां बहुत बेईमानी बढ़ गई। और राजधानी में बेईमानी बढ़ेगी ही, क्योंकि बेईमान सब राजधानियों में इकट्ठे हो जाते हैं। सब चोर, सब डाकू इकट्ठे हो जाते हैं। अभी जयप्रकाश जी वहां चंबल में छोटे डाकुओं का समर्पण बड़े डाकुओं के प्रति करवा रहे हैं!

तो राजधानी थी, डाकू इकट्ठे हो गए थे। सम्राट बहुत चिंतित था कि कैसे इनको हटाया जाए। गांव के बुद्धिमानों से पूछा, कोई रास्ता न मिला। फिर किसी ने कहा कि वह मुल्ला नसरुद्दीन भी अपनी तरह का एक बुद्धिमान है। शायद, हमारी बुद्धि काम नहीं करती, उसकी काम कर जाए। उसे बुलाया। सम्राट ने उससे पूछा कि क्या करें, लोग असत्यवादी होते जा रहे हैं!

तो नसरुद्दीन ने कहा, इसमें क्या कठिनाई है! जो असत्य बोलते हैं, कम से कम एक असत्य बोलने वाले को पकड़कर रोज फांसी लगा दो चौरस्ते पर, लटका दो। तहलका छा जाएगा, लोग घबड़ा जाएंगे, फिर कोई असत्य—वसत्य नहीं बोलेगा। सम्राट ने कहा, बिलकुल दुरुस्त। तो कल राजधानी के द्वार पर सिपाही तैनात रहेंगे और जो आदमी असत्य बोलता हुआ पकड़ा जाएगा, वह द्वार पर ही सूली पर लटका दिया जाएगा। नसरुद्दीन ने कहा, तो फिर मैं कल सुबह द्वार पर ही मिलूंगा। सम्राट समझा कि शायद वह अपने सिद्धांत को प्रतिपादित होता हुआ देखने के लिए द्वार पर आएगा।

जब सुबह कल द्वार खुला नगर का, तो नसरुद्दीन अपने गधे पर प्रवेश किया। सम्राट भी मौजूद था। सम्राट के हत्यारे भी मौजूद थे। फांसी का तख्ता लटका दिया गया था। सम्राट ने नसरुद्दीन से पूछा, नसरुद्दीन, सुबह—सुबह गधे पर कहां जा रहे हो? नसरुद्दीन ने कहा, सूली

के तख्ते पर चढ़ने। सम्राट ने कहा कि झूठ बोल रहे हो! तो नसरुद्दीन ने कहा कि तय हुआ था कि जो झूठ बोलेगा, उसको सूली पर चढ़ा देंगे। तो चढ़ा दो सूली पर, अगर मैं झूठ बोल रहा हूं। सम्राट ने कहा, यह तो बड़ी मुसीबत हो गई। अगर तुम्हें सूली पर चढाऊं, तो तुम सच बोल रहे हो। और अगर तुम्हें छोड़ दूं तो मैंने झूठ बोलने वाले को छोड़ दिया।

तो नसरुद्दीन ने कहा कि यही समझाने के लिए कि कौन तय करेगा कि क्या सत्य और क्या असत्य है! फांसी लगाना तो बहुत आसान है झूठ बोलने वाले को, लेकिन तय कौन करेगा, कौन सत्य है, कौन असत्य है! नसरुद्दीन ने सम्राट से कहा कि पहले अपना ही पता लगाने की कोशिश करो कि सत्य हो कि असत्य, तब कहीं दूसरे का कुछ हिसाब करना।

कठिन है। लेकिन कठिन इसीलिए है कि भीतर कोई क्रिस्टलाइजेशन, कोई केंद्रीकरण नहीं है। भीतर हम खाली, कोरे हैं; कचरे से भरे हैं। दूसरों ने जो डाल दिया है, उससे भरे हैं। अपनी कोई अनुलुह न होने से हमारे पैर के नीचे कोई जमीन नहीं है। इसलिए हम नीचे देखने में भी डरते हैं। हम दूसरों को बताते रहते हैं, तुम गलत हो, तुम गलत हो, वह असत्य है। लेकिन हम कभी यह फिक्र नहीं करते कि मेरे पास भी कोई मेरा सत्य है!

और जब तक कोई आदमी अपने सत्य की तलाश में न लगे, तब तक महर्षियों ने क्या कहा है, व्यास क्या कहते हैं, खुद कृष्ण भी क्या कहते हैं, इसका मूल्य बड़ा नहीं है। अर्जुन क्या अनुभव करता है, इसका मूल्य है। कृष्ण क्या कहते हैं, इसका कोई मूल्य अर्जुन के लिए नहीं है। अर्जुन क्या अनुभव करता है, इसका मूल्य है। और उसकी अनुभूति इस सूत्र में जैसी प्रकट होती है, वह न तो गहरी है, न एकस्वर वाली है, न उसमें सामंजस्य है। उसमें विपरीत एक साथ मौजूद हैं। दिखाई नहीं पड़ते हैं, वही खतरा है। वही खतरा है।

अगर दिखाई पड़े कोई द्वंद्व, तो हम उसके बाहर हो सकते हैं। दिखाई न पड़े, तो बड़ा खतरा है। अर्जुन को भी पता नहीं है कि वह क्या कह रहा है। हम को भी पता नहीं है।

जब आप मंदिर में जाकर कहते हैं कि हे प्रभु, मैं आप में श्रद्धा रखता हूं और समर्पण करता हूं। आपको भी पता नहीं है, आप क्या कह रहे हैं! क्योंकि जो आप कह रहे हैं, वह बड़ा क्रांतिकारी वक्तव्य है। अगर सच है, तो आप उस दुनिया में प्रवेश कर जाएंगे, जो अमृत की है, आनंद की है। और अगर झूठ है, तो आपके साधारण झूठ उतना नुकसान नहीं करेंगे, जो आपने दुकान पर बोले हैं, लेकिन यह मंदिर में बोला गया झूठ भयंकर है।

क्या आपने कभी इसकी फिक्र की कि हम जो भी श्रद्धा के, भक्ति के, समर्पण के वक्तव्य देते हैं, उनमें हमारे प्राणों की कोई भी गहरी छाप होती है! बिलकुल नहीं होती है। सच तो यह है कि हम अपनी अश्रद्धा से इतने घबड़ा जाते हैं कि ऊपर से श्रद्धा का रंग पोत लेते हैं। नास्तिक भीतर छिपा है। आस्तिक हमारे वस्त्रों से ज्यादा गहरा नहीं है।

इस जमीन पर आस्तिक खोजना कठिन है, हालांकि आस्तिक सब दिखाई पडते हैं। और इस जमीन पर ऐसा आदमी खोजना कठिन है, जो नास्तिक न हो। यद्यपि नास्तिक एकदम से दिखाई नहीं पड़ता। यह मजा है। इसलिए दुनिया नास्तिक है। और एक— एक आदमी से मिलिए, तो वह आस्तिक है! सबका जोड़ नास्तिकता है। और सब अलग—अलग आस्तिक होने का दावा किए चले जाते हैं। उनकी जिंदगी में हम उतरें, तो नास्तिकता के सिवाय कहीं कुछ नहीं मिलता।

साईं, शिरडी के साईं के जीवन में एक उल्लेख है। उनके एक भक्त ने कहा कि अब तो मैं सभी में परमात्मा को देखने लगा हूं। तो साईं बाबा ने कहा कि अगर तुम सबमें परमात्मा को देखने लगे होते, तो इस भरी दोपहरी में मुझे नमस्कार करने किसलिए आते हो? कहीं भी नमस्कार कर लेना था। अगर मैं ही तुम्हें सब जगह दिखाई पड़ने लगा हूं तो इस भरी दोपहरी में इतनी दूर आने की क्या जरूरत थी? मैं वहीं तुम्हें मिल जाता, मैं वहीं था।

वह जो भक्त था, रोज भोजन लेकर आता था बाबा के लिए। और जब तक वे भोजन न कर लेते, तब तक वह खुद भी भोजन नहीं करता था।

तो साईं बाबा ने कहा, कल से अब तुम भोजन लेकर मत आना, मैं वहीं आ जाऊंगा। तुम मुझे पहचान लेना, क्योंकि तुम्हें दिखाई पड़ने लगा है! वह भक्त बडी मुश्किल में पड़ा। भोजन की थाली लगाकर वह अपने द्वार के वृक्ष के नीचे बैठ गया। अब वह प्रतीक्षा कर रहा है। और एक कुत्ता उसे परेशान करने लगा। भोजन की सुगंध, वह कुत्ता बार—बार आने लगा। और वह डंडे से कुत्ते को मार—मारकर भगाने लगा। वक्त बीतने लगा और साईं बाबा का कुछ पता नहीं, तो फिर वह थाली लेकर पहुंचा उस मस्जिद में, जहां साईं बाबा रहते थे।

अंदर गया, तो देखा कि साईं बाबा की आंख से आंसू बह रहे हैं। तो पूछा कि आप आए नहीं? और मैं राह देखता रहा। साईं बाबा ने कहा, मैं आया था। मेरी पीठ देख! पीठ पर उसकी लकडी के निशान थे, जो उसने कुत्ते को लकड़ियां मारी थीं। मैं आया था। तू तो कहता था, सबमें तू देखने लगा, इसलिए मैंने सोचा, किसी भी शक्ल में जाऊंगा, तू पहचान लेगा। तो मैं कुत्ते की शक्ल में आया था। उस भक्त ने

कहा, जरा भूल हो गई। ऐसे तो मैं सबमें आपको देखने लगा हूं लेकिन जरा कुत्ते में देखने का अभी अभ्यास नहीं है। अब आइएगा, बराबर पहचान लूंगा।

फिर दूसरे दिन हुआ वही। लेकिन इस बार कुत्ता नहीं आया, एक कोढ़ी आ गया। और उसने दूर से कहा, दूर रहना! यहां बाबा का भोजन रखा है, अपवित्र मत कर देना! दूर रह, छाया मत डाल देना! लेकिन वह कोढ़ी सुनता ही नहीं है, पास आए चला जाता है। तो वह अपनी थाली लेकर भागा और कोढ़ी उसके पीछे भाग रहा है। और वह थाली लेकर भाग रहा है साईं बाबा की तरफ।

जब वह भीतर पहुंचा, तो देखा, वहां साईं बाबा नहीं हैं। पीछे लौटकर देखा, तो कोढ़ी की जगह साईं बाबा खड़े हैं। और साईं बाबा ने कहा, लेकिन तू पहचानता ही नहीं है! उसने कहा, नया— नया रोज—रोज अभ्यास करवाते हैं! आज पक्का कर लिया था कि कुत्ते में देखेंगे, और आप कोढ़ी होकर आ गए! कल आइए।

अभ्यास धर्म नहीं है। चेष्टा करके कोई बात दिखाई पड़ने लगे, उसका कोई मूल्य नहीं। दिखाई पड़े।

यह अर्जुन चेष्टा कर रहा है। व्यास ने कहा है, देवल ने कहा है, इसने कहा है, उसने कहा है। और फिर आप भी कहते हैं, तो मैं मानता हूं आप जो कहते हैं, वह सत्य ही कहते हैं। यह चेष्टा है, यह अभ्यास है! यह प्रयत्न है मान लेने का कि कृष्ण भगवान हैं। लेकिन भीतर कोई स्वर बजे चला जा रहा है कि नहीं। उसी को दबाने के लिए सब उपाय हैं।

आदमी की यह जो दोहरी व्यवस्था है, डबल बाइंड, यह बड़ी जटिल है, यह गांठ बड़ी गहरी है। इसलिए ऊपर से आप कहते हैं कि मैं बहुत प्रेम करता हूं और भीतर झांककर देखेंगे, तो प्रेम का कोई पता नहीं। ऊपर से कहते हैं, मेरी श्रद्धा अपार है। और भीतर देखेंगे, तो उतनी ही अपार अश्रद्धा मौजूद है। ऊपर से कुछ, भीतर से कुछ! हर आदमी दो में बंटा है।

और जब तक आदमी दो में बंटा है, तब तक किसी भी स्थिति में भगवत्ता को पहचानना संभव नहीं है। जब आदमी के भीतर का जोड़ यह दो का समाप्त हो जाता है और एक ही पैदा होता है। जब आदमी के भीतर एक निर्मित होता है, तब भगवत्ता को कहीं भी पहचान लेना— पहचान लेना कहना ठीक नहीं, तब भगवत्ता को कहीं भी न पहचानना असंभव है। वह सब जगह मौजूद है। सब

जगह मौजूद है। सब जगह मौजूद है। फिर ऐसा नहीं है कि उसे देखना पड़े, और फिर ऐसा भी नहीं है कि गवाहियां खोजनी पड़े। यहां एक मजे की बात है और वह यह कि अगर वितान का अतीत खो जाए, तो विज्ञान का सारा भवन गिर जाए। अगर हम न्यूटन को अलग कर लें, गैलीलियो को अलग कर लें, तो न्यूटन और गैलीलियो के हटते ही आइंस्टीन जमीन पर गिर जाएगा। आइंस्टीन खड़ा नहीं हो सकता अपने पैरों पर।

विज्ञान एक परंपरा है, एक ट्रेडीशन है। और मजे की बात है कि धर्म को हम परंपरा कहते हैं, विज्ञान को परंपरा नहीं कहते। विज्ञान परंपरा है, एक ट्रेडीशन है, एक कलेक्टिव एफर्ट। बहुत लोगों का उसमें हाथ है। अगर उसमें से एक ईंट खींच लें, तो ऊपर का शिखर नीचे गिर जाएगा।

लेकिन धर्म परंपरा नहीं है, धर्म वैयक्तिक अनुभव है। अगर अतीत के सारे महापुरुष भी धर्म के विलीन हो जाएं और एक भी न हुए हों, तो भी आप धार्मिक हो सकते हैं इसी वक्त। क्योंकि धार्मिक होना निजी अनुभव है। किसने कहा है और नहीं कहा है, अगर वे सब खो जाएं, अगर दुनिया में सारे धर्म—ग्रंथ नष्ट हो जाएं, तो भी धर्म नष्ट नहीं होगा।

यह मजे की बात है। अगर वितान की एक किताब भी खो जाए, तो बाकी सब किताबें अस्तव्यस्त हो जाएंगी। और सब किताबें खो जाएं, तो विज्ञान बिलकुल नष्ट हो जाएगा। क्योंकि विज्ञान निर्भर करता है दूसरों के वक्तव्यों पर। उसकी एक श्रृंखला है, कड़ी से कड़ी जुड़ी है। अगर पीछे की कड़ी खोती हैं, तो यह कड़ी निर्मित नहीं हो सकती।

आप सोचते हैं, अगर साइकिल न बनी हो दुनिया में, तो हवाई जहाज नहीं बन सकता। अगर बैलगाड़ी न बनी हो, तो चांद पर पहुंचने का कोई उपाय नहीं है। हालांकि बैलगाड़ी से कोई चांद पर नहीं पहुंचता। लेकिन बैलगाड़ी अगर न बनी होती, तो चांद पर पहुंचने का कोई भी उपाय नहीं है। जिसने बैलगाड़ी बनाई थी, वह भी चांद पर पहुंचाने में उतना ही अनिवार्य अंग है, जितना चांद पर उतरने वाला आदमी।

लेकिन धर्म की बात बिलकुल अलग है। अगर महावीर न हों, बुद्ध न हों, कृष्ण न हों, राम न हों, कोई अंतर नहीं पड़ता। कोई अंतर नहीं पड़ता। आप चाहें तो उनके बिना धार्मिक हो सकते हैं। क्योंकि धार्मिक होना निजी सत्य का साक्षात्कार है। उसका परंपरागत सत्य से कुछ लेना—देना नहीं है।

यह अर्जुन अभी भी जो बात कर रहा है, परंपरा की बात कर रहा है। अभी तक इसे निजी कोई बोध नहीं है।

परमात्मा सामने खड़ा हो, और कैसी फीकी—फीकी बातें अर्जुन कर रहा है! कृष्ण के सामने क्या है अर्थ व्यास का? कृष्ण के सामने क्या है अर्थ देवल ऋषि का, देव ऋषियों का? कृष्य के सामने क्या है अर्थ? ऐसे जैसे सूरज सामने खड़ा हो और कोई दीए को लेकर गवाहियां देता हो कि निश्चित, मैं दीए में देखकर कहता हूं कि तुम सूरज हो। ये गवाहियां ऐसी हैं।

लेकिन अर्जुन को खयाल नहीं है। वह सोच रहा है, बड़े—बड़े नाम ला रहा है वह, बड़े वजनी। वजनी वे हैं अर्जुन के लिए, कृष्ण के सामने वे दीए की तरह व्यर्थ हैं। सूरज के सामने जैसे दीया खो जाए; कोई अर्थ नहीं है। उनका मूल्य ही इतना है कि अंधेरा जब हो गहन, तब वे रोशनी देते हैं। और जब सूरज ही सामने हो, तो उनका कोई भी उपयोग नहीं है।

लेकिन अर्जुन उनकी गवाहियां ला रहा है, कृष्ण को बहुत अदभुत लगा होगा! आज तक कृष्ण और बुद्ध को कैसा लगा है, उन्होंने कोई वक्तव्य दिए नहीं हैं। लेकिन कृष्ण को बहुत हैरानी का लगा होगा कि मैं सामने खड़ा हूं और अर्जुन कह रहा है कि महर्षि व्यास भी कहते हैं कि आप भगवान हो। मैं भी मानता हूं; और भी मानते हैं। जैसे कि उसके मानने पर निर्भर हो कृष्ण का भगवान होना!

हम सबको यह खयाल है कि अगर हम न मानें और हमारी वोट न मिले, तो भगवान गए! हमारे ऊपर निर्भर हैं। हम मानते हैं, तो भगवान हैं। हम नहीं मानते, तो दो कौड़ी की बात, समाप्त हो गई। आपके मानने पर कोई निर्भर बात नहीं है। किसी के मानने पर कोई निर्भर बात नहीं है। भगवत्ता एक सत्य है। और उस सत्य को जो इस भांति घूम—फिर कर चलेगा, वह सीधा न जाकर व्यर्थ ही चक्कर काट रहा है। केंद्र के आस—पास परिधि पर घूम रहा है, भटक रहा है, परिभ्रमण कर रहा है; केंद्र को चूक रहा है।

यह अर्जुन सामने नहीं देख रहा, कौन खड़ा है। यह घूम रहा है। यह चारों तरफ चक्कर लगाकर कह रहा है कि ठीक है; परिक्रमा कर रहा हूं। और लोग भी कहते हैं! मत इकट्ठे कर रहा है। लेकिन सामने जो खड़ा है, उससे चूक रहा है।

हम सबकी भी अवस्था यही है। परमात्मा सदा ही सामने है— सदा ही। क्योंकि जो भी सामने है, वही है। लेकिन हम पूछते हैं, परमात्मा कहां है? हम पूछते हैं, किस शास्त्र को खोलें कि परमात्मा का पता चले? किस गुरु से पूछें कि उसकी खबर दे? और वह सामने मौजूद है। और हम बिना गुरु से पूछे उसको नहीं देख सकते! और हम बिना शास्त्र पढ़े उसकी तरफ आंख नहीं उठा सकते!

जो सामने नहीं देख सकता उसकी मौजूदगी, वह शास्त्र में कैसे देखेगा? जो उसे नहीं देख सकता, वह गुरु को कैसे पहचानेगा कि यह रहा गुरु!

लेकिन हम चक्करों में घूमते हैं। चक्कर बड़े—छोटे, अपने—अपने पसंद के हम बनाते हैं और उनमें घूमते हैं। मंदिर में परिक्रमा होती है। बीच में मूर्ति होती है, चारों तरफ परिक्रमा होती है। हम परिक्रमा में ही घूमते रहते हैं जन्मों—जन्मों। उस बीच की मूर्ति से हमारा कोई संबंध ही नहीं हो पाता। बीच की मूर्ति सदा ही मौजूद है।

ये कृष्ण अर्जुन के सामने ही मौजूद हों, ऐसा नहीं है। वे हर अर्जुन के सामने मौजूद हैं। और अर्जुन जो कर रहा है, वही हर अर्जुन करता है, इनडायरेक्ट पूफ्स खोजता है।

ईसाई विचारक एनसेल्म ने ईश्वर के लिए चार प्रमाण जुटाए हैं, कि वह है, ये चार प्रमाण हैं। एनसेल्म बेचारा आस्तिक नहीं है। यद्यपि ईसाइयत मानती है कि एनसेल्म के जो तर्क हैं, बड़े कीमती हैं और आस्तिकता पश्चिम में उन पर ही टिकी है। लेकिन मैं कहता हूं वह आस्तिक नहीं है। क्योंकि उसने जो तर्क दिए हैं, वे बचकाने हैं। और उन तर्कों से अगर ईश्वर सिद्ध होता है, तो वे सब तर्क काटे जा सकते हैं।

वे सब तर्क काटे जा सकते हैं। ऐसा कोई भी तर्क नहीं है दुनिया में, जो काटा न जा सके। अतर्क्य तर्क होता ही नहीं। और जो भी तर्क एक तरफ गवाही देता है, वही तर्क दूसरी तरफ भी गवाही दे सकता है। तर्क पक्षधर नहीं होते, तर्क वेश्याओं की तरह होते हैं; प्रोफेशनल! तर्क तो किसी के भी साथ खड़ा हो जाता है! तर्क की कोई अपनी श्रद्धा नहीं होती। जहां जरूरत पड़े, जो खींच ले, तर्क उस तरफ खिंच जाता है।

इसलिए अगर कोई सोचता हो तर्क से, जैसे एनसेल्म ने तर्क दिए हैं ईश्वर के होने के, वे सब तर्क काट दिए गए हैं। कोई भी काट सकता है। एक स्कूल का बच्चा भी, जो थोड़ा तर्क जानता है, उनको काटकर रख देगा। तर्क से ईश्वर का कोई संबंध नहीं है, गवाही से ईश्वर का कोई संबंध नहीं है।

बुद्ध के पास एक आदमी आया है और वह बुद्ध से कहता है कि जीवन के बाद, मृत्यु के बाद भी जीवन बचता है? अगर आप गवाही दे दें, तो मैं मान लूं। बुद्ध ने कहा, अगर मैं गवाही दे दूं तो

फिर तुझे और भी गवाहियों की जरूरत पड़ेगी, जो कहें कि बुद्ध झूठा आदमी नहीं है। फिर तुझे उन गवाहियों का भी पता लगाना पड़ेगा कि वे झूठ तो नहीं बोल रहे हैं; कोई सांठ—गांठ तो नहीं है बुद्ध से भीतरी; कोई लेन—देन तो नहीं है!

एक अंग्रेज विचारक भारत आया था, कुछ योगियों, साधुओं के संबंध में चमत्कार की बातों का पता लगाने। एक योगी के संबंध में सुना कि उसकी उम्र नौ सौ वर्ष है। तो वह बहुत चकित हुआ। मिरेकल था, चमत्कार था। नौ सौ वर्ष! बात झूठ होनी चाहिए।

गया, वहां बड़ी भीड़— भाड़ थी। बड़े भक्त थे। बड़ा उत्सव चल रहा था। उसकी हिम्मत न पड़ी। एक आदमी के पास बैठकर उसने थोड़ा मित्राचार, थोड़ी दोस्ती बढ़ाई। फिर जब बातचीत शुरू हो गई, तो उसने पूछा कि क्या मैं आपसे पूछ सकता हूं कि आप इनके शिष्य हैं? उसने कहा, ही। क्या मैं पूछ सकता हूं कि इनकी उम्र कितनी है? मैंने सुना, नौ सौ वर्ष है! उस शिष्य ने कहा, मैं कुछ ज्यादा नहीं कह सकता। मैं सिर्फ पांच सौ वर्ष से इन्हें जानता हूं।

तब उसने अपना सिर पीट लिया कि अब मुसीबत खड़ी हुई। अब मैं किससे पता लगाऊं कि इनकी उम्र कितनी है! और इसका अंत कहां होगा?

जब भी हम कोई इनडायरेक्ट विटनेस, परोक्ष गवाही की तलाश में जाते हैं, तब हम भ्रांति में जा रहे हैं।

अच्छा होता अर्जुन सीधा कृष्ण की आंखों में आंखें डालकर खड़ा हो जाता। छोड़ता व्यास को, छोड़ता देवल को, छोड़ता ऋषि— मुनियों को, सीधा कृष्ण की आंख में आंख डालकर खड़ा हो जाता। तो अर्जुन जितना जान लेता, उतना इन गवाहियों से, कितनी ही ये गवाहियां हों, कभी भी नहीं जाना जा सकता।

लेकिन सामने देखने की हिम्मत शायद उसकी नहीं है। शायद वह डरता है कि कहीं सामने देखकर सच में ही पता न चल जाए कि कृष्ण भगवान हैं। वह भी भय है। वह भी भय है। क्योंकि कल हम यह भी कह सकते हैं कि व्यास को गलती हुई होगी। जिम्मेवारी हमारी क्या? व्यास ने कहा था, इसलिए हमने मान लिया था। लेकिन अगर हमें ही दिखाई पड़ जाए, तो फिर जिम्मेवारी सीधी हो जाती है। फिर मैं ही जिम्मेवार हो जाता हूं। वह भी भय है; वह भी डर है।

ये सारे डर हैं। और हर आदमी के डर हैं। यहां अर्जुन को मैं मानकर चल रहा हूं कि वह जैसे आदमी के भीतर का, सबके भीतर का, सार—संक्षिप्त है। है भी। और कृष्ण को मानकर चल रहा हूं कि जैसे वे आज तक इस जगत में जितनी भगवत्ता के लक्षण प्रकट हुए हैं, उन सबका सार—संक्षिप्त हैं। कृष्ण जैसे इस जगत में जो भी भगवान होने जैसा हुआ है, उस सबका निचोड़ हैं। और अर्जुन जैसे इस जगत में जितने भी डांवाडोल आदमी हुए हैं, उन सबका निचोड़ है।

इसलिए गीता जो है, वह दो व्यक्तियों के बीच ही चर्चा नहीं है; दो अस्तित्वों के बीच, दो दुनियाओं के बीच, दो लोकों के बीच, दो अलग—अलग आयाम जो समानांतर दौड़ रहे हैं, उनके बीच चर्चा है। इसलिए दुनिया में गीता जैसी दूसरी किताब नहीं है, क्योंकि इतना सीधा डायलाग, ऐसा सीधा संवाद नहीं है।

रामायण है, वह राम के जीवन की लंबी कथा है। बाइबिल है, वह जीसस के अनेक—अनेक अवसरों पर अनेक—अनेक अलग— अलग लोगों को दिए गए वक्तव्य हैं। कुरान है, वह ईश्वर का संदेश है मनुष्य—जाति के प्रति, मोहम्मद के द्वारा निवेदित। लेकिन कोई भी डायलॉग नहीं है सीधा।

गीता सीधा डायलॉग है। मैं—तू की हैसियत से दो दुनियाएं सामने खड़ी हैं। एक तरफ सारी मनुष्यता का डांवाडोल मन अर्जुन में खड़ा है और एक तरफ सारी भगवत्ता अपने सारे निचोड़ में कृष्ण में खड़ी है। और इन दोनों के बीच सीधी मुठभेड़ है, सीधा एनकाउंटर है। यह बहुत अनूठी घटना है। इसलिए गीता एक अनूठा अर्थ ले ली है। वह फिर साधारण धार्मिक किताब नहीं है। उसको हम और किसी किताब के साथ तौल भी नहीं सकते। वह अनूठी है।

लेकिन अगर हम उसके इस गहरे आयाम में प्रवेश करें और अर्जुन की पर्त—पर्त तोड़ते चले जाएं, तो ही हमें खयाल में आएगा। तो अर्जुन के साथ कई बार मैं नाहक ज्यादा कठोर हो जाऊंगा, सिर्फ इसलिए ताकि मनुष्य की पर्त—पर्त का खयाल आ जाए। और अर्जुन पूरा उघड जाए, तो ही कृष्ण को हम पूरा उघाड़ सकते हैं। और जिस अर्थ में अर्जुन का द्वंद्व स्पष्ट हो, उसी अर्थ में कृष्ण का संदेश और संवाद भी स्पष्ट हो सकता है।

गीता दर्शन—भाग—5
स्वभाव की पहचान—(प्रवचन—छठवां)
अध्याय—10

सूत्र

स्वयमेवात्मनात्मान वेत्थ लै गुरुषोत्तम।
भूतभावन भूतेश देवदेव जगत्पते।।15।।
वक्तुमर्हस्यशेषेण दिव्या ह्यात्मविभूतयः।
याभिर्विभूतिभिर्लोकानिमांस्त्व व्याप्य तिष्ठसि।।16।।

कथं विद्यामहं योगिंस्वा सदा यरिचिन्तयन्।
केषु केषु च भावेषु चिज्योउसि भगवन्मया।।17।।
हे भूतों को उत्पन्न करने वाले हे भूतों के ईश्वर? हे देवों के देव हे जगत के स्वामी हे पुरुषोतम आप स्वयं ही अपने से आपको जानते हैं।

ड़सलिए हे भगवन— आय ही उन अपनी दिव्य विभूतियों को संपूर्णता से कहने के लिए योग्य हैं जिन विभूतियों के द्वारा इन सब लोकों को व्याप्त करके स्थित हैं।

हे योगेश्वर मैं किस प्रकार निरंतर चिंतन करता हुआ आपको जानूं और हे भगवन— आय किन— किन भावों में मेरे द्वारा चिंतन करने योग्य हैं।

अर्जुन का मन हो कितना ही जटिल, कितनी ही हों द्वंद्व की पर्तें भीतर, पर अर्जुन सरल व्यक्तित्व है। जटिलता है बहुत, लेकिन अपनी जटिलता के प्रति किसी धोखे में अर्जुन नहीं है। और अपनी जटिलता को भी प्रकट करने में स्पष्ट और ईमानदार है। शायद यही उसकी योग्यता है कि कृष्ण का संदेश उसे उपलब्ध हो सका।

बीमार भी होते हैं हम, तो भी स्वीकार करने का मन नहीं होता। बीमारी को भी छिपाते हैं। और जो बीमारी को भी स्वीकार न करता हो, उसके स्वस्थ होने की संभावना बहुत कम हो जाती है। क्योंकि जिसे मिटाना है, उसे स्वीकार करना जरूरी है। और जिसे मिटाना है, उसे ठीक से पहचानना भी जरूरी है। जिससे मुक्त होना है, उसे जाने बिना मुक्त होने का कोई उपाय नहीं है।

दो तरह की ईमानदारिया हैं। एक ईमानदारी है, जो हम दूसरों के प्रति रखते हैं। वह ईमानदारी बहुत बड़ी ईमानदारी नहीं है; कामचलाऊ है, ऊपरी है। एक और ईमानदारी है गहरी, जो व्यक्ति अपने प्रति रखता है। वह ईमानदारी खोजनी बड़ी मुश्किल है। पहली ईमानदारी ही खोजनी बहुत मुश्किल है, दूसरी तो और भी मुश्किल है।

अपने प्रति ईमानदार होना बड़ा कठिन है, क्योंकि हम सबने अपने संबंध में कुछ धारणाएं, कुछ प्रतिमाएं बना रखी हैं। और अगर हम अपने प्रति ईमानदार हों, तो हमारी ही निर्मित प्रतिमाएं हमारे हाथों ही खंडित हो जाती हैं। हम जो भी अपने को समझते हैं, वह हम हैं नहीं। हम जो भी अपने को मानते हैं, उससे हमारा दूर का भी संबंध नहीं है। और जो हम हैं, वह इतना पीड़ादायी है कि उसे देखने की हिम्मत भी हम नहीं जुटा पाते हैं। जो हमारी वास्तविकता है, जो हमारा यथार्थ है, उसको हम आंख गड़ाकर देखने का भी साहस नहीं रखते हैं।

और धार्मिक जीवन का प्रारंभ तो उसी व्यक्ति का हो सकेगा, जो अपने प्रति ईमानदार है, जो अपने यथार्थ को जानने का साहस जुटा पाता है। जो जैसा है, वैसा ही अपने को उघाड़कर देख सकता है। चाहे हो कितना ही विकृत, और चाहे कितना ही हो गहन अंधेरा, और चाहे कितने ही रोग हों भीतर, और चाहे कितनी ही हो विक्षिप्तता, लेकिन जो उस सबको शांत भाव से देखने को तैयार है, स्वीकार करने को कि ऐसा मैं हूं वही व्यक्ति धार्मिक हो सकता है। अपने प्रति ईमानदारी धार्मिक व्यक्ति का पहला कदम है।

अर्जुन जटिल है, उलझा हुआ है। जैसा कि कोई भी मनुष्य जटिल है और उलझा हुआ है। मनुष्य होने के साथ ही वैसी जटिलता अनिवार्य है। लेकिन अर्जुन उसे छिपाने को आतुर नहीं है। जानकर उसे भुलाने की भी उसकी चेष्टा नहीं है। अनजाने जटिलता है, लेकिन जानकर अर्जुन उससे मुक्त होने के लिए भी आतुर है। न उसे खुद भी पता चलता हो, लेकिन अपने प्रति वह विनम्र है। और जो भी उसके भीतर हो रहा है, वह उसे कृष्ण से कहे चला जाता है। इस सूत्र में कुछ बातें उसने बड़े मूल्य की कही हैं। साधक की तरफ से समझने योग्य! जो खोजने निकलते हैं परमात्मा को, उनके लिए बहुत मूल्य की!

कई बार तो ऐसा हो सकता है कि कृष्ण का वचन भी उतना मूल्यवान न हो। क्योंकि कृष्ण का वचन तो आत्यंतिक है, अंतिम है। जब हम पहुंचेंगे, तब हम उसे जानेंगे। ऐसा हो सकता है कि बहुत बार अर्जुन का वक्तव्य बहुत कीमती हो, कृष्ण से भी ज्यादा कीमती हो,

हमारे लिए। सत्य उतना नहीं है वह, जितना कृष्ण का वक्तव्य होगा। न वह आत्यंतिक कोई अनुभूति है, लेकिन अर्जुन जहां खड़ा है, वहीं हम सब खड़े हैं। तो अर्जुन को समझ लेना, उसके वक्तव्य को समझ लेना, खुद को समझने के लिए बहुत कीमती है। और खुद को जो समझ ले, वह किसी दिन कृष्ण को भी समझ पा सकता है।

इस सूत्र में दो—तीन बातें महत्वपूर्ण है, क्रमश: उन्हें हम समझे। अर्जुन ने कहा, हे भूतों को उत्पन्न करने वाले, हे भूतों के ईश्वर, हे देवों के देव, हे जगत के स्वामी, हे पुरुषोत्तम, आप स्वयं ही अपने से आपको जानते हैं।

अर्जुन ने इस सूत्र के पहले कहा कि आप जो भी कहते हैं, उसे मैं सत्य मानता हूं। अगर अर्जुन यह कहे कि उसे मैं सत्य जानता हूं तो वह बेईमानी हो जाएगी। उसने कहा, मैं सत्य मानता हूं। यह ईमानदार वक्तव्य है। उसने यह नहीं कहा कि ऐसा मैं जानता हूं। उसने इतना ही कहा है कि आप जो कहते हैं, उसे मैं सत्य मानता हूं। मेरी चेष्टा है, मेरा प्रयत्न है, मेरा भाव है। यह सत्य हो, यह सत्य होना चाहिए, ऐसी मेरी आकांक्षा है। चाहता हूं कि आप जो भी कहते हैं, वह सत्य हो। मानता हूं कि वह सत्य है।

लेकिन अर्जुन को इस कहते क्षण में भी शायद भीतर की उस दूसरी पर्त का भी अनुभव हुआ होगा कि यह मैं जानता नहीं हूं। इसलिए उसने इस वक्तव्य में बहुत गहरी बात कही है। उसने कहा है कि आप स्वयं ही अपने से अपने को जानते हैं। मैं चाहूं भी जानना, तो कैसे जान सकता हूं! मैं कहूं भी कि जानता हूं तो वह असत्य होगा। आप अपने से ही अपने को जानते हैं।

इस वक्तव्य के कई आयाम हैं।

जगत में दो तरह की चीजें हैं। एक तो वे चीजें हैं, जो पर— प्रकाशित हैं। हम यहां बैठे हैं। अगर बिजली का प्रकाश बंद हो जाए, तो मैं आपको दिखाई नहीं पडूंगा, आप मुझे दिखाई नहीं पड़ेंगे। आप मुझे दिखाई पड़ते हैं, आपके होने की वजह से ही नहीं। आपका होना जरूरी है, लेकिन काफी नहीं। प्रकाश भी चाहिए, तो आप मुझे दिखाई पड़ते हैं। आप हों और प्रकाश न हो, तो आप मुझे दिखाई न पड़ेंगे। आपके दिखाई पड़ने में आपकी मौजूदगी जरूरी है, और प्रकाश भी जरूरी है। क्योंकि प्रकाश होगा, तो ही आप दिखाई पड़ेंगे। आप प्रकाश से प्रकाशित होंगे, तो ही दिखाई पड़ेंगे। मैं भी दिखाई आपको नहीं पडूंगा, प्रकाश नहीं होगा तो। गहन अंधकार छा जाए यहां, फिर कोई किसी दूसरे को दिखाई नहीं पड़ेगा। दूसरा पर—प्रकाशित है। दूसरे को देखने, जानने के लिए एक और प्रकाश की जरूरत है।

लेकिन कितना ही अंधेरा हो जाए, आप अपने को तो मालूम पड़ते ही रहेंगे। कितना ही गहन अंधेरा हो जाए, क्या इतना अंधेरा भी हो सकता है कि मैं खुद कहूं कि अब मुझे अपना पता नहीं चलता, अंधेरा बहुत ज्यादा है! आप मुझे पता नहीं चलेंगे; मैं आपको पता नहीं चलूंगा। लेकिन मैं स्वयं को पता चलता रहूंगा; आप स्वयं को पता चलते रहेंगे। तो आपके स्वयं के होने की जो प्रतीति है, उसके लिए किसी दूसरे प्रकाश की जरूरत नहीं है, आपका होना काफी है।

एक बहुत प्रसिद्ध सूफी हसन के जीवन में उल्लेख है कि वह अपने गुरु के पास गया। दो और मित्र उसके साथ सत्य की खोज पर निकले थे। वे तीनों अपने गुरु के पास गए। उन तीनों ने कहा कि हम जानना चाहते हैं, आत्मा क्या है? उनका गुरु उस समय कबूतरों को दाने डाल रहा था। उसने एक—एक कबूतर पकड़कर तीनों को दे दिया और उन तीनों से कहा कि तुम ऐसी जगह जाओ जहां कोई देखता न हो, और कबूतर की गर्दन मरोड़कर आ जाओ, मार डालों। फिर पीछे हम आगे की खोज पर चलेंगे। यह तुम्हारा पहला पाठ!

एक युवक सीढ़ियों से नीचे उतरा। पास की गली में गया। देखा, कोई भी नहीं है। कबूतर को मरोड़ा और वापस आ गया। दूसरा युवक खोजबीन किया। गली में गया। लेकिन उसे लगा कि प्रकाश है और मैं मरोडू, और तभी कोई खिड़की से झांककर देख ले, या अचानक कोई गली में आ जाए, तो रात तक रुकूं, अंधेरा हो जाने दूं। रात अंधेरा जब हो गया, तब वह एक गली में गया और उसने कबूतर की गर्दन मरोड़ दी और रात आकर गुरु के चरणों में कबूतर रख दिया।

लेकिन हसन, तीसरे युवक का तीन दिन तक कोई पता न चला। दोनों मित्र राह देखते हैं, गुरु राह देखता है। तीसरे दिन गुरु ने उन दोनों को कहा कि अब तुम हसन को खोजकर लाओ कि वह कहां है!

हसन ने सब तरह की कोशिश की। गली में जाकर देखा। लगा, कोई भी देख लेगा। अंधेरे में जाकर देखा। गहन अंधेरे में गया, तो भी कबूतर की आंखें! जब भी कबूतर को मरोड़ने जाता, कबूतर की आंखें अंधेरे में भी उसे दिखाई पड़ती। तो उसने अपनी आंखों पर पट्टी बांध ली और कबूतर की आंखों पर भी पट्टी बांध दी और नीचे एक तलघरे में उतर गया, जहां गहन अंधेरा था। और जब उसने कबूतर की गर्दन पर हाथ रखा, तब उसे खयाल आया, कोई न देखता हो, लेकिन मैं तो जान ही रहा हूं मैं तो देख ही रहा हूं।

तीन दिन बाद उसके साथी उसे पकड़कर लाए। उसने कबूतर गुरु के चरणों में रख दिया। और उसने कहा कि क्षमा करें, यह काम हो नहीं सकता। क्योंकि कहीं भी मैं जाऊं, मैं तो देखता ही रहूंगा। और यह भी हो सकता है कि मैं भी न देखूं लेकिन कबूतर तो मौजूद रहेगा ही। ऐसा भी कोई उपाय हो सकता है कि मैं बहुत दूर हट जाऊं, कबूतर के गले में रस्सी बांध दूर तलघरे में लटका दूं; मैं पार निकल

जाऊं और वहां से रस्सी खींचकर उसकी गर्दन दबा दूं। लेकिन कबूतर तो कम से कम, एक गवाह तो रहेगा ही। तो मैं ऐसी कोई जगह नहीं खोज पाया, जहां कोई भी गवाह न हो। मुझे आप क्षमा कर दें। मैं इस पहले पाठ में असफल हुआ।

उसके गुरु ने कहा, तुम ही सफल हुए हो। तुम्हारे दो साथी असफल हो गए हैं। और अब तुम्हारा दूसरा पाठ शुरू होगा। तुम्हारे दो साथियों को मैं विदा कर देता हूं। उसके गुरु ने कहा कि आत्मज्ञान की दिशा में पहला पाठ यही है कि आत्म—ज्ञान स्व—प्रकाशित है। चाहे कुछ भी करो, स्वयं को जानने को भुलाया नहीं जा सकता। एक तो मौजूद रह ही जाएगा। और यह सूत्र तुम्हारे खयाल में आ गया है।

आत्मा स्व—प्रकाशित है। पदार्थ पर—प्रकाशित है और चेतना स्व— प्रकाशित है। ये दो अस्तित्व हैं, जो हमें दिखाई पड़ते हैं। चेतना के लिए किसी और के जानने की जरूरत नहीं; चेतना स्वयं को ही जानती है।

ऐसा ही समझें कि एक दीया जल रहा है। दीया जलता है, तो सारे कमरे को प्रकाशित करता है। दीया बुझ जाए, तो कमरा दिखाई नहीं पड़ता। लेकिन दीया जलता है, तो अपने को भी प्रकाशित करता है। उस दीये को जानने के लिए किसी दूसरे दीये की जरूरत नहीं पड़ती। चेतना अपने को ही जानती और अनुभव करती है। और सब चीजों को जानने के लिए किसी और की जरूरत पड़ती है।

इसी कारण आत्मा का कोई विज्ञान नहीं बन पाता। इसे थोड़ा समझ लें।

इसी कारण वैज्ञानिक चिंतक आत्मा को स्वीकार नहीं कर पाते। क्योंकि वे कहते हैं कि जब तक हम आब्जर्व न करें, निरीक्षण न करें, प्रयोग न करें, तब तक हम कैसे मानें कि आत्मा है! और जब भी हम निरीक्षण करते हैं किसी वस्तु का, तो वह पदार्थ होती है। जो निरीक्षण करता है, वह आत्मा होता है। और जो निरीक्षण करता है, उसका निरीक्षण करने का कोई उपाय नहीं है।

इसलिए वैज्ञानिक आत्मा को स्वीकार करने को राजी नहीं हो पाते। उनकी अपनी मजबूरी है। उन्होंने विज्ञान की जो परिभाषा स्वीकार की है, उसी परिभाषा ने सीमा बना दी है। वे जिसका निरीक्षण कर सकें, वही वैज्ञानिक तथ्य हो सकेगा। तब फिर जो निरीक्षण करता है, वह कभी भी वैज्ञानिक तथ्य नहीं हो सकता। परिभाषा ने ही वर्जित कर दिया।

वे कहते हैं, जिस पर हम प्रयोग कर सकें, उसको ही हम तथ्य मानेंगे। लेकिन जो प्रयोग करता है, उसका हम क्या करें! निश्चित ही, जब प्रयोग होता है, तो कोई प्रयोग भी करता है। और जब निरीक्षण होता है, तो कोई निरीक्षक भी है। और जब ऑब्जर्वेशन हो रहा है, तो कोई ऑब्जर्वर भी है। लेकिन विज्ञान कहता है कि जब तक हम टेबल पर सामने रखकर निर्णय न ले सकें, निष्कर्ष न ले सकें, विश्लेषण न कर सकें, तब तक कुछ भी कहना मुश्किल है।

अगर यह ही विज्ञान की परिभाषा रहने को है, तो फिर हम आत्मा के संबंध में कभी भी विज्ञान निर्मित न कर पाएंगे, और विज्ञान कभी आत्मा के सत्य की घोषणा न कर पाएगा। या तो हमें विज्ञान की परिभाषा बढ़ानी होगी और विज्ञान की परिभाषा में यह भी सम्मिलित करना होगा कि जो जाना जाता है वही नहीं, जो जानता है वह भी, उसका भी अस्तित्व है।

अर्जुन कृष्ण से कह रहा है कि आप ही आपको जानते हैं।

कृष्ण का अर्थ हुआ, परम चैतन्य, चेतना की शुद्धतम अवस्था। तो अर्जुन कहता है, मैं उसे जानूं भी तो कैसे जानूं? मेरे ज्ञान से आप नहीं जाने जा सकते। आप तो स्वयं ही प्रकाशित हैं, और आप ही अपने को जानने वाले हैं। मैं आपको कैसे जानूं? और मैं अगर आपको जानूं भी, तो आपका शरीर ही जान पाता हूं आपका पदार्थगत हिस्सा ही दिखाई पड़ता है। आपकी वाणी सुनाई पड़ती है; वह नहीं दिखाई पड़ता, जो बोलता है। आपकी आंखें दिखाई पड़ती हैं, वह नहीं दिखाई पड़ता, जो आंखों से देखता है। आपका हाथ अपने हाथ में ले लेता हूं। लेकिन हाथ तो पदार्थ है। वह मेरी पकड़ में नहीं आता, जो हाथ के भीतर जीवन है। मैं आपको सब तरफ से पहचान लेता हूं लेकिन यह पहचान बाहरी है। मैं कितना ही आपको जानता रहूं यह जानना आपके आस—पास है। लेकिन आप चूक जाते हैं। आप तक मैं नहीं पहुंच पाता हूं। आप मेरी पकड़ के बाहर रह जाते हैं। आप तो अपने को ही जानते हैं। आप ही अपने को जानते हैं। मैं आपको कैसे जान सकता हूं!

इसलिए भक्तों ने कहा है, ज्ञानियों ने कहा है कि परमात्मा को तब तक नहीं जाना जा सकता, जब तक आप स्वयं परमात्मा न हो जाएं। परमात्मा होकर ही उसे जाना जा सकता है।

इससे एक दूसरी बात भी खयाल में ले लें।

जगत में दो तरह के ज्ञान हैं। एक ज्ञान है, जिसे बर्ट्रेंड रसेल ने एकेनटेंस कहा है, परिचय कहा है। और दूसरा ज्ञान है, जिसे बर्ट्रेंड रसेल ने नालेज कहा है, ज्ञान कहा है। परिचय और ज्ञान। जब हम किसी चीज को बाहर से देखते हैं, तो वह परिचय है, एकेनटेंस है, ज्ञान नहीं है।

आप एक फूल को देखते हैं, तो आप क्या करेंगे? बाहर से देखेंगे, उसकी सुगंध लेंगे, उसका रूप देखेंगे, उसकी आकृति। अगर कवि हुए, तो उसे प्रेम करेंगे। गायक हुए, तो गीत गाएंगे उसके सौंदर्य का। अगर पारखी हुए, तो आनंदित हो जाएंगे, नाच उठेंगे। लेकिन यह फूल के बाहर से ही हो रहा है। अगर वैज्ञानिक हुए, तो फूल को तोड़कर विश्लेषण करके, उसके केमिकल्स, उसके तत्वों को अलग—अलग बोतल में बंद करके, लेबल लगाकर रख देंगे कि इन—इन चीजों से मिलकर बना है यह फूल। इतना रस है इसमें। इतना पानी है। इतना खनिज है। इतना लोहा है। वह सब आप रख देंगे।

लेकिन यह भी जानना बाहर से ही होगा। फूल के भीतर प्रवेश नहीं हुआ। फूल एक ऑब्जेक्ट रहा। आप जानने वाले, अलग रहे, बाहर रहे। अगर कवि की तरह जाना, तो थोड़े निकट आए, लेकिन फिर भी दूर रहे। क्योंकि निकटता भी दूरी का एक नाम है। कितने ही निकट आ जाएं, दूरी तो बनी ही रहती है।

मेरे ये दोनों हाथ बिलकुल भी निकट आ जाएं, तो भी दोनों के बीच स्पेस तो रहती है, जगह तो रहती है, फासला तो रहता है। अगर फासला न रहे, तो दोनों हाथ एक ही हो जाएं, फिर दो न रह जाएं। दो का मतलब ही है कि बीच में फासला कितना ही कम हो, लेकिन फासला है। और वह कम नहीं है फासला। फासला बड़ा है, भारी है। फासला इतना बड़ा है कि कितना ही उपाय करें, वह मिटता नहीं। हम कितने ही करीब ले आएं, मिटता नहीं।

वैज्ञानिक कहते हैं कि अणु—अणु के बीच में भी ऐसा फासला है, जितना सितारों के बीच में। अनुपात वही है, भारी फासला है। जमीन से सूरज कोई दस करोड़ मील दूर है। यह फासला बड़ा मालूम पड़ता है, दस करोड़ मील दूर! बीच में इतना शून्य है। अगर हम अणु में प्रवेश करें, तो अणु के भी इलेक्ट्रान और न्यूट्रान के बीच, अगर हम न्यूट्रान को जमीन के बराबर बड़ा मान लें, तो उसकी और इलेक्ट्रान की दूरी इतनी ही हो जाती है, जितनी जमीन और सूरज की है। अनुपात फासला इतना ही बड़ा है। दो अणु भी पास—पास नहीं हैं, जो बिलकुल पास मालूम पड़ रहे हैं।

हमारे हाथ जब बिलकुल पास हैं, तब भी भारी फासला है। और फासला कभी मिटता नहीं है। दो के बीच दूरी बनी ही रहती है। निकटता भी दूरी का एक नाम है। कह सकते हैं, निकटता कम से कम दूरी है। और दूरी कम से कम निकटता है। और कोई ज्यादा फासला नहीं है।

कितने ही पास से हम जानें, दूरी है। उसी दूरी को वैज्ञानिक भी मिटाने की कोशिश करता है। वह चीर—फाड़ करके पदार्थ के भीतर घुस जाता है। फूल को तोड़ डालता है। क्योंकि नहीं तोड़ेंगे, तो भीतर प्रवेश नहीं हो सकेगा।

तोड़कर भी हम पार ही रहते हैं, भीतर नहीं पहुंच पाते। फूल टूट जाता है, दूरी उतनी ही रहती है; फासला कम नहीं होता। सच तो यह है कि कवि ज्यादा करीब पहुंच जाता है फूल के, बजाय वैज्ञानिक के। हालांकि वैज्ञानिक अपने औजारों से भीतर घुसने की कोशिश करता है।

क्या आपको खयाल है कि आपको अगर किसी ने प्रेम किया हो, तो वह आपके हृदय के ज्यादा करीब है, बजाय उस सर्जन के जो आपके हृदय का आपरेशन करेगा। हृदय का आपरेशन करने वाला बिलकुल आपके हृदय में हथियार डाल देगा। फिर भी उतने करीब नहीं है, जितना वह, जिसने आपको प्रेम किया है।

कवि निकट आ सकता है। वैज्ञानिक भी निकट आने की कोशिश करता है। लेकिन निकट कोई भी आ नहीं पाता, फासला बना रहता है; दूरी बनी रहती है।

प्रेमियों के बीच में भी दूरी बनी रहती है! कितने ही बड़े प्रेमी हों, बड़ी दूरी बनी रहती है। दो प्रेमी बिलकुल सटकर आस—पास बैठे हों। पूर्णिमा की रात हो। बड़े गीत गाते हों। प्रेम की चर्चा करते हों। फिर भी फासला भारी बना रहता है। भारी फासला बना रहता है। और इसलिए प्रेमी भलीभांति अनुभव करते हैं कि जितने करीब आते हैं, उतनी दूरी बढ़ती हुई मालूम पड़ती है। क्योंकि उतना ही अनुभव होता है कि करीब आ गए और फिर भी करीब आए नहीं। तो अनुभव होता है कि दूरी और बढ़ गई।

इसलिए सभी प्रेम असफल हो जाते हैं। सभी कहता हूं! सिर्फ उन प्रेमों को छोड़ देता हूं जिनको असफल होने का मौका ही नहीं मिलता। अगर दो प्रेमियों को करीब आने का मौका ही न मिले, तो वे कभी असफल न होंगे। क्योंकि उनको वहम बना ही रहेगा कि करीब आ सकते थे, मौका नहीं मिला। लेकिन जिन प्रेमियों को भी करीब आने का मौका मिल जाए, वे असफल होंगे ही; असफलता सुनिश्चित है। क्योंकि करीब आकर पता चलेगा, करीब आ गए, और करीब नहीं आए। पास आ गए, और दूरी बनी है! और तब पीड़ा भारी हो जाती है।

कितने ही हम पास आ जाएं किसी चीज के, परिचय ही होता है, ज्ञान नहीं होता। ज्ञान का तो एक ही उपाय है और वह यह है कि हम उस चीज के साथ एक हो जाएं, एकाकार हो जाएं।

यह बड़ा कठिन है। असंभव मालूम पड़ता है। प्रेमी भी सफल नहीं हो पाते अपने प्रेम—पात्र के साथ एक होने में। कवि भी सफल नहीं हो पाता, चित्रकार भी सफल नहीं हो पाता फूल के साथ एक होने में।

इसलिए सिर्फ धर्म के अतिरिक्त सभी कुछ परिचय है। सिर्फ धर्म ही ज्ञान का द्वार है। क्योंकि धर्म एक ऐसी प्रक्रिया को खोजा है— जिसे मैंने ध्यान कहा; योग कहें, समाधि कहें—ऐसी प्रक्रिया है, जहां एक चेतना की लौ दूसरी चेतना की लौ में लीन हो जाती है। स्वभावत:, दो शरीर एक नहीं हो सकते, लेकिन दो आत्माएं एक हो सकती हैं। दो शरीर इसलिए एक नहीं हो सकते कि उनकी सीमाएं हैं। और उनकी सीमाएं मौजूद रहेंगी। दो आत्माएं एक हो सकती हैं, क्योंकि आत्मा की कोई सीमा नहीं है।

जितनी सीमा तरल होगी, उतनी एकता आसान है। दो पत्थर के टुकड़ों को हम पास रख दें, तो वे एक नहीं हो पाते, क्योंकि उनकी सीमा मजबूत है। हम दो पानी की बूंदों को पास रख दें, वे एक हो जाती हैं। उनकी सीमा तरल है, सीमा सख्त नहीं है।

शरीर की सीमा पत्थर की तरह सख्त है। आत्मा की सीमा पानी की तरह तरल है। शायद पानी की तरह कहना भी ठीक नहीं, भाप की तरह। भाप की तरह। दो भाप के गुब्बारे उड़े आकाश में, एक गुब्बारा हो जाता है। कोई बाधा नहीं है।

एक कमरे में हम दो दीये जला दें; दोनों का प्रकाश एक हो जाता है। कहीं कोई टकराहट भी नहीं होती। हजार दीये जला दें हम एक ही कमरे में, तो भी कमरे में कोई कापिटीशन, कोई प्रतिस्पर्धा खड़ी नहीं होगी, कि दीये कहने लगें कि बहुत हो गया, इनफ, रुको अब! इस कमरे में ज्यादा दीये की रोशनी नहीं समा सकती। यहां तो एक दीया पहले से ही रोशन कर रहा है। अब दूसरा दीया यहां कैसे आ सकता है! दूसरा दीया आ जाए, उसकी रोशनी भी पहले दीये की रोशनी से एक हो जाती है। तीसरा आ जाए, उसकी भी एक हो जाती है। चौथा आ जाए, उसकी भी एक हो जाती है। दीये अलग रह जाते हैं, रोशनी एक हो जाती है।

शरीर अलग रह जाते हैं ध्यान में, आत्मा एक हो जाती है। इसलिए अगर एक कमरे में बीस लोग ध्यान कर रहे हों, तो बीस शरीर होते हैं, आत्मा एक होती है। अगर ध्यान कर रहे हों तो! अगर विचार कर रहे हों, तो बीस शरीर होते हैं और हजार आत्माएं होती हैं। अगर विचार कर रहे हों तो! तब तो एक—एक आदमी के भीतर अनेक आत्माएं हो जाती हैं। इतने खंड, इतने टुकड़े हो जाते हैं। लेकिन अगर ध्यान कर रहे हों, तो सब शून्य हो जाता है।

बुद्ध के जीवन में उल्लेख है कि बुद्ध एक महानगरी के पास विश्राम को रुके। दस हजार भिक्षु उनके साथ हैं। उस नगर का राजा है अजातशत्रु। नाम है उसका अजातशत्रु, ऐसा व्यक्ति जिसका शत्रु पैदा ही न हुआ हो। जिसका शत्रु अजन्मा है, ऐसा उसका नाम है। ऐसा बहादुर आदमी भी था वह। लेकिन तलवार पर जिनकी बहादुरी निर्भर होती है, शरीर की ताकत पर जिनकी बहादुरी निर्भर होती है, वे कितने ही बहादुर हों, भीतर तो कमजोर होंगे ही।

अजातशत्रु को उसके आमात्यों ने, उसके मंत्रियों ने कहा कि बुद्ध का आगमन हुआ है, आप भी उनके दर्शन को चलें। तो अजातशत्रु ने कहा, चलूंगा। लेकिन मेरे साथ मेरी फौज भी चलेगी। मंत्रियों ने कहा, यह उचित न होगा। बुद्ध के पास फौज लेकर क्या जाना? आप अकेले ही चलें। दस—पांच आपके साथी, मित्र, परिवार के चल सकते हैं। फिर भी अजातशत्रु को डर लगा कि पता नहीं, कोई षड्यंत्र न हो! कहीं ये मंत्री किसी उपद्रव में न ले जा रहे हों। फिर उसने सारा पता लगाया। बुद्ध आए हुए हैं। दस हजार भिक्षु ठहरे हैं गांव के बाहर ही, आम्रवन में।

तो एक सांझ वह गया। रास्ते पर ही उसने अपना रथ छोड़ दिया, अपने मंत्रियों के साथ आगे बढ़ने लगा। मंत्रियों ने कहा कि बस यह जो वृक्षों की पंक्ति दिखाई पड़ रही है, इसके उस पार ही बुद्ध के दस हजार भिक्षुओं का डेरा है! वृक्षों की पंक्ति करीब आने लगी। अजातशत्रु ने चौंककर अपनी तलवार बाहर निकाल ली और अपने मंत्रियों से कहा कि मुझे कुछ संदेह मालूम पड़ता है! जहां दस हजार लोग रुके हों, वहां आवाज तो जरा—सी भी नहीं हो रही है! यह नहीं हो सकता। दस हजार लोग रुके हों इस पंक्ति के पार, तो भारी बाजार मच जाएगा। मुझे कुछ शक मालूम पड़ता है, यह कोई धोखा है।

मंत्रियों ने कहा कि आप तलवार भीतर रखें। शक मालूम पड़ता हो, तो बाहर भी रखें। थोड़ा और आगे चलें। दस हजार लोग ही ठहरे हैं। लेकिन ये लोग और तरह के लोग हैं। जिनको आपने बाजार में देखा है, उस तरह के लोग नहीं हैं।

और जब अजातशत्रु बुद्ध के पास गया, तो चकित हो गया। वहां दस हजार लोग बैठे थे वृक्षों के तले। चुप थे, आंखें उनकी बंद थीं। बुद्ध से अजातशत्रु ने पूछा है कि ये दस हजार लोग इतने चुप क्यों बैठे हैं? तो बुद्ध ने कहा है, क्योंकि इस समय ये दस हजार नहीं हैं। क्योंकि इस समय ये दस हजार नहीं हैं; इस समय ये ध्यान में हैं। ध्यान का अर्थ हुआ कि हमारी जो आत्मा है, वह जब शांत हो जाती है, तो तरलता से आस—पास फैल जाती है, जुड़ जाती है, एक हो जाती है।

ज्ञान, अगर ज्ञान का हम यही अर्थ करते हों कि किसी वस्तु को उसके केंद्र से जानना, परिधि से नहीं, उसके बाहर से नहीं, उसके प्राणों में, उसके अंतस्तल में डूबकर जानना। अगर ज्ञान की यही परिभाषा हो, तो धर्म के अतिरिक्त ज्ञान का और कोई स्रोत नहीं है। क्योंकि

धर्म ही उस कला का जन्मदाता है, जो आपकी सीमाओं को तोड़ डालती है और आपको असीम के साथ एक होने का अवसर, सुविधा और संभावना जुटा देती है।

अर्जुन ने कृष्ण से कहा कि आप स्वयं ही अपने से आपको जानते हैं। मैं कैसे आपको जान सकता हूं! मैं दूर हूं। मैं बाहर हूं। मैं और हूं। आप कृष्ण हैं, मैं अर्जुन हूं। फासला है, मैं मान ही सकता हूं। ध्यान रहे, इसी को मैं उसकी ईमानदारी कह रहा हूं। आप अपने मानने को भी जानना कहने लगते हैं, तब बेईमानी हो जाती है। अगर आप भी कहें कि मैं ईश्वर को मानता हूं जानता नहीं; तो मैं कहूंगा, आप ईमानदार आदमी हैं, और किसी दिन धार्मिक भी हो सकते हैं। लेकिन हम मानने की बात ही नहीं करते। हम कहते हैं, मैं जानता हूं कि ईश्वर है! इतना ही नहीं, हम ईश्वर— जिसको हम सिर्फ मानते हैं, जानते नहीं—उसके लिए लड़ सकते हैं, काट—पीट कर सकते हैं, हत्याएं कर सकते हैं। लोग मंदिर जलाते हैं, मस्जिद जलाते हैं, गिरजे तोड़ डालते हैं। इतना पक्का है उनका जानना कि दूसरे का गलत होना इतना सही है कि अगर हत्या भी करनी पड़े, तो वे पीछे नहीं हटते।

मानने वाले लोग, जिनको कुछ भी पता नहीं है, इतने अहम्मन्य हो सकते हैं, उसका एक ही कारण है कि वे अपने मानने को जानने की भ्रांति में पड़ जाते हैं। अपनी तरफ बेईमानी हो जाती है।

ठीक से समझ लेना चाहिए, क्या मैं मानता हूं और क्या मैं जानता हूं। क्या है मेरा बिलीफ, मेरा विश्वास; और क्या है मेरा ज्ञान, मेरी अनुभूति; इसका फासला एकदम स्पष्ट होना चाहिए।

इसलिए अर्जुन ने कहा कि मैं मानता हूं कि आप जो कहते हैं, सत्य है। आप ईश्वर हैं। आप समस्त भूतों को उत्पन्न करने वाले, समस्त भूतों के ईश्वर, देवों के देव, हे जगत के स्वामी, हे पुरुषोत्तम! लेकिन यह सब मान्यता है मेरी। क्योंकि आप स्वयं ही अपने से आपको जानते हैं। यह सब भी मैं कहूं तो यह मेरा जानना नहीं है। यह मेरा भाव है, मेरा ज्ञान नहीं। यह मेरी श्रद्धा है, मेरी प्रतीति, मेरा साक्षात्कार नहीं।

इतना बारीक फासला स्पष्ट होना चाहिए साधक को, तो दूसरी घटना भी घट सकती है। जिसने ठीक से पहचाना कि क्या मेरी मान्यता है, वह फिर मान्यता से राजी नहीं होगा। फिर मान्यता में उसे घबड़ाहट होने लगेगी। फिर बेचैनी होगी उसके मन को। और फिर वह तड़फेगा कि मैं जानूं कैसे? और जानने की यात्रा पर निकलेगा।

जिस आदमी ने मानने को ही समझ लिया कि जानना है, उसकी यात्रा ही समाप्त हो गई। वह मंजिल पर पहुंच ही गया, बिना पहुंचे! उसने पा ही लिया, बिना पाए! वह सिद्ध हो ही गया, साधन से गुजरे बिना! साधना से गुजरे बिना, उपलब्धि हो गई उसे! उसने मान लिया।

इस जगत में अधिक लोग इसलिए ठहर जाते हैं, क्योंकि आगे उपाय ही नहीं बचता। आप जान ही लेते हैं बिना जाने, तो फिर आगे यात्रा करने को कुछ बचता नहीं। एक आदमी कहता है कि मैं ईश्वर को जानता हूं बात खतम हो गई। अब जाने को कहीं बची भी नहीं कोई जगह।

फासला कायम रखें। स्पष्टता से समझें कि यह मेरी मान्यता है, मेरा जानना नहीं। और जानना अभी शेष है, और अभी मुझे चलना होगा, और अभी मुझे संघर्ष करना होगा, और अभी मुझे बड़ा रास्ता बाकी है, जिसे पूरा करना है, और तब कहीं मैं जानने तक पहुंच पाऊंगा।

लेकिन हम आंख बंद करके यहीं बैठ जाते हैं रास्ते के किनारे। पड़ाव मंजिल बन जाता है। और अगर हमसे कोई कहे कि यह पड़ाव है, मंजिल नहीं है, यहां मत डेरा डालो, उठो! तो हम नाराज होंगे। क्योंकि यह आदमी हमारी नींद खराब करता है। क्योंकि यह आदमी हमारे विश्राम को तोड़ रहा है। क्योंकि हम मानकर बैठ गए, मजे में हो गए। शांत हो गए। झंझट मिटी। अब कहीं जाने को न रहा। अब हम विराम कर सकते हैं, विश्राम कर सकते हैं। यह आदमी कहता है कि नहीं, यह मंजिल नहीं है। यह सिर्फ रास्ते का किनारा है। उठो! तो इस आदमी पर हमें क्रोध आता है।

इसलिए इस जगत में जब भी किसी ने हम से कहा है कि तुम जहां रुके हो, वह मंजिल नहीं है, तो हम नाराज हुए हैं। चाहे जीसस, चाहे कृष्य, चाहे बुद्ध, चाहे महावीर, चाहे नानक, चाहे कबीर, जिसने भी हमसे कहा है कि कहां तुम बैठे हो रास्ते के किनारे! वह हमें दुश्मन मालूम पड़ा। दुश्मन इसलिए मालूम पड़ा कि हमारे घर को बर्बाद किए दे रहा है। हम घर बनाकर बैठ गए हैं। हम बड़े मजे में हैं।

मजा यह है कि हमने पा लिया है और ये लोग आते हैं और ये हमें झकझोर देते हैं। और हिलाकर घर के बाहर निकालते हैं, और कहते हैं कि यह रास्ता लंबा है अभी। और जिसे तुम घर समझ रहे हो, यह घर वैसा ही है, जैसा शुतुरमुर्ग दुश्मन को देखकर घबड़ा जाता है और सिर को रेत में खपाकर खड़ा हो जाता है। और चूंकि सिर रेत में चला जाता है, आंखें बंद हो जाती हैं, दुश्मन दिखाई नहीं पड़ता, तो शुतुरमुर्ग सोचता है कि जो दिखाई नहीं पड़ता है, वह है नहीं। इसका नाम शुतुरमुर्ग का तर्क है।

शुतुरमुर्ग का अपना तर्क है कि जो नहीं दिखाई पड़ता, वह नहीं है। हम भी तो यही कहते हैं। हमारे पास भी लोग हैं, वे कहते हैं, ईश्वर नहीं दिखाई पड़ता, इसलिए नहीं है। शुतुरमुर्ग भी यही कहता है। सिर को गड़ा लेता है रेत में, दुश्मन दिखाई नहीं पड़ता; नहीं है। बात खतम हो गई। निश्चिंत हो जाता है।

हम सब भी अपने सिर गपा लेते हैं अपनी मान्यताओं में। मान्यताओं की रेत आंखों को अंधा कर देती है। फिर हम कुछ बनकर बैठ जाते हैं, जो हम नहीं हैं। जो आस्तिक नहीं है, वह आस्तिक समझ लेता है अपने को। जो धार्मिक नहीं है, वह धार्मिक समझ लेता है अपने को। जो नैतिक नहीं है, वह नैतिक समझ लेता है। जिसे योग का कुछ भी पता नहीं है, जो दों—चार तरह शरीर को झुकाने की कलाएं सीख गया है, वह अपने को योगी समझ लेता है! जिसे ध्यान की कोई भी खबर नहीं है, वह भी आंख बंद करके दो मिनट बैठ जाता है, तो सोचता है, मैंने ध्यान कर लिया! जिसे प्रभु—स्मरण का कोई पता नहीं है, वह भी कोई राम, कृष्ण, कोई भी नाम की रटन थोड़ी देर लगा लेता है, तो सोचता है कि बस, ईश्वर— स्मरण हो गया! इस तरह हम रेत में छिपा लेते हैं अपने सिर को। अपनी बुद्धि को भी गपा लेते हैं। अंधे होकर, मान्यता को जानना समझकर, रुक जाते हैं।

जब भी कोई कबीर, कोई कृष्ण, कोई क्राइस्ट हमें धक्का देगा, और कहेगा, शुतुरमुर्ग! निकालो सिर बाहर! तब हमें क्रोध आता है कि सब नींद खराब किए दे रहा है यह आदमी। फिर यात्रा करनी पड़ेगी। फिर चलना पड़ेगा। जो मिल गया था, वह फिर खो जाएगा। यह छीन लेगा।

लेकिन ध्यान रहे, जो भी आपसे छीना जा सकता है, ठीक से समझ लेना, वह आपके पास है ही नहीं। यह वक्तव्य बड़ा उलटा मालूम पड़ेगा। जो आपके पास नहीं है, केवल वही छीना जा सकता है, और जो आपके पास है, उसे छीनने का कोई भी उपाय नहीं। यह वक्तव्य पैराडाक्सिकल लगेगा, क्योंकि मैं कह रहा हूं जो आपके पास नहीं है, केवल वही छीना जा सकता है। और जो आपके पास है, वह कभी नहीं छीना जा सकता।

जीसस ने इस वचन का उपयोग किया है। जीसस ने कहा है, जिनके पास नहीं है, उनसे छीन लिया जाएगा; और जिनके पास है, उन्हें और दे दूंगा।

उलटा लगता है। हम सबको लगेगा कि यह तो बिलकुल इकॉनामिक्स से उलटी बात हो गई। जिसके पास नहीं है, उसे दो। जिसके पास है, उससे छीनो। यह सीधा समाजवाद का तर्क है। जिसके पास है, उससे छीनो। और जिसके पास नहीं है, उसे दो। लेकिन ये आध्यात्मिक लोग, न मालूम कैसा उलटा समाजवाद है इनका! जीसस कहते हैं, जिसके पास नहीं है, उससे छीन लिया जाएगा; और जिसके पास है, उसे और दे दिया जाएगा। निश्चित ही लेकिन यह तर्क किसी दूसरी दुनिया का है। जहां समाजवाद लागू होता है, उस दुनिया से इसका कोई संबंध नहीं है। यह इस सूत्र की बात मैं आपसे कह रहा हूं।

आपको अगर डर लगता हो कि आपका परमात्मा छिन सकता है, तो समझना, वह आपके पास नहीं है। आपको डर लगता हो कि आपका मोक्ष छिन सकता है, तो समझना, वह आपके पास नहीं है। आपको डर लगता हो कि आपकी आत्मा, आपका ज्ञान, आपकी श्रद्धा छिन सकती है, तो वह आपके पास नहीं है।

एक मित्र मेरे पास आते थे। तीसरे दिन उन्होंने मुझे पत्र लिखा और लिखा कि अब मैं दुबारा आपके पास नहीं आऊंगा। क्योंकि जब मैं आपके पास आया, उसके पहले मैं बड़ा आश्वस्त था कि जानता हूं; और आप से मिलकर मुझे नुकसान के सिवाय लाभ नहीं हुआ। क्योंकि अब मुझे शक होने लगा है कि मैं जानता भी हूं कि नहीं जानता हूं! पहले मैं बड़े मजे में था। पर अब सब मेरा मजा अस्तव्यस्त हो गया।

तो मैंने उनको खबर भेजी कि अब तुम आओ या न आओ, अब यह अस्तव्यस्तता मिट नहीं सकती। एक धोखा टूट जाए, तो आप वापस नहीं लौट सकते फिर।

जीवन का नियम है कि जो भी जान लिया जाए, उसे फिर मिटाया नहीं जा सकता। ज्ञान को मिटाने का कोई उपाय नहीं है। अगर यह भी ज्ञान हो जाए, अगर यह भी मुझे पता चल जाए कि जो मैं जानता था, वह गलत है, तो अब कोई उपाय नहीं है इससे वापस लौट जाने का। अब आगे ही बढ़ना पड़ेगा। जीवन आगे जाना ही जानता है, पीछे जाने का कोई उपाय नहीं है। विकास पीछे नहीं लौटता। लाख उपाय करें, तो भी एक इंच पीछे नहीं जा सकते।

तो मैंने उनसे कहा, अब आओ या न आओ, लेकिन जो तुम्हारे पास था, वह कभी नहीं होगा। अब तो तुम्हें आगे बढ़कर उसे पुन: प्राप्त करना होगा।

लेकिन वे चेष्टा करेंगे। फिर किसी झाड़ के नीचे, फिर किसी रास्ते के किनारे दूसरा घर बना लेंगे। पुराना भी टूट गया, कोई हर्ज नहीं। फिर दूसरा बना लें। फिर उसमें छिप जाएं।

हम सस्ते में निपटना चाहते हैं। इसलिए दुनिया में शार्टकट इतने प्रभावी हो जाते हैं। कोई भी कह देता है कि कोई दिक्कत नहीं है। माला फेर लो रोज एक बार। सब ठीक हो जाएगा। कोई कह देता है, घबड़ाते क्यों हो? मरते वक्त राम का नाम ले लेना, सब ठीक हो जाएगा। तो लोग इतने होशियार हैं कि वे कहते हैं, हम तो क्या ले पाएंगे! क्योंकि मरते वक्त तक भी उनको ऐसा नहीं लगता कि अब मर रहे हैं। मर ही जाते हैं, जब उनको पता चलता है कि मर गए! तो वे पंडितों को किराए पर रखकर उनसे राम—नाम लिवा देते हैं। गंगा—जल उनके मुंह में डाला जा रहा है! कोई उनके कान में मंत्र पढ़ रहा है!

परमात्मा को भी पाने के लिए चालबाजिया हैं! बेईमानी की भी सीमाएं नहीं हैं। असीम मालूम पड़ती है बेईमानी। एक आदमी का मुंह बंद हो गया, उसका जबड़ा बंद है। अब वह बोल भी नहीं सकता। आंख हिलती नहीं। उसके घर के लोग ढोल—ढमाल बजाकर उसको जोर से भगवान का नाम याद दिला रहे हैं, इस आशा में कि शायद इससे काम हो जाए!

धोखे नहीं चलते। और इस जमीन पर चल भी जाएं, उस पारलौकिक जगत में बिलकुल नहीं चल सकते। कोई उपाय नहीं है चलने का। या समझ लें कि वही आदमी मरते वक्त घबड़ाकर एक दफे राम कह दे, तो कुछ हल होने वाला है? जिंदगी जिसकी राम से न भरी हो, आखिरी समय में निकला हुआ शब्द उसके हृदय से नहीं आ सकता। ओंठ पर ही होगा। झूठा होगा। मतलब से होगा। उतर राम का नाम भी जब कोई मतलब से ले, तो बेकार हो जाता है। मतलब का मतलब कि अब उसे डर है।

एक धर्मगुरु मरने के करीब है। धर्मगुरु बड़ा था। लेकिन कितने ही बड़े धर्मगुरु हों, धर्म का तो कोई पता नहीं होता। धर्मगुरु होना आसान है, धर्म को जानना कठिन है। क्योंकि धर्मगुरु होना एक प्रशिक्षण है। वह योग्य आदमी था। प्रशिक्षित था। जानता था धर्म को। दूसरों को भी समझाता था। कभी खयाल ही उसे नहीं आया कि जो मैं दूसरों को समझाता रहा हूं, वह मुझे भी पता है या नहीं?

मौत करीब आई, तो उसके पैर थर्राए। तब वह भूल गया कि मैंने कितने लोगों को धर्म समझाया। उसे खुद खयाल आया कि मुझे खुद तो पता नहीं है। गांव में और तो कोई आदमी नहीं था। मुल्ला नसरुद्दीन को उसने खबर भेजी कि तुम ज्ञानी हो। कभी मुल्ला को ज्ञानी माना नहीं था। लेकिन अब मरते वक्त उसे लगा कि गांव में और तो कोई आदमी नहीं है, यह आदमी जरूर कभी—कभी कोई ज्ञान की कोई बात कह देता है।

मुल्ला नसरुद्दीन आया। और उस धर्मगुरु ने कहा कि मैं देखता हूं कि तुम्हारे वक्तव्यों में कभी—कभी कोई मिस्टिकल, कोई रहस्यपूर्ण वक्तव्य होता है। कभी तुम ऐसी बात कह देते हो हंसी— हंसी में कि तीर की तरह उतर जाती है। मैं मर रहा हूं। मेरे लिए कोई एकाध सूत्र कहो, जो मरते वक्त मैं पूरा कर सकूं! जिंदगी तो मेरी यूं ही दूसरों को समझाने में चली गई। खुद समझने से वंचित रह गया हूं। अब मैं क्या करूं?

तो मुल्ला ने उसके कान में कहा कि तुम एक काम करो। एक छोटा—सा मंत्र तुम्हें देता हूं। कहो कि हे परमात्मा, मेरी रक्षा कर। और हे शैतान, मेरी रक्षा कर। उस आदमी ने कहा, क्या कह रहे हो? मुल्ला ने कहा, समय खोने का मौका नहीं है। वी कैन नाट टेक चांस! पता नहीं, कौन दो में से तुम्हारे काम पड़े! तुम दोनों की प्रार्थना करो। यह कोई मौका सोच—विचार का ज्यादा नहीं है। दो ही आल्टरनेटिव हैं, दो ही विकल्प हैं कि या तो तुम नरक जाओगे या तुम स्वर्ग जाओगे। पता नहीं कहां जाओ! किसी को नाराज करना इस वक्त ठीक नहीं है। तुम दोनों का नाम ले लो। जहां भी जाओ, कहना दूसरे का भूल से लिया था। इतनी तो समझदारी करो!

सारे आदमी मरते वक्त ऐसी ही बेईमानी कर रहे हैं। किसी तरह हम धोखा देना चाहते हैं अस्तित्व को भी। लेकिन धोखे से हो नहीं सकता, क्योंकि खुद को हम कैसे धोखा दे सकेंगे? दूर से जिसने मान्यता को मान लिया हो कि यही मेरा ज्ञान है, वह इस तरह की प्रवंचना में पड़ ही जाएगा।

तो अर्जुन स्पष्ट है। उसने कहा कि क्या मेरी मान्यता है। और अब वह कहता है कि जानना भी मैं चाहता हूं। यात्रा करने को मैं उत्सुक हूं। आप स्वयं ही अपने से आपको जानते हैं। मैं तो नहीं जान सकता हूं। जो भी मैं कह रहा हूं पता नहीं, ठीक है या गलत है। भाव से कह रहा हूं। हृदयपूर्वक कह रहा हूं। लेकिन मेरी प्रज्ञा का इससे कोई स्पर्श नहीं है। ऐसा मैंने जाना नहीं है। ऐसी घटना नहीं घटी है कि मैं कह सकूं। मैं खुद गवाह बन सकूं, ऐसी घटना नहीं घटी है। इसलिए उसने दूसरे गवाहों के नाम लिए। कहा कि इन महर्षि ने कहा है। उन महर्षि ने कहा है। मैं खुद नहीं कह सकता। मैं खुद गवाही नहीं हो सकता हूं अभी। यह सरलता है, यह ईमानदारी है।

इसलिए हे भगवन्, आप ही अपनी उन दिव्य विभूतियों को संपूर्णता से कहने के योग्य हैं कि जिन विभूतियों के द्वारा इन सब लोकों को व्याप्त करके आप स्थित हैं।

मैं नहीं कह सकूंगा। मैं कितना ही कहूं कि हे भूतों को उत्पन्न करने वाले, हे सर्वभूतों के ईश्वर, हे देवों के देव, हे जगत के स्वामी, हे पुरुषोत्तम, मेरे ओंठों पर ये सब शब्द ही हैं। भावपूर्ण, लेकिन शब्द ही हैं। कितने ही हृदय से कहूं फिर भी मेरा अस्तित्व इनसे स्पर्श नहीं होता है। फिर भी ऐसा मैं नहीं जानता हूं। इसलिए आप ही उन दिव्य विभूतियों को संपूर्णता से कहने के योग्य हैं।

आप ही अपने अस्तित्व को पूरा उघाड़ें, तो उघडे। आप ही खोलें अपने मंदिर के द्वार, तो मैं प्रवेश करूं। मैं द्वार के बाहर कितनी ही दस्तक देता रहूं मेरे कमजोर हैं हाथ। और मुझे यह भी पक्का पता नहीं है कि मैं दीवाल पर दस्तक दे रहा हूं कि दरवाजे पर दस्तक दे रहा हूं! और मैं कितना ही पुकारूं, मुझे यह पक्का पता नहीं कि मैं तुम्हारी तरफ मुंह करके पुकार रहा हूं कि पीठ करके पुकार रहा हूं! मैं कितना ही दौडूं, बहुत साफ नहीं है कि मैं तुम्हारी तरफ दौड़ रहा हूं कि तुमसे दूर भाग रहा हूं!

अर्जुन यह कह रहा है कि मुझ अज्ञानी से तुम्हारे संबंध में कौन— सा वक्तव्य दिया जा सकेगा! तुम ही कहो। तुम ही बता सकोगे अपनी समग्रता को, अपनी टोटेलिटी को।

यह बात सोचने जैसी है। ईश्वर के संबंध में जितने वक्तव्य दिए गए हैं, वे सभी पार्शियल हैं, वे सभी आशिक हैं। जितने भी वक्तव्य दिए गए हैं, वे सभी आशिक हैं। कोई वक्तव्य समग्र नहीं है। हो भी नहीं सकता। आदमी की भाषा बहुत कमजोर है। कहने की सीमा है और होने की कोई सीमा नहीं है। उसके होने का कोई अंत नहीं है, और कहने की सीमा है। ऐसे, जैसे मैं अपनी मुट्ठी में आकाश बंद करूं। निश्चित ही, मेरी मुट्ठी में भी आकाश है, आकाश का ही एक हिस्सा है। मैं मुट्ठी में सागर को बंद करूं। निश्चित, मेरी मुट्ठी में भी सागर आता है; लेकिन सागर का एक हिस्सा ही आता है। और मेरी मुट्ठी कितनी ही बड़ी क्यों न हो, फिर भी एक अंश ही मेरे हाथ में पकड़ आता है। इसलिए ईश्वर के संबंध में जितने वक्तव्य हैं, सभी आशिक हैं। कोई वक्तव्य समग्र नहीं हो सकता।

अर्जुन के इस निवेदन में बड़ी गहरी वेदना है। वह वेदना यह है कि मैं कैसे कहूं और क्या कहूं! और जो भी कहूंगा, वह अधूरा होगा। तुम्हारी विभूित, तुम्हारा ऐश्वर्य अपार है। तुम्हारा होना, तुम्हारा विस्तार असीम है। न कोई आदि है, न कोई अंत। कहीं कोई छोर नहीं मिलते। कहीं सीमा खींच पाऊं, ऐसा कोई आधार नहीं मिलता। मैं कैसे तुम्हारे संबंध में कुछ कहूं! तुम्हीं अपनी समग्रता को खोल दो मेरे लिए, तो शायद मैं जान लूं।

इसमें कुछ बातें समझ लेने की हैं।

चूंकि ईश्वर के संबंध में दिए गए सभी वक्तव्य अधूरे हैं, इसलिए दो वक्तव्य कभी—कभी विरोधी भी मालूम पड़ते हैं। वे विरोधी नहीं हैं। जैसे, जिन्होंने ईश्वर को प्रेम से जाना है और जिन्होंने ईश्वर को प्रेम करके जाना है, जिनकी साधना प्रेम की ही साधना रही—प्रेम में ही पिघल जाने की, प्रेम में ही डूब जाने की, बिखर जाने की जिनकी साधना रही— उन्होंने ईश्वर का जो वर्णन किया है, वह सगुण है। होगा ही। क्योंकि प्रेम, जिसको भी प्रेम करता है, उसमें अनेक—अनेक गुणों को देखना शुरू कर देता है। प्रेम की आंख गुणों को खोज लेती है, उघाड़ लेती है। और प्रेम की आंख के साथ गुण चमककर, अत्यंत प्रखर हो जाते हैं।

इसलिए भक्तों ने, जिन्होंने प्रेम से प्रभु की तरफ यात्रा की है, और जिनके पास बुद्धि का बहुत बोझ नहीं, हृदय की उडान रही है, हृदय से जिन्होंने ईश्वर की व्याख्या करनी चाही है, उन्होंने फिर उसकी व्याख्या सगुण की, स्वभावत:।

लेकिन दूसरी तरफ जिन्होंने हृदय से नहीं, सीधे ज्ञान से उस तरफ कदम उठाए, और जिन्होंने राग और प्रेम का कोई भी सहारा नहीं लिया, वरन वैराग्य और शुद्धतम तर्कणा से जो जीए हैं, उन्होंने निर्गुण, निराकार। क्योंकि जो भी विचार की आत्यंतिकता को पकड़ेगा, तो निर्विकार और निराकार और शून्य अंतत: उसको दिखाई पड़ना शुरू होगा।

इन दोनों की व्याख्याएं हम देखें, तो कलहपूर्ण मालूम पड़ती हैं। भक्त गुणों की चर्चा कर रहा है। और जानी कह रहा है कि निर्गुण है परमात्मा। भक्त मूर्ति बना रहा है। और ज्ञानी कह रहा है, मूर्ति! मूर्ति बाधा है। भक्त आकार दे रहा है। और तानी कह रहा है, तोड़ो आकार। आकार से कैसे पहुंचोगे निराकार तक?

भक्त जिसे प्रेम कर रहा है, उसे सजा रहा है वस्त्रों में, गहनों में, फूलों में। वह प्रेमी का निवेदन है। वह प्रेम की भाषा है। ज्ञानी बेचैन हुआ जा रहा है कि यह क्या पागलपन कर रहे हो? यह क्या बच्चों जैसी बात? प्रेम का यहां सवाल क्या है? सत्य को खोजो। सत्य को खोजना हो, तो प्रेम को हटाओ, क्योंकि प्रेम पक्षपात बन सकता है। और प्रेम वह देख सकता है, जो न हो। और प्रेम वह मान सकता है, जो अपने ही भीतर है, प्रोजेक्टेड हो। इसलिए छोड़ो प्रेम को, शुद्ध ज्ञान को पकड़ो।

इसलिए एक तरफ ईश्वर को कहने वाले लोग हैं कि वह है, लेकिन निराकार है। इस्लाम ने इतने जोर से इस परिभाषा को पकड़ लिया कि मूर्ति को तोड़ना धार्मिक काम हो गया! तोड़ दो मूर्ति को, क्योंकि मूर्ति बाधा बन रही होगी। उसकी कोई मूर्ति नहीं है।

इस्लाम जिस समय में पैदा हुआ और मक्का, जो इस्लाम का तीर्थ बना, वहां इस्लाम के पहले, मोहम्मद के पहले, तीन सौ पैंसठ मूर्तियों का मंदिर था। हर दिन की एक मूर्ति थी। हर दिन के लिए परमात्मा का एक रूप था।

तीन सौ पैंसठ मूर्तियों का मंदिर अपने तरह का अदभुत मंदिर था। और जिन्होंने तीन सौ पैंसठ मूर्तियां खोजी होंगी, उनका भी बड़ा गहरा भाव था। भाव यह था कि परमात्मा के इतने रूप हैं कि रोज भी हम एक को पूजे, तो भी वे चुकते नहीं। लेकिन रूप हैं। भक्त अरूप की

तरफ तो खयाल ही नहीं ले जा सकता। भक्त को तो पीड़ा होने लगेगी। भक्तों ने तो यहां तक प्रार्थना की है भगवान से कि न चाहिए हमें तेरा मोक्ष, न तेरा बैकुंठ, न तेरा निर्वाण। बस, तेरा रूप हमारी आंखों में बसा रहे। तो उन्होंने तीन सौ पैंसठ मूर्तियां बनाई थीं।

लेकिन इस्लाम की दूसरी व्याख्या थी। और दोनों व्याख्याएं अपनी जगह सही हैं। यही मजा है। इस्लाम की व्याख्या थी कि मूर्ति से उसका क्या संबंध है? वह अरूप है। वह एक है। किसी भी रूप में उसको बांधो मत, नहीं तो रूप से रुक जाओगे और अरूप तक कैसे पहुंचोगे? इसलिए तोड़ दो सब रूप। वे तीन सौ पैंसठ मूर्तियां तोड़ दी गईं। मोहम्मद का कोई भी चित्र उपलब्ध नहीं है। इसीलिए उपलब्ध नहीं है मोहम्मद का कोई चित्र कि मोहम्मद का चित्र भी कहीं साधक के मार्ग में बाधा न बन जाए। कहीं ऐसा न हो कि मोहम्मद भी आड़ू बन जाएं। इसलिए मोहम्मद ने कोई अपना चित्र नहीं बचने दिया।

यह ज्ञानी की एक व्याख्या है। बिलकुल सही है। लेकिन प्रेमी की जो बिलकुल विपरीत व्याख्या है, वह भी इतनी ही सही है। हजार और व्याख्याएं हैं। व्याख्याएं निर्भर करती हैं करने वाले पर। और करीब—करीब हमारी हालत ऐसी है कि मैंने सुना है, एक गांव में पहली दफा हाथी आया। सांझ हो गई थी, लेकिन गांव में बड़ी उत्सुकता फैल गई, तो गांव ने अपने पांच प्रमुख आदमी चुने, जो गांव के सबसे बड़े जानकार थे और उनको भेजा कि हाथी को जाकर देखकर आएं।

सांझ हो गई। रात हो गई। अंधेरा हो गया। वे पांचों जब पहुंचे, तो अंधेरा हो गया था। उन्होंने हाथी को टटोलकर देखा। जिसके हाथ में पैर पकड़ में आया, उसने कहा कि ठीक। व्याख्या मिल गई! जिसके हाथ में कान पकड़ में आया, उसने कहा कि ठीक। व्याख्या मिल गई! जिसने पीठ पर हाथ फेरा, उसने कहा कि ठीक। व्याख्या मिल गई!

उन पांचों को व्याख्याएं मिल गईं। और जब वे पांचों गांव में पहुंचे, तो गांव में बड़ा उपद्रव मच गया। क्योंकि गांव में पांच वक्तव्य हो गए हाथी के संबंध में। और वक्तव्य इतने बेमेल थे कि कोई कितनी ही कल्पना की चेष्टा करे, तो भी उनको जोड़ नहीं सकता था। क्योंकि एक कह रहा था कि हाथी होता है, जैसे महलों के संगमरमर के खंभे होते हैं, ठीक वैसा। उसने पैर छुए थे। एक कह रहा था, जैसे किसान अपने बड़े—बड़े को में अपने धान को साफ करते हैं, वैसा है हाथी; उसने हाथी के कान छुए थे।

वे अलग—अलग व्याख्याएं लेकर आए थे। और गांव बड़ी मुश्किल में पड़ गया। और गांव के लोगों ने कहा कि दो ही बातें हो सकती हैं। या तो तुम पांचों पागल हो गए हो, और या फिर तुम पांच चीजों को देखकर लौटे हो, एक चीज को देखकर नहीं। पर उन्होंने कहा, हम एक ही चीज को देखकर लौटे हैं। हम पांचों एक ही चीज को देखकर लौटे हैं।

तो फिर गांव के लोगों ने कहा कि फिर तुम पांचों पागल हो गए हो। क्योंकि तुम पांचों सही नहीं हो सकते। तुम कैसी बातें कर रहे हो? कहां महल का खंभा और कहां किसान का सूप! क्या संबंध है? खंभा सूप हो सकता है? सूप खंभा हो सकता है? कोई संबंध नहीं है। तब उन्होंने कहा कि फिर हम रुके।

लेकिन रुकना भी बड़ा मुश्किल था। रातभर गांव में बेचैनी रही। और भी अनेक लोग गए पीछे और टटोलकर लौटे। और गांव में पंथ हो गए। कुछ लोगों ने कहा कि ठीक है, जिसने खबर दी है कि हाथी खंभे की तरह है। गांव में पांच पंथ हो गए! और जल्दबाजी इतनी थी कि सुबह की प्रतीक्षा भी कैसे की जाए!

लेकिन सुबह जब लोगों ने हाथी देखा, तो सारे लोग अपने पर हंसने लगे कि पागल कोई और नहीं था, हम सब पागल थे। और गलती किसी की नहीं थी। गलती इतनी ही थी कि अंश को पूर्ण समझ लिया था। और विपरीत अंश भी हो सकता है पूर्ण में एक, इसकी कोई कल्पना न थी। सुबह जब लोगों ने हाथी को देखा और खंभे और शो को एक साथ देखा। और खंभे और सूपों के भीतर जो प्राण था, वह एक ही था।

लेकिन हाथी के संबंध में तो उस गांव की तकलीफ हल हो गई, ईश्वर के संबंध में आदमी के गांव की तकलीफ शायद ही कभी हल हो। क्योंकि ऐसी सुबह कभी नहीं होने वाली है, जब हम सब एक साथ ईश्वर को देख लें। यह सुबह वैयक्तिक है, एक—एक आदमी की होती है; और एक—एक आदमी अपनी परिभाषा लेकर आता है। जितने आदमी ईश्वर की तरफ गए हैं, उतनी परिभाषाएं हैं। यह दूसरी बात है कि कुछ लोग परिभाषा करने में मुखर हैं, कुशल हैं, इसलिए वे परिभाषा कर पाए। कुछ लोग मुखर नहीं हैं, कुशल नहीं हैं, नहीं कर पाए। इसलिए उन्होंने दूसरों की अपने से मिलती—जुलती परिभाषा स्वीकार कर ली। लेकिन करीब—करीब जितने लोग...।

अगर हम बुद्ध से पूछें, तो महावीर से कोई मेल नहीं पड़ता। अगर हम कृष्ण से पूछें, तो मोहम्मद से कोई मेल नहीं पड़ता। अगर हम मोहम्मद से पूछें, तो राम से कोई मेल नहीं पड़ता। और जितने लोग ऊपर से मेल बिठालने की कोशिश करते हैं, उससे भी कुछ मेल पड़ता नहीं। कितने लोग समझाते हैं कि गीता में भी वही, कुरान में भी वही, बाइबिल में भी वही। निकाल—निकालकर एक—दूसरे के सूत्रों का तालमेल भी बिठालने की कोशिश करते हैं कि यह अर्थ, यह अर्थ। फिर भी तालमेल बैठता नहीं।

नहीं बैठने का कारण है। कोई कितना ही तालमेल बिठाए, जिसने समझा है कि हाथी सूप है, और जिसने समझा है कि हाथी खंभा है, इन दोनों शास्त्रों से कोई कितना ही तालमेल बिठाए, तालमेल और पागलपन का सिद्ध होगा। वह और भी कनफ्यूजन, और भी विभ्रम पैदा करेगा।

इसलिए अर्जुन ने कृष्ण से कहा कि मैं कुछ भी कहूं, कुछ भी मानूं मैं आपकी समग्रता को न कह पाऊंगा! आप ही अपनी समग्रता को कहो।

कृष्ण भी जब कहने जाएंगे, तो मजे की बात यह कि समग्रता को नहीं कह सकते। क्योंकि कहना अंश का ही होता है, समग्र का नहीं होता। समग्रता इतनी बड़ी घटना है कि जब हम कहने से शुरू करते हैं, तो एक टुकड़े से शुरू करना पड़ता है।

जैसे आप यहां मौजूद हैं। एक साथ हम सब यहां मौजूद हैं। लेकिन अगर मुझे कल बताना पड़े कि कौन—कौन मौजूद थे, तो मैं कहूंगा, राम मौजूद थे, विष्णु मौजूद थे, नारायण मौजूद थे। मुझे एक रेखा बनानी पड़ेगी। जब मैं कहूंगा, राम मौजूद थे, तो सिर्फ राम मौजूद मालूम पड़ेंगे। फिर मैं कहूंगा, विष्णु मौजूद थे, फिर नारायण मौजूद थे, फिर मैं एक—एक नाम लूंगा। आप सब इकट्ठे मौजूद हैं। जब मैं बोलूंगा, तो मुझे एक—एक बोलना पड़ेगा, लीनियर, एक रेखा में बोलना पड़ेगा; और आप सब बिना रेखा के इकट्ठे मौजूद हैं।

तो आपकी मौजूदगी की खबर अगर देनी हो वाणी से, तो फिर सीमा बननी शुरू हो जाएगी। कोई नंबर एक होगा, कोई नंबर दो, कोई नंबर तीन, कोई नंबर चार। यहां आप बिना नंबर के एक साथ मौजूद हैं। और आप ही मौजूद नहीं हैं, पशु—पक्षी मौजूद हैं, आकाश मौजूद है, तारे मौजूद हैं, पृथ्वी मौजूद है, अनंत मौजूद है यहां, इसी क्षण। सब कुछ मौजूद है। पूरा अस्तित्व मौजूद है। अगर इसकी हम चर्चा करने जाएं, तो चर्चा नहीं हो सकेगी। कृष्ण भी करेंगे, तो नहीं हो सकेंगी।

इसलिए अर्जुन जो शब्द उपयोग कर रहा है वह है, इसलिए हे भगवन्, आप ही अपनी उन दिव्य विभूतियों को संपूर्णता से कहने के योग्य हैं कि जिन विभूतियों के द्वारा इन सब लोकों को व्याप्त करके स्थित हैं। हे योगेश्वर, मैं किस प्रकार निरंतर चिंतन करता हुआ आपको जानूं? और हे भगवन्, आप किन भावों में मेरे द्वारा चिंतन करने योग्य हैं?

वह कहता है कि आप ही कह सकते हैं। लेकिन तत्क्षण जो वह जोड़ता है, वह बहुत महत्वपूर्ण है। कहता है, आप कह सकते हैं अपनी समग्रता को। लेकिन तत्क्षण वह जोड़ता है, वह कहता है,

मैं किस प्रकार निरंतर चिंतन करता हुआ आपको जानूं? बड़ा महत्वपूर्ण यह नहीं है कि आप कहें। आप भी कहेंगे, तो पता नहीं मैं जान पाऊं, न जान पाऊं! आप कह भी देंगे, तो भी मैं समझ पाऊं, न समझ पाऊं! आप कह भी देंगे, तो भी मैं सुनूं या न सुनूं।

जीसस ने कहा है कि कान हैं तुम्हारे पास, लेकिन तुम सुनते कहां हो? आंखें हैं तुम्हारे पास, लेकिन तुम देखते कहा हो? तो जिनके पास कान हों और जो सुन सकते हों, वे सुन लें। और जिनके पास आंखें हों और देख सकते हों, वे देख लें।

कान से सुन लेना एक बात है। शब्द कान पर पड़ेगा, सुनाई पड़ जाएगा। लेकिन अर्जुन पूछता है, मैं किस प्रकार निरंतर चिंतन करता हुआ आपको जानूं? आप कह भी दें, तो भी शायद ही हल हो। मैं कैसे जानूं? आपका कहा हुआ, मेरा जानना कैसे हो जाए? उसकी विधि मुझे कहें, उसका मार्ग मुझे बताएं। और हे भगवन्, आप किन—किन भावों में मेरे द्वारा चिंतन करने योग्य हैं? और मेरी योग्यता को समझें, मेरी पात्रता को, मेरी संभावना को, और मैं किन भावों में आपका चिंतन करूं कि आपको जान पाऊं?

यहां बहुत—सी बातें हैं।

परमात्मा को किसी भी भाव से पाया जा सकता है, लेकिन हर व्यक्ति हर भाव से नहीं पा सकता। सभी भावों से पाया जा सकता है उसे, लेकिन आप सभी भाव करने में समर्थ नहीं हो सकते। आपका कोई अपना भाव आपको खोजना पड़े। आपका भाव, आपका निजी भाव—जो आपका प्राण बन सकता हो, जिसका बीज आपके भीतर छिपा हो, जिसकी आपकी पात्रता हो—उस भाव से ही आप परमात्मा को खोजें, तो ही खोज पाएंगे।

लेकिन बहुत बार ऐसा होता है, हम दूसरों के भावों से उसे खोजने चलते हैं और तब हम नहीं खोज पाते। न तो कोई दूसरे की आंखों से देख सकता है, और न कोई दूसरे के हाथों से छू सकता है, और न कोई दूसरे की बुद्धि से जान सकता है। अपनी ही भाव की दशा, जिससे परमात्मा का मेल खाए, अस्तित्व से मेल खाए, जाननी और खोज लेनी जरूरी है।

हमारी जिंदगी की बड़ी से बड़ी दुर्घटना यही है कि हमें यही पता नहीं कि मैं किस पात्रता को लेकर पैदा हुआ हूं। बड़ी से बड़ी विडंबना यही है। अगर कोई, हम समझें कि इस जगत का बड़ा से बड़ा अघटनीय घट रहा है, तो वह यह है कि किसी को यह पता नहीं कि वह

क्या होने को हुआ है? क्या हो सकता है? क्या है उसकी संभावना? बीज क्या है छिपा हुआ उसके भीतर? वह किस चीज का बीज है? वह चमेली का फूल बनेगा कि चंपा का फूल बनेगा? वह कौन—सा फूल बनकर परमात्मा के चरणों पर चढ़ सकता है?

अगर चमेली का फूल चंपा का फूल होने की कोशिश करता रहे, तो परमात्मा के चरण बहुत दूर हैं। क्योंकि चंपा होना ही संभव नहीं है। अगर गुलाब का फूल चमेली का फूल होने की कोशिश में पड़ा रहे, तो परमात्मा के चरण बहुत असंभव हैं। क्योंकि पहले तो वह चमेली ही नहीं हो पाएगा; चढ़ने का कोई सवाल नहीं है। मैं किस भांति चढूंगा! मेरा होने का ढंग मुझे खोजना पड़ेगा।

और एक—एक व्यक्ति का अपना निजी ढंग है। वही तो व्यक्तित्व का अर्थ है। एक—एक व्यक्ति अपने ढंग का व्यक्ति है, बेजोड़। उस जैसा कोई दूसरा नहीं है। लेकिन हम सब उधार जीते हैं, इमिटेटिव। और हम सब एक—दूसरे को उधारी थोपते चले जाते हैं। अगर मुझे भक्ति प्रीतिकर लगती है, तो मैं अपने बेटे पर भक्ति थोप दूंगा, बिना इसकी फिक्र किए कि वह उसका भाव है? अगर मुझे भक्ति अरुचिकर है, तो मैं अपने बेटे पर भक्ति का विरोध थोप दूंगा, बिना इसकी फिक्र किए कि वह उसका मार्ग है? और हम सब एक—दूसरे पर थोपते चले जाते हैं। और इतने थोपने वाले हो जाते हैं कि कठिनाई हो जाती है।

मैंने सुना है, एक छोटा बच्चा, स्कूल में उससे पूछा गया कि बड़ा होकर क्या बनना चाहता है? तो उसने कहा, क्या बनना चाहता हूं इसका तो मुझे पता नहीं। एक बात पक्की है कि मैं पागल बन जाऊंगा! इंसपेक्टर ने पूछा कि यह तुझे खयाल कैसे आया? तो उसने कहा, मेरी मां चाहती है कि मैं इंजीनियर बनूं। मेरा बाप चाहता है कि डाक्टर बनूं। मेरा भाई चाहता है कि चित्रकार बनूं। मेरी बहन कुछ और चाहती है। मेरी मौसी कुछ चाहती है। मेरी चाची कुछ चाहती है। मेरे चाचा कुछ चाहते हैं। वे सब लोग कोशिश में लगे हैं अपने—अपने ढंग से मुझे कुछ बनाने की। मुझसे तो न किसी ने पूछा है, न मुझे पता है। एक बात पक्की है कि अगर वे सब सफल हो गए, तो मैं पागल हो जाऊंगा!

हो ही जाएगा। और सफल भी न हों, तो भी पागल हो जाएगा। असफल भी हो जाएं, तो भी लकीरें छोड़ जाएंगे।

सामान्य जीवन में तो यह हो ही रहा है। उस असामान्य जीवन की यात्रा पर भी बड़ी गहन रेखाएं हम पर छोड़ दी जाती हैं। मैं देखता हूं कभी कि कोई आदमी जन्म से हिंदू घर में पैदा हुआ है। कोई आदमी जन्म से मुसलमान घर में पैदा हुआ है। लेकिन जन्म से धर्म का क्या संबंध? कोई भी संबंध नहीं है। अगर एक आदमी जन्म से कम्युनिस्ट के घर में पैदा हुआ है, तो कम्युनिस्ट होने की मजबूरी नहीं है। फिलहाल अभी तक तो नहीं है। आगे हो सकती है कि तुम कम्युनिस्ट बाप के बेटे हो, कम्युनिस्ट ही तुम्हें होना पड़ेगा; कि तुम्हारा खून कम्युनिस्ट का है!

खून किसी का होता नहीं। न कम्युनिस्ट का होता है, न हिंदू का होता है, न मुसलमान का होता है। अभी तक कोई उपाय नहीं खोजा जा सका कि खून सामने आप रख दें और डाक्टर बता दे कि यह हिंदू का है। हड्डी में भी अब तक पता नहीं चलता कि हड्डी हिंदू की है कि मुसलमान की है। खोपड़ी की मज्जा को भी निकालकर जांच करो, तो कोई पता नहीं चलता कि किसकी है।

बच्चे कोई धर्म, कोई विचार, कोई पंथ, कोई मत लेकर पैदा नहीं होते। बच्चे संभावना लेकर पैदा होते हैं कुछ होने की। लेकिन हम उनके ऊपर थोप देते हैं कुछ। एक आदमी मुसलमान के घर में पैदा हुआ है। यह हो सकता है, इसके लिए कृष्ण का मंदिर भाव बन जाए। लेकिन इसको अड़चन आएगी। इसको अड़चन आएगी। मूर्ति के सामने यह नाच कैसे सकता है?

एक मुसलमान ने मुझे आकर कहा, तब मुझे खयाल आया। उसने मुझे कहा कि मेरा तो मन होता है कि जैसे मीरा नाचती फिरी कृष्ण को लेकर, ऐसे मैं नाचता फिरूं। लेकिन मैं मुसलमान हूं! और यह तो कुफ़ है; यह तो बड़ी बुरी बात है, मूर्ति—पूजा। और यह तो नहीं हो सकता! यह तो नहीं हो सकता।

अब यह आदमी एक दुविधा में है। मैं ऐसे हिंदुओं को जानता हूं जिनके लिए मस्जिद मंदिर से बेहतर हो। मैं ऐसे ईसाइयों को जानता हूं जो कि कहीं और होते तो ठीक होता। लेकिन जन्म एक जकड़ बन जाता है। और तब आप अपना भाव नहीं खोज पाते। आप अपना खोज ही नहीं पाते कि कौन—सा द्वार है मेरा नैसर्गिक, जहां से मैं परमात्मा को पा सकूं।

हम सबको इसकी फिक्र नहीं है कि कोई परमात्मा को पाए। हिंदू को फिक्र है कि हिंदू के परमात्मा को पाना है। मुसलमान को फिक्र है कि मुसलमान के परमात्मा को पाना है। अगर तुमने हिंदू का परमात्मा पा लिया, तो इससे तो बेहतर था कि न पाते परमात्मा और मुसलमान रहते। या न पाते परमात्मा और हिंदू रहते। लेकिन मुसलमान का परमात्मा पाकर क्यों अपनी जिंदगी बर्बाद कर रहे हो?

हमें परमात्मा से कोई प्रयोजन नहीं है। हमारा परमात्मा। अब परमात्मा हमारी—तुम्हारा नहीं हो सकता। कोई दो परमात्मा भी नहीं हैं। लेकिन यह हमारे मन की आज तक की व्यवस्था है। इस व्यवस्था के कारण दुनिया में धर्म के जितने फूल खिल सकते हैं, नहीं खिल पाते। इस कारण जितने लोग धार्मिक हो सकते हैं, नहीं हो पाते। धर्म तो भावगत है, जन्मगत नहीं।

इसे ठीक से समझ लें, धर्म भावगत है, जन्मगत नहीं। और जब कृष्ण ने कहा है कि स्वभाव ही धर्म है। और स्वधर्म को छोड़कर दूसरे धर्म में जाना भयभीत करने वाला, भयावह है। तो लोग समझते हैं, इसका मतलब है कि हिंदू घर में पैदा हुए हो, तो हिंदू रहना। मुसलमान घर में पैदा हुए, तो मुसलमान रहना।

नहीं; स्वधर्म का मतलब है, अपना स्वभाव खोजना, अपना भाव खोजना, जो तुम्हें परमात्मा से मिलाने में सहयोगी हो सके। वह व्यक्तिगत टइय़ूंग है। एक—एक व्यक्ति को अपनी तरंग खोजनी पड़ती है, अपनी वेव—लेंथ खोजनी पड़ती है, कि मेरे हृदय की तरंग किस भांति परमात्मा की तरंग से जुड़ सकती है।

अर्जुन का यह पूछना बहुत मूल्यवान है कि हे योगेश्वर, मैं किस प्रकार निरंतर चिंतन करता हुआ आपको जानूं? और हे भगवन्, आप किन—किन भावों में मेरे द्वारा चिंतन करने योग्य हैं? मेरे द्वारा चिंतन करने योग्य हैं किन—किन भावों में? किन भावों में आपको खोजूं? कैसे यह मेरे लिए सरल होगा कि जो अभी मैं मानता हूं कल वह मेरा ज्ञान भी बन जाए? जिसे अभी मैंने बाहर से स्वीकार किया, कल भीतर से भी अनुभव करूं? जिसकी अभी मैंने चर्चा ही सुनी, कब होगा कि उसका स्वाद भी ले लूं? अभी जब मैं दूसरे की गवाही खोजता फिरता हूं कब वह क्षण आएगा, जब मैं भी गवाह हो जाऊं? कि जो मैं कह रहा हूं उसका मैं ही गवाह हूं!

तो दो बातें! एक तो किस विधि निरंतर चिंतन करता हुआ आपको जानूं? दो बातें पूछी हैं, और दो ही विशेष हैं। किस विधि चिंतन करता हुआ? यह ज्ञान के लिए, ज्ञान की जो विधियां हैं। और दूसरा वह पूछता है, किस भाव से? वह भक्त की विधि है।

ठीक अर्थों में जगत में दो ही विराट भेद हैं मनुष्यों के, मस्तिष्क— केंद्रित और हृदय—केंद्रित। दो ही प्रकार हैं, पुरुष और स्त्रैण। जब मैं कहता हूं पुरुष और स्त्रैण, तो पुरुष और स्त्री से मतलब नहीं है। प्रतीकात्मक है। स्त्रैण व्यक्तित्व को मैं कहता हूं जो हृदय—केंद्रित है, वह चाहे पुरुष हो और चाहे स्त्री हो। और पुरुष उस व्यक्तित्व को कहता हूं जो मस्तिष्क —केंद्रित हो; वह स्त्री हो चाहे पुरुष, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। इन दोनों के मार्ग बिलकुल अलग हैं।

अर्जुन को यह भी खयाल में नहीं है। इसीलिए मैं कहता हूं वह बहुत सरल है। उसे यह भी पता नहीं है कि मैं बुद्धिवादी हूं, कि हृदयवादी हूं; कि मैं किस मार्ग से चलूं भाव से या ज्ञान से! वह 'दोनों बातें पूछ लेता है कि किस भांति चिंतन करता हुआ आपको जानूं? अगर मेरा यह मार्ग हो कि विचार के द्वार से ही मैं आप तक पहुंचूं तो किस भांति विचार करता हुआ पहुंचूं? या अगर भाव मेरा मार्ग हो, तो मैं किस भाव के झरोखे से आपको झांकूं?

ये दो विराट धाराएं हैं। इसके छोटे—छोटे बहुत तरह के अंग हैं, लेकिन वे गौण हैं। महत्वपूर्ण यही है। अब तक जगत में जिन लोगों ने भी पाया है परम सत्य को, उन्होंने या तो विचार की आत्यंतिक गति से या भाव की। एक तरफ बुद्ध हैं, महावीर हैं, लाओत्से हैं, क्राइस्ट हैं। एक तरफ मीरा है, चैतन्य हैं, कबीर हैं, थेरेसा है, राबिया है, इस तरह के लोग हैं। जिन्होंने भाव से पाया है, उनकी पूरी की पूरी व्यवस्था जीवन की साधना की अलग होगी, विपरीत होगी। जिन्होंने ज्ञान से पाया है, उनकी बिलकुल विपरीत होगी।

विचार से जो चलेगा, उसके लिए ध्यान आधार होगा। विचार से जो चलेगा, उसे विचार को इतना शुद्ध, इतना शुद्ध करना है कि एक क्षण आए कि विचार शुद्ध होते—होते, होते—होते तिरोहित हो जाए। जब भी कोई चीज शुद्ध होती है, तो तिरोहित होने लगती है। जितनी शुद्ध होती है, उतनी तिरोहित होने लगती है। जब कोई चीज पूर्ण शुद्ध हो जाती है, तो वाष्पीभूत हो जाती है।

विचार इतना शुद्ध हो जाए कि विचार—मात्र रह जाए। शब्द समाप्त हो जाएं, सिर्फ विचारणा रह जाए। थाट्स चले जाएं, सिर्फ थिंकिंग मौजूद रह जाए; विचारणा की शक्ति रह जाए और विचार सब खो जाएं। आकाश रह जाए, बादल सब चले जाएं। बादल हैं विचारों की तरह। और जब सब बादल छंट जाते हैं, तो वह जो विचारक है भीतर आकाश की तरह, वह शेष रह जाता है। विचार को शुद्ध करके, शांत करके, मौन करके, क्षीण करके, विचारक अकेला रह जाए। उसको हम चाहे साक्षी का नाम दें, अवेयरनेस कहें, जागरूकता कहें, जो भी नाम दें। सिर्फ बोध—मात्र रह जाए और विचार खो जाएं। बुद्ध इसी परंपरा के अग्रगण्य प्रतीक हैं।

अर्जुन कहता है, अगर ऐसी कोई संभावना हो मेरी, तो मैं कैसे चिंतन करूं? वह मुझे बताएं कि मैं आपको जान लूं। अगर यह न हो, तो मैं कैसे भाव करूं, ताकि मैं आपको जान लूं?

भाव—लीनता, विचार— ध्यान। और भाव—लीनता, डूबना, विसर्जित होना, समर्पण, खो जाना।

बुद्ध नाच नहीं सकते, क्योंकि नाचना बुद्ध को लगेगा, यह क्या बात हुई! सूफी फकीर नाच सकते हैं, क्योंकि वे कहते हैं, नाच— नाचकर हम उसमें खो जाते हैं।

कभी आपने छोटे बच्चों को देखा है! छोटे बच्चे अक्सर घर में करते हैं। चक्कर लगाना शुरू कर देते हैं। बड़े रोकते भी हैं उनको। और उनको हैरानी होती है, कि चक्कर आ जाएगा। गिर जाओगे। मूर्च्छित हो जाओगे। सिर टूट जाएगा। और बच्चे अपनी जगह पर खड़े

होकर कील की तरह घूमना चाहते हैं। बच्चों को, अधिकतर बच्चों को रस होता है कील की तरह घूमने का। बच्चे कह नहीं सकते कि उनको क्या होता है। और बूढ़े समझते हैं कि यह घूम रहा है, अभी गिरेगा; चक्कर खा जाएगा। लेकिन बच्चे जब तेजी से चकरी की तरह घूमते हैं एक जगह, तो उन्हें शरीर अलग और आत्मा अलग मालूम होने लगती है। और बड़ा आनंद उन्हें आता है। वह को की समझ में नहीं आ सकता।

सूफी फकीर इसी तरह नाचते हैं। सूफी फकीरों का एक वर्ग ही है, व्हिरलिंग दरविशेज़, नाचते हुए फकीर। वे ठीक बच्चों की तरह खड़े होकर फिरकनी की तरह नाचते हैं। तेजी से नाचते हैं। घंटों नाचते हैं। एक घड़ी आती है कि शरीर घूमता रह जाता है और चेतना खड़ी हो जाती है। शरीर लीन हो जाता है विराट में। शरीर खो जाता है।

मीरा नाचती है, चैतन्य नाचते हैं। ये अपने को डुबा रहे हैं। लेकिन अगर मोहम्मद से हम कहें, नाचना, संगीत! तो मोहम्मद कहेंगे, गलत! संगीत की बात ही मत लाना मस्जिद के करीब। संगीत की बात ही मत उठाना। क्योंकि मोहम्मद कहते हैं कि संगीत में आदमी खो जाएगा। और खोना नहीं है, जागना है।

और अगर हम मीरा से कहें, संगीत छोड़ दो! तो संगीत के छूटते ही कृष्ण और मीरा के बीच जो सेतु है, वह तत्काल टूट जाएगा। अगर हम चैतन्य से कहें कि फेंको यह तंबूरा, छोड़ो यह नाचना, बंद करो यह संगीत और गीत! तो चैतन्य का सब कुछ खो जाएगा। संगीत उनके लिए कारगर हो सकता है, जो अपने को डुबाने चले हैं, खोने चले हैं

अब यह मजे की बात यह है कि ये बिलकुल विपरीत मार्ग हैं। ध्यान में अपने को बचाना है पूरी तरह, सब छूट जाए, मैं ही बचूं। और भक्ति में अपने को भुलाना है पूरी तरह, सब बच जाए, मैं ही न बचूं। और मजा यह है कि दोनों एक ही जगह पहुंच जाते हैं— ये इतने विपरीत! चाहे मैं बचूं और सब खो जाए, तो भी एक बचता है। और चाहे सब बचे और मैं खो जाऊं, तो भी एक ही बचता है। और दो विपरीत छोरों से एक ही रह जाता है। द्वैत खो जाता है, और एक ही घटना घटती है।

अर्जुन पूछता है, क्या है मेरी दशा? क्या है मेरी पात्रता? वह आप मुझे कहें। शायद वह पात्रता मेरी प्रकट हो, और मेरी संभावना मेरी वास्तविकता बन जाए, और मेरा बीज अंकुरित हो और खिल जाए। तो आप जो कहते हैं, वह मैं समझ पाऊं, जान पाऊं। और शायद मैं आपसे एक हो जाऊं, तो आपकी समग्रता भी मेरे लिए प्रकट हो जाए।

समग्रता तो तभी प्रकट होती है, जब कोई एक हो जाए। उसके पहले समग्रता प्रकट नहीं होती। यद्यपि जो एक हो गए हैं, वे भी समग्रता को कह नहीं सकते। इसलिए संतों ने गूंगे के गुड़ की बात कही है। संत गूंगे बिलकुल नहीं हैं। संतों से ज्यादा बात करने वाले लोग खोजने मुश्किल हैं। संतों ने बहुत बातें की हैं; गूंगे बिलकुल नहीं हैं। लेकिन जहां परमात्मा की बात आती है, वे कहते हैं, हम बिलकुल गूंगे हो जाते हैं। इतना बड़ा है। इतना विशाल है कि कहें तो गलती होती है। कहा नहीं कि गलती हो जाती है! बोले नहीं कि दिखाई पड़ती है, भूल हो गई!

सुना है मैंने कि एक कवि, एक रहस्यवादी कवि समुद्र के तट पर गया था। सुबह सूरज निकला। समुद्र की लहरों पर सूरज का जाल छा गया। सुगंधित हवाएं थीं। फूलों की खुशबू थी। वृक्षों की छाया थी। वह आराम से बैठकर इस धूप और लहरों के खेल को देख रहा था। हवाएं उसके नासापुटों को छूने लगीं। रोआं—रोआं उसका आनंद से भर उठा। उसे स्मरण आया अपनी प्रेयसी का। लेकिन उसकी प्रेयसी वहां मौजूद न थी। वह बीमार थी और दूर एक अस्पताल में थी।

उसे लगा, काश, इस सुबह, इस सूरज को, इस आकाश को, इन हवाओं को, इन सागर की लहरों को— इस वातावरण में वह मेरी प्रेयसी क्षणभर को भी आ जाए, तो स्वस्थ हो जाए! लेकिन उसे लाना मुश्किल है। उसका खाट से भी उठना मुश्किल है। फिर सोचा उसने कि दूसरा उपाय यह हो सकता है कि मैं थोड़ा—सा यह वातावरण एक पेटी में बंद करूं और अस्पताल ले चलूं।

वह एक मजबूत पेटी लाया। रोआं—रंध्र भी कहीं खुला न रह जाए पेटी का, सब तरफ मोम लगाकर बंद कर दिया, मजबूत ताले डाले। हवाएं, सूरज की रोशनी, सुगंध, सब पेटी में बंद कर दीं। आकाश का छोटा—सा टुकड़ा भी बंद हो गया। ताला डालकर सब तरफ से बंद करके रंध्र, एक बहुमूल्य पत्र के साथ उसने संदेशवाहक को पेटी लेकर अस्पताल भेजा। लिखा उसने अपने पत्र में कि अनूठा है यहां सब। अदभुत है। चमत्कृत हो गया हूं। काश तू यहां होती! लेकिन उसका कोई उपाय नहीं, इसलिए थोड़ा—सा नमूना इस आकाश का, इस सुबह का, इस सूरज की किरणों का, इस पेटी में बंद करके भेजता हूं।

पत्र पहुंच गया। पेटी भी पहुंच गई। चाबी भी पहुंच गई। चाबी से पेटी खोल भी ली गई। लेकिन भीतर कुछ भी न था! जब बंद किया था, तब सब था। सूरज की किरणें भी थीं। हवाएं भी थीं। नाचता हुआ आकाश भी था। सब था। वह तरंगित पूरा वातावरण पेटी के ऊपर ही नाच रहा था। सब था, वह सब उसने बंद किया था। लेकिन जब पेटी खोली गई, तो वहां कुछ भी न था।

होगा भी नहीं। आकाश पेटियों में बंद नहीं किए जा सकते। बंद करते ही सब बदल जाता है। अनुभूतियां भी शब्दों में बंद नहीं की जा सकतीं। बंद करते ही सब बदल जाता है। कहते ही खो जाता है सत्य।

इसलिए लाओत्से ने कहा है, अगर मैं कहूं, तो भूल होगी। क्योंकि जो कहा जा सकता है, वह सत्य न होगा। और जो मैं कहना चाहता हूं वह मैं सत्य ही कहना चाहता हूं। इसलिए उचित है कि मैं चुप ही रहूं।

लेकिन चुप रहने से भी तो नहीं कहा जा सकता। चुप रहने वाले लोग भी हुए हैं, फिर भी नहीं कहा जा सकता। बोलकर भी नहीं कहा जा सकता। आदमी की बड़ी बेचैनी है। लेकिन जीकर थोड़ी— सी खबर दी जा सकती है।

अगर यह कवि मुझे मिल जाए! बहुत मुश्किल है। कहां खोजें! उसके नाम— धाम का कुछ पता नहीं, जिसने यह सब पेटी में बंद करके भेजा था। अगर यह मुझे मिल जाए, तो इससे मैं कहूं कि पेटी में बंद मत कर, एक और उपाय है। एक और उपाय है, वही एकमात्र उपाय है। तू पेटी में बंद मत कर। तू ठीक से इस आकाश को जी ले। तू ठीक से इन हवाओं को पी ले। तू ठीक से सूरज की इन किरणों को तेरी आंखों में समा जाने दे। यह सुवास, जो तुझे प्रीतिकर लगती है, तेरे रोएं—रोएं में रम जाए। यह सारा आकाश, जो तेरे चारों तरफ फैला है विराट, यह तेरे हृदय के भीतर भी समा जाए।

और फिर तू नाचता हुआ, तू ही नाचता हुआ अस्पताल पहुंच जा। तू नाच अस्पताल जाकर वैसे ही, जैसे हवा में तरंगें नाचती थीं और वृक्षों की पत्तियां नाचती थीं और फूल कंपते थे। इन सबके

कंपन को, जीवित कंपन को लेकर तू ही अस्पताल नाचता हुआ पहुंच जा। तो शायद तेरा वह उन्मत्त भाव, तेरा वह हर्षोन्माद, तेरी वह समाधिस्थ दशा, तेरी प्रेयसी को खबर दे सके, कि जहां से तू आया है, वहां जाने योग्य है। इतनी खबर हो सकती है।

कृष्ण के कहने से पता नहीं चलेगा, कृष्ण के होने से पता चलता है जरूर। बुद्ध के कहने से पता नहीं चलेगा; होने से पता चलता है। इसलिए अर्जुन पूछता है कि कैसे मैं अपनी आंखों को खोलूं तुम्हारी तरफ? कैसे मेरे कान तुम्हें सुनने में समर्थ हो जाएं? और कैसे मेरा हृदय तुम्हारी हृदय की धड़कन को अनुभव करने लगे। क्या चिंतन करूं? क्या भाव करूं? तुम्हीं मुझे कहो!

अर्जुन की सरलता स्पष्ट है। मान्यता को अगर वह मान लेता कि जान लिया, तो अब कृष्ण से पूछने को कुछ शेष नहीं था। जाना उसने नहीं है, यह उसे पता है। और इसे वह छिपा भी नहीं रहा है, इसे वह स्पष्ट कह रहा है। इसलिए रास्ता खुल सकता है, रास्ता बन सकता है।

अभी महीनाभर हुआ, एक मित्र मेरे पास आए। कृष्णमूर्ति को सुनते हैं, बीस वर्ष से सुनते हैं। तो मुझसे आकर बोले कि सब ठीक लगता है, वे जो कहते हैं। लेकिन कुछ हुआ नहीं। बीस साल हो गए सुनते हुए। कान पक गए सुनते हुए। शब्द—शब्द याद हो गए। जो वे कहते हैं, दोहरा सकता हूं। और बिलकुल ठीक कहते हैं, ऐसा भी समझता हूं। लेकिन कुछ होता नहीं!

तो मैंने उनसे पूछा, एक बार फिर से सोचो। जो वे कहते हैं, वह समझ गए हो? अगर समझ गए हो, तो हो जाना चाहिए। क्योंकि समझना और हो जाने में फासला नहीं है। नहीं, वे बोले, समझता तो मैं बिलकुल पूरा हूं। समझने में रत्तीभर कमी नहीं है। लेकिन होता कुछ नहीं है!

अब इस आदमी की बड़ी कठिनाई है। इसको वहम है कि समझता हूं। क्योंकि अगर समझ ही ले कोई, तो होने में कुछ बचता नहीं, कुछ बचता नहीं। अगर मैं यह कहूं कि मुझे पक्का पता है कि दरवाजा कहां है मकान में, लेकिन जब भी मैं निकलता हूं तो दीवाल से टकरा जाता हूं। पक्का मुझे पता है कि दरवाजा कहां है। समझता हूं कि दरवाजा कहां है। लेकिन जब निकलता हूं तो दीवाल से टकरा जाता हूं। बीस साल से समझता हूं कि दरवाजा कहां है! तो हम उस आदमी से क्या कहेंगे, कि तुम्हारी समझ में कहीं भूल होगी। अगर तुम्हें पक्का पता है कि दरवाजा कहां है, तो फिर दीवाल से टकराने का सवाल कहां है, निकल जाओ। वह कहता है कि समझता तो पूरा हूं लेकिन जब भी चलता हूं तो दीवाल में ही सिर लगता है जाकर!

इसके समझने में ही बुनियादी भूल है। लेकिन यह मानने को तैयार नहीं कि मैं समझता नहीं हूं। अहंकार तैयार नहीं होता कि मैं समझता नहीं हूं।

तो मैंने उनसे कहा कि तुम अपनी समझ छोड्कर आओ, तो शायद कुछ हो सके। यह समझ महंगी पड़ रही है। और बीस साल हो गए समझते हुए, अब और क्या करोगे? और कितना समझोगे? अब समझने को भी कुछ नहीं बचा। तुम कहते हो, सब समझ लिया। अब क्या इरादे हैं?

तो उन मित्र ने कहा, इसीलिए मैं आपके पास आया हूं कि कृष्णमूर्ति जो कहते हैं, उससे अब कुछ नहीं होता। तो मैंने उनसे कहा, फिर कृष्णमूर्ति को पूरा छोड़कर आ जाओ। फिर जो मैं कहता हूं वह करो। उन्होंने कहा, मैं तैयार हूं। मैंने उनसे कहा, तो ठीक है। कल सुबह से तुम ध्यान शुरू करो। उन्होंने कहा, ध्यान से क्या होगा? कृष्णमूर्ति तो कहते हैं, ध्यान से कुछ भी न होगा!

ये तकलीफें हैं। ये तकलीफें हैं। जिससे नहीं हुआ है, वह भी सिर पर बैठ जाएगा। उससे कर भी नहीं सकते हैं, उसको छोड़ भी नहीं सकते हैं। और समझदारी का भूत सवार है कि समझ हमारे पास है। तो मैंने उनसे कहा कि अब मैं क्या करूं? बीस साल से तुम जानते हो कि ध्यान करने से कुछ न होगा। इससे कुछ नहीं हुआ। अब थोड़ा ध्यान करके देख लो।

एक आदमी कहता है कि भक्ति से कुछ भी न होगा। उससे मैं कहता हूं कि तुम ज्ञान की चर्चा काफी कर लिए। अगर उससे हो गया हो, तो बात समाप्त हुई। मुझे कोई एतराज नहीं है। न हुआ हो, तो नाचकर, गीत गाकर भी देख लो। पता नहीं, कहां तुम्हारा हृदय तरंगित हो जाए, कहां तुम्हारा हृदय अंकुरित हो उठे। रुकावट मत बनो। बाधा मत डालो। मंदिर में भी चले जाओ, मस्जिद में भी चले जाओ। कुरान को भी देख लो, गीता को भी देख लो। बाइबिल को भी पढ़ लो। गीत भी गा लो, नाचकर भी देख लो, ध्यान करके भी देख लो। तुम्हें कुछ पता नहीं है कि कहां से हो जाए, तो सब तरफ टटोलकर देख लो। पता नहीं, कहां द्वार मिल जाए! और जहां द्वार मिल जाए, फिर अपनी बुद्धिमत्ता को एक तरफ रखो और द्वार से बाहर निकलो। नहीं तो बुद्धिमत्ता इतनी मजबूत है हमारे पास कि द्वार भी आ जाए पास, तो चूक जाता है।

सुना है मैंने, हुजबिरी एक सूफी फकीर हुआ। वह कहा करता था कि आदमी ऐसा है कि अपने हाथ से मौके गंवाता है। एक आदमी आया हुआ था, उसने कहा कि मैं यह नहीं मान सकता। जिंदगी हो गई, हर अवसर की तलाश में हूं कि दो पैसे इकट्ठे हो जाएं। अभी तक अवसर ही नहीं आया। गंवाने का सवाल नहीं है। मैं अवसर की तलाश में हूं लेकिन अवसर ही नहीं आया। गंवाने का कहां सवाल है? हुजबिरी ने कहा, किसी दिन देखेंगे।

एक दिन हुजबिरी ने उस आदमी को कहा कि मैं उस पार जा रहा हूं नदी के, उस झाड़ू के नीचे बैला सांझ, तुम मिलने आ जाना। और अपने दूसरे भक्तों को कहा कि एक घड़े में सोने की मोहरें भरकर, बीच पुल पर रख दो। जब यह आदमी आए, तब वहां रख देना और दूर खड़े होकर देखते रहना।

वह आदमी आया। वह पुल के बीच तक आया। और ठीक बीच के करीब आते—आते उस आदमी ने आंखें बंद कर लीं, और बीच का हिस्सा उसने आंखें बंद करके पार किया। घड़े को छोड़ आया। जो लोग खड़े थे, वे भी बहुत चकित हुए कि हद्द हो गई! यह हुजबिरी ने कोई चमत्कार किया? कोई जादू किया? कि यह आदमी भी गजब का है कि आधे पुल तक तो आंखें खोले आया और जब घड़ा बिलकुल पास था, तो उसने आंखें बंद कर लीं! घड़े को लेकर वे हुजबिरी के पास पहुंचे। वह आदमी भी पहुंचा।

हुजबिरी ने पूछा कि कहो, वह घड़ा बीच में रखा था, तुम्हें दिखाई पड़ा? उसने कहा, कौन—सा घड़ा! हुजबिरी के मित्रों ने कहा कि घड़ा कैसे दिखाई पड़ेगा! जहां घड़ा दिखाई पड़ता, उसके पहले ही इस आदमी ने आंखें बंद कर लीं। हम तो चकित हुए। हुजबिरी ने उससे पूछा कि तुमने आंखें क्यों बंद कर लीं? उसने कहा कि मुझे एक खयाल आया कि जरा आंख बंद करके पुल पार करके देखें, कैसा होता है! ऐसे ही मौज आ गई कि जरा आंख बंद करके चलकर देखें।

हुजबिरी ने कहा कि घड़ा रखवाया था तेरे लिए। लेकिन जैसा मैं समझता हूं कि तूने जिंदगीभर अवसर खोए हैं, तो जरूर तेरा मन कोई तरकीब निकाल लेगा और तू अवसर खो देगा। ऐसा मैं विचार करता था, वह ठीक हो गया। तूने तरकीब निकाल ली कि जरा आंख बंद करके देखें।

हमारा मन हमारी आदतों का जोड़ है। और हमने जो भी अब तक किया है, वह मन का यंत्रवत हिस्सा हो गया है। अगर आप एक तरफ असफल हुए हैं, तो आप दूसरी तरफ भी जाएंगे अपनी सारी असफलता की आदत को ले जाएंगे। और वहां भी असफल होकर सिद्ध करेंगे कि हमें कोई सफल कर ही नहीं सकता। असफलता भी आपका सम्मान बन गई है।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि जो आदमी असफल होता रहता है, वह सफलता से डरने लगता है, क्योंकि प्रतिष्ठा का सवाल है। वह लोगों से कहता रहता है, असफलता ही मेरा भाग्य है। सारी दुनिया मेरे खिलाफ है। नियति मेरे विपरीत है, परमात्मा मेरे विपरीत काम कर रहा है! यह वह इतनी दफे कह चुका होता है कि अब उसे डर लगता है कि कहीं मैं सफल न हो जाऊं। नहीं तो मेरे पुराने वक्तव्यों का क्या होगा! तो अगर सफलता हाथ में भी आती हो, तो वह चूक जाएगा, छोड़ देगा, और फिर कहेगा कि देखो, नियति, भाग्य! मेरे को सफलता मिलने वाली ही नहीं है।

अपने ही दुश्मन बनकर हम जीते हैं। अपने मित्र बनकर जीने की बात है।

अर्जुन के इस सूत्र में अर्जुन ने अपने तरफ अपनी मित्रता बड़ी साफ जाहिर की है। वह कृष्ण से हाथ जोड़कर कह रहा है कि मुझे पता नहीं है। मानता मैं हूं ज्ञान मुझे नहीं है। आप मुझे बता दें। और जो भी उपाय हो, जो भी उपाय हो, जो मुझे मौजूं पड़ जाए, जिससे मेरा तालमेल बैठ जाए, ताकि मैं आपको जान सकूं और आपकी समग्रता को अनुभव कर सकूं।

गीता दर्शन—भाग—5
शास्त्र इशारे हैं—(प्रवचन—सातवां)
अध्याय—10

सूत्रः

विस्तरेणात्मनो योगं विभूतिं च जनार्दन।
भूयः कथय तृप्तिर्हि मृण्वतो नास्ति मेउमृतम्।।18।।
श्रीभगवानुवाचः

हन्त ते कथयिष्यामि दिव्या ह्यात्मविभूतयः।
प्राधान्यत कुरुश्रेष्ठ नास्त्यन्तो विस्तरस्थ मे।।19।।
अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः।
अहमादिश्च मध्यं व भूतानामन्त एव च।।2०।।
और हे जनार्दन अपनी योगशक्ति को और परम ऐश्वर्य रूय विभूति को फिर भी विस्तारपूर्वक कहिए क्योंकि आपके अमृतमय वचनों को सुनते हुए मेरी तृप्ति नहीं होती है।

हम प्रकार अर्जुन के पूछने पर श्रीकृष्ण भगवान बोले हे कुरूश्रेष्ठ अब मैं तेरे लिए अपनी दिव्य विभूतियों को प्रधानता से कहूंगा क्योंकि मेरे विस्तार का अंत नहीं है। हे अर्जुन मैं सब भूतों के हृदय में स्थित सबका आत्मा हूं तथा संपूर्ण भूतों का आदि, मध्य और अंत भी मैं ही हूं।

अर्जुन ने कृष्ण से पुनः कहा, और हे जनार्दन, अपनी योगशक्ति को और परम ऐश्वर्य रूप विभूति को फिर भी विस्तारपूर्वक कहिए, क्योंकि आपके अमृतमय वचनों को सुनते हुए मेरी तृप्ति नहीं होती है।

कृष्ण के वचन हों, या बुद्ध के, या क्राइस्ट के, सुनते हुए कभी भी किसी की उनसे तृप्ति नहीं होती है। ऊपर से देखने पर लगेगा कि वचन इतने प्रीतिकर हैं, इतने अमृतमयी हैं, इतने मधुर हैं, कि कितना ही सुनो उन्हें, तृप्ति नहीं होती है। यह बहुत ऊपरी अर्थ हुआ। गहरे में देखने पर, ये वचन ऐसे हैं कि सुनकर इनसे कभी तृप्ति नहीं हो सकती, वरन अतृप्ति और बढ़ेगी। तृप्ति होना तो दूर, और अतृप्ति बढ़ेगी, और बेचैनी बढ़ेगी, और प्यास बढ़ेगी। क्योंकि ये वचन जिस बात की खबर देते हैं, जैसे—जैसे उसकी खबर बढ़ने लगती है, वैसे—वैसे प्यास भी बढने लगती है उसे पाने की।

और वह जो जलाशय है, इन वचनों में केवल उसकी छाया है। वह जो तृप्ति का स्रोत है, इन वचनों में केवल उसकी ओर इशारा है। अगर कोई वचनों से ही तृप्त होना चाहे, तो कभी तृप्त न हो सकेगा। चलना पड़ेगा उस ओर, जिस ओर ये वचन इशारा करते हैं, इंगित करते हैं। जहां ये ले जाना चाहते हैं, वहां कोई पहुंचे तो तृप्ति होगी।

लेकिन ये वचन भी बहुत प्रीतिकर हैं, अमृतमयी हैं। और कोई इनको सुनने के लिए भी रुका रह सकता है। तब तृप्ति तो कभी न होगी, बल्कि ये वचन भी एक नशे का काम कर सकते हैं।

बुद्ध के पास आनंद चालीस वर्षों तक था। चालीस वर्ष लंबा समय है। और बुद्ध के निकटतम शिष्यों में से था। और इन चालीस वर्षों में बुद्ध ने जो भी बोला, एक शब्द भी बोला, तो आनंद ने वे सारे शब्द सुने थे, पर उसकी भी तृप्ति नहीं होती। और जब बुद्ध की मृत्यु करीब आई, तो आनंद छाती पीटकर रोने लगा। और बुद्ध ने कहा कि रोने का क्या प्रयोजन है? जो मैंने कहा है, अगर तू उसे समझ गया, तो मृत्यु होती ही नहीं है। जो मैंने कहा है, अगर तूने उसे पाया, तो रोने का कोई भी कारण नहीं है, ये आंसू बंद कर।

लेकिन आनंद को बुद्ध की बातें सुनाई भी नहीं पड़ी। वह गहन दुख में है। वह छाती पीटकर रो रहा है। और वह कह रहा है कि आपकी मृत्यु करीब आती, तो मेरे तो प्राण टूटते हैं। आपके अमृतमय वचन फिर कब सुनने को मिलेंगे? अब कब, कितने जन्मों के बाद आप जैसे व्यक्ति का दर्शन होगा? अब कब और कहां? कितनी यात्रा के बाद आपकी शीतल छाया में बैठने को मिलेगा? मेरी तो अभी तृप्ति नहीं हुई है, और आप जाने और विदा लेने को तैयार हो गए हैं!

तो बुद्ध ने आनंद को कहा है कि तेरी तृप्ति, चालीस वर्ष से निरंतर तू मुझे सुनता है, अगर तू चालीस जन्मों तक भी सुनता रहे, तो भी नहीं होगी। क्योंकि तृप्ति तो होगी चलने से, यात्रा करने से, पहुंचने से। मैं मंजिल की बात कर रहा हूं, वह बात प्रीतिकर लगती है। भविष्य दिखाई पड़ता है उसमें। स्वयं की संभावनाएं कभी वास्तविक हो सकती हैं, इसकी अनुभूति होती है, प्रतीति होती है, आभास मिलता है। लेकिन वह आभास तृप्ति नहीं दे सकता।

हम कितनी ही जल की चर्चा सुनें, और चाहे वह चर्चा कृष्ण या बुद्ध ही क्यों न करते हों, तो भी प्यास नहीं मिट सकती है। बल्कि जल की चर्चा से प्यास और बढ़ जाएगी; और सोई होगी, तो जग जाएगी, और छिपी होगी, तो प्रकट हो जाएगी। और जल की चर्चा और उसकी महिमा, हमारे प्राणों को एक अभीप्सा दे देगी, आग जलने लगेगी भीतर।

तो एक तो ऊपरी अर्थ है। जैसा आमतौर से कोई गीता को पड़ेगा, तो वही दिखाई पड़ेगा। वह अर्थ है कि वचन इतने मधुर हैं कि सुनकर तृप्ति नहीं होती, अर्जुन और भी सुनना चाहता है। लेकिन कितना ही सुनता रहे, यह तृप्ति कभी होगी नहीं।

और एक मजे की बात है। जिन वचनों को सुनने से कभी तृप्ति नहीं होती, उसका अर्थ ही यह हुआ कि वे वचन किसी ऐसी जगह की तरफ इशारा कर रहे हैं, जहां पहुंचकर ही तृप्ति हो सकती है। और जिन वचनों को सुनकर तृप्ति हो जाती है, उन वचनों से ऊब और बोर्डम पैदा हो जाएगी। जिन वचनों को सुनकर तृप्ति हो जाती है, उनसे ऊब पैदा हो जाएगी।

यह बहुत मजे की बात है कि इस पृथ्वी पर सभी तरह के वचन सुनकर ऊब पैदा होने लगेगी, सिर्फ उन वचनों को छोड़कर, जिन्हें सुनने से ही कुछ भी नहीं मिलता है, सिर्फ प्यास ही मिलती है। शायद धर्मशास्त्र की परिभाषा मेरी दृष्टि में यही है। धर्मशास्त्र मैं उस शास्त्र को कहता हूं जिसे पढ़कर, जिसे समझकर, तृप्ति न मिले, और अतृप्ति बढ़ जाए। जिस शास्त्र को पढ़कर तृप्ति मिले, वह साहित्य होगा, धर्मशास्त्र नहीं। जिस शास्त्र को पढ़कर सुख मिले, वह साहित्य की बड़ी कृति होगी, कलाकृति होगी, लेकिन धर्मशास्त्र नहीं। धर्मशास्त्र तो प्यास देगा, जलन देगा, आग देगा, सारे प्राण जलने लगेंगे। और अतृप्त हो जाएंगे आप।

आमतौर से हम सुनते हैं कि धार्मिक आदमी बड़े संतुष्ट होते हैं। वह बात अधूरी है और एक अर्थ में झूठी है। वे हमें संतुष्ट दिखाई पड़ते हैं उन चीजों के संबंध में, जिन चीजों के संबंध में हम असंतुष्ट हैं। और हमें उनका असंतोष दिखाई नहीं पड़ता, क्योंकि वे उन चीजों के संबंध में असंतुष्ट हैं, जिनकी हमारे मन में कोई वासना नहीं है। लेकिन धार्मिक आदमी महा असंतुष्ट होता है। परमात्मा को पाने को, मुक्ति पाने को, सत्य पाने को, उसके प्राण एक लपट बन जाते हैं असंतोष के।

हां, धन पाने में उसका असंतोष नहीं होता। यश पाने में उसका असंतोष नहीं होता। उसके पास जो भी है, वह संतुष्ट मालूम पड़ता है। लेकिन इसका कारण बहुत गहरा है। इसका कारण यह है कि उसका सारा असंतोष परमात्मा पर लग जाता है। इन छोटी—मोटी चीजों पर असंतोष देने को उसके पास बचता नहीं। लेकिन हमें वह संतुष्ट मालूम पड़ता है। क्योंकि जिन चीजों से हम परेशान हैं, अगर हमारा एक पैसा खो जाए, तो हम असंतुष्ट होते हैं; उसका सब भी खो जाए, तो भी असंतुष्ट नहीं मालूम पड़ता। तो हम कहते हैं, कितना संतोषी आदमी है! लेकिन हमें उसके भीतर की आग का कोई भी पता नहीं है। यह संतोष उस भीतरी असंतोष का ही परिणाम है।

यहां एक फर्क खयाल में ले लेना चाहिए।

कुछ लोग अपने को समझा—बुझा कर संतुष्ट रहते हैं। उनका संतोष बिलकुल ही मिथ्या होता है। जब तक आपके जीवन में एक परम असंतोष न जगे, तब तक आपका बाहरी संतोष झूठा होगा। जब तक आपकी सारी असंतोष की शक्ति परमात्मा की तरफ न लग जाए, तब तक संसार के प्रति आपकी संतोष की बातें सिर्फ धोखा होंगी। आदमी अपने को समझा—बुझा कर संतुष्ट हो सकता है। भयभीत आदमी डरता भी है। चिंतित आदमी परेशान भी होता है। तनावग्रस्त आदमी पीड़ा भी अनुभव करता है। इन सारी पीड़ाओं, चिंताओं और भय के कारण कोई व्यक्ति अपने को समझा—बुझा कर संतुष्ट भी हो सकता है। लेकिन वह संतोष झूठा है।

वास्तविक संतोष का जन्म होता है भीतर के एक गहरे असंतोष से। एक नये आयाम में, एक न्यू डाइमेन्शन में जब आपकी सारी असंतोष की आग दौड़ने लगती है, तब आप बाहर के प्रति बिलकुल संतुष्ट हो जाते हैं। इसलिए नहीं कि आपने संतोष धारण कर लिया, बल्कि इसलिए कि बाहर की चीजें असंगत और व्यर्थ हो गई हैं। उनका कोई भी मूल्य नहीं रहा है। वे निर्मूल्य हो गई हैं। उनसे अब कोई बेचैनी नहीं होती। इतनी बड़ी बेचैनी पैदा हो गई है कि छोटी बेचैनिया व्यर्थ हो गई हैं।

लेकिन धर्मशास्त्र को पढ़ने से आपको कोई तृप्ति नहीं मिल सकती। आपको अतृप्ति मिलेगी। नई अतृप्ति मिलेगी। एक नई खोज की आकांक्षा जगेगी।

तो धर्मशास्त्र मैं कहता हूं उस शास्त्र को, जो आपके सारे असंतोष को इकट्ठा करके परमात्मा की ओर लगा दे। जो आपकी सारी वासनाओं को खींच ले और एक ही वासना में निमज्जित कर दे। जो आपकी सारी इच्छाओं को इकट्ठा कर ले, एकाग्र कर ले और एक ही

आयाम में प्रवाहित कर दे। जो आपके प्राणों की सारी बिखरी हुई किरणों को इकट्ठा कर ले और एक लपट बन जाए और वह लपट प्रभु की यात्रा पर, परम सत्य की यात्रा पर निकल जाए।

यह जो असंतोष है, वही अर्जुन को भी अनुभव हो रहा है। लेकिन शायद उसे साफ नहीं है। शायद उसने जब यह वचन कहा है, तो उसका भी प्रयोजन यही है कि आपके वचन बहुत मधुर हैं, बहुत प्रीतिकर हैं, सुन—सुनकर भी मन भरता नहीं, आप इन्हें और कहे जाएं।

लेकिन अर्जुन को पता हो या न पता हो, ये कृष्ण के वचन जन्मों— जन्मों तक भी वह सुनता रहे, तो भी इनको सुनकर ही संतोष नहीं मिलेगा। इनके अनुकूल रूपांतरित होना पड़ेगा, इनके अनुकूल अर्जुन को बदलना पड़ेगा। और अगर इनके अनुकूल अर्जुन बदल जाए, तो अर्जुन स्वयं कृष्ण हो जाएगा। कृष्ण हो जाए, तो ही संतुष्ट हो सकेगा। उसके पहले कोई संतोष नहीं है। उसके पहले अतृप्ति बढ़ती चली जाएगी।

इसलिए वह कहता है कि हे जनार्दन, अपनी योगशक्ति को, अपने ऐश्वर्य को, अपनी विभूतियों को फिर से विस्तारपूर्वक कहिए।

अभी—अभी कृष्ण ने बातें कही हैं, अभी—अभी—ऐश्वर्य की, योग की, विभूति की, परमात्मा की परम शक्ति की, उसके परम विस्तार की। लेकिन अर्जुन कहता है, और विस्तार से कहिए। आपके अमृतमय वचनों को सुनते हुए मेरी तृप्ति नहीं होती। और एक बात ध्यान देने की है कि अर्जुन कहता है, विस्तारपूर्वक कहिए।

हम सबको यह खयाल होता है कि अगर कोई बात हमारी समझ में न आती हो, तो विस्तारपूर्वक समझाने से शायद समझ में आ जाए। यह भ्रांति है। दो तरह की बातें हैं इस जगत में। कुछ बातें हैं, जो आपको विस्तारपूर्वक कही जाएं तो आपकी समझ में आ जाएंगी। और कुछ बातें हैं, जो विस्तारपूर्वक कही जाएं तो आपको पहले जितनी समझ में आती थीं, उतनी समझ भी खो जाएगी!

जैसा मैंने कल आपको कहा कि दो प्रकार के ज्ञान हैं, परिचय और जान। जो बातें परिचय की हैं, उनको विस्तार से कहने पर वे समझ में आ जाएंगी। क्योंकि परिचय का ही सवाल है, थोड़ा और विस्तार से बताएंगे, तो खयाल में आ जाएगा। लेकिन जिसे मैंने ज्ञान कहा, जानना कहा, वह जानना आपको विस्तार से कितना ही कहा जाए, समझ में नहीं आएगा। बल्कि जितना विस्तार से आप सुनेंगे, उतना ही पता चलेगा, कम समझ में आ रहा है।

मौलुंकपुत्त, एक बहुत बुद्धिमान और पंडित आदमी, बुद्ध के पास गया। ज्ञानी था और ज्ञान के दंभ से भी भरा था। जानता था शास्त्रों को और यह भी जानता था कि मैं जानकार हूं। बुद्ध के पास वह आया और उसने बुद्ध से कहा कि मुझे कुछ ज्ञान की बातें दें। मैं भिक्षा का पात्र लेकर आया हूं; मुझे कुछ ज्ञान दें।

बुद्ध ने कहा, तेरा भिक्षा का पात्र पहले से ही बहुत भरा हुआ है और ज्ञान तेरे पास जरूरत से ज्यादा है। सच तो यह है कि ज्ञान के कारण तुझे अपच हो गया है। अगर मैं तेरा कल्याण करना चाहता हूं तो पहले तो मुझे तेरा ज्ञान तुझसे छीनना पड़ेगा। और अगर मैं तुझे पुन: अज्ञानी बनाने में समर्थ हो जाऊं, तो शायद तेरे जीवन में कोई घटना घट सके, जहां ज्ञान का दीया जले।

मौलुंकपुत्त को बहुत अजीब मालूम पड़ा। वह गुरुओं के पास जाता था इसलिए कि और विस्तार से जान ले, और जो कमी रह गई हो डिटेल्स में, वह उसको भी पता कर ले। कुछ बातें चूक गई हों, उनसे भी परिचित हो जाए। किन्हीं सिद्धांतों में कुछ बातें बेबूझ रह गई हों, धुंधली हों, उन्हें भी साफ कर ले।

बुद्ध ने उससे कहा कि मैं तुझे कुछ और विस्तार से नहीं कहूंगा। तू जितना विस्तार जानता है, उसे भी छीन लेना चाहता हूं। तू खाली हो जाए, तो शायद कभी तेरे जीवन में ज्ञान की घटना घट सके। विस्तार का मतलब ही होता है तथ्यात्मक। एक चीज के संबंध में हम और जान लें। चारों तरफ घूमकर और पता लगा लें। विस्तार का मूल्य नहीं है; विस्तार से परिचय होता है, एक्सटेंशन, फैलाव। ज्ञान विस्तार से नहीं होता, गहराई से होता है।

ज्ञान होता है इनटेंसिव, एक्सटेंसिव नहीं। ज्ञान में किसी एक ही बिंदु में गहरा उतरना पड़ता है, और विस्तार में एक बिंदु के आस— पास अनेक बिंदुओं पर यात्रा करनी पड़ती है। अगर मुझे एक फूल के संबंध में ज्यादा जानना है, तो फूल के संबंध में जितनी किताबें लिखी गई हों, उनको जानूं। और अगर मुझे फूल को जानना है, तो फूल में ही डूब जाऊं, उतर जाऊं, लीन हो जाऊं, विस्तार को छोड़ दूं।

परिचय विस्तार लेता है, ज्ञान गहराई लेता है। परिचय ऐसा है, जैसे कोई आदमी नदी के ऊपर तैरता हो, दूर तक तैरता हो। और ज्ञान ऐसा है, जैसे कोई आदमी नदी में डुबकी लगाता हो। तो डुबकी लगाने वाले को एक ही जगह डूब जाना पड़ता है। और लंबा फैलाव करने वाले को पानी की सतह पर दूर—दूर तक हाथ मारने पड़ते हैं।

जो लोग ज्ञान को विस्तार समझते हैं, वे ज्ञान से चूक जाएंगे। जो लोग ज्ञान को गहराई समझते हैं, इनटेंसिटी समझते हैं, वे लोग ज्ञान को उपलब्ध हो पाते हैं। एक छोटे—से बिंदु में पूरी तरह डूब जाने से ज्ञान उपलब्ध होता है। और बड़ी दूर तक भटकने से विस्तार उपलब्ध होता है। आप बहुत—सी बातें जान सकते हैं और फिर भी जानने से वंचित रह जाएं।

सुकरात ने मरने के पहले कहा है कि जब मैं बच्चा था, तो मैं समझता था कि मैं सब कुछ जानता हूं। जब मैं जवान हुआ, तो मैंने समझा कि बहुत कुछ है, जो मैं नहीं जानता हूं। और अब जब मैं का हो गया हूं तो मैं कह सकता हूं स्पष्ट घोषणा के साथ कि मैं कुछ भी नहीं जानता हूं। बच्चा था, तब सोचता था, सब जानता हूं। सभी बच्चे ऐसा सोचते हैं। सभी बच्चे ऐसा सोचते हैं कि सब जानते हैं। और जो बूढ़े भी ऐसा सोचते हैं कि सब जानते हैं, समझना कि उनकी बौद्धिक उम्र ज्यादा नहीं है, बच्चों के बराबर है। जवान को शक होने लगता है। बच्चा बिलकुल दृढ़ होता है, वह जो भी जानता है, पक्का जानता है। उसे शक ही नहीं होता अपने पर। उसे अपने अज्ञान का पता ही नहीं होता।

बच्चे अज्ञानी होते हैं, लेकिन अज्ञान का उन्हें पता नहीं होता। उनका अज्ञान ही उनके लिए ज्ञान होता है। इसलिए बच्चे इतने कम तनाव से भरे हुए मालूम पड़ते हैं। कोई बेचैनी नहीं मालूम पड़ती। वे अपने अज्ञान में थिर हैं। अपने अज्ञान में बड़ी मौज में हैं। कोई उन्हें परेशानी नहीं है कुछ जानने की, वे सभी कुछ जानते हैं।

जवान होते—होते आदमी को दिखाई पड़ना शुरू होता है कि मेरे जानने की सीमाएं हैं। और उसे यह भी दिखाई पड़ना शुरू होता है कि बचपन की जो धारणाएं थीं, उनके नीचे की जमीन हट गई। उसे यह भी पता चलना शुरू होता है कि जो निश्चित था, वह अनिश्चित हो गया। जिसे मैंने पक्का समझा था, वह भी पक्का नहीं है। जवान बेचैन होने लगता है। उसे कुछ बातें पता चलती हैं कि मैं जानता हूं और बहुत बातें पता चलती हैं कि मैं नहीं जानता हूं।

का आदमी अगर ठीक से विकसित हो, तो उसे पता चलता है कि मैं कुछ भी नहीं जानता हूं।

सुकरात के संबंध में यूनान की एक देवी ने घोषणा कर दी थी कि सुकरात परम ज्ञानी है, उससे बड़ा ज्ञानी पृथ्वी पर दूसरा नहीं है। सुकरात के गांव के लोगों ने यह खबर सुनी, वे सुकरात के पास गए और उन्होंने कहा कि धन्य हैं भाग्य हमारे कि हमारे गांव में तुम्हारा जन्म हुआ, क्योंकि देवी ने घोषणा की है कि तुम पृथ्वी पर इस समय परम ज्ञानी हो।

सुकरात ने कहा कि देवी को जाकर कहना कि उसने थोड़ी देर कर दी। जब मैं मूढ़ था और नासमझ था, तो मैं भी ऐसा ही सोचता था। अगर उसने तब घोषणा की होती, तो मुझे बड़ा आनंद आता। लेकिन अब तो मैं जानता हूं कि मैं कुछ भी नहीं जानता हूं। अब एक ही ज्ञान मेरे पास बचा है कि मैं बिलकुल अज्ञानी हूं। मेरे पास कुछ भी नहीं है। तो जाकर देवी से कहना कि थोड़ी देर कर दी। यह सुनकर मुझे कुछ आनंद नहीं आता।

गांव के लोग परेशान हुए। एक तरफ तो उन्हें खुशी भी हुई थी कि एथेंस का नागरिक, उनके गांव का सुकरात, परम ज्ञानी घोषित हुआ। लेकिन भीतर पीड़ा भी हुई थी कि हम अज्ञानी ही रह गए और हमारे ही गांव का यह सुकरात, यह परम ज्ञानी हो गया! एक तरफ ऊपर से खुशी भी हुई थी, भीतर दर्द भी हुआ था।

सुकरात से जब यह बात सुनी, तो खुशी तो एक तरफ समाप्त हो गई, दर्द ऊपर आ गया; और वे बड़े खुश हुए। बड़े खुश हुए कि हम खुद ही जानते थे पहले से ही कि देवी से कुछ भूल हो गई है। सुकरात और परम ज्ञानी! जरूर कोई गलती हो गई है। अपने ही गांव का आदमी, भलीभांति हम जानते हैं, यह क्या जानता है! वापस देवी के पास वे गए और उन्होंने कहा कि क्षमा करें, आपसे कुछ भूल हो गई। क्योंकि हम सुकरात से ही स्वयं पूछकर आ रहे हैं। और सुकरात ने खुद ही कहा है कि मुझसे बड़ा अज्ञानी इस जमीन पर कोई भी नहीं है। इसलिए आप अपने वक्तव्य को बदल लें!

देवी ने कहा कि इसीलिए तो सुकरात को मैंने तानी कहा है, क्योंकि जिसको अपने परम अज्ञानी होने का ज्ञान हो जाता है, उससे बड़ा ज्ञानी जगत में कोई भी नहीं होता है। यही है कारण सुकरात को महाज्ञानी कहने का।

बच्चे अज्ञानी होते हैं; उन्हें पता नहीं है। परम जानी भी बच्चों जैसा अज्ञानी हो जाता है, लेकिन उसे पता होता है। वही निर्दोषता फिर उसके जीवन में आ जाती है, जैसे उसे कुछ पता नहीं, वही इनोसेंस। लेकिन हम सबकी भूल यही है खयाल में कि थोड़ा और ज्यादा जान लेंगे, तो शायद ज्ञान हो जाए। जिंदगीभर हम इसी तरह संग्रह करते हैं। ज्ञान को हम संग्रह समझते हैं। इसलिए बूढ़ा आदमी सोचता है कि मैं ज्यादा जानता हूं क्योंकि उसके पास निश्चित ही ज्यादा संग्रह होता है।

पिछले महायुद्ध में अमेरिका में लोगों को मिलिटरी में भर्ती करते वक्त लाखों लोगों की मानसिक उम्र जांची गई, तो अमेरिका के मनोवैज्ञानिक चकित रह गए। शक तो बहुत बार होता है कि लोगों की मानसिक उम्र कम होनी चाहिए, लेकिन इतनी कम होगी, यह

कभी नहीं सोचा था। लाखों लोगों की मानसिक उम्र जांचने से पता चला कि आमतौर से आदमी की औसत मानसिक उम्र, मेंटल एज तेरह साल से ज्यादा नहीं होती।

शरीर की उम्र तो बढ़ती चली जाती है। सत्तर साल का आदमी हो जाता है, लेकिन मानसिक उम्र तेरह साल पर औसत रूप से रुक जाती है। जितनी तेरह साल के बच्चे के पास बुद्धिमत्ता होती है, उतनी ही सत्तर साल के आदमी के पास होती है। संग्रह अलग होता है, लेकिन बुद्धि ज्यादा नहीं होती। संग्रह ज्यादा होता है, क्योंकि सत्तर साल का अनुभव है। लेकिन जो बुद्धि संग्रह करती है, वह उतनी ही होती है, जितनी तेरह साल की। जिस बुद्धि में यह संग्रह बढ़ता चला जाता है, उस बुद्धि की क्षमता तेरह साल की ही होती है।

बड़ी दुखद बात है। लेकिन सत्तर साल का आदमी यह मानने को राजी नहीं होगा। वह कहेगा कि मैं जानता हूं। क्योंकि उसके पास विस्तार ज्यादा है। वह ज्यादा तथ्य गिना सकता है, ज्यादा अनुभव गिना सकता है। उसके पास स्मृति बड़ी है; सत्तर साल उसकी स्मृति में टंक गए।

लेकिन विस्तार से कोई ज्ञान को उपलब्ध नहीं होता। वरन विस्तार से यह भी हो सकता है कि ज्ञान की संभावना क्षीण हो जाए। इसलिए यह जानकर आप हैरान होंगे कि इस जगत में आज तक जितनी भी महाज्ञान की घटनाएं घटी हैं, उनमें किसी के को घटी हो, इसकी अब तक इतिहास में कोई खबर नहीं है।

यह बहुत हैरानी की बात है। बुद्ध हों, कि महावीर हों, कि जीसस हों, कि शंकराचार्य हों, कि नागार्जुन, कि वसुबंधु, कि लाओत्से, कोई भी गहरे बुढ़ापे में परमज्ञान को उपलब्ध नहीं हुआ है। ये सारी घटनाएं पैंतीस साल के करीब घटती हैं, पैंतीस साल के पहले आमतौर से या पैंतीस साल के करीब। पैंतीस साल के बाद आदमी बूढ़ा होना शुरू हो जाता है। पीक, पैंतीस साल है। अगर सत्तर साल उम्र है, तो पैंतीस साल पर आदमी शिखर पर होता है, फिर उतार शुरू हो जाता है।

अब तक, उतरती जिंदगी में बहुत कम लोग ज्ञान को उपलब्ध हुए हैं। यह हैरानी की बात है। होना उलटा चाहिए। अगर विस्तार से ज्ञान बढ़ता हो, तो बुद्ध को, महावीर को, शंकर को, विवेकानंद को, इन सबको ज्ञान होना चाहिए कोई पचास—साठ साल के बाद। लेकिन अब तक ऐसा हुआ नहीं। अब तक जो भी महाज्ञान की घटनाएं घटी हैं, वे मध्य या मध्य के पहले घटी हैं।

इसका अर्थ है। कभी—कभी विस्तार बहुत बढ़ जाए, तो इतना छा जाता है धुएं की तरह मन पर कि फिर गहराई में उतरना मुश्किल हो जाता है। आदमी इतना जान लेता है कि जानने में कहीं भी एक तरफ एकाग्र होने की उसे सुविधा नहीं रह जाती। उसका मन इतने—इतने, इतने—इतने तथ्यों में बंट जाता है और इतनी—इतनी जगह भटकने लगता है कि उसे एक जगह रुककर प्रवेश करना मुश्किल हो जाता है। विस्तार बाधा भी बन सकता है।

दो बातें, विस्तार ज्ञान नहीं है, परिचय है, और परिचय ऊपरी बात है। और दूसरी बात, बहुत विस्तार हो, तो बाधा भी बन सकती है। तैरने में कोई आदमी बहुत कुशल हो जाए, तो पैसिफिक

महासागर के ऊपर भी तैर सकता है, जहां पांच मील गहराई है नीचे। लेकिन तैरने में बहुत कुशल हो जाए, तो शायद डुबकी लगाने का उसे खयाल ही न आए।

कभी—कभी ऐसा भी हो जाता है कि जो तैरना नहीं जानता, उसकी मजबूरी में भी डुबकी लग जाती है। लेकिन तैरने वाले की डुबकी तो लगना मुश्किल है, जब तक कि वह स्वयं न लगाए। कभी—कभी भूल से भी न तैरने वाले की डुबकी लग जाती है।

इसलिए एक और दूसरी मजे की घटना आपसे कहता हूं कि इतिहास में पंडितों को परमज्ञान हुआ हो, इसके उल्लेख न के बराबर हैं। कभी—कभी अज्ञानी भी परमज्ञान को उपलब्ध हो जाते हैं, लेकिन पंडित नहीं हो पाते! कबीर हैं, बेपढ़े—लिखे हैं। मोहम्मद हैं, बेपढ़े—लिखे हैं। जीसस हैं, बेपढ़े—लिखे हैं। नानक हैं, बेपढ़े—लिखे हैं। ये बेपढ़े—लिखे लोग भी कभी डुबकी लगा जाते हैं।

कबीर ने डुबकी लगा ली और काशी के पंडित, जो बहुत जानते थे, और वहीं कबीर के आस—पास थे, और कबीर को एक गंवार जुलाहा समझते थे, वे डुबकी नहीं लगा पाए। वे डुबकी नहीं लगा पाए। वे इतना जानते थे कि शायद यह भूल ही गए कि अभी असली गहराई तो जानी ही नहीं है, यह सब विस्तार है—शब्दों का, शास्त्रों का, सिद्धांतों का। अर्जुन के मन में भी वही खयाल है कि शायद तृप्ति मिल जाए, अगर और थोड़ा ज्यादा जान लूं।

ध्यान रहे, जब आप कोई चीज ज्यादा जानते हैं, तो आप तो वही रहते हैं, आपका संग्रह भर बढ़ जाता है। और जब कोई चीज आप गहरी जानते हैं, तो संग्रह नहीं बढ़ता, आप बदल जाते हैं। गहरा जानने के लिए स्वयं गहरा होना पड़ता है। ज्यादा जानने के लिए किसी को गहरा होने की जरूरत नहीं।

जैसे धन तिजोड़ी में बढ़ता चला जाता है, एक के दस हजार रुपए हो जातें हैं, दस हजार के दस लाख हो जाते हैं। लेकिन इससे आप यह मत समझना कि जिसकी तिजोड़ी में धन बढ़ रहा है, वह आदमी धनी हो रहा है। अक्सर तो ऐसा होता है कि जितना ज्यादा धन, उतना गरीब आदमी वहां मिलेगा। जितना ज्यादा धन हो जाता है, उतना भीतर आदमी गरीब हो जाता है। और अक्सर धनी आदमी एक ही काम करते हैं, अपने धन पर पहरा देने का। काम करते—करते समाप्त हो जाते हैं। उनकी जिंदगी एक पहरेदार से ज्यादा नहीं रह जाती।

धनी आदमी कंजूस हो जाता है, क्योंकि गरीब हो जाता है। और कभी—कभी गरीब भी इतना कंजूस नहीं होता। और जो कंजूस नहीं है, वह अमीर है। और जो कंजूस है, वह गरीब है।

ज्ञान के संबंध में भी यही घटना घटती है। कुछ लोग ज्ञान की तिजोडी भरते चले जाते हैं और भीतर अज्ञानी रह जाते हैं। कितना आप जानते हैं, इससे आपके ज्ञान का कोई भी संबंध नहीं है। कितने आप बदले हैं, कितने आप रूपांतरित हुए हैं, कितने आप डूबे हैं, कितने आप गहरे गए हैं, इससे आपके ज्ञान का संबंध है।

और ऐसा भी हो सकता है कि आप कहें कि मैं कुछ भी नहीं जानता हूं और तो भी आप परमज्ञान को उपलब्ध हो जाएं। क्योंकि मैं कुछ भी नहीं जानता हूं ऐसा जिसको खयाल में आ जाए, उसका अहंकार तत्क्षण बिखर जाता है। मैं जानता हूं यह भी अहंकार के लिए इटइं बन जाती हैं। मेरे पास धन है, तो भी अहंकार मजबूत होता है। मेरे पास ज्ञान है, तो भी अहंकार मजबूत होता है। मेरे पास कुछ भी नहीं है, ज्ञान भी नहीं है, अहंकार विलीन हो जाता है। और जहां होता है अहंकार विलीन, वहीं डुबकी लग जाती है।

अहंकार हमारा तैरना है। और जब अहंकार छूट जाता है, हाथ— पैर बंद हो जाते हैं, हम डुबकी लगा लेते हैं।

अर्जुन पूछता है, मुझे विस्तार से कहिए। सोचता है, शायद अभी मेरी समझ में नहीं आया। कृष्ण और विस्तार से कहें, तो मेरी समझ में आ जाए। और कृष्ण विस्तार से कहेंगे। इसलिए नहीं कि वे सोचते हैं कि अर्जुन की समझ में आ जाएगा। बल्कि इसलिए कि अर्जुन देख ले कि विस्तार से कहने पर भी समझ में नहीं आता है। समझ कोई बात ही और है।

समझ के लिए, दूसरे ने कितना बताया, यह मूल्यवान नहीं। समझ के लिए, मैं कितना स्वयं को बदला, नया बना, यह महत्वपूर्ण है।

उसने भी शायद यही सोचकर कहा है कि अगर और कृष्ण बहुत—से वचन कहें, तो मेरी तृप्ति हो जाए। लेकिन कृष्ण कितना ही कहें, तृप्ति नहीं होगी। क्योंकि कृष्ण जो वचन बोल रहे हैं, वे धर्म के परम वचन हैं।

अगर एक कविता को आप रोज—रोज पढ़ें, तो आप जल्दी ही ऊब जाएंगे। फिर कभी उस कविता में आपको स्वाद न आएगा। और यही रोज विद्यालयों में, विश्वविद्यालयों में होता है। दुनिया की श्रेष्ठतम कविताएं चूंकि कोर्स में रख दी जाती हैं, इसलिए रसहीन हो जाती हैं। शेक्सपीयर और कालिदास भी दुश्मन मालूम पड़ने लगते हैं। और एक दफा जो युनिवर्सिटी से शेक्सपीयर या कालिदास को या भवभूति को पढ़कर लौटा है, फिर दुबारा कभी उनको नहीं पड़ेगा। भारी नुकसान हो गया। बड़े सौंदर्य की यात्रा पर ले जा सकते थे वे, लेकिन पुनरुक्ति, बार—बार पढ़ने से ऊब पैदा हो गई। श्रेष्ठतम कविता भी पुनरुक्त करने से ऊब पैदा कर देगी।

लेकिन धर्म—ग्रंथ का हम पाठ करते हैं। पाठ का मतलब है, रोज हम पुनरुक्त करते हैं। अगर आप थोड़े भी होशपूर्वक यह पाठ कर रहे हों, तो धर्म—ग्रंथ रोज—रोज आपकी प्यास को जगाएगा। इसको मैं कसौटी कहता हूं।

अगर आप रोज गीता पढ़ते हैं, और गीता पढ़—पढ़ कर आपको ऊब आने लगती है, जम्हाई आती है और आंख झपने लगती हैं, तो आप समझना कि गीता आपके लिए धर्मशास्त्र नहीं है। अगर गीता को रोज—रोज पढ़कर भी आपको नई प्रेरणा मिलती है, और नई प्यास जगती है, और नई खोज शुरू होती है, और ऐसा लगता है कि तृप्ति। नहीं हुई, तो ही आप समझना कि गीता आपके लिए धर्म—ग्रंथ है।

गीता को सिर लगाने से पता नहीं चलता कि वह धर्म—ग्रंथ है। गीता को नमस्कार करने से भी पता नहीं चलता कि धर्म—ग्रंथ है। गीता आपको उबाए न, ऊब पैदा न करे, और गीता में आपका रस, जितना आप गीता को पढ़ें, उतना बढ़ता चला जाए, और उतनी ही अतृप्ति मालूम पड़े, तो ही आप समझना कि गीता आपके लिए धर्म—ग्रंथ हुआ। इसलिए नियम था कि धर्म—ग्रंथ को पढ़ा न जाए, पाठ किया जाए।

पढ़ने और पाठ करने में फर्क है। पढ़ने का मतलब, एक दफा पढ़ लिया, बात समाप्त हो गई। पाठ का मतलब है, रोज—रोज किया जाए। और अगर आप वर्षों तक भी गीता का पाठ करके यह कह सकें, अनुभव कर सकें कि मुझे ऊब नहीं आती, मेरा स्वाद और बढ़ता ही चला जाता है, गीता मुझे रोज ही नई मालूम पड़ती है, तो ही आप समझना कि गीता और आपके बीच जो संबंध है, वह धर्म— ग्रंथ और आपके बीच संबंध है। और अगर आपको भी ऊब आने लगती हो, और गीता कंठस्थ हो जाती हो, और मेकेनिकली रोज आप यंत्रवत उसे दोहरा देते हों...।

मैं देखता हूं गीता के पाठियों को, उनको फिर कौन—सा पन्ना सामने है, इसकी भी चिंता नहीं रहती। उनको कंठस्थ है। पन्ना कोई भी हो, वे दोहराए चले जाते हैं। किताब उलटी भी रखी हो, तो कोई फर्क नहीं पड़ता।

मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन सुबह बैठकर कुरान पढ़ रहा है। उलटी रखे हुए है! गांव में तो कोई पढ़ा—लिखा आदमी नहीं है, इसलिए किसी को पता नहीं है कि वह उलटा पढ़ता है कि सीधा पढ़ता है! एक अजनबी गांव से गुजर रहा है। मुल्ला के पास दस—पांच उसके शिष्य भी बैठे हैं। वह अजनबी भी भीड़ देखकर वहां आ गया। उसकी बेचैनी बढ़ने लगी, जब उसने देखा कि किताब उलटी रखी है और मुल्ला पढ़े जा रहा है। आखिर उससे न रहा गया। सब रखना मुश्किल हुआ। उसने खड़े होकर कहा कि और सब तो ठीक है। आप जो कह रहे हैं, वह भी ठीक है। लेकिन किताब आप उलटी रखकर पढ़ रहे हैं!

मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा कि मैं कोई साधारण पढ़ने वाला नहीं हूं। किताब कैसी भी हो, उलटी हो कि सीधी हो, हो कि न हो। यह किताब अपने लिए नहीं रखी है; ये लोग यहां बैठे हैं, इनके लिए रखी है। कुरान कंठस्थ है। पढ़ने की झंझट वे उठाएं, जिन्हें कुरान पता न हो, नसरुद्दीन ने कहा, कुरान मुझे पता है। पढ़ने की कोई जरूरत नहीं है।

यह जो पता होना है, यांत्रिक, मशीन की तरह, इससे कोई व्यक्ति किसी धर्म—ग्रंथ से अतृप्ति नहीं पा सकता, ऊब पाएगा, परेशान हो जाएगा। भय के कारण, लोभ के कारण रोज पढ़ता रहेगा। आशा में, आकांक्षा में, कि शायद कुछ मिले, पढ़ता रहेगा। भय में, कि न पढ़ूं तो कोई नुकसान न हो जाए, पढ़ता रहेगा। लेकिन कोई हार्दिक संबंध स्थापित नहीं होगा। धर्म—ग्रंथ का पाठ करने पर ही पता चलता है कि अगर आप ऊबे न, तो ही आप धर्म से संबंधित हो रहे हैं। आपकी प्यास रोज जगती चली जाए।

अर्जुन कहता है कि विस्तार से मैं जान लूं और आपके अमृतमय वचनों को सुनते हुए मेरी तृप्ति नहीं होती। सोचता है, और सुनूं तो तृप्ति हो जाए!

लेकिन आपको पता है, हर तृप्ति के बाद ऊब, बोर्डम अनिवार्य है। हर तृप्ति ऊब में बदल जाती है। ऐसी कोई तृप्ति आपने जानी है, जो ऊब न बन जाए?

गरीब आदमी धन से कभी नहीं ऊबता। ऊब ही नहीं सकता, क्योंकि धन होना चाहिए ऊबने के लिए। अमीर आदमी अगर सच में अमीर हो जाए, तो धन से ऊब जाता है। क्योंकि जो मिल जाता है, उससे ऊब पैदा होती है।

बुद्ध का जन्म हुआ, तो ज्योतिषियों ने कहा कि यह लड़का या तो चक्रवर्ती सम्राट होगा या संन्यासी हो जाएगा। पिता बहुत चिंतित हुए। बुढ़ापे का बेटा था। बहुत बाद उम्र में पैदा हुआ था। एक ही बेटा था। और ज्योतिषियों ने यह क्या कहा कि संन्यासी हो जाएगा या चक्रवर्ती सम्राट होगा! तो पिता ने कहा कि मैं क्या इंतजाम करूं कि मेरा लड़का संन्यासी न हो पाए?

यह बहुत मजे की बात है। बुद्ध के पिता भी दूसरे संन्यासियों के पैर छूने जाते थे। खुद का बेटा संन्यासी न हो जाए, इसकी चिंता में पड़े हैं! आपके पड़ोस में भी कोई संन्यासी आए, तो आप पैर छूने जाएंगे। आपका बेटा संन्यासी होने लगे, आप लट्ठ लेकर दरवाजे पर खड़े हो जाएंगे!

यह बहुत मजे की बात है। यह संन्यास के प्रति आदर झूठा है। नहीं तो आपकी कामना यह हो कि आपका बेटा अगर कुछ भी हो तो पहले संन्यासी हो। लेकिन वह नहीं है। यह संन्यास के प्रति आदर झूठा है, बिलकुल झूठा है।

बुद्ध के पिता बहुत चिंतित हुए, और उन्होंने लोगों से पूछा कि मैं क्या करूं? कैसे रोकूं इसको संन्यासी होने से? तो एक ज्योतिषी ने सलाह दी कि इसके जीवन में कभी भी दुख का अनुभव न हो पाए। यह मरे हुए आदमी को न देखे। इसके सामने कोई का आदमी न लाया जाए। इसके सामने कोई ऐसी पीड़ा न घटे कि इसका मन जीवन से दुखी हो जाए, खिन्न हो जाए और यह विरक्त हो जाए। ऐसा न हो।

तो बुद्ध के पिता ने सारा इंतजाम किया। ऐसे महल बनाए, जहां किसी के के प्रवेश का निषेध था, जहां कोई बीमार अंदर नहीं जा सकता था। फूल भी वृक्ष पर कुम्हलाने के पहले अलग कर दिए जाएं, ताकि बुद्ध कुम्हलाया हुआ फूल न देख लें; कि कहीं कुम्हलाए हुए फूल को देखकर वे पूछने लगें कि अगर फूल कुम्हला जाता है, तो मैं भी तो कुम्हला नहीं जाऊंगा? वृक्ष के पत्ते सूखें, इसके पहले हटा दिए जाएं, क्योंकि बुद्ध कहीं पूछ न लें कि पत्ते सूख जाते हैं, कहीं जीवन भी तो नहीं सूख जाएगा? मृत्यु की उन्हें खबर न मिले और जीवन की पीड़ा का उन्हें कोई बोध न हो।

सारा इंतजाम मजबूत था। सुंदरतम स्त्रियां बुद्ध के आस—पास राज्य की इकट्ठी कर दी गईं। सुंदरतम युवतियों को बुद्ध की सेवा में रख दिया गया। सब सुंदर था। सब ताजा था। जब जवान था।

और इसी कारण बुद्ध को संन्यासी होना पड़ा। इसी कारण! यह ज्योतिषी की कृपा से, जिसने सलाह दी थी। क्योंकि बुद्ध इस बुरी तरह ऊब गए इस सबसे! इस बुरी तरह ऊब गए। सुंदरतम स्त्रियां उपलब्ध थीं, इसलिए स्त्रियों की कोई कामना मन में न रही। सब सुख उपलब्ध थे, इसलिए किसी सुख की कोई वासना मन में न रही। कोई तकलीफ न थी, इसलिए सब सुविधाएं उबाने वाली हो गईं, घबड़ाने वाली हो गईं, रिपिटीटिव हो गईं, रोज पुनरुक्त होने लगीं। बुद्ध भागे। उनके भागने का बुनियादी कारण उस ज्योतिषी की सलाह थी।

अगर सब मिल जाए, तो ऊब पैदा होती है। इसलिए आज अमेरिका में जितनी ऊब है, उतनी दुनिया की किसी कौम में नहीं है। अगर अमेरिका के मनसविद से हम पूछें, तो वह कहता है कि अमेरिका की बीमारी इस समय बोर्डम है, ऊब है। और उसको तोड्ने के लिए सब उपाय किए जा रहे हैं। लेकिन वह टूटती नहीं। हर आदमी ऊबा हुआ मालूम पड़ता है।

अगर आपकी किसी चीज से तृप्ति हो जाए, तो आप ऊब जाएंगे। इस जगत में ऐसी कोई भी चीज नहीं है, कोई भी चीज नहीं है, जिसको पाकर आप ऊब न जाएंगे। हां, तभी तक रस रह सकता है, जब तक वह मिले न। जब तक दूर रहे, जब तक पाने के लिए हाथ फैला हो और हाथ में आ न गई हो कोई चीज, तभी तक आप रसपूर्ण हो सकते हैं। मिलते ही ऊब पैदा हो जाती है। इस जगत में सभी चीजें ऐसी हैं कि रोज—रोज उनका स्वाद लिया जाए, तो घबड़ाहट हो जाती है।

सुना है मैंने, मुल्ला नसरुद्दीन को उसके देश के सम्राट ने उसकी बातें, उसके व्यंग्य का मजा लेने के लिए अपने पास रख लिया था। पहले ही दिन सम्राट भोजन के लिए बैठा, तो नसरुद्दीन को भी साथ बिठाया था। कोई सब्जी सम्राट को बहुत पसंद आई। तो नसरुद्दीन ने कहा, आएगी ही पसंद, यह सब्जी नहीं, अमृत है। और उसने उसके गुणों की ऐसी महिमा बखान की कि सम्राट ने अपने रसोइए को कहा कि रोज यह सब्जी तो बनाना ही।

दूसरे दिन भी वह सब्जी बनी, लेकिन वैसा रस न आया। तीसरे दिन भी बनी। चौथे दिन भी बनी। और नसरुद्दीन था कि वह रोज उसकी प्रशंसा करता चला गया कि यह अमृत है। इसका कोई मुकाबला नहीं। यह बेजोड़ है जगत में। इसके स्वाद का संबंध स्वर्ग से है, पृथ्वी से नहीं।

सातवें दिन सम्राट ने थाली उठाकर फेंक दी और कहा कि नसरुद्दीन, बंद करो यह बकवास! यह सब्जी मेरी जान ले लेगी। नसरुद्दीन ने कहा कि मालिक, यह जहर है। और इसका संबंध नर्क से है! उस सम्राट ने कहा, नसरुद्दीन, तुम आदमी कैसे हो? कल तक तुम इसे स्वर्ग बताते रहे, आज यह नर्क हो गई! नसरुद्दीन ने कहा कि हुजूर, मैं नौकर आपका हूं इस सब्जी का नहीं। तनख्वाह आपसे पाता हूं इस सब्जी से नहीं।

लेकिन सात दिन में, जो बहुत अमृत जैसी मालूम पड़ी थी, वह जहर जैसी हो ही जाएगी।

इस जगत में कुछ भी ऐसा नहीं है, जिससे हम ऊब न जाएं। और अगर इस जगत में आपको कोई ऐसी चीज मिल जाए, जिससे आप न ऊबे, तो आप समझना कि आप धर्म के रास्ते पर आ गए। अगर इस जगत में आपको किसी ऐसी चीज की झलक मिल जाए, जिससे ऊब पैदा न हो, तो आप समझना कि प्रभु बहुत निकट है, आप कहीं पास ही हैं।

मेरे जानने में, जब तक आपको ध्यान की कोई झलक न मिले, आपको वैसी चीज नहीं मिलेगी इस जगत में, जिसके अनुभव से ऊब पैदा नहीं होती।

बुद्ध को ज्ञान हुआ, उसके बाद चालीस साल तक वे शांत, मौन, ध्यान में जीए। कोई एक आदमी ने बुद्ध से पूछा है कि चालीस साल से आप ध्यान में ही रह रहे हैं, ऊब पैदा नहीं होती?

बर्ट्रेड रसेल जैसे बुद्धिमान आदमी ने सवाल उठाया है! बर्ट्रेड रसेल ने अपने संस्मरणों में कहीं लिखा है कि मुझे हिंदुओं के मोक्ष से बड़ा डर लगता है, क्योंकि वहां से वापसी नहीं हो सकती। लौटने का कोई उपाय नहीं है मोक्ष से। तो बर्ट्रेड रसेल कहता है कि अगर यह भी मान लिया जाए कि जैसा हिंदू कहते हैं कि वहां परम शांति है, और परम आनंद है, कोई दुख नहीं, कोई पीड़ा नहीं, कोई तनाव नहीं। लेकिन बर्ट्रेड रसेल ने कहा है कि यह कब तक बर्दाश्त होगा, कितने समय तक? कोई अशांति नहीं, सुख ही सुख, शांति ही शांति। लेकिन अनंत काल में तो यह भी घबड़ा देगा। फिर लौट भी नहीं सकते, यह भी एक तकलीफ है।

बर्ट्रेड रसेल ने कहा है, इससे तो संसार ही बेहतर। इसमें कुछ बदलाहट, कोई चेंज का उपाय है। इससे तो नरक भी बेहतर, वहां से कम से कम वापस तो आ सकते हैं! लेकिन यह मोक्ष? यह तो परम कारागृह हो जाएगा। और माना कि आनंद रहेगा, लेकिन आनंद भी कितनी देर तक रहेगा? आनंद ही आनंद, आनंद ही आनंद, आनंद ही आनंद! आखिर ऊब पैदा हो जाएगी और प्राण छटपटाने लगेंगे।

बर्ट्रेड रसेल को आनंद का कोई पता नहीं है, इसलिए उसे यह सवाल उठा है। उसे पता नहीं है आनंद का, इसलिए उसे सवाल उठा है। उसका सवाल बिलकुल संगत है, क्योंकि उसे कोई अनुभव ही नहीं है कि आनंद हम कहते ही उस स्थिति को हैं, जिससे कोई ऊब पैदा

नहीं होती। सुख हम कहते हैं उस स्थिति को, जिससे ऊब पैदा हो जाती है। दुख हम कहते हैं उस स्थिति को, कि जो आया नहीं कि हम घबड़ाते हैं। सुख कहते हैं उस स्थिति को, जो आ जाए, हम उसे बुलाते हैं, निमंत्रण देते हैं, और फिर बुलाकर फंस जाते हैं और घबड़ाते हैं। और आनंद हम कहते हैं उस स्थिति को, जहां न सुख होता है और न दुख, और ऊबने का कोई उपाय नहीं होता। सुख पुराना पड़ जाता है, इसलिए ऊब जाते हैं! आनंद कभी पुराना नहीं पड़ता; रोज ताजा ही बना रहता है। इसलिए उससे ऊबने का कोई उपाय नहीं है।

अगर आपको जीवन में कहीं से कोई रंध्र मिल जाए, जहां से ऊब पैदा न होती हो, तो आप समझना कि आप ठीक रास्ते पर हैं, उसी पर बढ़े चले जाएं। और जिस चीज से भी ऊब पैदा होती हो, आप समझ लेना कि वह संसार का हिस्सा है, चाहे वह कुछ भी हो।

अर्जुन सोचता है कि इन अमृतमय वचनों को और—और सुनूं तो शायद तृप्ति हो जाए। यह तृप्ति होने वाली नहीं है। क्योंकि ये वचन उस आनंद की तरफ इशारा हैं, जिसको सुनकर नहीं समझा जा सकता, पाकर और जीकर ही समझा जा सकता है।

लेकिन कृष्य ने कहा— अर्जुन के इस प्रकार पूछने पर कृष्ण ने कहा, हे कुरुश्रेष्ठ, अब मैं तेरे लिए अपनी दिव्य विभूतियों को प्रधानता से कहूंगा।

मेरी विभूतियां हैं अनंत। उनमें जो प्रधान हैं, उनको मैं तुझसे कहूंगा। क्योंकि मेरे विस्तार का अंत नहीं है। अगर तू सोचता हो कि मैं पूरे विस्तार की बात करूं, तो यह चर्चा चलती ही रहेगी, यह कभी समाप्त नहीं हो सकती।

अभी पश्चिम में भूगोलविद, ज्यॉग्राफी के विद्वानों में एक प्रश्न चलता था। और वह प्रश्न यह था कि अगर हम हिंदुस्तान का नक्शा बनाएं, तो उसे हिंदुस्तान का नक्शा कहना चाहिए कि नहीं? क्योंकि वह हिंदुस्तान जैसा तो होता ही नहीं! नक्शा हिंदुस्तान जैसा कहां होता है? अगर बंबई का नक्या। बनाएं, तो बंबई जैसा कहां होता है? इसको बंबई का नक्शा क्यों कहना चाहिए? अगर बंबई का नक्शा कहते हैं, तो उसे बंबई जैसा होना चाहिए।

लेकिन तब बंबई के बराबर बड़ा, इतना ही बड़ा नक्शा बनाना पड़े। और अगर इतना ही बड़ा नक्शा बनाना है, तो उसका प्रयोजन ही खो गया। नक्शा तो जेब में आना चाहिए, तभी उसका प्रयोजन है। इतने बड़े नक्शे को लेकर घूमेगा कौन? अगर इतने बड़े नक्शे को लेकर घूम सकते हैं, तो बंबई को ही लेकर घूम लेंगे। नक्शों की क्या जरूरत है?

हिंदुस्तान का नक्शा अगर हिंदुस्तान के बराबर, एकोक्ट वैसा ही बनाना पड़े, तब हम उसको नक्शा कहें...। भाषा के लिहाज से ता तभी कहना चाहिए, जब हिंदुस्तान के नक्शा को पूरा उतार दे, उसके पूरे चेहरे को उतार दे, रत्तीभर कहीं कोई फर्क न हो; पैरेलल, समानांतर, दूसरा हिंदुस्तान बनाना पड़े, तब नक्शा बने। लेकिन तब बेमानी हो गया। नक्शे का उपयोग यह है कि पूरा हिंदुस्तान बिना जाने, एक कागज के छोटे—से टुकड़े पर भी हम जान लें कि कहां क्या है। पर उसे नक्शा कहें या न कहें?

उसे नक्शा कहना भाषा की दृष्टि से ठीक नहीं है। लेकिन वहीं नक्शा है, क्योंकि उपयोग उसी का हो सकता है। और नक्शे का उपयोग इतना है कि वह वास्तविक की तरफ इशारा करे।

अर्जुन कृष्ण से पूछ रहा है कि तुम अपनी महिमा को, अपने ऐश्वर्य को, उसके समग्र विस्तार में कहो।

अगर कृष्ण उसका समग्र विस्तार करने जाएं, तो वह उतना ही लंबा होगा, जितना यह अस्तित्व है। और अगर इतने लंबे अस्तित्व के मौजूद रहते हुए अर्जुन उसको नहीं समझ पा रहा है, तो कृष्ण के विस्तार को कैसे समझ पाएगा! और अगर इतने ही विस्तार को समझना है, तो यह अस्तित्व काफी है, इसको समझ लेना चाहिए। अनंत होगी वह कथा तो, उसका फिर कोई अंत नहीं हो सकता। अगर कृष्ण शुरू से ही शुरू करें और अंत पर ही अंत करें, तो न कोई शुरू होगा और न कोई अंत होगा। और यह कथा इतनी लंबी होगी कि बेमानी हो जाएगी।

तो कृष्ण इसलिए कहते हैं, प्रधानता से कुछ बातें मैं तुझसे कहूंगा। चुनकर कुछ बातें मैं तुझसे कहूंगा, जो कि इशारा बन जाएं और तुझे थोड़ी झलक दे सकें। नक्शा तेरे काम आ जाए, इतना मैं तुझसे कहूंगा। जिसके आधार पर तू वास्तविक को पाने पर निकल जाए।

लेकिन कुछ लोग गलती कर सकते हैं, नक्शे को ही वास्तविक समझ सकते हैं। और हममें से बहुतों ने यह गलती की है। हम नक्शे को ही वास्तविक समझ लेते हैं। शब्द ही हमारे लिए यथार्थ हो जाते हैं। अगर अभी यहां कोई जोर से चिल्ला दे, आग! फायर! तो अनेक लोग भागने की हालत में हो जाएंगे, बिना इस बात की फिक्र किए कि आग है भी या नहीं। आग शब्द तो सिर्फ नक्शा है, लेकिन हमें उत्तेजित कर दे सकता है उतना ही, जितना कि आग हो, तो हम उत्तेजित हो जाएं। और धीरे— धीरे हमारी हालत ऐसी हो जाती है कि एक बार आग भी जल रही हो और कोई आग न चिल्लाए, तो हम शायद उत्तेजित न हों।

रामकृष्ण ने कहा है कि एक आदमी सुबह उनसे मिलने आया है और उन्होंने उससे पूछा कि मैंने सुना है कि तुम्हारे पड़ोसी का मकान रात गिर गया आधी में! उसने कहा कि मुझे पता नहीं, क्योंकि मैंने सुबह का अखबार नहीं देखा! पड़ोसी का मकान, रात आधी में गिर गया! उसने कहा कि हो सकता है, क्योंकि मैंने अभी सुबह का अखबार नहीं देखा! पड़ोसी के मकान का गिरना कम वास्तविक है, अखबार में छपी हुई सुर्खी ज्यादा वास्तविक है!

नक्शे बहुत महत्वपूर्ण हो जाते हैं। और उन चीजों के नक्शे तो बहुत महत्वपूर्ण हो जाते हैं, जो हमारी आंखों में दिखाई नहीं पड़ते। परमात्मा का हमें कोई दर्शन नहीं होता। सत्य का हमें कोई पता नहीं है। नक्शे ही नक्शे हैं हमारे पास। मोक्ष का हमें कोई पता नहीं है। अस्तित्व की गहराई का हमें कोई पता नहीं है। बस नक्शे हैं। नक्शे को सम्हाले हुए लोग बैठे हैं और विवाद करते रहते हैं कि किसका नक्शा सही है। और नक्शे के इतने दबाव में दब जाते हैं कि यात्रा असंभव ही हो जाती है, मुश्किल ही हो जाती है।

यह जो कृष्ण का कहना है कि पूरे विस्तार से अपनी समग्रता को कहने का कोई भी उपाय नहीं है। मैं कुछ बातें प्रधानता से कहूंगा। कुछ बातें चुन लूंगा। अनंत है मेरा ऐश्वर्य, उसमें से कुछ लक्षण चुन लूंगा।

वे लक्षण भी कृष्ण ने वैसे ही चुने हैं—जो हम आगे देखेंगे— जो अर्जुन की समझ में आ सकें। अर्जुन की जगह कोई दूसरा व्यक्ति होता, तो कृष्ण को दूसरे लक्षण चुनने पड़ते। अर्जुन की जगह अगर एक चित्रकार होता, तो कृष्ण को दूसरे लक्षण चुनने पड़ते। अर्जुन की जगह अगर एक कवि होता, तो कृष्ण को दूसरे लक्षण चुनने पड़ते। अर्जुन की जगह अगर एक संगीतज्ञ होता, तो कृष्ण को दूसरे लक्षण चुनने पड़ते।

इसलिए भी बड़ी कठिनाई धर्मशास्त्रों में पैदा हुई। क्योंकि मोहम्मद जिनसे बात कर रहे हैं, उनको हम भूल गए। कुरान हमारे पास है। कृष्ण जिससे बात कर रहे हैं, उसका हमें खयाल न हो, तो बडी हो जाती है। मोहम्मद को हम नहीं समझ पाते, कम से कम गैर—मुसलमान मोहम्मद को नहीं समझ पाते। उसकी सारी कठिनाई एक ही है कि उन्हें पता नहीं कि मोहम्मद किससे बात कर रहे हैं। और कई दफा हमें अड़चन होती है। अड़चन ऐसी होती है कि समझ में नहीं पड़ता कि यह कैसी बात मोहम्मद ने की है!

मोहम्मद ने कहा है कि कोई आदमी चार शादियां करे, तो न्याययुक्त है। हमको बहुत बेहूदी लगती है। हम दो शादी तक के लिए न्याययुक्त मानने को तैयार नहीं। चार शादी को न्याययुक्त मोहम्मद कहते हों, तो हमें बहुत अड़चन होती है। पर हम भूल जाते हैं कि मोहम्मद किन लोगों से कह रहे हैं। जो बीस—पच्चीस स्त्रियां रख सकते थे, उन लोगों से वे कह रहे हैं।

अगर अनुपात निकालने जाएं, तो पच्चीस स्त्रियां जिस मुल्क में लोग रख सकते थे, उनसे चार की बात कहनी काफी न्यूनतम है, बहुत न्यून है। चार भी उन्हें बहुत कम मालूम पड़ेगा, बहुत मुश्किल मालूम पड़ेगी। और हमें समझना और भी कठिन हो जाएगा कि मोहम्मद ने खुद ने नौ विवाह किए! तो हमें और अड़चन हो जाएगी। हम सोच ही नहीं सकते, इस मुल्क में हम सोच नहीं सकते कि महावीर नौ विवाह कर सकते हैं!

लेकिन मोहम्मद ने नौ विवाह किए। और बड़े मजे की बात यह है कि उनमें से नौ में से सिर्फ एक स्त्री से ही उनके स्त्री जैसे संबंध थे। और आठ स्त्रियां आपकी पत्नियां हों और उनसे आपका पत्नी जैसा संबंध न हो, यह कोई छोटी साधना नहीं है। सब स्त्रियां छोड्कर भाग जाना ज्यादा आसान है। और मोहम्मद ने कोई भी स्त्री तकलीफ में थी, तो उससे ही शादी कर ली।

मोहम्मद की पहली शादी भी बड़े हैरानी की है। मोहम्मद की उम्र छब्बीस वर्ष थी और पहली पत्नी की उम्र चालीस वर्ष थी। छब्बीस वर्ष का युवक चालीस वर्ष की स्त्री से शादी कर रहा है! इस शादी में कोई भी स्त्रैण आकर्षण काम नहीं कर रहा है। लेकिन हमें समझना कठिन पड़ता है। लेकिन जिन लोगों के बीच मोहम्मद हैं और जिस भांति के लोगों से वे बात कर रहे हैं, और जिनके जीवन को बदलने की कोशिश कर रहे हैं, उनको जब तक हम सामने न रख लें, तब तक अड़चन होगी।

अर्जुन से कृष्ण जो कुछ भी कहेंगे आगे, उसमें आप ध्यान रखना कि वह एक क्षत्रिय से चर्चा हो रही है, एक योद्धा से चर्चा हो रही है। और क्षत्रिय किस भाषा को समझ सकता है, उसी भाषा में चर्चा होगी। उन्हीं गुणों को चुनकर कृष्ण अर्जुन से कहेंगे।

क्योंकि मेरे विस्तार का अंत नहीं है, इसलिए मैं चुनाव कर लूंगा और थोड़ी—सी बातें तुझसे कहूंगा। हे अर्जुन, मैं सब भूतों के हृदय में स्थित सबका आत्मा हूं। तथा संपूर्ण भूतों का आदि, मध्य और अंत भी मैं ही हूं।

वे जो कहेंगे, उसकी भूमिका इन दो शब्दों में, इन दो पंक्तियों में आ गई। आगे वे विस्तार से कहेंगे। इन दोनों पंक्तियों को हम ठीक से समझ लें, तो आगे की बात आसान होगी।

मैं सब भूतों के हृदय में स्थित सबका आत्मा हूं।

जब भी हम किसी को देखते हैं, तो उसकी परिधि दिखाई पड़ती है, केंद्र नहीं। सर्कमफ़ेंस दिखाई पड़ती है, सेंटर नहीं। आप मुझे देख रहे है, मेरी परिधि दिखाई पड़ रही है। मेरे घर की दीवालें दिखाई पड़ रही हैं, मैं आपको दिखाई नहीं पड़ रहा हूं। मैं आपको देख रहा हूं तो आपका मकान दिखाई पड़ता है, आप दिखाई नहीं पड़ते। आपका शरीर दिखाई पड़ता है, आप दिखाई नहीं पड़ते। आपका केंद्र तो आपके भीतर कहीं छिपा है, गुप्त, गहन।

कृष्ण कहते हैं कि वह जो छिपा हुआ हृदय है, वह जो गहन केंद्र है सबके भीतर, वही मैं हूं।

इसके बहुत मतलब हुए। पहला मतलब तो यह कि जब तक हमें अपने भीतर के केंद्र का कोई स्मरण न आए, तब तक कृष्ण की सत्ता और अस्तित्व को हम न समझ पाएंगे। यह तो ठीक है कि मैं जब आपको देखता हूं तो आपका शरीर मुझे दिखाई पड़ता है, आपका केंद्र नहीं दिखाई पड़ता। मजा तो यह है कि आपको भी अपना केंद्र नहीं दिखाई पड़ता! आप भी अपने को आईने मैं जैसा देखते हैं, उसी भांति पहचानते हैं। अगर आपने जिंदगी में आईना न देखा होता, तो आप अपने को पहचान भी नहीं सकते थे कि आप कौन हैं। आप भी अपने को इस भांति पहचानते हैं, जैसे किसी दूसरे को बाहर से देखकर पहचानते हों।

बहुत तरह के आईनों का हम उपयोग करते हैं। एक तो आईना है, जो हमारे स्नानगृह में टंगा होता है। उसमें हम अपनी शक्ल देख लेते हैं। लेकिन वह कोई बहुत खास आईना नहीं है। और सूक्ष्म आईने हैं। लोगों की आंखों में हम अपने को देखते हैं।

अगर कोई आदमी आपसे कह देता है, आप बहुत अच्छे हैं, बड़े सुंदर हैं, आप तत्क्षण सुंदर और अच्छे हो जाते हैं। और कोई आदमी आपसे कह देता है कि शक्ल तो देखो कभी अपनी आईने में! तुम्हें देखकर संसार से विराग उत्पन्न होता है! तत्काल आपके भीतर कोई चीज गिर जाती है और टूट जाती है।

दूसरों की आंखों में देख—देख कर आप अपनी प्रतिमा निर्मित करते हैं। आपको अपने केंद्र का कुछ भी पता नहीं है। दूसरे आपके संबंध में क्या कहते हैं, उसकी ही कतरन इकट्ठी करके आप अपनी प्रतिमा बना लेते हैं। इसलिए हम दूसरों पर निर्भर होते हैं।

मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते है कि अगर हम ऐसा करेंगे, तो लोग क्या कहेंगे!

लोग क्या कहेंगे! लोगों का कहना आपकी आत्मा है। लोग जो कहते हैं, वही आप हैं। अगर लोग अच्छा कहते हैं, तो आप अच्छे हैं। अगर लोग बुरा कहते हैं, तो आप बुरे हैं। आप भी कुछ हैं? या सिर्फ लोगों के कहने का जोड़ ही आप हैं!

हर आदमी डरा हुआ है लोगों से। हम पड़ोसियों से जितने डरते हैं, उसका कोई हिसाब नहीं। घबडाए रहते हैं। उनको देखकर चलते हैं। उनको देखकर उठते हैं। उनको देखकर कपड़े पहनते हैं। उनको देखकर बोलते हैं। हर आदमी चारों तरफ से अपने पड़ोसियों के हाथों से घिरा है। हर आदमी की गर्दन पर पड़ोसियों की फांसी है। और ऐसा नहीं है कि आपके पड़ोसी की फांसी ही आपके ऊपर है। आप भी अपने पड़ोसी की गर्दन पर ऐसी फांसी रखे हुए बैठे हैं। सब आदमी एक—दूसरे से उलझे हैं।. रहती है कि कोई जरा—सा कोई भाव बदल दे, तो हमारी सारी की सारी जीवन की मेहनत, सारी कमाई व्यर्थ हो जाए! क्यों?

ये भी आईने हैं। इनमें देखकर हम समझते हैं कि अपने को समझा। हमें अपने केंद्र का भी कोई पता नहीं है। हमने अपने को भी बाहर से ही देखा है। कभी आपने अपने शरीर का खयाल किया है भीतर से? तो आप घबड़ा जाएंगे।

महावीर अपने साधकों को एक ध्यान करवाते थे। वह था, शरीर को भीतर से देखना। एकदम से तो खयाल में नहीं आएगा कि शरीर को भीतर से देखने का क्या मतलब?

आप अपने घर के बाहर खड़े हो जाएं और बाहर से देखें। तो आपको दीवाल की बाहरी पर्त दिखाई पड़ती है, न तो घर का फर्नीचर दिखाई पड़ता है, न घर के भीतर की दीवालों पर लटकी हुई तस्वीरें दिखाई पड़ती हैं। घर के भीतर का कुछ दिखाई नहीं पड़ता। घर के बाहर का हिस्सा दिखाई पड़ता है। फिर आप भीतर जाएं, तो बाहर का हिस्सा दिखाई नहीं पड़ता। अब आपको भीतरी दीवाल दिखाई पड्नी शुरू होती है। अब आपको भीतर का फर्नीचर दिखाई पड़ना शुरू होता है।

महावीर कहते थे, अपने को भीतर से देखो, तो हड्डियां, मांस— मज्जा, यह सब दिखाई पड़ेगा। बाहर से देखोगे, तो सिर्फ चमड़ी दिखाई पड़ेगी। चमड़ी केवल बाहर की दीवाल है। भीतर! भीतर काफी फर्नीचर है। लेकिन भीतर से हमने अपने को कभी नहीं देखा। महावीर कहते थे, आंख बंद करो और भीतर से अपने को एहसास करो कि तुम बीच में खड़े हो। अब क्या है वहां?

तो अगर महावीर का ध्यान करने वाला एकदम विरक्त हो जाए और शरीर में उसका आकर्षण खो जाए और आसक्ति न रहे, तो कुछ आश्चर्य नहीं है। उसके लिए चेष्टा भी नहीं करनी पड़ती।

अभी तो महावीर को मानने वाला जो साधु है, वह भी चेष्टा कर रहा है। लड़ रहा है अपने शरीर से कि वासना छूट जाए। लेकिन उसे भी पता नहीं कि वासना बाहर से लड़ने से नहीं छूटेगी। भीतर से शरीर दिख जाए, तो यह वासना छूट जाती है। क्योंकि भीतर सिवाय फिर गंदगी के और कचरे के कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता। और तब हैरानी होती है कि इस कचरे को, इस गंदगी को, इस सबको मैंने समझा है अपना होना!

और जो आदमी अपने शरीर को भीतर से देखने में समर्थ होता है, वही आदमी अपने केंद्र को भी देख पाएगा। क्योंकि केंद्र का मतलब है, अब और भीतर चलो। अब शरीर को बिलकुल छोड़ दो, और उसको देखो, जो सब देखता है। अब उसको जानो, जो सब जानता है। अब उस बिंदु पर खड़े हो जाओ, जो साक्षी है, जो देख रहा है शरीर की हड्डी—मांस—मज्जा को। अब इसको ही पहचानों, यही केंद्र है।

कृष्ण कहते हैं, मैं सबके हृदयों में स्थित आत्मा हूं।

तो यह पहला कीमती वक्तव्य है, जिसमें परमात्मा के अस्तित्व की पूरी बात आ जाती है। लेकिन यह हमारे खयाल में न आए। और अगर हमको खयाल में भी आए, तो हम शायद सोचते होंगे कि जो हृदय हमारा धड़क— धड़क कर रहा है, उसी हृदय की बात है।

उस हृदय की कोई भी बात नहीं है। इस हृदय को वैज्ञानिक हृदय मानने को तैयार भी नहीं हैं और वे ठीक हैं। वे कहते हैं, यह तो फेफड़ा है। और वे ठीक कहते हैं। यह तो सिर्फ पंपिंग स्टेशन है, जहां से आपके खून की सफाई होती रहती है चौबीस घंटे। सांस जाती है, खून आता है, सफाई होती रहती है। यह तो सिर्फ पंप करने का इंतजाम है। यह हृदय नहीं है। यह तो सिर्फ फेफड़ा है, फुस्फुस है। यांत्रिक है। इसलिए प्लास्टिक का फेफड़ा लग जाता है और आपमें कोई फर्क नहीं पड़ेगा।

ध्यान रखना, आप यह मत सोचना कि आपका हृदय निकालकर और प्लास्टिक का लगा दिया, तो आप प्रेम न कर पाएंगे। और मजे से कर पाएंगे। कोई फर्क न पड़ेगा। क्योंकि यह आपका हृदय नहीं है। यह हृदय नहीं है। हृदय तो उस केंद्र का नाम है—इस फेफड़े से तो हमारा शरीर चलता है—हृदय उस केंद्र का नाम है, जिससे हमारा अस्तित्व धड़कता है। आत्मा का नाम हृदय है।

इसलिए इस तरह की योग में प्रक्रियाएं हैं कि योगी चाहे तो थोड़ी होने से मरने का कोई गहरा संबंध नहीं है। हम मर जाते हैं, क्योंकि हमे पता नहीं कि अब इस हृदय को फिर से कैसे धड़काएं। लेकिन चेष्टा से इस हृदय को रोका जा सकता है और पुन: धड़काया जा सकता है।

ब्रह्मयोगी ने उन्नीस सौ तीस में आक्सफोर्ड में, कलकत्ता में, रंगून में, कई विश्वविद्यालयों में अपने हृदय के धड़कन के बंद करने के प्रयोग किए। वे दस मिनट तक अपने हृदय को बंद कर लेते थे। कलकत्ता विश्वविद्यालय में दस डाक्टरों ने जांच की और लिखा। क्योंकि ब्रह्मयोगी ने कहा था कि जब मेरा हृदय बंद हो जाए, तब आप लिखना कि मैं जिंदा हूं या मर गया, और दस्तखत कर देना। दस डाक्टरों ने उनके डेथ सर्टिफिकेट पर दस्तखत किए कि यह आदमी मर गया; मरने के सब लक्षण पूरे हो गए।

और दस मिनट बाद ब्रह्मयोगी वापस लौट आए। हृदय फिर धड़कने लगा। सांस फिर चलने लगी। नाडी फिर दौड़ने लगी। और ब्रह्मयोगी ने वह जो सर्टिफिकेट था उसे जब मोड़कर खीसे में रखा, तो उन डाक्टरों ने कहा कि कृपा करके यह सर्टिफिकेट वापस दे दें, क्योंकि इसमें हम भी फंस सकते हैं! हमने लिखकर दिया है कि आप मर चुके। तो ब्रह्मयोगी ने कहा कि इसका अर्थ यह हुआ कि तुम जिसे मृत्यु कहते हो, वह मृत्यु नहीं है।

निश्चित ही, जिसे डाक्टर मृत्यु कहते हैं, वह मृत्यु नहीं है। जहां तक हम संबंधित हैं, वह मृत्यु है। क्योंकि हम अपने को बाहर से जानते हैं, फेफड़े से जानते हैं, हृदय से नहीं। शरीर से जानते हैं, आत्मा से नहीं। परिधि से जानते हैं, केंद्र से नहीं। परिधि तो मर जाती है। और डाक्टर उसी को मृत्यु कहते हैं। और हमें केंद्र के अस्तित्व का कोई पता नहीं है, इसलिए हम भी उसे मृत्यु मानते हैं।

यह सिर्फ मान्यता है। अगर हमें अपने केंद्र का पता चल जाए, तो फिर कोई मृत्यु नहीं है। कोई मृत्यु नहीं है। मृत्यु से बड़ा झूठ इस जगत में दूसरा नहीं है। लेकिन मृत्यु से बड़ा सत्य कोई भी नहीं मालूम पड़ता। और मृत्यु से बड़ा सुनिश्चित सत्य कोई भी मालूम नहीं पड़ता। मृत्यु बड़ा गहन सत्य है। जहां हम जीते हैं, बाहर, वहां मृत्यु सब कुछ है। अगर हम भीतर जा सकें, तो जीवन सब कुछ है।

बाहर है मृत्यु, भीतर है जीवन। उस जीवन की सूचना ही कृष्ण देते हैं कि सब जीवन में, जहां—जहां जीवन है, वहां मैं हूं। यह एक बात। दूसरी बात इस सूत्र में छिपी है, वह भी खयाल में ले लें। कृष्ण चेष्टा करके हृदय की धड़कन बंद कर लेता है। हृदय की धड़कन यह कहते हैं कि सबके हृदय में, सबकी आत्माओं में मैं हूं।

बंद हो जाती है, लेकिन योगी मरता नहीं है। हृदय की धड़कन बंद इसका अर्थ यह हुआ कि हम शरीर से ही अलग—अलग हैं, भीतर से हम अलग—अलग नहीं हैं। हमारा जो भेद है, हमारी जो भिन्नता है, वह शरीर की है, भीतर का कोई भेद नहीं है। नहीं तो फिर कृष्ण

सबके भीतर नहीं हो सकते। फिर परमात्मा सबके भीतर नहीं हो सकता। इसका यह मतलब हुआ कि हमारी परिधिया अलग—अलग हैं, हमारा केंद्र एक है। हमारी सर्कमफ्रेंस अलग— अलग है, पर हमारा सेंटर एक है।

यह जरा गणित के लिए मुश्किल हो जाएगी बात। यह कठिन हो जाएगी बात। क्योंकि हमको लगता है कि जब हमारी परिधि अलग है, तो हमारा केंद्र भी अलग होगा। इसलिए हम सब सोचते हैं, हमारी आत्माएं भी अलग— अलग हैं। जो सोचते हैं कि उनकी आत्माएं अलग—अलग हैं, उन्हें आत्मा का अभी कोई भी पता नहीं। अभी वे शरीर से ही अपने अलग—अलग होने को मानकर कल्पना करते हैं, अनुमान करते हैं कि आत्मा भी अलग—अलग होगी।

जिस दिन कोई अपने केंद्र को जानता है, उस दिन उसे पता चलता है कि शरीर ही अलग— अलग हैं, आत्मा एक ही विस्तार है। करीब—करीब ऐसा कि यहां इतने बिजली के बल्ब जल रहे हैं। ये सब बल्ब अलग— अलग जल रहे हैं। और कोई नहीं कह सकता कि ये सब बल्ब एक हैं। निश्चित अलग—अलग हैं। और अगर एक बल्ब को मैं तोड़ दूं तो सब बल्ब नहीं टूट जाएंगे। इसलिए सिद्ध होता है कि बल्ब अलग था। बाकी बल्ब जिंदा हैं, और शेष हैं। मैं मर जाऊं, तो आप नहीं मरते। साफ है कि मैं अलग हूं आप अलग हैं।

लेकिन इनके भीतर जो बिजली दौड़ रही है, वह एक है। ये बल्ब अलग—अलग हैं और इनके भीतर जो ऊर्जा दौड़ रही है, वह एक है। और अगर ऊर्जा बंद कर दी जाए, तो सब बल्ब एक साथ बंद हो जाएंगे। बल्ब अगर तोड़े, तो एक बल्ब टूटेगा, तो दूसरा नहीं टूटेगा; जलता रहेगा, जलता रहेगा। लेकिन अगर ऊर्जा बंद हो जाए, तो सब बल्ब एक साथ बंद हो जाएंगे।

हम सब बल्ब की भांति हैं। हमारा शरीर एक बल्ब है। भीतर जो ऊर्जा प्रवाहित है, वह एक है। उस ऊर्जा को कृष्य कहते हैं, वह ऊर्जा, वह एनर्जी, वह सर्वव्यापी आत्मा मैं हूं। सबकी आत्माओं में, सबके हृदय में, मैं हूं।

इसलिए दूसरी बात इस सूत्र में खयाल में ले लेने जैसी है, कि बाहर है भेद, भीतर अभेद है। बाहर हैं भिन्नताएं, भीतर अभिन्नता है। बाहर है द्वैत, अनेकत्व, भीतर एक है, अद्वैत।

जो बाहर से ही जीएगा, वह कभी भी अनुभव नहीं कर सकता कि जब वह दूसरे को चोट पहुंचा रहा है, तो अपने को ही चोट पहुंचा रहा है। जो बाहर से जीएगा, वह कभी नहीं सोच सकता कि जब वह दूसरे का अहित कर रहा है, तो अपना ही अहित कर रहा है। लेकिन जो भीतर से जीएगा, उसे तत्क्षण दिखाई पड़ना शुरू हो जाएगा कि चाहे मैं अहित करूं किसी का, अहित मेरा ही होता है। और चाहे मैं हित करूं किसी का, हित भी मेरा ही होता है। क्योंकि मेरे अतिरिक्त और कोई भी नहीं है। मैं ही हूं।

अगर महावीर को, या बुद्ध को इतनी करुणा और इतने प्रेम का आविर्भाव हुआ, तो उस करुणा और प्रेम के आविर्भाव का केवल एक ही कारण है कि दिखाई पड़ना शुरू हुआ कि मेरे अतिरिक्त और कोई भी नहीं है।

तो कृष्ण कहते हैं, मैं ही हूं सब भूतों के हृदय में सबका आत्मा। और संपूर्ण भूतों का आदि, मध्य और अंत भी मैं ही हूं। यह दूसरी बात! उनका प्रारंभ भी मैं हूं उनका मध्य भी मैं हूं और उनका अंत भी मैं हूं।

इसे हम थोड़ा—सा, दो—तीन आयामों से समझ लें। यह भारत की संभवत: एक विशिष्ट दृष्टि है, जिसे दूसरी जगह पाना थोड़ा मुश्किल है, थोड़ा कठिन है।

जब हम यह कहते हैं कि आदि, मध्य और अंत, तीनों ही परमात्मा है, तो हम समस्त चीजों को परमात्मा के भीतर इकट्ठा कर लेते हैं। हम कुछ भी छोड़ते नहीं। बुराई को भी हम बाहर नहीं छोड़ते, भलाई को भी बाहर नहीं छोड़ते। अंधेरे को भी भीतर ले लेते हैं, प्रकाश को भी भीतर ले लेते हैं। क्योंकि हम समस्त अस्तित्व को उसके सब आयामों में, प्रारंभ में, मध्य में, अंत में, तीनों में परमात्मा को स्वीकार करते हैं।

इसमें थोड़े चिंतक, जो इतनी हिम्मत नहीं जुटा पाएं, उनको कठिनाई लगती है। वे कहेंगे कि आदमी जब पाप में है, तब परमात्मा नहीं है। वे कहेंगे, आदमी जब अज्ञान में है, तब परमात्मा नहीं है। आदमी जब कर्मों में घिरा हुआ है, पाप से, अंधकार से डूबा हुआ है, तब परमात्मा नहीं है। वे यह भी मान ले सकते हैं कि यह बीज रूप से परमात्मा है। जब शुद्ध हो जाएगा, तो हम इसे परमात्मा कहेंगे। अभी अशुद्ध अवस्था में है। ये इतना भी मान लें, तो भी वे यह कहेंगे कि जो अशुद्धि है, वह परमात्मा नहीं है। जो पाप है, वह परमात्मा नहीं है। जो बुरा है, वह परमात्मा नहीं है। वे अस्तित्व को दो हिस्सों में काटेंगे। एक भला अस्तित्व होगा, जिसे वे परमात्मा से जोड़ेंगे; और एक बुरा अस्तित्व होगा, जिसे परमात्मा से अलग कर देंगे।

इसलिए कुछ धर्मों को शैतान भी निर्मित करना पड़ा है। शैतान का अर्थ है, जो—जो बुरा—बुरा है इस जगत में, वह शैतान के जिम्मे छोड़ दिया। जो भला— भला है, वह परमात्मा के जिम्मे ले लिया।

ऐसा विचार कमजोर है। और ऐसा परमात्मा भी, ऐसे विचार का परमात्मा भी अधूरा होगा। क्योंकि बुराई के होने के लिए भी परमात्मा का सहारा चाहिए। बुराई भी हो सकती है, तो परमात्मा के सहारे ही हो सकती है। अस्तित्व मात्र उसी का है। और अगर हम एक बार ऐसा स्वीकार कर लें कि बुराई का अपना अस्तित्व है, तो फिर बुराई को कभी समाप्त नहीं किया जा सकता। क्योंकि उसका अपना निजी अस्तित्व है। उसे परमात्मा नष्ट नहीं कर सकता।

और अगर हम ऐसा समझ लें कि परमात्मा में और शैतान में कोई संघर्ष चल रहा है, तो फिर कोई तय नहीं कर सकता कि अंतिम विजय किसकी होगी। और जहां तक रोज का सवाल है, तो यही दिखाई पड़ता है कि निन्यानबे मौकों पर शैतान जीतता है। एकाध मौके पर परमात्मा भूल—चूक से जीत जाता हो, बात अलग है। लेकिन निन्यानबे मौके पर शैतान जीतता हुआ मालूम पड़ता है! अगर हम इतिहास का अनुभव लें, तो हमें यही मानना पड़ेगा कि अंत में दिखता है, शैतान ही जीतेगा, परमात्मा जीत नहीं सकता। अगर हम शैतान को एक अलग अस्तित्व मान लें, तो यह संघर्ष शाश्वत हो जाएगा।

लेकिन हिंदू चिंतन शैतान जैसी किसी अलग व्यवस्था को स्वीकार नहीं करता। लेकिन फिर जटिल हो जाता है और सूक्ष्म हो जाता है, क्योंकि बात फिर आसान नहीं रह जाती। यह बिलकुल आसान है, काले को काला और गोरे को गोरा कर देना। अंधेरे को अलग, प्रकाश को अलग कर देना, बहुत आसान है; सीधा—साफ है। लेकिन हिंदू चिंतन कहता है, सभी कुछ परमात्मा है। यह जरा मुश्किल है।

लेकिन यही वैज्ञानिक है। अगर हम वैज्ञानिक से पूछें, तो वह कहेगा, अंधेरा प्रकाश का ही एक रूप है। अंधेरे का मतलब है, कम से कम प्रकाश। प्रकाश भी अंधेरे का एक रूप है। प्रकाश का अर्थ है, कम से कम अंधेरा। शायद प्रकाश और अंधेरे में समझने में कठिनाई होती है। विज्ञान कहता है, गर्मी और ठंडक एक ही चीज के दो नाम हैं, दो चीजें नहीं हैं।

कभी ऐसा करें कि एक हाथ को बर्फ पर रखकर ठंडा कर लें और एक हाथ को सिगड़ी पर रखकर जरा तपा लें और फिर दोनों हाथों को एक ही बाल्टी के भरे हुए पानी में डाल दें। तब आप बड़ी मुश्किल में पड़ जाएंगे; उसी मुश्किल में, जिसमें ऋषि पड़ गए, जब उनको अनुभव हुआ अस्तित्व का। तब आपसे अगर मैं पूछूं कि बाल्टी का पानी ठंडा है या गरम? तो आप मुश्किल में पड़ जाएंगे।

एक हाथ कहेगा ठंडा और एक हाथ कहेगा गरम। क्योंकि सब अनुभव सापेक्ष हैं, रिलेटिव हैं। अगर आपने एक हाथ ठंडा कर लिया है, तो पानी उस हाथ को गरम मालूम पड़ेगा। जो हाथ आपने गरम कर लिया है, उस हाथ को वही पानी ठंडा मालूम पड़ेगा। दोनों हाथ आपके ही हैं। आप क्या वक्तव्य देंगे कि पानी ठंडा है या गरम? तो आप कहेंगे, एक हाथ कहता है ठंडा और एक हाथ कहता है गरम। और अगर एक ही चीज के संबंध में दो हाथ दो खबर देते हैं, तो इसका मतलब हुआ कि ठंडक और गर्मी दो चीजें नहीं हैं, एक ही चीज है।

बुराई और भलाई भी दो चीजें नहीं हैं, एक ही चीज है। जिसको हम बुरा आदमी कहते हैं, उसका मतलब है, कम से कम भला। और जिसको हम भले से भला आदमी कहते हैं, वह भी कम से कम बुरा है। इसलिए आप बुरे से बुरे आदमी में भलाई खोज सकते हैं, और भले से भले आदमी में बुराई खोज सकते हैं।

ऐसा भला आदमी आप नहीं खोज सकते, जिसमें बुराई न हो। और ऐसा बुरा आदमी नहीं खोज सकते, जिसमें भलाई न हो। इसका अर्थ क्या हुआ? इसका अर्थ हुआ कि बुराई और भलाई एक ही चीज के दो विस्तार हैं, एक ही चीज का तारतम्य है। दोनों एक का ही, और उस एक का नाम हमने परमात्मा दिया है।

इसलिए कृष्ण कहते हैं, प्रारंभ भी मैं ही हूं मध्य भी मैं ही हूं अंत भी मैं ही हूं। संसार भी मैं ही हूं मोक्ष भी मैं ही हूं शरीर भी मैं ही हूं आत्मा भी मैं ही हूं। इस जगत में जो भी है, वह मैं हूं।

इसे हम ऐसा समझें, तो आसान हो जाएगा।

हिंदू चिंतन के लिए अस्तित्व और परमात्मा पर्यायवाची हैं, सिनानिम हैं। इसलिए जब हम कहते हैं, ईश्वर है, तो गहन विचार की दृष्टि से पुनरुक्ति हो जाती है। जब हम कहते हैं, गॉड इज, ईश्वर है, तो पुनरुक्ति हो जाती है। क्योंकि है का मतलब हिंदू विचार में ईश्वर है। जो भी है, वह ईश्वर है। होना ही ईश्वर है। अगर इसको हम ऐसा तोड़े, जब हम कहते हैं, ईश्वर है, तो इसका अर्थ हुआ, है है। या इसका अर्थ हुआ, ईश्वर ईश्वर। यह पुनरुक्ति है।

अस्तित्व ही परमात्मा है। साधक के लिए इसका बहुत गहरा मूल्य है। इसका अर्थ यह हुआ कि जब आपको बुराई भी दिखाई पड़े, तब भी आप परमात्मा को विस्मरण मत करना। और गहरी से गहरी बुराई में भी अगर आप परमात्मा को देखते रहें, तो आपके लिए बुराई रूपांतरित हो जाएगी। अगर आप गहन से गहन अंधेरे में भी प्रकाश को स्मरण रख सकें, तो अंधेरा तिरोहित हो जाएगा, विपरीत विलीन हो जाएंगे।

लेकिन हमारी तकलीफ है। हम बुरे से, जिसको हम बुरा समझते हैं, उससे घिरे हुए लोग हैं। फिर जब हम बुरे से परेशान हो जाते हैं, तो छोड़कर उसके विपरीत हम भले होने की कोशिश में हैं। हमारी भलाई हमारी बुराई के विपरीत यात्रा होती है। इसलिए हमें लगता है कि बुरे और भले उलटे हैं, एक—दूसरे के विपरीत हैं। लेकिन जो दोनों के पार खड़े होकर देखता है, उसे पता चलता है, वे एक ही चीज के दो छोर हैं।

हमारी जिंदगी तो विपरीत की तरफ चलती रहती है। आज हम बाएं जाते हैं; घबड़ा जाते हैं बाएं जाने से, तो दाएं जाने लगते हैं। शायद हम सोचते हैं कि दाएं जाना बाएं के विपरीत है। लेकिन दायां और बायां एक ही आकाश के आयाम हैं। उत्तर जाते हैं, घबड़ा जाते हैं, दक्षिण जाने लगते हैं, तो सोचते हैं, दक्षिण उत्तर के विपरीत है। लेकिन उत्तर और दक्षिण दोनों एक ही आकाश के छोर हैं।

मुल्ला नसरुद्दीन मर रहा है, आखिरी क्षण है। उसके मित्र उससे पूछते हैं कि नसरुद्दीन तुम किस भांति दफनाए जाना पसंद करोगे? हमें कुछ कह दो, तो हम उस अनुसार तैयारी करें! तो नसरुद्दीन ने कहा कि मुझे तुम शीर्षासन करता हुआ दफना देना; सिर नीचे, पैर ऊपर, अपसाइड डाउन! मित्र बड़े हैरान हुए। उन्होंने कहा, क्या कह रहे हो? ऐसा हमने कभी किसी का दफनाया जाना सुना नहीं! नसरुद्दीन ने कहा कि पैर नीचे सिर ऊपर इस जमीन पर काफी रहकर देख लिया, कुछ पाया नहीं, अब उलटा प्रयोग करके देखें। सो फॉर दि नेक्स्ट वर्ल्ड, आई वांट टु बी अपसाइड डाउन; वह जो दूसरा लोक है, वहां हम सिर के बल होना चाहते हैं। एक तो यह अनुभव कर लिया, यह बेकार पाया। अब इससे उलटा कर लें।

लेकिन क्या आपने खयाल किया है कि चाहे आप सिर के बल खड़े हों और चाहे पैर के बल, आप ही खड़े होते हैं, जो एक है। चाहे सिर के बल खड़े हो जाएं, चाहे पैर के बल खड़े हो जाएं; शरीर उलटा हो जाता है, आप जरा भी उलटे नहीं होते; सेंटर अपनी जगह वैसा का वैसा ही रहता है।

बुरे में भी परमात्मा भला उलटा खड़ा हो, इससे ज्यादा कोई फर्क नहीं है। भले में सीधा खड़ा हो, बुरे में उलटा खड़ा हो। और उलटा और सीधा भी परिभाषा की बात है। किसको हम उलटा कहें?

किसको हम सीधा कहें? यह भी हम पर निर्भर करता है कि हम कैसे खड़े हैं! अगर आप शीर्षासन लगाकर खड़े हों, तो सारी दुनिया आपको उलटी मालूम पड़े। यह आप पर निर्भर करता है। वह भी सापेक्ष है।

लेकिन हिंदू चितना इस बात की गहरी से गहरी पकड़ रखती है कि अस्तित्व एक है। और हम किसी चीज को नहीं कहते कि वह परमात्मा नहीं है। किसी भी बात को हम परमात्मा से नहीं काटते कि वह परमात्मा नहीं है। हम परमात्मा के अतिरिक्त और किसी को भी स्वीकार नहीं करते। हमारा परमात्मा सभी को आच्छादित कर लेता है, बाहर और भीतर से घेर लेता है।

उस एक के लिए कृष्ण कहते हैं, हे अर्जुन, मैं सब भूतों के हृदय में स्थित सबका आत्मा हूं तथा संपूर्ण भूतों का आदि, मध्य और अंत भी मैं ही हूं।

गीता दर्शन—भाग—5
सगुण प्रतीक—सृजनात्मकता, प्रकाश, संगीत और बोध के—(प्रवचन—आठवां)
अध्याय—10

सूत्र:

आदित्यानामहं विश्वर्ज्योतिषां रविरंशुमान्।
मरीचिर्मरुतामस्मि नक्षत्राणामहं शशी।। 21 ।।
वेदानां सामवेदोउस्थि देवानामस्मि वासवः ।
इन्द्रियाणां मनश्चास्मि भूतानामस्मि चेतना।। 22 ।।
और हे अर्जुन मैं अदिति के बारह मुन्नों में विश्व और ज्योतियों में किरणों वाला सूर्य हूं तथा मैं वायु देवताओं में मरीचि नामक वायु देवता और नक्षत्रों में नक्षत्रों का अधिपति चंद्रमा हूं।

और मैं वेदों में सामवेद हूं, देवों में इंद्र हूं, और ड़ंद्रियों में मन हूं, भूत—प्राणियों में चेतनता अर्थात ज्ञान— शक्ति हूं।

नहीं कहा जा सकता, उसे भी प्रतीक से कहने के उपाय किए जाते हैं। और जिसे बताया नहीं जा सकता, जो अशात है, उसकी ओर भी, जो हम जानते हैं उसके माध्यम से इंगित किए जा सकते हैं। इस सूत्र को समझने के पहले इस बात को ठीक से समझ लेना जरूरी है।

ईश्वर अज्ञात है। नहीं, उसका हमें कोई भी पता नहीं है। लेकिन जो हमें पता है, क्या उसके आधार पर हम उस अज्ञात के संबंध में कुछ इशारे भी कर पा सकते हैं या नहीं? एक छोटे बच्चे को भाषा पढानी पड़ती है, तो भाषा तो उसे अज्ञात होती है। लेकिन कहीं से शुरू करना पड़ेगा। जो उसे ज्ञात होता है, उसके आधार पर ही शुरू करना पड़ेगा।

छोटे बच्चे के लिए हमें प्रतीक चुनने पड़ते हैं। अगर छोटे बच्चों की किताब आप देखते हैं, तो आपको साफ मालूम होगा, शब्द होते हैं कम, चित्र होते हैं ज्यादा। चित्र ही प्रमुख होते हैं, शब्द गौण होते हैं। चित्रों के आधार पर ही शब्दों को समझाने की कोशिश होती है। क्योंकि बच्चे का मन चित्र को तो समझ पाता है, शब्द को नहीं समझ पाता है। शब्द अभी अतात है। लेकिन चित्र? चित्र बच्चा देख सकता है।

मनुष्य का जो मन है, वह पहले चित्रों की भाषा में सोचता है, फिर शब्दों की भाषा विकसित होती है। और अभी भी रात जब आप सपने देखते हैं, तो चित्रों की भाषा में देखते हैं, क्योंकि सपने में आप अपनी शिक्षा—दीक्षा सब भूल जाते हैं। जो भाषा आपको सिखाई गई है प्रतीकों की, संकेतों की, गणित की, व्याकरण की, वह सब आप भूल जाते हैं। सपने में आप फिर प्रिमिटिव हो जाते है, सपने में फिर उन पुरानी अवस्थाओं में पहुंच जाते हैं, जहां हम चित्रों से सोच सकते हैं।

दुनिया की जो प्राचीनतम भाषाएं हैं, वे चित्रों वाली हैं। जैसे चीनी है, वह चित्र की भाषा है। अभी भी उसके पास वर्णाक्षर नहीं हैं। बहुत कठिन है, क्योंकि हर चीज का चित्र, बहुत लंबी प्रक्रिया है। अगर चीनी भाषा को किसी को पढ़ना हो, तो कम से कम दस वर्ष तो लग ही जाएंगे और तब भी प्राथमिक ज्ञान ही होगा। कम से कम एक लाख शब्द—चित्र तो याद होने ही चाहिए साधारण ज्ञान के लिए भी। हर चीज का चित्र है। जो प्राचीनतम भाषा होगी, वह चित्रों में होगी

बच्चों का मन प्राचीनतम मन है। वे चित्रों से समझते हैं। तो हमें कहना पड़ता है, ग गणेश का। ग से गणेश का कोई संबंध नहीं है, क्योंकि ग गधे का भी उतना ही है। लेकिन गणेश का या गधे का चित्र हम बनाएं, तो बच्चे को ग समझाना आसान हो जाता है। पुरानी किताबों में गणेश का चित्र होता था, नई किताबों में गधे का चित्र है, इसलिए मैं कह रहा हूं। क्योंकि सेक्युलर है गवर्नमेंट, धर्म— निरपेक्ष है राज्य। गणेश का चित्र नहीं बना सकते! तो पुरानी किताबों में ग गणेश का होता था, नई किताबों में ग गधे का है।

ग को समझाना हो, तो गणेश को रखना पड़ता है। फिर जब बच्चा समझ लेगा, तो गणेश को छोड़ देगा, ग रह जाएगा। अगर बाद में भी आप पढ़ते वक्त हर बार कहें कि ग गणेश का, तो फिर पढ़ना मुश्किल हो जाएगा। फिर गणेश को भूल जाना पड़ेगा और ग को याद रखना पड़ेगा। लेकिन ग को याद करने में पहले गणेश का उपयोग लिया जा सकता है, लिया जाता है। और अब तक कोई शिक्षा—पद्धति विकसित नहीं हो सकी, जिसमें हम बिना चित्रों का उपयोग किए बच्चों को शब्दों का बोध करा दें।

कृष्ण ने मौलिक बात कह दी है कि मैं समस्त आत्माओं में आत्मा हूं। मैं समस्त आत्माओं का केंद्र हूं। मैं समस्त हृदयों का हृदय हूं। मेरा ही विस्तार है सब कुछ— आदि भी, मध्य भी, अंत भी।

लेकिन वह बहुत गहरा भाव है और अर्जुन को भी पकड़ में नहीं आएगा। इसलिए कृष्ण अब चित्रों का प्रयोग करते हैं, और चित्रों के माध्यम से उस भाव की तरफ इशारा करते हैं। अर्जुन जो चित्र समझ सकेगा, निश्चित ही उनका ही उपयोग किया गया है।

कृष्ण ने कहा, और हे अर्जुन, मैं अदिति के पुत्रों में विष्णु हूं। इस प्रतीक को हम समझें।

तीन नाम से हम निरंतर परिचित रहे हैं, ब्रह्मा, विष्णु, महेश।

हिंदू चितना में ब्रह्मा सृजन के प्रतीक हैं, महेश विसर्जन के, अंत के, विनाश के और विष्णु मध्य के, विस्तार के। विष्णु सम्हालते हैं अस्तित्व को। जो सम्हालने की शक्ति है, वह विष्णु का नाम है। जो जन्म की शक्ति है, सृजन की, वह ब्रह्मा। और जो विनाश की, प्रलय की शक्ति है, वह शिव या महेश।

इन तीन शब्दों को हिंदुओं ने बहुत मौलिक मूल्य दिया है। क्योंकि हिंदू चितना को ऐसा हजारों—हजारों वर्ष पहले खयाल में आया कि अगर हम सारे अस्तित्व को मोटे—मोटे हिसाब से बांटें, तो अस्तित्व तीन हिस्सों में बंट जाता है। इस अस्तित्व में कुछ तो होनी चाहिए सृजनात्मक ऊर्जा, क्रिएटिव एनर्जी, अन्यथा जगत हो नहीं. सकेगा। और यह सृजनात्मक शक्ति ही अगर जगत में हो, तो फिर विश्राम असंभव हो जाएगा। इसलिए विनाश की भी उतनी ही मूल्यवान शक्ति, डिस्ट्रक्टिव एनर्जी भी जगत में होनी चाहिए, तभी दोनों में संतुलन होगा।

लेकिन अगर ये दोनों ही शक्तियां हों, तो बीच में मौका अस्तित्व को बचने का बचेगा ही नहीं। एक तीसरी शक्ति भी चाहिए, जो अस्तित्व को सम्हालती हो। जन्म के और मृत्यु के बीच में जो अस्तित्व को सम्हालती हो; सृजन के और प्रलय के बीच में जो अस्तित्व को धारण

करती हो, वैसी एक तीसरी शक्ति भी चाहिए। ये तीन मौलिक शक्तियां हैं। इन तीन मौलिक शक्तियों के प्रतीक और शब्द—चित्र ब्रह्मा, विष्णु, महेश हैं।

हिंदुओं की यह अंतर्दृष्टि धीरे— धीरे इतनी व्यापक और मूल्यवान सिद्ध हुई कि करीब—करीब जगत में जहां भी इस विचार की खबर पहुंची, वहां—वहां तीन शक्तियों का स्वीकार हो गया। जैसे ईसाइयत तीन शक्तियों को स्वीकार करती है, गॉड दि फादर, गॉड दि सन और दोनों के बीच में एक तीसरी शक्ति, होली घोस्ट। नाम कोई भी दिए जा सकते हैं। नाम का चुनाव निजी है। लेकिन त्रिमूर्ति का यह भाव ईसाइयत स्वीकार करती है। उसको वे ट्रिनिटी कहते हैं। ये जो तीन अस्तित्व की शक्तियां हैं, इनके बिना अस्तित्व नहीं हो सकता है, इसकी स्वीकृति ईसाइयत के धर्म—विचार में भी है।

और आधुनिक वितान ने भी पदार्थ के विश्लेषण पर, बहुत चकित होकर जाना कि पदार्थ के विश्लेषण पर तीन ही शक्तियां शेष रह जाती हैं। जैसे ही हम परमाणु का विस्फोट करते हैं, विश्लेषण करते हैं, तो इलेक्ट्रान, प्रोटान और न्यूट्रान, ये तीन अंतिम अस्तित्व हमारे हाथ में आते हैं। और मजे की बात तो यह है कि इलेक्ट्रान, प्रोटान और न्यूट्रान, इन तीनों का भी व्यवहारिक रूप वही है, जो ब्रह्मा, विष्णु, महेश का है। उन तीनों का काम भी वही है। उनमें एक विधायक है, एक विनाशक है, और एक तटस्थ है। उसमें एक सृजनात्मक है, एक समाप्त करने वाला है और एक सम्हालने वाला है।

अगर हम धर्म की दिशा से यात्रा करें, तो जो शब्द हम चुनते हैं, वे वैयक्तिक होते हैं, पर्सनल होते हैं। क्योंकि धर्म चित्रों में सोचता है। इसलिए हमने ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीन को बनाया है। हमने तीनों की त्रिमूर्ति बनाई है, जिनमें शरीर एक है और चेहरे तीन हैं। इस बात की सूचना देने के लिए कि ये तीन हमें बाहर से दिखाई पड़ते हैं, भीतर से एक हैं।

इन तीनों में कृष्ण ने कहा कि मैं विष्णु हूं।

इसे थोड़ा समझ लेना चाहिए। इन तीनों में कृष्ण ने कहा कि मैं विष्णु हूं। सृजन एक क्षण में हो जाता है। और विनाश भी एक क्षण में हो जाता है। काल का लंबा विस्तार विष्णु के हाथ में है। सृजन हुआ, बात समाप्त हो गई; स्रष्टा का उपयोग समाप्त हो गया। और

विनाशक शक्ति का उपयोग अंत में होगा, जब प्रलय होगा। इसलिए विराटतम ऊर्जा, जो काम में निरंतर आती है, वह मध्य में है, वह विष्णु है।

कृष्ण कहते हैं, इन तीनों में मैं विष्णु हूं।

हिंदुओं के सारे अवतार विष्णु के अवतार हैं। हिंदुओं ने माना है कि ईश्वर जब भी प्रकट होता है, तो वह विष्णु का अवतार है। इसे थोड़ा हम समझें कि इसका क्या प्रयोजन और क्या अर्थ होगा! क्या अभिप्राय होगा!

जब सृष्टि नहीं हुई हो, तब तो मनुष्य भी नहीं होता, और अवतार का कोई अर्थ और कोई प्रयोजन नहीं है। और जब सृष्टि विनष्ट हो गई हो, विलीन हो गई हो, तब भी अवतार का कोई प्रयोजन नहीं है। अवतार का प्रयोजन तो सृजन और अंत के बीच में, जब सृष्टि चलती हो, प्रक्रिया में हो, जीवंत हो, तभी प्रयोजन है।

शिव का अवतार, विनाश का अवतार होगा। उसकी कोई आवश्यकता मध्य में नहीं हो सकती। और ब्रह्मा का अवतार सृजन का अवतार होगा, उसकी कोई आवश्यकता मध्य में नहीं हो सकती। और जीवन है मध्य में। प्रारंभ और अंत तो दो छोर हैं। हम ऐसा कह सकते हैं कि ब्रह्मा और महेश तो छोर पर उपयोगी हैं, लेकिन पूरा जीवन का जो फैलाव है, वह फैलाव विष्णु का फैलाव है। इसलिए इस मध्य के काल में, जीवन के काल में जो भी ईश्वर की अवधारणाएं हैं, वे सभी अवधारणाएं विष्णु की अवधारणाएं हैं। वही शक्ति, जो जीवन को धारण करती है, वही अवतरित होगी।

इसलिए बहुत मजे की बात है, ब्रह्मा का एकाध मंदिर खोजे से मिलेगा। ब्रह्मा की पूजा भी चलती हुई मालूम नहीं पड़ती है। सृजन तो हो चुका, इसलिए ब्रह्मा भुलाए जा सकते हैं। वह बात हो चुकी। अभी ब्रह्मा का कोई संस्पर्श जीवन से नहीं है। वह घटना घट चुकी; ब्रह्मा का काम पूरा हो चुका। विष्णु की पूजा चलती है। चाहे राम के रूप में, चाहे कृष्ण के रूप में, चाहे बुद्ध के रूप में— क्योंकि हिंदू मानते हैं, बुद्ध भी विष्णु का ही अवतार हैं— अनेक—अनेक रूपों में विष्णु की पूजा चलती है, क्योंकि जीवन का प्रतिपल संबंध विष्णु से है।

शिव के भी बहुत मंदिर हैं, और शिव के भी बहुत भक्त हैं। वह घटना भी अभी घटने को है, वह भविष्य है। मृत्यु, प्रलय, वह घटना अभी घटने को है। अभी शिव भी बहुत सार्थक हैं और उनकी पूजा में भी अभिप्राय है।

आदमी तो पूजा भी करेगा, तो अभिप्राय से करेगा। इसलिए ब्रह्मा की पूजा नहीं चलती, क्योंकि कोई भी संबंध नहीं रह गया है। वह घटना घट चुकी, अतीत हो गई बात। अब ब्रह्मा की जरूरत पड़ेगी नई सृष्टि के जन्म के समय। तब भी कोई ब्रह्मा की पूजा नहीं करेगा, क्योंकि पूजा करने वाले लोग ही नहीं होंगे। जब पूजा करने वाले लोग आ जाते हैं, तो ब्रह्मा का काम समाप्त हो चुका होता है। इसलिए ब्रह्मा का भक्त खोजना जरा मुश्किल है, कठिन है, क्योंकि कोई भी संबंध हमारा उनसे जुड्ने का— हमारे लोभ से, हमारे भय से, हमारे स्वार्थ से, हमारे कल्याण से ब्रह्मा का कोई भी संबंध नहीं जुड़ता।

इसलिए यह घटना घटी है कि तीनों सृष्टि के प्रधान देवता हैं, लेकिन ब्रह्मा बिलकुल ही उपेक्षित हैं। वे रहेंगे ही। विष्णु की सर्वाधिक पूजा होगी, क्योंकि जीवन का दैनंदिन, प्रतिपल का संबंध उनसे है। और जितने भी रूप परमात्मा के प्रकट होंगे, हिंदू कहता है कि वे सभी विष्णु के ही रूप हैं। होंगे ही। एक ही ऊर्जा जो धारण करती है, वही जीवन के इस लंबे विस्तार में बार—बार प्रवेश करेगी। शिव का प्रयोग अंतिम होगा, लेकिन वह भी हमारा भविष्य है। और आदमी की चिंता भविष्य के लिए भी होती है, शायद वर्तमान से भी ज्यादा भविष्य के लिए होती है। आदमी के भय और आदमी के लोभ वर्तमान से भी ज्यादा भविष्य में निर्भर होते हैं। आने वाले कल में सब कुछ निर्भर होता है। तो शिव की भी पूजा चलेगी।

लेकिन कृष्ण ने कहा कि मैं विष्णु हूं। यह जीवन का जो केंद्रीय तत्व है सम्हालने वाला, वह मै हूं।

इसे आप ठीक से समझ लेंगे कि यह केवल चित्रों के द्वारा, प्रतीकों के द्वारा अर्जुन को बोध देना है। कृष्ण ने गहरी बातें भी अर्जुन को कही हैं, वे शायद उसकी पकड़ में नहीं आती। वह कहता है, मुझे और विस्तार से कहें। विस्तार में जानने का मतलब ही यह है कि जो उसे कहा गया है, वह उसे साफ नहीं हो सका। तो कृष्ण अब बिलकुल ठीक अर्जुन को एक बच्चे की तरह मानकर चल रहे हैं। वे उसे कह रहे हैं कि मैं विष्णु हूं।

यह अर्जुन की समझ में आ सकता है। यह आसान है। यह सरल होगा। यह हमारे जगत की भाषा का हिस्सा हो जाता है। परमात्मा— एक तो इस अवस्था में उसकी चर्चा की जा सकती है कि जहां से भी हम पहुंचने की कोशिश करें, हमारे हाथ छोटे पड़ जाएं। कितनी ही हम आंखें ऊपर उठाएं, वह हमें दूर ही मालूम पड़े।

विष्णु के माध्यम से कृष्ण कहते हैं कि मैं बहुत निकट हूं। प्रतिपल मैं ही जीवन को धारण किए हुए हूं। आती हुई श्वास में भी मैं हूं जाती हुई श्वास में भी मैं हूं। खून की रफ्तार में भी मैं हूं वृक्ष के खिलने में भी मैं हूं। यह जो जीवन को सम्हाले हुए हूं इस जीवन का सारा आधार मैं हूं।

विष्णु का अर्थ है, जीवन का आधार। प्रतिपल, प्रतिक्षण, जो सम्हाले हुए है, वही मैं हूं। यह अर्जुन को समझना आसान हो सकेगा। विष्णु हूं मैं, और ज्योतियों में किरणों वाला सूर्य हूं।

जैसे भौतिक वैज्ञानिक पदार्थ की आखिरी इकाई परमाणु मानते हैं, वैसे ही अगर हम समस्त अस्तित्व के विराट रूप को ध्यान में रखें, तो सूर्य सबसे छोटी इकाई है। जैसे परमाणु, हम पदार्थ को तोड़ते चले जाएं, तो आखिरी इकाई है, ऐसे ही अगर हम पूरे अस्तित्व की इकाई खोजने जाएं, तो सूर्य पूरे अस्तित्व की प्राथमिक इकाई है।

रात में आप आकाश को तारों से भरा हुआ देखते हैं, तो आपको खयाल भी नहीं आता होगा कि इनमें तारा कोई भी तारा नहीं है, ये सभी सूर्य हैं। और हमारे सूर्य से बहुत बड़े सूर्य हैं। हमारा सूर्य बहुत मीडियाकर, मध्यमवर्गीय है। ऐसे तो बहुत बड़ा है, हमारी दृष्टि से। पृथ्वी से तो साठ हजार गुना बड़ा है। लेकिन और महासूर्य हैं, जिनके मुकाबले वह कुछ भी नहीं है।

ये जो रात में हमें तारे दिखाई पड़ते हैं, ये सभी सूर्य हैं। बहुत छोटे दिखाई पड़ते हैं। छोटे दिखाई इसलिए पड़ते हैं कि बहुत फासला है, लंबा फासला है। इस फासले का हम थोड़ा ध्यान रखें, तो हमें खयाल में आए कि सूर्य को प्राथमिक इकाई, यूनिट मानने का क्या कारण है।

जमीन से अगर हम सूरज की तरफ यात्रा करें, सूरज की किरण की ही रफ्तार से यात्रा करें, तो हमें पहुंचने में कोई साढ़े नौ मिनट लगेंगे। लेकिन सूरज की किरण की रफ्तार से चलें तो! अभी तो हमारे पास जो बड़ी से बड़ी रफ्तार है, उससे भी हम पूरे जीवन भी चलते रहें, तो सूरज तक पहुंच पाएंगे। सूरज कि किरण चलती है एक सेकेंड में एक लाख छियासी हजार मील! एक सेकेंड में एक लाख छियासी हजार मील! इसमें साठ का गुणा करें तो एक मिनट में, और उसमें भी साठ का गुणा करें, तो एक घंटे में।

लेकिन सूरज हमारे बहुत करीब है, साढ़े नौ, दस मिनट का फासला है। अगर हम इन तारों की तरफ यात्रा करें, तो जो सबसे निकट तारा है, उस तक अगर हम सूरज की किरण की रफ्तार से चलें, तो हमें पहुंचने में चार साल लगेंगे। सूरज की किरण की रफ्तार से चलने में सूरज के बाद जो सबसे निकट का सूर्य है, हमें पहुंचने में चार साल लगेंगे।

अभी तक वैज्ञानिक मानते हैं कि हम उस रफ्तार से कभी चल न सकेंगे, क्योंकि उस रफ्तार पर कोई भी चीज, उतनी रफ्तार पकड़ते ही सूर्य की किरण बन जाएगी। जो भी वाहन हम उपयोग करेंगे, जो यात्रा का साधन उपयोग करेंगे, वह किसी भी धातु का हो, उतनी रफ्तार पर वह सूर्य की किरण हो जाएगा। और उसके भीतर के यात्री भी किरण हो जाएंगे। उतनी तेज रफ्तार पर इतनी गर्मी पैदा होगी कि जो भी होगा, वह आग हो जाएगा।

इसलिए आशा नहीं है अभी कि उतनी रफ्तार पर हम कभी यात्रा कर सकेंगे। अब तक की जो व्यवस्था है, उसमें कोई संभावना नहीं दिखाई पड़ती। एक ही संभावना है, जो कि अभी बिलकुल कल्पना है, वह संभावना यह है कि सूरज की किरण की हैसियत से, सूरज की किरण बनकर ही कोई आदमी यात्रा करे और एक विशेष टेंपरेचर पर सूरज की किरण बन जाए और जब दूसरे सूरज पर पहुंचे, तो वापस टेंपरेचर पर आदमी बनाया जा सके, री—कनवर्ट किया जा सके। लेकिन वह शायद हजारों—लाखों वर्ष बाद कभी संभव हो सके।

चार वर्ष लगेंगे हमें, जो निकटतम सूर्य है वहां तक पहुंचने में। लेकिन वह निकटतम है, उससे दूर सूर्य हैं। और अब तक वैज्ञानिकों ने कोई तीन अरब सूर्यों का पता लगाया है। यह भी अंत नहीं है। यह भी केवल हमारी खोज की सीमा है, अस्तित्व की सीमा नहीं है।

इनमें जो तीन अरब सूर्य हैं, उनमें से कुछ सूर्य तो ऐसे हैं कि उनकी किरण हम तक पहुंचने में अरबों वर्ष लग जाते हैं, उसी रफ्तार से, एक लाख छियासी हजार मील प्रति सेकेंड की रफ्तार से! कुछ ऐसे सूर्य हैं जिनकी किरण अब हमारी पृथ्वी पर पहुंची है, और तब चली थी, जब हमारी पृथ्वी बनी थी। हमारी पृथ्वी को बने कोई चार अरब वर्ष हुए हैं। चार अरब वर्षों में चली हुई किरण जो पहले दिन चली थी पृथ्वी के बनने पर, वह अब पहुंच पाई है!

और वैज्ञानिक कहते हैं कि ऐसे भी सूर्य हैं, हमारी पृथ्वी बन जाएगी, हम रह चुके होंगे अरबों—खरबों वर्ष और समाप्त हो जाएगी, और उनकी किरण जो चली होगी बनने के पहले, वह हमारे मिटने के बाद यहां से गुजरेगी।

उस किरण को पता ही नहीं चलेगा कि बीच में यहां एक पृथ्वी बनी, उस पर करोड़ों लोग रहे, अरबों वर्ष तक युद्ध चले, कलह चली, लोभ, भय चला; निर्माण हुआ, विनाश हुआ; उस किरण को कुछ भी पता नहीं चलेगा। वह किरण जब चली थी, तब पृथ्वी नहीं थी, और जब यहां से गुजरेगी, तब फिर पृथ्वी शून्य हो गई होगी। उस किरण के लिए इस स्थान पर कभी कोई घटना ही नहीं घटी। हमारा सारा इतिहास, लंबे से लंबा इतिहास भी उस किरण की यात्रा के बीच में पता ही नहीं चलेगा। लेकिन यह भी अंतिम सूर्य नहीं है। अब वैज्ञानिक कहते हैं कि इस विस्तार का कोई अंत नहीं है।

इसको अगर हम ध्यान में रखें, तो सूर्य जो है, वह इस विराट का यूनिट है, इकाई है। इस विराट को अगर हम तौलें, तो सूर्य से तौल सकते हैं। एक—एक सूर्य का अपना—अपना सौर—परिवार है। पृथ्वी है, चांद है, मंगल है, बृहस्पति है, यह सब एक सूर्य का परिवार है। वैज्ञानिक कहते हैं, ये सब सूर्य से ही पैदा हुए हैं। ये सब सूर्य के ही टुकड़े हैं। एक सूर्य के नष्ट होने पर उसका पूरा परिवार नष्ट हो जाता है। और एक सूर्य के पैदा होने पर उसका पूरा परिवार निर्मित होता है। जिस दिन हमारा सूर्य नष्ट हो जाएगा, उस दिन सब हमारे सूर्य का परिवार नष्ट हो जाएगा।

और यह कोई अनहोनी घटना नहीं है। रोज सैकड़ों सूर्यों के परिवार नष्ट होते हैं और रोज नये सैकड़ों सूर्यों के परिवार जीवित होते हैं, जन्म लेते हैं। जब एक सूर्य कहीं मरता है, तो तत्काल दूसरा

सूर्य कहीं पैदा हो जाता है, क्योंकि उसकी निकली हुई सारी किरणें पुन: दूसरी जगह संगठित हो जाती हैं।

सूरज भी रोज चुकता चला जाता है। हमारी जमीन को यह सूरज कोई चार अरब वर्ष से प्रकाश दे रहा है। उसका प्रकाश रोज कम होता जा रहा है। वैज्ञानिक कहते हैं, कोई चार हजार साल और, और सूरज का ईंधन चुक जाएगा, वह ठंडा पड जाएगा, बुझ जाएगा। उसके बुझते ही सब बुझ जाएगा। हमारा सौर—परिवार बुझ जाएगा। लेकिन तब तक उसकी सारी किरणें किसी दूसरे कोने में विराट के इकट्ठी होकर नये सूर्य को जन्म दे देंगी और नया सूर्य—परिवार निर्मित हो जाएगा। जैसे एक व्यक्ति मरता है और बच्चे को जन्म दे जाता है, ऐसे ही सूरज भी मरते रहते हैं और नये सूर्यों को जन्म देते चले जाते हैं। इस विराट की व्यवस्था में सूरज छोटी से छोटी चीज है।

इसलिए कृष्ण ने कहा कि ज्योतियों में मैं किरणों वाला सूर्य हूं। इस विराट की दृष्टि से सूर्य छोटी से छोटी चीज है, लेकिन हमारे अनुभव और अर्जुन की समझ में आने वाली सूर्य सबसे बड़ी चीज है। सूर्य हमारे अनुभव में आने वाली सबसे विराट घटना है। अस्तित्व की दृष्टि से सूर्य सबसे छोटी चीज है। कृष्ण अगर अपनी तरफ से बोलें, तो अर्जुन की समझ में नहीं आता है। इसलिए कृष्ण अब अर्जुन की तरफ से बोल रहे हैं। सबसे छोटी चीज को वे कह रहे हैं। अर्जुन के लिए वह सबसे बड़ी है।

ध्यान रखें, सारे वक्तव्य रिलेटिव हैं, सापेक्ष हैं। जब भी हम कहते हैं छोटा और बड़ा, तो किसी की तुलना में कहते हैं। अर्जुन की दृष्टि से सूरज बड़ी से बड़ी घटना है। इससे बड़ी और कोई घटना क्या हो सकती है! कृष्ण की दृष्टि से सूरज छोटी से छोटी घटना है, छोटी से छोटी इकाई है।

बर्ट्रेंड रसेल ने एक बहुत प्यारी कहानी लिखी है। बर्ट्रेंड रसेल ने थोड़ी ही कहानियां लिखी हैं। वे कोई कहानी—लेखक नहीं थे। लेकिन कुछ बातें कहनी हों और ऐसी हों कि दर्शन की भाषा में न कही जा सकें, तो कभी—कभी कहानियों की भाषा में कही जा सकती हैं। तो रसेल ने लिखी है एक कहानी। उस कहानी को नाम दिया है, एक धर्मगुरु का दुखस्वप्न— नाइटमेयर आफ ए थियोलाजियन। एक धर्मगुरु रात सोया और उसने स्वप्न देखा कि उसकी मृत्यु हो गई है। तो वह बड़ा प्रसन्न हुआ। क्योंकि जीवन में कभी उसने कोई पाप नहीं किया था कि नर्क जाने का भय उसे लगे। न कभी झूठ बोला, न कभी बेईमानी की, न किसी का दिल दुखाया। निश्चित था कि स्वर्ग उसे मिलने वाला है। और दिन—रात ईश्वर का ही गुणगान किया। स्वाभाविक था कि उसके मन में गहरी आशा हो कि स्वर्ग के द्वार पर स्वयं ईश्वर ही मेरा स्वागत करेगा।

लेकिन जब वह धर्मगुरु स्वर्ग के द्वार पर पहुंचा, तो वह बहुत मुश्किल में पड़ गया। द्वार इतना बड़ा था कि उस धर्मगुरु को उसका ओर—छोर दिखाई नहीं पड़ता था। उसने बहुत ताकत लगाकर द्वार को पीटा। लेकिन उसको खुद भी समझ में आ गया कि इतना बड़ा द्वार है, यह मेरे हाथ की आवाज भीतर तक पहुंच नहीं सकती। तब उसका चित्त उदास भी होने लगा। क्योंकि सोचा था, बैंड—बाजे के साथ ईश्वर खुद मौजूद होगा। वहां कोई भी नहीं था। न मालूम कितने वर्ष उसे बीतते मालूम पड़ने लगे। चीखता है, चिल्लाता है। रोता है। छाती पीटता है, दरवाजा पीटता है।

फिर एक खिड़की खुली और एक चेहरा बाहर झांका। हजार आंखें थीं और एक—एक आंख जैसे एक—एक सूर्य हो! वह घबड़ाकर नीचे दुबक गया और चिल्लाने लगा कि थोड़ा पीछे हट जाएं। हे परम पिता, हे परमेश्वर, आपके प्रकाश को मैं नहीं सह सकता हूं। आप थोड़ा पीछे हट जाएं।

लेकिन उस आदमी ने कहा कि क्षमा करें। आप भूल में हैं। मैं सिर्फ यहां का पहरेदार हूं। मैं कोई परमेश्वर नहीं हूं। परमेश्वर का मैंने कभी कोई दर्शन नहीं किया। मैं सिर्फ यहां का पहरेदार हूं। परमेश्वर और मेरे बीच बड़ा फासला है। वहां तक पहुंचने की अभी मेरी सुविधा नहीं बन पाई।

तब तो वह धर्मगुरु बहुत घबड़ाया। एक कीड़े—मकोड़े की तरह दुबककर वह नीचे बैठ गया। और उसने कहा, फिर भी, आप अगर परमेश्वर तक खबर पहुंचा सकें या कोई उपाय करें, कहें कि मैं पृथ्वी से आया हूं फलां—फलां धर्म का मानने वाला, फलां—फलां धर्म का सबसे बड़ा धर्मगुरु। लाखों लोग मेरी पूजा करते हैं, लाखों लोग मेरे चरणों में गिरते हैं। मैं आ रहा हूं मेरी खबर कर दें। मेरा यह—यह नाम है।

तो उस द्वारपाल ने कहा कि क्षमा करें। आपके नाम का तो पता लगाना बहुत कठिन पड़ेगा। आपके संप्रदाय का भी पता लगाना बहुत कठिन पड़ेगा। आप किस पृथ्वी से आ रहे हैं, उसका नाम बताइए। उस धर्मगुरु ने कहा, किस पृथ्वी से! पृथ्वी तो बस एक ही है, हमारी पृथ्वी! उस द्वारपाल ने कहा कि आपका अज्ञान गहन है। अनंत—अनंत पृथ्वियां हैं इस विराट विश्व में। किस पृथ्वी से आते हो, इंडेक्स नंबर बोलो! तुम्हारी पृथ्वी का नंबर क्या है?

वह धर्मगुरु बड़ी मुश्किल में पड़ गया। किसी धर्मशास्त्र में भी पृथ्वी का कोई इंडेक्स नंबर दिया हुआ नहीं था। क्योंकि सभी धर्मशास्त्र इसी पृथ्वी पर पैदा हुए हैं। और यह मानकर चलते हैं कि यही पृथ्वी सब कुछ है।

धर्मगुरु को दिक्कत में देखकर उस द्वारपाल ने कहा कि अगर तुम्हें पृथ्वी का कोई नंबर याद न हो, तो तुम किस सूर्य के परिवार से आते हो, उसका इंडेक्स नंबर बोलो। किस सूर्य के परिवार से आते हो? तो कुछ खोज—बीन हो सकती है, अन्यथा बड़ी कठिनाई है।

धर्मगुरु इतना घबड़ा गया! सोचता था, उसकी भी खबर होगी परमात्मा को। बड़ा धर्मगुरु है। हजारों उसके मानने वाले हैं। सोचता था, मेरी खबर होगी। मेरे मंदिर, मेरे चर्च की खबर होगी। लेकिन यहां उस पृथ्वी का ही कोई पता नहीं। यहां उस सूर्य के लिए भी नंबर बताना जरूरी है। और तब भी उसने कहा कि अनेक वर्ष लग जाएंगे, तभी खोज—बीन हो सकती है कि आप कहां से आते हैं।

घबड़ाहट में उसकी नींद खुल गई, वह पसीने से तरबतर था। यह सपना देख रहा था।

आदमी अपने को केंद्र मान लेता है, नासमझी के कारण। आदमी अपने को मान लेता है कि मैं आधार में हूं नासमझी के कारण। अस्तित्व बहुत विराट है।

इस विराट अस्तित्व की बात तो अर्जुन के समझ में नहीं आएगी। इसलिए कृष्ण कहते हैं, समस्त ज्योतियों में, समस्त प्रकाशों में मैं सूर्य हूं।

यह अर्जुन की भाषा में समझ में आ सके, वहां परमात्मा के लिए प्रतीक निर्मित करना है। इसलिए सारे धर्मों ने प्रतीक निर्मित किए। सूर्य भी बहुत धर्मों के लिए परमात्मा का प्रतीक रहा है। उसका कुल कारण इतना है कि हमारे अनुभव में सूर्य सबसे ज्यादा प्रकाशवान है। और हमारे अनुभव में सूर्य ही प्राणों का केंद्र है। और हमारे अनुभव में हमारे जीवन का समस्त आधार सूर्य है।

इसलिए हजारों साल पीछे भी हम लौट जाएं, अशिक्षित से अशिक्षित, जंगली से जंगली आदमी का समाज रहा हो, सूर्य के लिए हाथ जोड़कर वह नमस्कार करता रहा है। सूर्य, पृथ्वी के अनेक—अनेक कोनों में परमात्मा का प्रतीक बन गया है। और फिर उस प्रतीक से हम और छोटे प्रतीक बनाते हैं। आग भी परमात्मा का प्रतीक बन गई, क्योंकि वह भी सूर्य का अंश है।

हेराक्लतु ने यूनान में कहा है कि फायर, आग ही समस्त जीवन का आधार है। आग ही जीवन है। आग के ही विभिन्न क्रमों में जीवन प्रकट होता है और लीन होता है।

हेराक्लतु की बात हमें ठीक शायद न भी मालूम पड़े, लेकिन अब वैज्ञानिक कहते हैं कि विद्युत ही जीवन है। विद्युत नई भाषा है, लेकिन विद्युत आग है। और अगर हिंदू कहते थे कि सूर्य ही जीवन है, तो यह भाषा कितनी ही पुरानी हो, लेकिन इसका अर्थ वही है। सूर्य कहे कोई, अग्नि कहे कोई, विद्युत कहे कोई, लेकिन जीवन किसी न किसी रूप में अग्नि के ही स्फुल्लिंगों से जुड़ा हुआ है।

कृष्ण कहते हैं कि मैं समस्त प्रकाशों में सूर्य हूं।

यह इशारा कर रहे हैं अर्जुन को कि तू समझ सके, सूर्य पर रुक जाना नहीं है। कृष्ण कहते हैं कि मैं समस्त प्रकाशों में सूर्य हूं। सिर्फ एक तुलना, प्रकाशों में एक इशारा, कि अर्जुन की आंख सूरज तक उठ सके, तो फिर सूरज के पार भी ले जाया जा सकता है। इसी कारण बहुत—सी भ्रांतियां हुईं।

भारत में भी हिंदू विचार ने सूर्य को परम देवता माना। लेकिन जैनों और बौद्धों ने इसका विरोध किया। उनका विरोध भी सही है और हिंदुओं का मानना भी सही है। उनका विरोध ऊपर के दृष्टिकोण से है। क्योंकि वे कहते हैं कि क्या सूरज को कहते हैं कि परमात्मा! परमात्मा बहुत विराट है, सूरज बहुत क्षुद्र है।

वह ठीक वैसा ही झगड़ा है कि वे कहते हैं कि क्या कहते हैं कि ग गणेश का! ग तो अनंत—अनंत चीजों का है; गणेश से क्यों बांधते हैं?

लेकिन प्राथमिक चरण में ग गणेश का उपयोगी है। और प्राथमिक चरण में सूर्य भी अगर परमात्मा बन जाए, तो उपयोगी है। सच बात यह है कि कोई भी प्रतीक, कितना ही छोटा क्यों न हो, अगर किसी की दृष्टि में ईश्वर बन जाए, तो वह व्यक्ति ऊपर उठना शुरू हो जाता है। यह बात महत्वपूर्ण नहीं है कि प्रतीक क्या है। महत्वपूर्ण यह है कि किसी प्रतीक को परमात्मा जानने का भाव, परमात्मा मानने का भाव अगर किसी में पैदा हो गया, तो ऊर्ध्व गति शुरू हो जाती है।

परमात्मा न मानने से, किसी भी चीज को परमात्मा मान लेना बेहतर है। वह चीज परमात्मा है या नहीं, यह महत्वपूर्ण नहीं है। वह मान लेने वाला, मानने के साथ ही यात्रा पर निकल जाता है। सूर्य को भी कोई ईश्वर मानता हो, और वृक्ष को भी कोई ईश्वर मानता हो, और नदी को भी कोई ईश्वर मानता हो, तो बातें बहुत प्राथमिक मालूम होती हैं, लेकिन न मानने वाले से यह व्यक्ति भी अंतर्जीवन में ज्यादा गति कर जाएगा। कहीं भी कोई है, जहां सिर रख सकता है चरणों में। कहीं भी कोई है, जहां अहंकार विसर्जित हो सकता है। कहीं भी कोई है, जहां अपने से बड़ा माना जा सकता है, अपने से ऊपर देखा जा सकता है, अपने से पार जाने का रास्ता खुल जाता है।

अपने से निरंतर पार होते जाना ही साधना है। अपने से निरंतर ऊपर उठते जाना ही कम है। उस सीमा तक अपने से ऊपर उठते जाना है, जब तक कि अपनापन बचे। जब अपनापन बचे ही नहीं, तो जानना कि अंतिम मंजिल आ गई।

कृष्ण ने कहा कि मैं सूर्य हूं प्रकाशों में, वायु देवताओं में मरीचि हूं श्रेष्ठतम, सबसे तीव्र गति वाला देवता हूं। नक्षत्रों में नक्षत्रों का अधिपति चंद्रमा हूं।

ये सब प्रतीक हैं। और जो भी श्रेष्ठतम है, उसकी तरफ कृष्ण इशारा कर रहे हैं।

और मैं वेदों में सामवेद हूं देवों में इंद्र हूं इंद्रियों में मन हूं भूत— प्राणियों में चेतना अर्थात ज्ञान हूं।

यह अंतिम सूत्र बहुत समझने जैसा है।

वेदों में सामवेद हूं! यह बड़ी हैरानी का मालूम होता है। क्योंकि हमको लगेगा, कहना था, वेदों में ऋग्वेद हूं। प्रथम और सर्वाधिक मूल्य का समझा जाने वाला वेद तो ऋg है। कृष्ण ने क्यों कर सामवेद चुना होगा? और सब तो ठीक है कि प्रकाशों में सूर्य हूं और वायु देवताओं में मरीचि हूं यह ठीक है। अदिति के पुत्रों में विष्णु हूं यह ठीक है; इसमें कोई अड़चन नहीं, कोई दुविधा नहीं। लेकिन यह आखिरी वक्तव्य बहुत दुविधापूर्ण है कि मैं वेदों में सामवेद हूं। और पंडितों को बड़ी कठिनाई पडी है, इसको, सामवेद को श्रेष्ठतम रखने में। ऋग्वेद के ऊपर रखना इसे बहुत मुश्किल है। लेकिन कृष्ण ने यह क्यों पसंद किया होगा?

पुन: ऋग्वेद और सामवेद का सवाल नहीं है, पुन: अर्जुन का सवाल है। और अर्जुन को देखकर ही बात की जा रही है। यह भाषा अर्जुन के लिए है। और कृष्ण के व्यक्तित्व का भी सवाल है। और कृष्ण के व्यक्तित्व में भी सामवेद ही श्रेष्ठ मालूम पड़ेगा। और कृष्ण अपना तादात्म्य भी ऋग्वेद से नहीं कर पाते हैं, सामवेद से कर पाते हैं।

सामवेद संगीत का, गीत का वेद है; पांडित्य का नहीं, सिद्धांत का नहीं, गीत का, संगीत का। कृष्ण का व्यक्तित्व एक गणित के सिद्धांत की बजाय, गीत की कड़ी जैसा ज्यादा है। कृष्ण का व्यक्तित्व एक शुद्ध चिंतन,शुद्ध विचार—ऐसा कम; शुद्ध नृत्य— ऐसा ज्यादा है।

कृष्ण को हम बिना बांसुरी के सोच ही नहीं सकते। कृष्ण से छीन लें बांसुरी, तो कृष्ण का सब कुछ छिन जाता है। बुद्ध के पास बांसुरी रखें, बहुत असंगत मालूम पड़ेगी, इररेलेवेंट। बुद्ध से उसका कोई संबंध नहीं जुड़ेगा। महावीर के हाथ में बांसुरी दे दें, और महावीर सामने खड़े हों, तो आप सोच भी नहीं पाएंगे कि हाथ में जो चीज है, वह बांसुरी हो सकती है!

सुना है मैंने, एक अंग्रेज विचारक भारत आया हुआ था। वह शिव के एक मंदिर को देखने गया था। बाहर तो बड़ी धूप थी, तो उसने अपना टोप लगा रखा था। भीतर तो छाया थी गहन और ठंडक थी, तो उसने शिव की पिंडी के पास ही अपना टोप उतारकर रख दिया और मंदिर को घूमकर देखने लगा। जब वह खुद दरवाजे पर मंदिर के आया और उसने लौटकर देखा, तो अपने मित्र से जो साथ में था, एक हिंदुस्तानी, उससे उसने पूछा कि शिव की पिंडी के पास जो चीज रखी है, वह क्या है?

तो शिव की पिंडी के पास हैट का क्या संबंध! तो उसके मित्र को खयाल आया कि मालूम होता है, शिव का घंटा किसी ने उलटा रख दिया है। एसोसिएशंस होते हैं। शिव के पास हैट का क्या संबंध होगा?

हम जो देखते हैं, उसमें सिर्फ देखते ही नहीं, उसमें हमारी व्याख्या भी होती है। अगर महावीर के हाथ में बांसुरी हो, तो हम सोच ही नहीं सकते कि बांसुरी है। महावीर और गीत का कोई संबंध नहीं। महावीर और काव्य में क्या लेना—देना! कृष्ण के हाथ में बांसुरी, कृष्ण के अंतरतम का प्रतीक हो जाती है।

इसलिए कृष्ण ने जब अर्जुन को कहा कि मैं वेदों में सामवेद हूं तो यह सार्थक है। इसमें कृष्ण ने यह कहा कि शब्द और सिद्धांत और शास्त्र मैं नहीं हूं। गीत, संगीत, लय और नृत्य मैं हूं। और जीवन का जो परम रहस्य है, वह सिद्धांतों से नहीं हल होता, क्योंकि सिद्धांतों से तो एक दूरी बनी रहती है। जीवन का जो परम रहस्य है, वह तो किसी तल्लीनता में पूरा होता है।

सामवेद तल्लीनता का शास्त्र है। इसलिए ऋग्वेद को कृष्ण ने नहीं कहा; सामवेद को कहा। यह खुद उनके व्यक्तित्व की भी झलक है उसमें, और अर्जुन को भी समझ में आ सके। इसे भी थोड़ा हम समझ लें कि अर्जुन की समझ में क्यों आ सके।

अर्जुन खुद भी कोई तर्क—शास्त्री नहीं है; एक योद्धा है। और कई बार हमें ऐसा भी लग सकता है कि एक योद्धा का गीत से, संगीत से क्या संबंध? विपरीत मालूम पड़ते हैं ऊपर से देखने में। कहां तलवार और कहां बांसुरी!

लेकिन जो गहन अध्ययन करते हैं जीवन का, वे कहते हैं कि योद्धा भी जब युद्ध की सघनता में पूरा डूबता है, तो वैसा ही डूब जाता है, जैसा कोई संगीतज्ञ अपने संगीत में डूबता हो और जैसे कोई नर्तक अपने नृत्य में डूबता हो। जब कोई योद्धा तलवार चला रहा होता है, तो तलवार के साथ इतना एक हो गया होता है कि तलवार ही होती है, योद्धा नहीं होता। युद्ध का अपना एक संगीत है, और युद्ध का अपना एक काव्य है, और युद्ध की अपनी एक लयबद्धता है।

जापान में तो समुराई होते हैं। वे ठीक जैसा भारत ने क्षत्रियों का एक गहन प्रयोग किया था, उससे भी गहन प्रयोग जापान ने समुराइयों का किया है। समुराई जापान के क्षत्रियों का नाम है। इस समुराई को तलवार चलाना भी सिखाया जाता है, नृत्य भी सिखाया जाता है, ध्यान भी सिखाया जाता है। और जब तक नृत्य, ध्यान और तलवार तीनों में कुशल न हो जाए समुराई, तब तक ठीक योद्धा नहीं माना जाता।

क्योंकि नृत्य का अर्थ ही यही है कि शरीर का एक—एक अंग जीवित हो गया। और शरीर सिर्फ सिर से नहीं चलता है अब, शरीर का रोआं—रोआं सचेतन हो गया। एक नर्तक तो हो भी सकता है कि शरीर के किसी अंग में जड़ हो, लेकिन युद्ध के मैदान पर जहां तलवार हाथ में होगी और जीवन संकट में होगा, शरीर का एक भी अंग जड़ नहीं होना चाहिए। शरीर के सभी अंग चेतन होने चाहिए; रोआं—रोआं सजग होना चाहिए; और शरीर एक तरलता बन जानी चाहिए कि तलवार के साथ शरीर बह सके।

समुराई को ध्यान भी सिखाते हैं। क्योंकि जापान में वे कहते हैं कि जो ध्यान में नहीं उतर सकता, वह बड़ा योद्धा नहीं हो सकता। क्योंकि अगर थोड़े से विचार मन में चल रहे हैं, तो तलवार और विचारों के बीच में आने से योद्धा पूरा का पूरा उतर नहीं पाएगा। विचार शांत हो जाने चाहिए, ताकि योद्धा पूरा का पूरा उतर जाए। एक अनहोनी घटना घटती रही है जापान में। कभी अगर दो बड़े समुराई योद्धा युद्ध में उतर जाएं, तो हार—जीत तय नहीं हो पाती। क्योंकि दोनों ही इतने ध्यानपूर्वक युद्ध में उतरते हैं! और ध्यान की जब गहराई बढ़ती है, तो तलवार को चलाना नहीं पड़ता, तलवार चलना शुरू हो जाती है और हमला होने के पहले तलवार रक्षा के लिए तैयार हो जाती है।

समुराई कहते हैं कि जब दुश्मन हमला करे, तो समय इतना कम है कि उसकी तलवार आपकी गर्दन को काट जाएगी, अगर उसके हमले का खयाल—हमला नहीं, हमले का खयाल ही— अगर आपका मन पकड़ ले और आपकी तलवार पहले ही आपके गले की रक्षा को उठ जाए, तो ही आप बच सकेंगे।

समुराई शास्त्र कहता है कि विचार से जो लड़ने जाएगा, वह हारेगा। ध्यान से जो लड़ने जाएगा, वह दूसरे के विचार उसके ध्यान में प्रतिफलित होने लगते हैं। शांत मन दूसरे के विचारों को प्रतिफलन देने लगता है। इसके पहले कि दूसरे के विचार में आए कि मैं हमला करूं गर्दन पर, रक्षा की व्यवस्था हो जाएगी। इसलिए दो समुराई जब लड़ते हैं, तो तय नहीं हो पाता, जीत—हार तय नहीं हो पाती। असंभव है।

अर्जुन को भी समझ में आ सकता है यह, क्योंकि अर्जुन के शरीर को अगर हम समझें, तो वह किसी नर्तक से कम नहीं उसके पास शरीर था। नर्तक जैसा ही लोचपूर्ण, फ्लेक्सिबल शरीर चाहिए युद्ध के लिए भी। अर्जुन समझ सकता है, गीत को भी समझ सकता है; संगीत को भी समझ सकता है; नृत्य को भी समझ सकता है। एक युद्ध के नृत्य को वह जानता भी है। एक युद्ध के संगीत को भी वह जानता है। उसमें जरा भी लय टूट जाए, तो उसे पता है। जीवन के एक गहरे काव्य का उसे अनुभव है।

यह जरा कठिन मालूम पड़ेगा। लेकिन योद्धा जिस जीवन को अनुभव कर पाता है, उसे घर बैठे लोग कभी अनुभव नहीं कर पाते। शायद जीवन अपनी पूरी प्रगाढ़ता में युद्ध के मैदान में ही प्रकट होता है। जहां मौत चारों तरफ मौजूद हो जाती है, वहां आप पूरी इंटेंसिटी में जीवित होते हैं। जब मौत प्रतिपल आपको चारों तरफ से घेर लेती है, और किसी भी क्षण मृत्यु हो सकती है, उस दिन आपके जीवन की ज्योति पूरी भभककर जलती है। शायद युद्ध का आनंद भी वही है।

लेकिन हवाई जहाज से बम गिराने से उसका कोई संबंध नहीं है। हवाई जहाज से बम गिराना, युद्ध का संगीत भी नष्ट हो जाता है। युद्ध की सारी कुरूपता तो मौजूद रह जाती है, और युद्ध का सारा सौंदर्य खो जाता है। आदमी— आदमी का सामने—आमने जो युद्ध था, उसकी एक ज्ञान थी, उसमें एक गरिमा थी। बंदूक भी आदमी— आदमी को दूर कर देती है, युद्ध की गरिमा खो जाती है। लेकिन दो हाथों में तलवार हों, और आमने—सामने दो जीवन लड़ते हों, दोनों शांत हों; और दोनों नृत्य से भरे हों; तो उस क्षण में वे जिस रहस्य को अनुभव कर पाते हैं, वह समाधि का ही रहस्य है।

इसलिए हमने तो इस देश में क्षत्रिय को नहीं कहा था कि वह जंगल भाग जाए समाधि के लिए।

वही कृष्ण अर्जुन को भी समझा रहे हैं कि तेरी नियति, तेरा स्वभाव क्षत्रिय का है। तू अगर जीवन के परम उत्कर्ष को भी पाएगा, तो युद्ध से ही पाएगा। भागकर तो तू जंग खा जाएगा। भागकर तो तू बेकार हो जाएगा। तू दूसरे के धर्म की तलाश कर रहा है। उससे तू अपनी नियति को नहीं पा सकता है; वह तेरी डेस्टिनी नहीं है। तू युद्ध से ही.।

और निश्चित ही, अर्जुन जैसा व्यक्ति युद्ध के गहन क्षण में ही सत्य के क्षण को उपलब्ध होगा। जब चारों तरफ मृत्यु खड़ी होगी और जब इस मृत्यु के बीच में भी बिना किसी भय के वह संघर्ष में रत होगा, जब संघर्ष प्रतिपल चिंता पैदा करता होगा, तब भी निर्विचार, तब भी मौन और ध्यानस्थ, निर्भीक और अभय, वह युद्ध में लीन होगा, तभी, उसी गहराई में वह समाधि को जानेगा। जंगल की समाधि उसके लिए नहीं हो सकती।

कृष्ण से ज्यादा महत्वपूर्ण व्यक्ति खोजना जगत में मुश्किल है, जो व्यक्तियों के टाइप को, उनके स्वभाव को इतनी प्रगाढ़ता से पहचानता हो। अब तक मनुष्य—जाति ठीक अर्थों में व्यक्ति के प्रकार का विज्ञान विकसित नहीं कर पाई। बहुत प्रयास किए गए हैं। लेकिन अब तक कोई प्रयास बहुत गहन रूप से सफल नहीं हो सका।

अभी नये—नये, कुछ ही वर्ष पहले कार्ल गुस्ताव जुग ने बहुत मेहनत की और व्यक्तियों के चार प्रकार बांटे। लेकिन हिंदू व्यक्तियों के चार प्रकार लाखों वर्ष से बांटते रहे हैं। और बीसवीं सदी का कोई बड़े से बड़ा मनोवैज्ञानिक पुन: यह कहेगा कि व्यक्ति चार प्रकार के हैं..! जब कि हिंदुस्तान में थोड़े अधकचरे पढ़े—लिखे लोग, सारी पुरानी पद्धति को तोड़ने में संलग्न हों, इस खयाल से कि वे कोई बहुत बड़ा क्रांतिकारी कार्य कर रहे हैं, तब पश्चिम में पुन: इस संबंध में सोच—विचार शुरू हो गया है कि व्यक्ति विभाजित है, उनके प्रकार विभाजित हैं। और जो व्यक्ति का प्रकार है, वही प्रकार उसके आनंद का मार्ग बन सकता है। दूसरे किसी भी मार्ग से जाकर वह दुख पाएगा।

और अगर आज पृथ्वी पर बहुत गहन दुख हो गया है, तो उसका बड़े से बड़ा कारण न तो गरीबी है, क्योंकि गरीबी सदा से थी, आज से ज्यादा थी। न उसका कारण बीमारी है, क्योंकि बीमारी आज सबसे कम है, बहुत ज्यादा बीमारी इसके पहले थी। न उसका कारण अशिक्षा है, क्योंकि अशिक्षा आज न्यूनतम है। उसका गहरे से गहरा कारण एक है कि किसी व्यक्ति को पता नहीं कि उसका प्रकार क्या है। और बिना प्रकार के पता के व्यक्ति अपना गंतव्य खोज रहा है।

जो मेरी मंजिल हो ही नहीं सकती, वह मैं खोज रहा हूं। अगर न पाऊं, तो मैं दुखी रहूंगा। और अगर पा लूं तो भी दुखी होऊंगा, क्योंकि वह मेरी मंजिल नहीं है। मैं अपनी मंजिल को खोजते हुए रास्ते में भी मर जाऊं, तो भी मुझे एक तृप्ति होगी। एक कदम भी मैं अपनी मंजिल के करीब पहुंचूं जो मेरी नियति है, मेरा स्वभाव है, तो वह कदम मेरे लिए तृप्तिदायी हो जाएगा। लेकिन दूसरे की मंजिल पर भी मैं पहुंच जाऊं, तो भी कोई तृप्ति होने वाली नहीं है। क्योंकि तृप्ति का संबंध मंजिल से कम है, तृप्ति का संबंध आपसे ज्यादा है। जब आप और मंजिल में तालमेल बैठ जाता है, एक लयबद्धता आ जाती है, तब तृप्ति उपलब्ध होती है।

अर्जुन के लिए युद्ध ही उसकी मंजिल का रास्ता है।

अर्जुन समझ सकेगा कृष्ण की इस बात को, इसलिए वे कहते हैं कि मैं वेदों में सामवेद हूं। सामवेद से वे इतना ही कह रहे हैं कि मैं समस्त ध्वनियों में लयबद्धता हूं। मैं समस्त ध्वनियों में संगीत हूं। मैं समस्त शब्दों में संगीत हूं। और संगीत हो किसी शब्द में, तो मैंइ वहां मौजूद हूं।

देवों में इंद्र हूं और इंद्रियों में मन हूं।

देवों में इंद्र हम समझ सकते हैं। श्रेष्ठतम देव इंद्र है, देवताओं का राजा है, इसलिए कृष्ण कहते हैं। इंद्रियों में मन हूं यह थोड़ा समझना पड़ेगा।

साधारणत: हम सोचते हैं, इंद्रियां अलग हैं और मन अलग है। इसलिए तो हम पांच इंद्रियों की बात करते हैं। अगर हम मन को भी इंद्रिय समझें, तो हमें छह इंद्रियों की बात करनी चाहिए। हम सब कहते हैं, आदमी पंचेंद्रिय है। कृष्ण के हिसाब से आदमी के पास छह इंद्रियां हैं, पांच नहीं। मन भी एक इंद्रिय है। सूक्ष्मतम, श्रेष्ठतम, लेकिन मन भी एक इंद्रिय है।

इसे हम थोड़ा ठीक से समझ लें।

आंख देखती है। कान सुनता है। हाथ छूते हैं। नाक से गंध आती है। जीभ से स्वाद आता है। ये सारी इंद्रियां इकट्ठा करती हैं। मन, इन सब इंद्रियों से जो इकट्ठा होता है, उसका नाम है। मन सभी इंद्रियों का संग्रह है। आंख देखती है आपको, आवाज कान सुनते हैं। मन तय करता है कि जिसको देखा, उसी को सुना है। क्योंकि आंख यह जोड़ नहीं कर सकती। आंख सिर्फ देख सकती है। आंख

को यह पता नहीं चलेगा कि जिसको मैं देख रहा हूं वही बोल भी रहा है। आंख को यह पता नहीं चलेगा।

कान को यह पता नहीं चलेगा कि जिसको मैं सुन रहा हूं आंख उसी को देख भी रही है। आंख और कान के बीच कोई सेतु नहीं है। आंख और कान के बीच कोई लेन—देन नहीं है, कोई कम्युनिकेशन नहीं है। कान देख नहीं सकता, आंख सुन नहीं सकती। तो कैसे कान तय करता है, कि जिसको आंख ने देखा है, उसी को मैंने सुना है! इन दोनों के बीच कोई बोलचाल नहीं है।

पांचों इंद्रियां अलग—अलग हैं। और अगर पांचों इंद्रियां बिलकुल अलग—अलग हों, तो आप इसी वक्त टूटकर गिर जाएंगे, आपके भीतर जान की घटना ही नहीं घट पाएगी। पैर कहीं जाएंगे, आंख कुछ देखेगी, कान कुछ सुनेगा। इसको जोड़ेगा कौन? इसको इकट्ठा कौन करेगा? इसको एक फोकस कौन देगा?

मन इंद्रियों का जोड़ है। सारी इंद्रियां अपने अनुभव को मन में उंडेल देती हैं। मन उन्हें इकट्ठा कर लेता है, संयुक्त कर लेता है। उनकी व्याख्या करता है, उनको नियोजित करता है। लेकिन मन भी एक इंद्रिय है, इसीलिए। पांचों इंद्रियों की केंद्रीय इंद्रिय है मन।

समझें कि पांच रास्ते हैं और मन उनका बीच का जोड़ है, जहां पांचरास्ते मिल जाते हैं। मन आंख से देखता है, कान से सुनता है, हाथ से छूता है, ऐसा समझें। या ऐसा समझें कि हाथ छूते हैं, कान सुनते हैं, आंख देखती है और ये तीनों संवेदनाएं मन को उपलब्ध हो जाती हैं। मन इनको जोड़ लेता है, इकट्ठा कर लेता है। लेकिन मन इंद्रियों से जुड़ा हो, तो इंद्रियों से ज्यादा नहीं हो सकता। और मन अगर इंद्रियों का ही जोड़ करने वाला हो, तो इंद्रियों से ऊपर नहीं हो सकता। मन इंद्रियों से पार नहीं हो सकता। मन भी इंद्रियों का ही हिस्सा है।

इसलिए अगर आपकी आंख चली जाए, तो आपका मन कमजोर हो जाएगा; आपके मन की संपत्ति कम हो जाएगी। अंधे आदमी के पास जो मन होता है, उसकी संपदा कम होगी। क्योंकि आंख का कोई अनुभव उसके पास नहीं होगा। बहरे आदमी के पास जो मन होगा, उसका मन और भी संकीर्ण और दरिद्र और गरीब हो जाएगा। अगर हाथ—पैर को छूने की क्षमता भी चली जाए, लकवा लग जाए, तो मन और दरिद्र हो जाएगा। अगर आपकी पांचों इंद्रियां अलग कर दी जाएं, आपका मन तत्काल मुर्दा हो जाएगा, मर जाएगा।

मन इंद्रियों के बिना नहीं जी सकता। इंद्रियां बिना मन के नहीं जी सकतीं। अगर आपका मन बेहोश हो जाए, तो सब इंद्रियां काम बंद कर देती हैं। जब आप शराब पीते हैं, तो आपकी इंद्रियों पर अलग— अलग शराब का असर नहीं पड़ता। असर तो पड़ता है मन पर। लेकिन चूंकि केंद्रीय बिंदु बेहोश हो जाता है, सभी इंद्रियां बेकार हो जाती हैं। इंद्रियां फिर भी काम करती रहती हैं। कान फिर भी सुनता है, लेकिन मन नहीं पकड़ पाता। आंख फिर भी देखती है, लेकिन मन नहीं पकड़ पाता।

इसलिए शराबी आदमी आप देखते हैं सड़क पर चलता हुआ, एक पैर कहीं पड़ता है, दूसरा पैर कहीं पड़ता है। पैर अभी भी चलते हैं, लेकिन अब दोनों पैरों के बीच में भी जोड़ रखने वाला तत्व बेहोश होने से कोई व्यवस्था नहीं रह जाती, सब अस्तव्यस्त हो जाता है। कुछ देखते हैं, कुछ सुनाई पड़ता है। कुछ बोलते हैं। जो नहीं बोलना चाहते थे, वह निकल जाता है। जिस तरफ नहीं जाना था, वहां चले जाते हैं। जो नहीं करना था, वह कर लेते हैं।

मन समस्त इंद्रियों का सार है, सूक्ष्मतम, इसेंस। कृष्ण उसे भी इंद्रिय कहते हैं।

अर्जुन को क्यों इंद्रियों से समझाने की जरूरत पड़ी? कहना तो चाहिए कृष्ण को— उन्होंने कहा भी— कि मैं आत्मा हूं कहा कि मैं हृदय हूं और अब इस सूत्र में वे कहते हैं कि समस्त इंद्रियों में मैं मन हूं! यह बहुत नीचे उतरकर बात करनी पड़ रही है। पहला वक्तव्य है कि मैं हृदयों में हृदय, सबकी आत्माओं की आत्मा! और अब कृष्ण को कहना पड़ रहा है कि मैं इंद्रियों में मन।

अर्जुन शायद आत्मा की बात नहीं समझ पाया। उसे शायद पता ही नहीं है कि आत्मा क्या है? शब्द सुन लिया, उसकी समझ में कुछ आया नहीं होगा। कृष्ण ने देखा होगा, उसकी आंख में कोई भाव नहीं उठा। शब्द सुन लिया उसने, लेकिन शब्द से कोई प्रतिध्वनि पैदा नहीं हुई। भीतर कोई संगीत नहीं छिड़ा। भीतर कोई तार पर चोट नहीं पडी। भीतर कुछ हुआ ही नहीं, सन्नाटा रहा।

आत्मा, परमात्मा, हम शब्द तो सुन लेते हैं, कान हमारे पास हैं। शब्द भीतर गूंजते हैं और निकल जाते हैं। भीतर कुछ उनसे होता नहीं। जब मैं कहूं कि आपके भीतर आत्मा है, कहूं आपके भीतर परमात्मा है; तो आपके भीतर कुछ भी होता नहीं। और आपसे मैं कहूं कि खयाल किया आपने, आपके खीसे में लाख रुपए का हीरा है, तब तत्क्षण कुछ होता है। आपका हाथ फौरन खीसे में जाएगा। और हीरा समझ में आता है, एकदम बात साकार हो जाती है कि क्या है। कोई रूप में अंतर नहीं रहता। कोई भूल—चूक नहीं होती। हम समझ जाते हैं, क्या है।

अर्जुन शायद नहीं समझ पाया आत्मा के तल की बात, इसलिए कृष्ण कहते हैं, इंद्रियों में मैं मन हूं। श्रेष्ठतम इंद्रिय हूं।

लेकिन यह बच्चे को समझाने के लिए लिया गया प्रतीक है। क्योंकि कृष्ण इंद्रियों में मन हैं, यह ठीक है, इंद्रियों की तरफ से हम सोचें तो! और जरा पीछे हटें, तो कृष्ण मन नहीं हैं! मन के भी पीछे जो ज्ञाता है, द्रष्टा है, वह हैं। और पीछे हटें, तो द्रष्टा भी नहीं, क्योंकि द्रष्टा भी दृश्य से बंधा होता है, द्वैत का थोड़ा संबंध होता है। फिर पीछे तो सिर्फ शुद्ध चैतन्य है, सिर्फ ज्ञान की क्षमता।

महावीर ने कहा है, केवल जान, जस्ट नोइंग। फिर तो पीछे सिर्फ ज्ञान मात्र ही रह जाता है, ताता भी नहीं। लेकिन जितने हम पीछे की, गहरे की बात करें, उतना ही समझना मुश्किल हो जाता है। इसलिए दरवाजे से ही कृष्ण शुरू कर रहे हैं।

ऐसा समझें कि एक मंदिर है और मंदिर के गहन गर्भ में प्रतिमा स्थापित है। और एक आदमी से हम बात कर रहे हैं, जो कभी किसी मंदिर के भीतर नहीं गया, मंदिर के बाहर ही खड़ा है। तो कृष्ण उससे कहते हैं कि ये जो दस सीढ़ियां हैं, इसमें दसवीं सीढ़ी मैं हूं। ये सीढ़ियां दिखाई पड़ती हैं। मकान के बाहर से, मंदिर के बाहर से, सीढ़ियां दिखाई पड़ती हैं। कृष्ण कहते हैं, ये जो दस सीढ़ियां हैं, इसमें दसवीं सीढ़ी मैं हूं।

इतना भी क्या कम है कि ये नौ सीढ़ियां छूट जाएं और नौ सीढ़ियों के पार आदमी दसवीं पर पहुंच जाए, तो शायद फिर पीछे उससे, कहा जा सके कि ये जो दरवाजे दिखाई पड़ते हैं, इसमें दसवां दरवाजा मैं हूं। तो नौ दरवाजे छूट जाएं, दसवें दरवाजे तक पहुंच जाए। और ऐसे क्रमश: अंततः उस जगह ले जाया जा सके, जहां वस्तुत: कृष्ण का होना है।

सीढ़ियां भी मंदिर का हिस्सा हैं, निश्चित ही। और जो प्रतिमा मंदिर के गर्भ में स्थापित है, उससे भी सीढ़ियां जुड़ी हैं, निश्चित ही। पहली सीढ़ी भी उसी से जुड़ी है, दसवीं सीढ़ी भी उसी से जुड़ी है। लेकिन सीढ़ियां प्रतिमा नहीं हैं।

पर अर्जुन मंदिर के बाहर खड़ा है। और उसकी समझ के बाहर है मंदिर के भीतर की भाषा। उससे बाहर की भाषा बोलनी पड़ती है। इस बाहर की भाषा बोलने के कारण बड़ी दुर्घटनाएं हो गई हैं। क्योंकि इन शास्त्रों को पढ़कर फिर हम ऐसा मानकर बैठ जाते हैं। क्योंकि हमको लगता है, कह तो दिया कृष्ण ने कि इंद्रियों में मन मैं हूं। तो ठीक है। तो हम मन को पकड़कर बैठ जाते हैं। दसवीं सीढ़ी की पूजा शुरू कर देते हैं।

यह कहा गया है, ताकि नौ सीढ़ियां छूटें, दसवीं पकड़े नहीं। ध्यान रखना, यह इसलिए नहीं कहा है कि दसवीं पकड़े। यह इसलिए कहा है कि नौ छूटें। और नौ छूट जाएं, तो फिर दसवीं भी छोड़ी जा सके।

लेकिन हम बहुत मजेदार लोग हैं। हम दसवीं तो पहुंचने की बात अलग, नौ को छोड़ने की बात अलग, हम दसवीं को इतने जोर से पकड़ते हैं कि उसकी वजह से नौ भी पकड़ जाती हैं। और दसवीं पर हम इस बुरी तरह रुक जाते हैं कि हमें बाकी नौ पर भी अपना घर बनाना पड़ता है।

जब भी कोई परम सत्य को मनुष्य की भाषा में कहा जाए, तो खतरा मोल लेना है। क्योंकि यह भी हो सकता है कि भाषा को छोड्कर परम सत्य तक वह पहुंचे, और यह भी हो सकता है कि परम सत्य को छोड़े और भाषा में जो कहा गया है, उसे पकड़ ले।

मैं चांद को इशारा करूं अपनी अंगुली से। यह भी हो सकता है, आप मेरी अंगुली पकड़ लें और कहें कि यही चांद है, क्योंकि आपने ही तो कहा था कि यह रहा चांद! चांद तो मैं आकाश की तरफ बताऊं अंगुली से, और अगर आपने चांद कभी देखा न हो और देखें कि ठीक है, अंगुली बताई जा रही है और मैं कह भी रहा हूं कि यह रहा चांद, तो आप मेरी अंगुली पकड़ ले सकते हैं।

लेकिन अंगुली से चांद का कोई भी संबंध नहीं है। अंगुली से चांद बताया जा सकता है, संबंध कोई भी नहीं है। इतना ही संबंध है कि अगर आप अंगुली को छोड़ दें और भूल जाएं और चांद को देखें, तो चांद दिखाई पड़ सकता है। लेकिन अगर आप अंगुली को ही पकड़ लें, तो चांद फिर कभी भी दिखाई नहीं पड़ेगा। इशारे पकड़ लिए जाते हैं, और जिसकी तरफ इशारा किया जाता है, वह चूक जाता है।

यह भी इशारा है कि कृष्ण कहते हैं, मैं इंद्रियों में मन हूं।

इतना भी क्या कम है कि तुम इंद्रियों से ऊपर उठो। कम से कम पांच से ऊपर उठो, छठवीं पर पहुंचो। कम से कम बाहर की इंद्रियों से ऊपर उठो, भीतर की इंद्रिय पर पहुंचो। थोड़ा तो भीतर प्रवेश होगा। थोड़ा भी भीतर प्रवेश हो, तो और भीतर की संभावना खुल जाती है, और नये द्वार खुल सकते हैं।

लेकिन खतरा भी हम ध्यान रखें। इसे पकड़ा भी जा सकता है; जोर से पकड़ा जा सकता है। और हम जैसे लोग हैं, जो हमारी समझ में आए, उसे हम पकड़ लेते हैं।

और धर्म का मामला ऐसा है कि जो—जो आपकी समझ में आए, ठीक से समझ लेना कि उसे पकड़ना नहीं है। जो—जो आपकी समझ में आए, समझ लेना ठीक से कि उसे पकड़ना नहीं है, क्योंकि आपकी समझ में बहुत बड़ी बात नहीं आ सकती। और जो आती है, वह आपकी समझ के अनुसार आएगी। और अगर आपको अपनी समझ बड़ी करनी है, तो धीरे— धीरे जो आपको समझ में आता है, उसे छोड़ना; और जो समझ में नहीं आता, उसको पकड़ने की कोशिश करना।

यह बहुत कठिन मालूम पड़ेगा। लेकिन समस्त विकास का मार्ग यही है। जो आपको समझ में आए, उसे धीरे— धीरे छोड़ना; और जो समझ में न आए, धुंधला समझ में आए, उस तरफ कदम उठाना। तो आप आगे बढ़ेंगे।

एक आदमी एक सीढ़ी पर खड़ा है। पहली सीडी पर खड़ा है। दूसरी सीढ़ी पर जाना चाहता हो, तो जिस सीढ़ी पर खड़ा है, उसे छोड़ना पड़ेगा। पैर ऊपर उठाना पड़ेगा, जिस पर खड़ा है। और दूसरी सीढ़ी जो अपरिचित है, अनजान है, जिस ?भी खड़ा नहीं हुआ, उस पर पैर रखना पड़ेगा। और जब एक पैर उस पर रख जाए, तो दूसरा पैर भी पहली सीढ़ी से हटा लेना पड़ेगा।

हमें क्रमश: अगर अंतिम की खोज करनी है, तो जो हमारे पास है, उसे धीरे— धीरे छोड्कर और हमें आगे बढ़ते जाना होगा। जो लोग बहुत भयभीत होते हैं, अज्ञात से डरते हैं, जो समझ में नहीं आता, उस तरफ कैसे जाएं; वे लोग अपनी ही समझ में कैद हो जाते हैं। उनकी छोटी—सी समझ उनके लिए यात्रा नहीं बनती, कारागृह बन जाती है।

हम सभी लोग अपनी—अपनी बुद्धि में बंद हैं। हम सब अपने— अपने कैदी हैं। जेलर भी कोई नहीं, हम ही जेलर भी हैं। हम ही कैदी हैं। हम ही कारागृह हैं। और हम ही कारागृह पर पहरा देते हैं कि कहीं कैदी बाहर न निकल जाए!

यह जो स्थिति बनती है, भय के कारण बनती है। क्योंकि जो हम जानते हैं, वह सुरक्षित है, सिक्योर्ड है। जो हम नहीं जानते, उसमें डर लगता है, उसमें भय लगता है। लगता है, पता नहीं, ठीक चूक जाए और गलत पर पैर पड़ जाए!

लेकिन ध्यान रखना, गलत पर भी पैर पड़े, तो रुके रहने से बेहतर है। भूल भी हो जाए, तो सदा ठीक बने रहने से और रुके रहने से बेहतर है। जो भी आदमी विकास करता है, वह भूलें करता है। करेगा ही। और अगर कोई आदमी कहता है, मुझसे भूलें होती ही नहीं, तो समझ लेना कि वह आदमी विकास कभी भी नहीं करेगा और उसने विकास किया भी नहीं। विकास करने वाला आदमी बहुत भूलें करता है।

हां, एक बात है, एक ही भूल दुबारा नहीं करता। भूलें बहुत करता है, एक ही भूल दुबारा नहीं करता। और कहीं भी रुके होने से भूल करना बेहतर है। क्योंकि भूल भी सिखाती है, आगे ले जाती है।

अंधेरे में बढ़ना बेहतर है। जो रोशनी में ही घिरे रह जाते हैं— अपना छोटा—सा दीया है बुद्धि का, जितनी रोशनी पड़ती है, उसी के भीतर घेरा लगाते रहते हैं— वे जिंदगी में सत्य से वंचित रह जाएंगे। परम धन्यता उनकी कभी भी नहीं होगी। उनके ऊपर उस प्रसाद की वर्षा कभी नहीं होगी, जो उनके ऊपर होती है, जो इस प्रकाश के घेरे को तोड़कर अंधेरे में भी बढ़ते हैं।

ध्यान रहे, अंधेरे में जब हम बढ़ते हैं, तो अंधेरा भी धीरे— धीरे प्रकाश बनने लगता है। और जितना हम अंधेरे से परिचित होते हैं, आंखें जितना अंधेरे को जानने लगती हैं, उतना अंधेरे में भी दिखाई पड़ने लगता है।

और एक बार अंधेरे में देखने की क्षमता आ जाए, तो इस जगत में फिर कोई भी अंधेरा नहीं है। और एक बार अंधेरे को भी प्रकाश में बदलने की कला आ जाए, जो कि साहस से बढ़ने वाले आदमी को आ जाती है, तो इस जगत में सब जगह प्रकाश है। फिर कहीं कोई अंधेरा नहीं है।

विकासमान चाहिए चित्त। प्रतीक खतरनाक हैं, अगर हम पकड़ लें।

मैंने सुना है, एक घर में ऐसा हुआ, छोटे थे बच्चे और बाप मर गया। मां पहले मर चुकी थी। छोटे ही थे बच्चे, बड़े हुए। बाप के बाबत उन्हें कुछ ज्यादा पता नहीं था, लेकिन कुछ—कुछ बातें खयाल रह गई थीं। और बाप की याददाश्त रखनी थी, तो उन्होंने सोचा, कुछ तो बाप की याददाश्त में, मेमोरी में, कुछ बचा लें। क्या बचा लें?

बच्चों को इतना याद था कि पिता उनको खाना खिलाता था। मां का काम भी उसी को करना पड़ता था। फिर पीछे खुद खाना खाता था। सब बच्चों को इतना याद था कि खाने के बाद चौके के आले में उसने एक छोटी—सी लकड़ी रख रखी थी। वह उससे दांत साफ करता था। यह उन्हें कुछ भी पता नहीं था। लेकिन आले में वह लकड़ी अभी भी रखी थी। वह लकड़ी दांत साफ करने का छोटा—सा टुकड़ा था। बेटों ने सोचा कि बाप की याददाश्त रखनी है, तो इस छोटी—सी लकड़ी से क्या होगा! तो एक चंदन की बड़ी लकड़ी खुदाई करवाकर आले में उन्होंने लगा दी।

फिर बेटे बड़े हुए। वे उसकी रोज पूजा कर देते थे। क्योंकि बाप को उन्होंने रोज आले के पास जाते देखा था। वे भी रोज भोजन के बाद जाकर नमस्कार करके कभी दो फूल चढ़ा देते थे।

फिर बड़े हुए। उन्होंने बड़ा मकान बनाया; पुराना मकान तोड़ा। तो उन्होंने सोचा, आले की अब क्या जरूरत है, एक छोटा मंदिर ही बना दें। तो आले की जगह उन्होंने एक संगमरमर का मंदिर बना दिया। फिर उन्होंने सोचा, लकड़ी! अब तो हमारे पास पैसे भी हैं, तो उन्होंने एक चंदन की प्रतिमा स्थापित कर दी। वे नियमित भोजन के बाद उसकी पूजा करते थे।

सुना है मैंने, उस घर में अब भी पूजा चलती है। वह जो लकड़ी थी, वह दांत साफ करने के काम आती थी। लेकिन अब वह लकड़ी मंदिर की प्रतिमा बन गई और उसकी पूजा होती है।

अगर हम अपनी जिंदगी में तलाश करने जाएंगे, तो हमें सौ में निन्यानबे इस तरह की चीजें मिलेंगी, जिनका कोई भी संबंध समझ और विकास से नहीं है। जिनका संबंध किन्हीं चीजों को अंधे की तरह पकड़ लेने से है। और जब कोई आदमी धर्म के जगत में किसी चीज को अंधे की तरह पकड़ लेता है, तो बहुत महंगा सौदा है। क्योंकि उसकी सारी आगे की यात्रा ठहर जाती है और रुक जाती है। कृष्ण कहते हैं, इंद्रियों में मैं मन हूं।

वे इतना ही कह रहे हैं कि तुम कम से कम पांच इंद्रियों से हटो और मन तक पहुंचो। इतना भी कुछ कम नहीं है कि तुम जानो कि कान तुम नहीं हो, बल्कि वह हो, जो कान से आवाज को सुनता है। इतना भी कुछ कम नहीं है, तुम जानो कि आंख तुम नहीं हो। आंख से जो

देखता है, आंख से जो झांकता है, वह मन तुम हो। अगर इतना तुम जान लो, तो कल इतना भी समझ सकते हो कि मन भी तुम नहीं हो, मन को भी जो जानता है, मन को भी जो साक्षी— भाव से देखता है, मन का भी जो ज्ञाता है, वह तुम हो।

और इसलिए दूसरे सूत्र में उन्होंने कहा, भूत—प्राणियों में चेतना, चेतनता अर्थात ज्ञान—शक्ति हूं।

तत्क्षण! इंद्रियों में मन हूं उसके बाद ही शीघ्र दूसरा सूत्र कहा कि मन के भी जो पार चेतना है, जानने की क्षमता है, कांशसनेस है, वह मैं हूं। यह इसी कारण दूसरे सूत्र में तत्काल कहा, कि पहला सूत्र खतरनाक हो सकता है। कोई अपने को मन ही मान ले!

इस जगत में चार तरह के लोग हे। एक, जो अपने को शरीर ही

मानते हैं। ये बिलकुल मकान के आस—पास ही घूमते हैं। मकान की सीढ़ियां भी नहीं चढ़ते। दूसरे, जो अपने को मन मानते हैं। ये थोड़ी— सी सीढ़ियां चढ़ते हैं, लेकिन द्वार पर अटक जाते हैं। तीसरे, जो अपने को आत्मा मानते हैं। ये और भी गहरे जाते हैं, लेकिन फिर भी जो प्रतिमा मंदिर में स्थापित है, उसके आस—पास ही चक्कर लगाते हैं। चौथे वे, जो अपने को परमात्मा ही जानते हैं। ये वे हैं, जो प्रतिमा के साथ एक हो जाते हैं। ये चार तरह के लोग हैं।

अधिकतम लोग अपने को शरीर मानते हैं। अधिकतम लोग! जो कहते हैं कि नहीं, हम आत्मा मानते हैं, वे भी अपने को शरीर ही मानते हैं। अगर उनकी हम जीवन—चर्या देखें, तो हमें पता चल जाएगा। वे भी अपने को शरीर ही मानते हैं। उनका अगर हम व्यवहार देखें, तो हमें पता चल जाएगा, वे भी अपने को शरीर ही मानते हैं। अगर उन्हें हम कठिनाई में डाल दें, तो हमें पता चल जाएगा कि वे भी अपने को शरीर मानते हैं।

जो आदमी कहता है, मैं आत्मा हूं आत्मा अमर है, एक छुरा उसके कंधे पर रखें और अंधेरे में उसको पकड़ लें, वह फौरन चिल्लाका कि मुझे क्यों मारे डाल रहे हो। वह जो कहता था, आत्मा अमर है, छुरे को देखकर कहेगा, मुझे क्यों मारे डाल रहे हो! छुरा आत्मा को नहीं मार सकता। छुरा तो शरीर को ही मार सकता है। लेकिन तब वह यह नहीं कहेगा कि क्यों मेरे शरीर को व्यर्थ काट रहे हो? वह कहेगा, क्यों मुझे मारे डाल रहे हो!

इपिटैक्टस को यूनान के सम्राट ने अपने पास बुलवाया था। क्योंकि सम्राट को किसी ने कहा कि इपिटैक्टस कहता है कि आत्मा अमर है। सम्राट शरीरवादी था। उसने इपिटैक्टस को बुलवाया और कहा कि मैंने सुना हैं—सोचकर जवाब देना— मैंने सुना है कि तुम कहते हो, आत्मा अमर है। मैं कोई सिद्धांत की चर्चा के लिए नहीं बुलाया हूं मैं तो सीधी परीक्षा लूंगा। क्योंकि मैं तो मानता हूं शरीर के सिवाय कुछ भी नहीं है।

इपिटैक्टस ने कहा, तो परीक्षा शुरू करो! क्योंकि वक्तव्य देने की क्या जरूरत है, परीक्षा ही वक्तव्य देगी। और जब तुम मानते ही नहीं हो कि शरीर के अलावा कुछ है, तो मैं समझाऊं भी तो किसको समझाऊं! तुम परीक्षा शुरू करो।

सम्राट ने दो आदमियों को आशा दी और कहा कि इपिटैक्टस का एक पैर मोड़कर तोड़ डालो। इपिटैक्टस ने पैर आगे बढ़ा दिया और उन दोनों आदमियों से कहा कि इस तरह बाएं तरफ घुमाओ, जल्दी टूट जाएगा। सम्राट ने कहा, यह मैं मजाक नहीं कर रहा हूं। यह पैर सच में ही तोड़ दिया जाएगा। इपिटैक्टस ने कहा, आप मजाक कर भी नहीं सकते हैं, मैं मजाक कर सकता हूं क्योंकि मैं पैर से अलग हूं। मैं मजाक कर सकता हूं। पैर तोड़े।

वह पैर तोड़ दिया गया। इपिटैक्टस ने कहा कि और कुछ परीक्षा लेनी है? पैर टूट गया, और मैं साबित हूं। मैं उतना का ही उतना हूं। मैं लंगड़ा नहीं हुआ; शरीर लंगड़ा हो गया।

लेकिन जो आत्मवादी भी अपने को कहते हैं, उनके भी, उनके भी जीवन में हम झांकें, तो पता चलेगा, शरीर ही है। शरीर ही सब कुछ है।

यह जो पहली कोटि है, शरीर सब कुछ, उनके लिए कृष्ण का यह वचन उचित है। अर्जुन को ऐसा ही लग रहा है कि शरीर ही सब कुछ है। इसलिए वह कह रहा है कि कैसे मैं इन प्रियजनों को काटू? कैसे अपनों को मारूं? कैसे यह हत्या करूं? यह मुझसे नहीं होगा। इतने लोगों को मैं मारने का पाप क्यों लूं?

शरीर को ही वह जीवन मान रहा है। क्योंकि उसकी तलवार केवल शरीर को ही काट सकती है और किसी को भी नहीं। पर उसे उस सत्य का कोई भी पता नहीं है कि भीतर एक और भी अस्तित्व है, जिसको तलवार छेद नहीं सकती और आग जला नहीं सकती। पर उसका उसे कोई पता नहीं है।

इसलिए कृष्ण उससे कहते हैं कि इंद्रियों में मैं मन हूं। इंद्रियां शरीर हैं, भीतर प्रवेश करें तो मन है। लेकिन कृष्ण को भी लगा होगा कि अर्जुन को कहीं यह पकड़ न जाए, तो दूसरे ही सूत्र में वे कहते हैं, और समस्त भूतों में मैं चेतना हूं कांशसनेस हूं।

चेतना शब्द को हम थोड़ा समझ लें। चेतना का अर्थ होता है, मैं आपको देख रहा हूं। तो मैं आपके प्रति चेतन हूं। और जिसके प्रति भी मैं चेतन हो जाता हूं उससे मैं अलग हो जाता हूं। जिसके प्रति भी मैं चेतन हो जाता हूं उससे मैं अलग हो जाता हूं।

मैं अपने इस हाथ को देख रहा हूं! मैं अपने इस हाथ के प्रति चेतन हूं। बाहर से ही नहीं, भीतर से भी मैं अपने इस हाथ को देख रहा हूं। इसकी हड्डी, इसकी मांस—पेशियां, इसके प्रति मैं चेतन हूं। मैं इस हाथ से भी अलग हो गया। क्योंकि चेतन मैं उसी के प्रति हो सकता हूं जिससे मैं अलग हूं। भेद जरूरी है, फासला जरूरी है, चेतन होने के लिए।

फिर आंख बंद करके मैं अपने विचारों के प्रति भी चेतन हो सकता हूं। मैं देखता हूं कि विचार चल रहे हैं। जैसे आकाश में बादल चल रहे हों, ऐसे मन में विचार चल रहे हैं। या रास्ते पर जैसे लोग निकल रहे हों, ऐसे मन में विचार निकल रहे हैं। या फिल्म के पर्दे पर जैसे चित्र निकल रहे हों, ऐसे मन के पर्दे पर विचार निकल रहे हैं। आंख बंद करके मैं इन चलते हुए विचारों को भी देख सकता हूं। तो मैं विचारों के प्रति भी चेतन हो गया। मैं विचारों से भी अलग हो गया।

मैं अपने मन को भी देख सकता हूं। कभी आपने खयाल किया, जब आप क्रोध से भरे होते हैं, आंख बंद करके देखें, तो आपको पता लगेगा, आपका मन क्रोध से भरा है। कभी आप प्रेम से भरे होते हैं, आंख बंद करके मेडिटेट करें, ध्यान करें, तो आपको पता चलेगा, मन प्रेम से भरा है। कभी लोभ से, कभी कामवासना से, कभी भय से। तो आंख बंद करके अनुभव करें, तो पता चलेगा, मन किससे भरा है। मन इस समय भय हो गया, क्रोध हो गया, लोभ हो गया, काम हो गया। किसको पता चलता है? कौन चेतन होता है? कौन जानता है इसको? जो जानता है, वह अलग हो गया।

चेतना का अर्थ है, जिसके द्वारा आप जानते हैं, पहचानते हैं। जिसके द्वारा आप बोध से भरते हैं। और जिसके प्रति आप कभी चेतन नहीं हो सकते। आप सब चीजों के प्रति चेतन हो सकते हैं, लेकिन अपनी चेतना के प्रति चेतन नहीं हो सकते। आप सब चीजों के प्रति चेतन हो सकते हैं, सिर्फ अपनी चेतना के प्रति चेतन नहीं हो सकते। क्योंकि जो चेतन होगा, वही आपकी चेतना है। तो आप अपनी चेतना को आब्जेक्ट नहीं बना सकते। वह सब्जेक्ट है, वह जानने वाला है। वह कभी जाने जानी वाली चीज नहीं हो सकती।

तो चेतना का यह विचार, योग की गहनतम धारणाओं में से एक है। योग को अगर हम एक शब्द में कहना चाहें, तो वह उसको जानने की कोशिश है, जिसके द्वारा सब जाना जाता है, और जो किसी के द्वारा भी नहीं जाना जाता। जिसके द्वारा हम जगत में सब जान सकते हैं, सिर्फ उसी को छोड्कर। उसको नहीं जान सकते। क्योंकि उसको कौन जानेगा! जानने के लिए दूरी चाहिए, फासला चाहिए, जानने वाला अलग चाहिए। ज्ञाता अलग चाहिए, ज्ञेय अलग चाहिए।

हम सब चीजों को ज्ञेय बना सकते हैं इस जगत में। आपको मैं ज्ञेय बना सकता हूं। अपने शरीर को ज्ञेय बना सकता हूं। अपने विचार को, अपने मन को, सबको जेय बना सकता हूं। सिर्फ मेरी चेतना, मेरा होश, मेरी अवेयरनेस, वह भर ज्ञेय नहीं बनती। वह हमेशा पीछे हटती चली जाती है। इट कैन नाट बी रिडभूस्ड टु एन ऑब्जेक्ट, उसको हम कोई वस्तु नहीं बना सकते। वह हमेशा.....।

सोरेन कीर्क—गार्ड ने कहा है, कांशसनेस मीन्स सब्जेक्टिविटी, अल्टिमेट सब्जेक्टिविटी, आखिरी जानना। उसके पार, पीछे नहीं हट सकते हम।

हम कितने ही भागते चले जाएं, कितने ही पीछे हटें, जो हट रहा है पीछे, वही चेतना है। हम चेतना से पीछे नहीं हट सकते। चेतना से पीछे नहीं हटा जा सकता, इसीलिए चेतना हमारा स्वभाव है। और कृष्ण कहते हैं, चैतन्य, चेतनता, ज्ञान की शक्ति मैं हूं।

सूर्य से, विष्णु से बात शुरू की है उन्होंने। और पास हटते—हटते इंद्रियों, मन की बात की है। और पीछे हटते—हटते उन्होंने मौलिक आखिरी सूत्र अर्जुन को दिया कि मैं चेतना हूं।

जो व्यक्ति भी ऐसा जान ले कि मैं चेतना हूं उसने जो भी जानने योग्य था, वह जान लिया। और जो व्यक्ति ऐसा न जान पाए कि मैं चेतना हूं तो उसने और कुछ भी जान लिया हो, जो भी जानने योग्य है, उससे वह वंचित रह गया है। गहनतम जो हमारे भीतर केंद्र है, सबसे गहरे में छिपा हुआ जो केंद्र है, वह चैतन्य का है।

इसलिए हम परमात्मा के लक्षण में सत्—चित्—आनंद— सत्य उसे कहा है, चैतन्य उसे कहा है, आनंद उसे कहा है। चैतन्य को हम परमात्मा के भी केंद्र में रखे हैं। सत कहा है कि वह सत्य है, शुरू में। फिर कहा चित, चैतन्य है, बीच में। और फिर कहा आनंद, अंत में।

सत्य की हम खोज करें, तो चैतन्य हमें उपलब्ध होगा; और चैतन्य में हम स्थापित हो जाएं, तो आनंद हमारा स्वभाव होगा। यह जो चैतन्य, कांशसनेस है, यह हम कैसे उपलब्ध करें?

हम तो जीते हैं बिलकुल सोए—सोए, मूर्च्छित। हम जो भी करते हैं, ऐसे करते हैं, जैसे नींद में कर रहे हों, नशे में चल रहे हों। आपको क्रोध आ जाता है, तो आप कहते हैं, आ गया। पता नहीं क्यों आ गया! किसी को गाली दे दी, निकल गई। कोई ऐसा नहीं कि आप होश में हैं; बेहोश चल रहे हैं। आपका बेहोश और होश के बीच डांवाडोल होता रहता है अस्तित्व। ज्यादातर बेहोशी में कभी—कभी क्षणभर को कोई होश का क्षण आता है, नहीं तो नहीं आता। जीवन ऐसे ही गुजर जाता है।

इस बेहोशी की हालत में उस चैतन्य का पता लगाना बहुत कठिन मालूम पड़ेगा, बहुत दूर मालूम पड़ेगा। लेकिन वह इतना दूर नहीं है, जितना दूर मालूम पड़ता है। थोड़ी चेष्टा चाहिए। थोड़ी—सी चेष्टा।

रास्ते पर चल रहे हैं, होशपूर्वक चलें। जानते हुए चलें कि चलने की घटना हो रही है, मेरा बायां पैर उठा, मेरा दायां पैर उठा। ऐसा कहना नहीं है भीतर कि मेरा दायां पैर उठा, मेरा बायां पैर उठा! न ऐसा जानना है कि यह बायां पैर उठा, यह दायां पैर उठा। इसका होश रखना है। आप रास्ते पर चलते—चलते अचानक चकित हो जाएंगे कि शरीर चल रहा है, आप नहीं चल रहे हैं। भोजन करने बैठे हैं, तो यह मैंने कौर बनाया है, यह कौर मैं मुंह में ले गया। इसको होशपूर्वक करें।

बेहोश की तरह कर रहे हैं लोग! खाना खा रहे हैं, वह एक यंत्र की तरह डालते जा रहे हैं। हो सकता है, उस वक्त वे वहां भोजन की टेबल पर मौजूद ही न हों, दफ्तर में पहुंच गए हों; या किसी अदालत में मुकदमा लड़ रहे हों, या पता नहीं, क्या कर रहे हों! होशपूर्वक भोजन करें, तो आप थोड़े ही दिन में इस अनुभव को उपलब्ध हो जाएंगे कि भोजन शरीर में जा रहा है, आप में नहीं। क्योंकि वह जो होश है, वह आप हैं। तब आप बिलकुल साफ देख पाएंगे कि भोजन शरीर में जा रहा है, और आप अछूते रह गए हैं, पार रह गए हैं। आप देख रहे हैं।

फिर आपको ऐसा नहीं लगेगा कि मुझे भूख लगी। आपके सोचने का, देखने का ढंग ही बदल जाएगा। फिर आप कहेंगे, मेरे शरीर को भूख लगी। और फिर आप ऐसा नहीं कहेंगे कि मैं तृप्त हो गया। आप ऐसा कहेंगे कि शरीर की तृप्ति हो गई। शरीर को प्यास लगी। फिर आप कहेंगे, शरीर का हो गया।

और जो आदमी चलने में जान ले कि मैं नहीं चलता, शरीर चलता है। भोजन में जान ले कि मैं नहीं करता, शरीर करता है। सोते में जान ले, मैं नहीं सोता, शरीर सोता है। वह मरते क्षण में भी जानने में समर्थ हो जाएगा, मैं नहीं मरता, शरीर मरता है। लेकिन इसको क्रमशः चैतन्य को बढ़ाए जाने से यह आत्यंतिक अनुभव उपलब्ध होता है।

गीता दर्शन—भाग—5
मृत्यु भी मैं हूं—(प्रवचन—नौवां)
अध्याय—10 (गीता दर्शन भाग—5)

सूत्रः

रुद्राणां शंकरश्चास्मि वित्तेशो यक्षरक्षसाम्।
वसूनां पावकश्चास्मि मेरुः शिखरिणामहम्।।23।।
गुरोधसां च मुख्य मां विद्धि पार्थ बृहस्थतिम्।
सेनानीनामहं स्कन्दः सरसामस्मि सागरः।।24।।

महर्षीणां मृगुरहं गिरामस्थ्येकमक्षरम्।
यज्ञानां जययज्ञोउस्थि स्थावराणां हिमालयः।।25।।
और मैं एकादश रुद्रों में शंकर हूं, और यक्ष तथा राक्षसों में धन का स्वामी कुबेर हूं, और मैं आठ वसु देवताओं में अग्नि हूं, तथा शिखर वाले पर्वतों में सुमेरू पर्वत हूं।

और पेरोहितो में मुख्य अर्थात देवताओं का पुरोहित बृहस्पति मेरे को जान तथा हे पार्थ मैं सेनापतियों में स्वामी कार्तिक और जलाशयों में समुद्र हूं।

और हे अर्जुन मैं महर्षियों में भृगु और वचनों में एक अक्षर अर्थात ओंकार हूं तथा सब प्रकार के यज्ञों में जप— यज्ञ और स्थिर रहने वालों में हिमालय पहाड़ हूं।

अनंत के अनंत हो सकते हैं प्रतीक। जो सब जगह है, उसकी ओर सब दिशाओं से इशारा हो सकता है। जो अदृश्य है, अज्ञात है, तो जो भी हमें दृश्य है और जो भी हमें शांत है, उस सबसे उसकी तरफ छलांग लगाई जा सकती है।

कृष्ण ने कल एक प्रयास किया, एक दिशा से उस अनंत की ओर मार्ग को तोड़ने का। आज वे दूसरा प्रयास करते हैं। बहुत बार ऐसा होता है, एक तीर चूक जाए, तो दूसरा लग सकता है। दूसरा चूक जाए, तो तीसरा लग सकता है। तीर का लगना निशान पर इस बात पर निर्भर करता है कि जिससे कही जा रही है बात, उसके हृदय और उस बात में कोई तालमेल पड़ जाए।

जटिलता बहुत प्रकार की है। जो बात आपसे मैं कहूं हो सकता है, इस क्षण आपके हृदय से मेल न खाए, कल मेल खा जाए। जो बात मैं आपको कहूं आज आपकी समझ में ही न पड़े, और हो सकता था, क्षणभर पहले कही जाती और मेल खा जाती।

आपका मन एक तरलता है। वह प्रतिपल प्रवाह में है। जैसे नदी बही जा रही हो, ऐसा ही आपका मन बहा जाता है। किस क्षण में, किस पके हुए क्षण में, कौन—सी बात आपके हृदय को चोट करेगी और गहरी उतर जाएगी, इसका पूर्व निश्चय असंभव है।

इसलिए जिन्होंने भी उस परम सत्य की शिक्षा दी है, उन्होंने बहुत—बहुत मार्गों से उसकी तरफ इशारा किया है। किसी भी द्वार से आप पहुंच जाएं, और किसी भी झरोखे से आपकी आख उसकी तरफ खुल जाए, और कोई भी स्वर आपके हृदय की वीणा को छू ले। यह महत्वपूर्ण नहीं है कि आप किस दिशा से उसे समझते हैं, यही महत्वपूर्ण है कि आप समझ लें।

शायद कृष्ण ने जो कहा, उन्होंने जो प्रतीक चुने, अर्जुन का हृदय उन्हें नहीं पकड पाया होगा। वे और दूसरे प्रतीक चुनते हैं।

उन्होंने अर्जुन से कहा, और हे अर्जुन, मैं एकादश रुद्रों में शंकर हूं और यक्ष तथा राक्षसों में धन का स्वामी कुबेर हूं। आठ वसु देवताओं में अग्नि और पर्वतों में सुमेरु पर्वत हूं।

कल उन्होंने कहा था कि मैं विष्णु हूं अदिति के पुत्रों में। विष्णु जीवन के प्रतीक हैं। जीवन को सम्हालने के, धारण करने के, जीवन की नित जो धारा है, प्रतिपल उसे प्राण देने के, विष्णु स्रोत हैं। आज कृष्ण कहते हैं, मैं रुद्रों में शंकर हूं। शंकर मृत्यु के, प्रलय के, विनाश के प्रतीक हैं। यहां कुछ बातें समझ लेनी जरूरी होंगी। और भारतीय प्रतिभा में कैसे अनूठे अंकुर कभी—कभी खिले हैं, वे भी खयाल में आ सकेंगे।

सारी पृथ्वी पर मृत्यु को जीवन का अंत समझा गया है, मृत्यु को जीवन का शत्रु समझा गया है, मृत्यु को जीवन का विरोध समझा गया है। भारत ने ऐसा नहीं समझा। मृत्यु जीवन की परिपूर्णता भी है, अंत ही मात्र नहीं। और मृत्यु जीवन की शत्रु दिखाई पड़ती है, क्योंकि हमें जीवन का कोई पता नहीं है। अन्यथा मृत्यु मित्र भी है। और मृत्यु कोई जीवन के बाहर से घटित होती हो, कोई विजातीय, कोई फारेन, कोई बाहर से हमला होता हो मृत्यु का, आक्रमण होता हो, ऐसी भी भारत की मान्यता नहीं। मृत्यु भी जीवन का अंतरंग भाग है। और जीवन का ही विकास है, उसकी ही ग्रोथ है। शंकर विष्णु के विपरीत नहीं हैं, और विनाश सृजन का विरोध नहीं है। विनाश और सृजन एक ही घटना के दो पहलू हैं।

एक बच्चे का जन्म होता है, तो हम सोच भी नहीं सकते कि उस जन्म के साथ मृत्यु का भी प्रारंभ हो गया है। लेकिन प्रारंभ हो गया है। हम न सोच पाते हों, वह हमारे सोचने की कमी और असमर्थता है। लेकिन जन्म का दिन मृत्यु का दिन भी है। जिस दिन बच्चा पैदा हुआ, उसी दिन से मरना भी शुरू हो गया। यह एक वचन मैंने बोला, इस एक वचन के बोलने में भी आप थोड़ा मर गए हैं। आपके जीवन की धारा थोड़ी क्षीण हुई, कुछ समय चुक गया, आप मृत्यु के और करीब पहुंच गए। बच्चा जब पहली सांस लेता है, तब एक सांस कम हो गई।

तो जन्म का क्षण मृत्यु का क्षण भी है। लेकिन उन्हीं के लिए जो गहरे देख पाएं। जो इतना गहरा देख पाएं कि सत्तर साल बाद या सौ साल बाद जो घटना घटेगी, वह आज भी उन्हें झलक में आ जाए। गहरे देखने का अर्थ है, जिनकी दृष्टि पारदर्शी है। जो जन्म में भी गहरा देख सकें, उन्हें मृत्यु का क्षण भी दिखाई पड़ जाएगा।

मृत्यु विपरीत नहीं है, जन्म की सहगामिनी है। ऐसा समझें कि जैसे बायां और दायां पैर हैं, और आप एक पैर से न चल पाएंगे, दोनों पैर से ही चलना हो सकेगा। ठीक वैसे ही जन्म और मृत्यु एक ही ऊर्जा, एक ही प्राण—ऊर्जा के दो पैर हैं। और एक से चलना न हो पाएगा।

हमारी आकांक्षा होती है कि जन्म तो हो और मृत्यु न हो। वह हमारी आकांक्षा मूढ़ है, क्योंकि जीवन के सत्य के विपरीत है। जो भी चाहता है कि जन्म हो और मृत्यु न हो, उसे पता ही नहीं कि वह एक ही चीज से बचना चाहता है और उसी चीज को पाना भी चाहता है। जन्म और मृत्यु एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। और जन्म असंभव है, जिस दिन मृत्यु असंभव हो जाए। जिस दिन हम मृत्यु से बच सकेंगे, उस दिन हम जन्म से भी बच जाएंगे। जिस दिन हम मृत्यु को काट डालेंगे, उस दिन जन्म भी कट जाएगा। वे दो नहीं हैं।

अभी अर्जुन का मन मृत्यु से बहुत आच्छादित और प्रभावित है। कृष्ण ने उसे कहा कि मैं जीवन का देवता हूं विष्णु हूं। शायद उसके हृदय पर चोट भी न पड़ी हो।

एक आदमी मर रहा हो, उससे जीवन की बात करने का कोई भी अभिप्राय नहीं है। उसके चारों ओर मौत खड़ी है। मौत तो सभी के चारों ओर खड़ी है, लेकिन सभी अपने—अपने जीवन में इतने व्यस्त हैं कि उसका दर्शन नहीं होता। लेकिन जो खाट पर पड़ा है और मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहा है, उसे जरा—सी भी द्वार पर आहट होती है, तो लगता है कि यम के दूत ने दस्तक दी। उसे चारों ओर मृत्यु ही दिखाई पड़ती है।

अर्जुन के सामने भी चारों तरफ मृत्यु है, प्रियजनों की, अपनों की, सगे—संबंधियों की। यह युद्ध बहुत अजीब था। इसमें दोनों तरफ मित्र ही बंटकर खड़े थे। कल जिनके साथ खेले थे, कल जिनको प्रेम किया था, कल जिनके लिए प्राण दे सकते थे, आज उनके प्राण लेने का अवसर था; उनके ही प्राण लेने का अवसर था।

गुरु और शिष्य बंट गए थे। मित्र और मित्र बंट गए थे। परिवार बंट गए थे! कोई इस तरफ था, कोई उस तरफ था।

ऐसा युद्ध मुश्किल से होता है। युद्ध में बंटाव साफ होता है। एक तरफ दुश्मन होते हैं, एक तरफ मित्र होते हैं। लेकिन यह महाभारत का युद्ध अनूठा है। इसमें बंटाव साफ नहीं है; विभाजन निश्चित नहीं है। कृष्ण एक तरफ से लड़ रहे हैं, उनकी फौजें दूसरी तरफ से लड़ रही हैं! उस तरफ भीष्म हैं, द्रोण हैं, जिनके चरणों में बैठकर सब सीखा है। जिनसे सीखी है कला, वही कला उनकी मृत्यु के लिए काम में लानी है।

लेकिन एक अर्थ में महाभारत का युद्ध बड़ा प्रतीक है। मैंने आपसे कहा कि दुनिया में ऐसा युद्ध नहीं होता। बंटाव साफ होता है। इस तरफ मित्र होते हैं, उस तरफ शत्रु होते हैं। लेकिन आपसे दूसरी बात भी मैं कहता हूं।

सभी युद्ध महाभारत जैसे होते हैं, हमें पता हो या न पता हो। बंटाव झूठा है और ऊपरी है। भीतर से तो हमारे मित्र ही उस तरफ होते हैं और इस तरफ भी होते हैं। हमारे ही संबंधी उस तरफ होते हैं, हमारे ही संबंधी इस तरफ होते हैं। महाभारत में इस झूठे बंटाव को बिलकुल ही तोड़ डाला है। सभी युद्ध ऐसे हैं।

आज पाकिस्तान और हिंदुस्तान लड़े, तो आज साफ दुश्मन का बंटाव है। लेकिन कल! कल यह सीमा नहीं थी। और कल अगर कराची बर्बाद होता तो बंबई उतना ही दुखी होता, जितना बंबई बर्बाद होता तो कराची दुखी होता। लेकिन आज बंटाव हमने साफ कर लिया है। तो आज अगर कराची बर्बाद हो, तो हम खुश भी हो सकते हैं। और बंबई बर्बाद हो, तो कराची में खुशियां मनाई जा सकती हैं।

दुनिया का कोई भी युद्ध गहरे में देखे जाने पर महाभारत जैसा ही है। दोनों तरफ आदमी ही खड़े हैं। और आदमी एक परिवार है। संबंध दिखाई पड़ते हों या न दिखाई पड़ते हों, क्रोध में और वैमनस्य में और ईर्ष्या में और हिंसा में, संबंध धुंधले हो गए हों, धुएं में ढंक गए हों, दूसरी बात है। लेकिन जिनके पास थोड़ी—सी साफ आंखें हैं, उन्हें हमेशा दिखाई पड़ता है कि सभी युद्ध महाभारत जैसे युद्ध हैं।

अर्जुन परेशान है। मौत चारों तरफ दिखाई पड़ती है। जीतने में भी कोई अर्थ नहीं मालूम पड़ता। जीतकर भी हार ही हो जाएगी। क्योंकि अर्जुन कहता है कि जिनके लिए हम जीतते हैं, अगर वे ही नहीं बचे, तो जीत का भी क्या होगा? जीतने से जिनको खुशी होगी, वे ही मर जाएंगे! हम अकेले अगर जीतकर भी खड़े हो गए, तो वह जीत किसके समक्ष होगी? किसके लिए होगी? वह अर्थहीन होगी।

एक गहरे अर्थों में जैसा महाभारत में घटित हुआ था, वैसा करीब—करीब आने वाली इस पूरी होने वाली सदी में घटित होने का डर है। करीब—करीब हम दुबारा वैसी हालत में खड़े हैं। इसलिए गीता और भी अर्थपूर्ण हो गई है। गीता बहुत समसामयिक, कनटेंपरेरी मालूम हो सकती है, अगर आपके पास समझने की थोड़ी दृष्टि हो।

महाभारत के पहले और महाभारत के बाद मनुष्यता ने एक भारी संकट से गुजरकर देखा। महाभारत के पहले आदमीयत एक शिखर और एक ऊंचाई पर थी। करीब—करीब वैसे शिखर और ऊंचाई पर, जैसा आज पश्चिम है, ऐसा पूरब था। जितने अस्त्र—शस्त्रों की हम आज खोज कर रहे हैं, करीब—करीब उनकी चर्चा महाभारत में है। नाम उनके अलग हैं, पर उनके गुणधर्म यही हैं।

महाभारत के पूर्व की जो संस्कृति थी और मनुष्य का जो विकास था, वह शिखर पर पहुंच गया था। और महाभारत के बाद उस शिखर को भारत फिर कभी नहीं छू सका। महाभारत के साथ जो पतन हुआ और महाभारत के साथ जो गिरावट हुई और संस्कृति, और सभ्यता, और विज्ञान का जो विनाश हुआ, वह फिर आज तक पूरा नहीं किया जा सका।

शायद भारत के बहुत गहरे मन में यह भी बात समझ में आ गई कि विज्ञान के इतने ऊंचे शिखर पर पहुंचने का अंतिम परिणाम बहुत बुरा हुआ है। और भारत की प्रतिभा विज्ञान के प्रति अनुत्सुक हो गई, उदासीन हो गई। भौतिक समृद्धि अंततः महाभारत में जहां ले गई, उसके बाद भारत के मन में भौतिक समृद्धि की कोई आकांक्षा नहीं रही।

भारत की दरिद्रता का बुनियादी कारण अगर हम खोजने जाएं, तो बहुत पीछे लौटना पड़ेगा। महाभारत उसका कारण है। महाभारत में हमने समृद्धि का आखिरी शिखर देखा। जो भी हो सकता था आदमी के द्वारा, समझ के द्वारा, वह हमने पा लिया था। शिक्षा थी, विज्ञान था, संस्कृति शिखर पर थी। समृद्धि थी, अतिशय समृद्धि थी। उस अतिशय समृद्धि का जो फल हमें मिला, वह बहुत कड़वा मिला।

और उसके बाद भारत के मन में एक गहरी निराशा समृद्धि के प्रति छा गई, विज्ञान के प्रति, उपकरणों के प्रति, टेक्नोलाजी के प्रति। महाभारत के बाद भारत ने फिर टेक्नोलाजी, तकनीक

विकसित करना बंद कर दिया। क्योंकि टेक्नोलाजी का आखिरी विकास जहां ले गया, वह अत्यंत दुखद सिद्ध हुआ। सब कुछ विनष्ट हुआ।

करीब—करीब आज दुनिया फिर वैसी हालत में है। पश्चिम फिर वैसे ही उपकरण पैदा कर लिया है, जिनसे मनुष्य—जाति पुनः पूरी तरह विनष्ट हो सकती है। और अगर मनुष्य—जाति विनष्ट न भी हो, तो कम से कम जो भी श्रेष्ठ है, वह विनष्ट हो जाएगा; और जो निकृष्ट है, वही बच सकेगा।

अगर आज कोई युद्ध हो, तो न्यूयार्क और बंबई और टोकियो तो नहीं बच सकते, लंदन और पेरिस तो नहीं बच सकते। ही, कहीं कोई आदिवासी जंगल में छिपा हुआ बच जाए, तो बात अलग है। संस्कृतियां तो नहीं बच सकतीं, सिर्फ आदिम कुछ टुकड़े, कबीले बच सकते हैं।

गीता इसलिए अर्थपूर्ण हो जाती है। पुनः अर्थपूर्ण हो जाती है। आज भी यही संकट सामने है। और इसलिए आज जिनके पास भी ताकत है, वे लड़ने में भयभीत हैं। क्योंकि अब तक जितने युद्ध होते थे, उनमें कोई जीतता था। कोई जीतता, कोई हारता। युद्ध में कोई अर्थ था, मीनिंग था। अब करीब—करीब वैसी ही हालत है कि अगर आज युद्ध हो, तो कोई भी जीतेगा, हारेगा, ऐसा मानने का कोई कारण नहीं। दोनों विनष्ट हो जाएंगे। और जो जीतकर बचेगा भी, वह अपनी जीत की खबर भी किसी को नहीं दे सकेगा! किसके लिए होगी जीत?

अर्जुन को चारों तरफ मौत दिखाई पड़ती है। जीवन की बात शायद उसे समझ में न आई हो। इसलिए कृष्ण उससे कहते हैं, मैं रुद्रों में शंकर भी हूं। मृत्यु भी मैं हूं महाविनाश भी मैं हूं महाविनाश का सूत्र भी मैं ही हूं।

इसमें कई बातें समझ लेने जैसी हैं।

पहली बात, जब हम परमात्मा को विनाश की शक्ति से एक समझें, तो हमें बहुत अड़चन होगी, हमारे तर्क को बड़ी दुविधा होगी। क्योंकि हम सदा ही स्रष्टा के साथ, सृष्टि के साथ, सृजन के साथ परमात्मा को एक समझने की आदत बना लिए हैं। वह हमारे भय के कारण। हमारी समझ में आता है कि परमात्मा ने बनाया, लेकिन मिटाएगा भी परमात्मा, यह हमारी समझ में नहीं आता, क्योंकि मिटने से हमें भय लगता है।

लेकिन जो बनाएगा, वही मिटाएगा भी। और जो बनने की क्रिया होगी, उसके ही विपरीत मिटने की क्रिया भी होगी। बनना और मिटना, सृजन और संहार, दो नहीं हो सकते, एक ही प्रक्रिया के अंग होंगे। समस्त सृजन विनाश को पैदा करेगा, और समस्त विनाश नये सृजन को जन्म देता है।

और रुद्रों में शंकर हूं! तो कृष्ण यह कह रहे हैं कि विनाश से भी तू परेशान और पीड़ित मत हो। और मृत्यु भी तुझे भयभीत न करे। तू मृत्यु में भी चाहे तो मुझे देख सकता है, क्योंकि वह विनाश की अंतिम शक्ति भी मैं ही हूं।

जैसे व्यक्ति के जीवन में मृत्यु है, वैसे ही सृष्टि के जीवन में विनाश है या प्रलय है। एक—एक व्यक्ति मरता है और जन्मता है, ऐसे ही सृष्टि भी जन्मती है और मरती है! जैसे व्यक्ति बच्चा होता है, फिर जवान होता है, फिर बूढ़ा होता है, फिर मरता है। एक वर्तुल, एक सर्किल पूरा करता है। वैसे ही भारतीय दृष्टि है कि समस्त जीवन भी बच्चा होता है, जवान होता है, का होता है, मृत्यु को उपलब्ध होता है।

पश्चिम में चिंतन की जो धारा है, वह लीनियर है, एक रेखा में है। इसलिए पश्चिम में एवोल्यूशन का खयाल पैदा हुआ, विकास का खयाल पैदा हुआ। डार्विन ने, हक्सले ने और दूसरे विचारकों ने विकास की धारणा को जन्म दिया। विचारणीय है कि भारत ने कभी विकास की ऐसी धारणा को जन्म क्यों नहीं दिया?

पश्चिम की चितना मानती है कि जीवन एक रेखा में चलता है, जैसे रेल की पटरी जाती हो, एक रेखा में सीधा। लेकिन भारत मानता है, इस जगत में सीधी रेखा तो खींची ही नहीं जा सकती। यह बहुत हैरानी की बात है। अगर आप गणित पढ़ते हैं, या ज्यामिति, या ज्यामेट्री पढ़ते हैं और यूक्लिड को समझा है आपने, तो आप कहेंगे कि गलत बात है, क्योंकि यूक्लिड कहता है कि सीधी रेखा खींची जा सकती है। दो बिंदुओं के बीच जो निकटतम दूरी है, वह सीधी रेखा है, स्टेट लाइन है। लेकिन अभी पिछले पचास वर्षों में पश्चिम में नॉन—यूक्लिडियन ज्यामेट्री का जन्म हुआ है, और वह भारत से मेल खाती है।

नॉन—यूक्लिडियन ज्यामेट्री कहती है कि कोई भी रेखा सीधी नहीं है। अगर हम उस रेखा को दोनों तरफ बड़ा करते जाएं, तो अंततः पूरी पृथ्वी पर फैलकर वर्तुल बन जाएगा; किसी भी रेखा को, क्योंकि पृथ्वी गोल है। पृथ्वी पर हम कोई सीधी रेखा नहीं खींच सकते। और भी कहीं हम सीधी रेखा नहीं खींच सकते। कोई भी सीधी रेखा हमें सीधी मालूम पड़ती है, क्योंकि वह इतने बड़े वर्तुल का हिस्सा होती है कि उस वर्तुल का हमें अंदाज नहीं होता। सब सीधी रेखाएं वर्तुल के टुकड़े हैं, खंड हैं। और अगर हम उनको बढ़ाते ही चले जाएं, तो वर्तुल निर्मित हो जाएगा।

भारत का मानना रहा है सदा से नॉन—यूक्लिडियन। कोई रेखा सीधी नहीं है। और जीवन की कोई गति सीधी नहीं हो सकती, क्योंकि कोई रेखा ही सीधी नहीं हो सकती। सब गति वर्तुलाकार है, सर्कुलर है। बच्चा, जवान, का; जन्म और फिर मृत्यु। जहां जन्म होता है, वर्तुल वहीं पूरा होकर मृत्यु बन जाता है।

इसलिए बच्चे और के बहुत अंशों में एक जैसे हो जाते हैं। और जो समाज बूढ़ों के साथ बच्चों जैसा व्यवहार करना नहीं जानता, वह समाज सुसंस्कृत नहीं है। वह समाज असंस्कृत है। लेकिन पश्चिम में बूढ़े के साथ बच्चों जैसा व्यवहार नहीं किया जा सकता, क्योंकि पश्चिम की धारणा है कि चीजें सीधी जा रही हैं, पीछे कुछ नहीं लौटता, वर्तुलाकार नहीं हैं। चीजें एक रेखा में बढ़ती चली जाती हैं, और जो प्रारंभ था, वह फिर कभी दुबारा नहीं मिलेगा।

लेकिन भारत मानता है, सभी गतियां वर्तुल में हैं। चाहे पृथ्वी घूमती हो सूरज के आस—पास, और चाहे पृथ्वी घूमती हो अपनी कील पर, और चाहे सूरज किसी महासूर्य का चक्कर लगाता हो, और चाहे समस्त सूर्य किसी महाकेंद्र की परिक्रमा करते हों, और चाहे ऋतुएं आती हों, और चाहे बचपन, जवानी, बुढ़ापा होता हो, सभी चीजें एक वर्तुल में घूमती हैं। यह समस्त सृष्टि भी एक वर्तुल में घूमती है। गति मात्र वर्तुलाकार है। गति का अर्थ ही सर्कुलर है।

इसलिए हमने संसार नाम दिया है इस जगत को। संसार का अर्थ होता है, दि व्हील। संसार का अर्थ होता है, चाक, घूमता हुआ। वह जो भारत के राष्ट्रीय ध्वज पर चक्र है, वह चक्र कभी बौद्धों ने संसार के लिए निर्मित किया था। संसार एक चक्र की भांति घूमता है। और जो इस चक्र में फंसा रह जाता है, वह घूमता ही रहता है, घूमता ही रहता है। बार—बार उसी चक्र में घूमता रहता है।

तो बुद्ध ने कहा था, जो इस चक्र के बाहर छलांग लगा जाए, वही मुक्त है। जन्म और मृत्यु में जो घूमता है, वह जन्म में चक्कर लगाता रहता है बार—बार। जन्म के बाद मृत्यु होती है, ठीक वैसे ही मृत्यु के बाद जन्म पुन: हो जाता है। बचपन के बाद जवानी होती है, जवानी के बाद बुढ़ापा होता है, बुढ़ापे के बाद मृत्यु होती है; मृत्यु के बाद पुन: जन्म, पुन: बचपन, पुन: जवानी, और एक वर्तुलाकार परिभ्रमण होता रहता है।

यह हमारे छोटे—से व्यक्ति के जीवन में जैसा है, वैसा ही फैलकर विराट अस्तित्व के जीवन में भी है। जगत के जन्म को सृष्टि कहते हैं और जगत की मृत्यु को प्रलय कहते हैं। और पूरा जगत फिर प्रलय के बाद पुन: जन्म पाता है और पुन: यात्रा पर निकल जाता है।

मृत्यु को हम अंत नहीं मानते। मृत्यु को हम केवल एक गहन विश्राम मानते हैं। इसे ऐसा समझें, जैसा दिनभर आप मेहनत करते हैं और रात सो जाते हैं। भारतीय मन सदा से मानता रहा है कि निद्रा भी एक अल्पकालीन मृत्यु है। दिनभर जागते हैं, थकते हैं, रात सो जाते हैं। सुबह पुन: ताजे हो जाते हैं, पुनरुज्जीवित हो जाते हैं। फिर यात्रा पर निकल जाते हैं। जो आदमी सो न सके, वह आदमी जिंदा नहीं रह सकेगा। जो आदमी सो न सके, वह विक्षिप्त हो जाएगा, जल्दी ही थकेगा और टूट जाएगा। रोज—रोज रात मर जाना जरूरी है, ताकि सुबह नया जीवन उपलब्ध हो जाए।

इसलिए रात जो जितनी गहराई से मर सकता है, उतनी ही सुबह गहराई से जागेगा और जीवित होगा। रात जिसकी नींद मौत के जितने करीब पहुंच जाएगी, सुबह उसका जीवन उतना ही जीवन के करीब पहुंच जाएगा। अगर रात भी आप सपने ही देखते रहते हैं और अधूरे जगे रहते हैं, तो सुबह भी आप अधूरे ही उठेंगे। सुबह आपका उठना मरा—मरा होगा। रात जो मरने की कला नहीं जानता, सुबह वह जीने की कला भी नहीं सीख पाएगा।

अगर आप आदिवासियों के पास जाएं, तो आप चकित हो जाएंगे कि लाखों आदिवासी कहते हैं कि उन्होंने कोई सपना नहीं देखा। हम तो सोच भी नहीं सकते कि कोई आदमी ऐसा भी होगा, जो रात सपना नहीं देखता! और आदिवासी जो पुराने समाज हैं, जिनका आधुनिक सभ्यता से संबंध नहीं हुआ, उनमें जब कोई आदमी सपना देखता है, तो एक रेअर, एक विशेष घटना घटती है। सारा गांव इकट्ठा होकर

उस आदमी से पूछना शुरू करता है। एक अनूठी घटना है सपना। सपने का मतलब है कि इस आदमी की सोने की गहराई टूट गई, अब यह सोने में बिलकुल मृत्यु के करीब नहीं पहुंच पाता।

रोज एक मृत्यु घटती है। अगर हम इसे और करीब लाएं, तो और समझ में आ सकेगा। जब आप श्वास भीतर लेते हैं, तब वह जीवन की होती है, और जब आप श्वास बाहर फेंकते हैं, तब वह मृत्यु की होती है। एक—एक श्वास के साथ भी मृत्यु का संबंध जुड़ा हुआ है। जब श्वास बाहर जाती है, तब आप मृत्यु के क्षण में होते हैं; और जब श्वास भीतर आती है, तब आप जीवन के क्षण में होते हैं। एक— एक श्वास में भी जन्म और मृत्यु का पैर जुड़ा हुआ है। इसलिए बाहर श्वास जाती है, उस वक्त आपकी जीवन—ऊर्जा क्षीण होती है। ! जब भीतर श्वास आती है, तब आप जीवंत होते हैं।

एक—एक श्वास में जन्म और मृत्यु। दिन में जन्म और रात में मृत्यु। अगर हम इस पूरे जीवन को जन्म समझें, तो फिर एक मृत्यु। अगर हम इस पूरे जगत को जीवन समझें, तो फिर एक प्रलय। मृत्यु अनिवार्य है जीवन के साथ। मृत्यु विश्राम है, जीवन थकान है। जीवन तनाव है, जीवन श्रम है। मृत्यु विश्राम है, विराम है, पुन: जीवन—शक्तियों को पा लेना है।

। यह सारा विराट विश्व भी थक जाता है! आप ही नहीं थक जाते,। यह सारा विराट विश्व भी थक जाता है। आप ही के नहीं होते,। पहाड़ भी बूढ़े हो जाते हैं, पृथ्वियां भी की हो जाती हैं, सूरज भी के हो जाते हैं। आप ही नहीं मरते, पृथ्वियां भी मरती हैं, सूरज भी मरते हैं, पहाड़ भी मरते हैं। इस जगत में जो भी है, वह मृत्यु और जीवन दोनों में डोलता रहता है।

तो कृष्ण ने कहा कि रुद्रों में मैं शंकर हूं— मृत्यु का, प्रलय का। लेकिन जीवन के विपरीत नहीं है मृत्यु। यही कृष्ण समझाना चाहते हैं अर्जुन को कि तू जीवन और मृत्यु को अलग—अलग करके देखता है। तू सोचता है, जीवन सदा ही हितकारी है और मृत्यु सदा ही। अहितकारी है। ऐसा विभाजन भ्रांत है। ऐसा विभाजन भ्रांत है। मृत्यु विश्राम है।

जीवन तरंग का उठना है आकाश की तरफ, मृत्यु तरंग का वापस सागर में खो जाना है। तू मृत्यु से इतना भयभीत न हो और तू मृत्यु के संबंध में इतनी चिंता मत कर। वह भी मैं ही हूं। और तू यह भी मत सोच कि तेरे द्वारा यह मृत्यु हो रही है। न तेरे द्वारा यह जीवन हुआ है, न तेरे द्वारा यह मृत्यु हो सकती है।

ध्यान रखें, न तो हमारे द्वारा जीवन हुआ है, न हमारे द्वारा मृत्यु हो सकती है। लेकिन हम मान लेते हैं। अगर आप एक बच्चे को जन्म देते हैं, तो आप सोचते हैं, आपने जन्म दिया है।

आप केवल एक पैसेज थे, एक मार्ग थे, जिससे बच्चा जन्मा है। आप सिर्फ एक द्वार थे, एक राह थे, जिससे बच्चा आया है। आपने क्या जन्म दिया है? जो आदमी पिता बन जाता है, उसने कभी सोचा है कि उसने किया क्या है पिता होने के लिए?

अगर हम तथ्य पर उतरें, तो पता चलेगा कि वह आदमी सिर्फ एक मार्ग था। प्रकृति ने उसका मार्ग की तरह उपयोग किया है। जीवन उसके द्वारा आया है, वह लाया नहीं है जीवन को। और सच तो यह है कि जीवन जब उसके द्वारा आता है, तो वह इतना परवश होता है! इसीलिए कामवासना इतनी प्रगाढ़ है कि आप उस पर काबू नहीं पा सकते। क्योंकि जब जीवन धक्के देता है भीतर से, तो आप बिलकुल विवश हो जाते हैं। कामवासना में आप होते कहां हैं! प्रकृति होती है; आप नहीं होते।

और इसलिए समस्त धर्म यह मानकर चलते हैं कि जब तक कोई व्यक्ति कामवासना के पार न चला जाए, तब तक प्रकृति की परवशता नष्ट नहीं होती, तब तक प्रकृति उसे पकड़े ही रखती है। और तब प्रकृति आपको मूर्च्छित कर लेती है। और उस मूर्च्छा में आप द्वार बन जाते हैं। उस द्वार में चाहे आप मां हों और चाहे पिता हों, आप इंस्ट्रूमेंटल हैं, साधन मात्र हैं। जीवन आपका साधन की भांति उपयोग करता है और जन्म लेता है। आप स्रष्टा नहीं हैं, सिर्फ उपकरण हैं।

कृष्ण कह रहे हैं कि जीवन भी तेरे द्वारा नहीं आता और मृत्यु भी तेरे द्वारा नहीं आती। जीवन भी मेरे द्वारा है और मृत्यु भी मेरे द्वारा है। इसलिए तू बीच में चिंता में पड़ता है व्यर्थ ही। इसलिए तू बीच में उदास होता है व्यर्थ ही। इसलिए बीच में तू कर्ता बनता है व्यर्थ ही। तू कर्ता है नहीं।

कृष्ण की सारी शिक्षा का सार अगर अर्जुन को एक शब्द में कहा जा सके, तो वह यह है कि तू अपने को उपकरण से ज्यादा जानता है, तो गलती करता है। तू मात्र एक उपकरण है, एक इंट्रूमेंट है। जीवन की विराट शक्ति तेरे भीतर काम करती है, तू सिर्फ साधन है। और साधन से ज्यादा तू अपने को मत मान। तू एक बांसुरी है, जिसमें से जीवन गीत गाता है। तू बांसुरी से ज्यादा अपने को मत मान। तू एक बांस की पोगरी है, जिससे जीवन प्रकट होता है। लेकिन तू जन्मदाता नहीं है और न ही तू मृत्युदाता है। जन्म भी मैं हूं जीवन भी मैं हूं और मृत्यु भी मैं हूं।

यहां यह भी समझ लेने जैसा है कि हमने शंकर को विनाश का, प्रलय का, अंतिम अध्याय जो होगा जीवन का, उसका सभापति, उसका अध्यक्ष माना। उनकी अध्यक्षता में जीवन समाप्त होगा, प्रलय में डूबेगा। लेकिन शंकर के व्यक्तित्व को मृत्यु से हमने जरा भी नहीं जोड़ा। शंकर को हमने नाचता हुआ नटराज की तरह चित्रित किया है। शंकर को हमने एक महान प्रेमी की तरह चित्रित किया है।

पार्वती की मृत्यु हो गई, तो कथा है कि शंकर उसकी, पार्वती की लाश को लेकर बारह वर्ष तक घूमते रहे। लाश को लेकर! लाश ही रह गई, प्राण तो चले गए; लेकिन ऐसा सघन लगाव था, ऐसा प्रेम

था, ऐसा मोह था गहरा कि उस लाश को कंधे पर लेकर वे घूमते रहे कि शायद कोई जिला दे।

कथा बड़ी मधुर है। लाश सड़ती गई— बारह वर्ष लंबा वक्त है— और एक—एक अंग पार्वती के शरीर के गिरते गए। जहां—जहां उसके अंग गिरे हैं, वहीं—वहीं भारत के तीर्थ निर्मित हुए हैं, ऐसी कथा है। जितने तीर्थ हैं, वह पार्वती का जहां—जहां एक—एक अंग गिरा, वहां—वहां एक—एक तीर्थ निर्मित हुआ है।

मृत्यु का, विनाश का जो देवता है, वह जीवन के प्रति इतने मोह और इतनी आसक्ति और इतने लगाव से भरा हुआ है! और नटराज की तरह हमने उसे चित्रित किया है, नाचता हुआ! जरूर सोचने जैसा है। क्योंकि विनाश के देवता को इस भाषा में हमें चित्रित नहीं करना चाहिए। उचित होता कि हम कहते विराग, वैराग्य, सब तरह से रूखा—सूखा व्यक्तित्व हम निर्मित करते। शंकर का वैसा व्यक्तित्व नहीं है। बहुत रसभीना है। बहुत रस से डूबा हुआ है। और जीवन के प्रति इतने राग से भरा हुआ व्यक्तित्व है! यह विरोध मालूम पड़ता है।

लेकिन इस विरोध में ही भारत की अंतर्दृष्टियां छिपी हैं। भारत मानता है कि सभी विरोधी चीजें संयुक्त होकर ही जीवन को निर्मित करती हैं।

इसे हम ऐसा समझें कि आपके भीतर जो राग की क्षमता है, वही आपकी मृत्यु की क्षमता भी है, तब जरा आपको समझ में आएगा। आपके भीतर जो वासना है, वही मृत्यु भी है। अगर आपकी कामवासना बिलकुल खो जाए, तो आपके भीतर से मृत्यु का भय भी बिलकुल खो जाएगा।

हमें लगता है कि हम कामवासना से जीवन को जन्म देते हैं। निश्चित ही, जब भी आप अपनी कामवासना से एक नये जीवन को जन्म दे रहे हैं, तब आपको पता नहीं कि आप अपनी मृत्यु को निकट भी ला रहे हैं। आपकी जो ऊर्जा जीवन के काम आ रही है, उतनी ही ऊर्जा रिक्त होकर आपकी मृत्यु का भी निर्माण कर रही है। जीवन एक सतत संतुलन है।

इसलिए जो लोग अमरत्व की तलाश में निकले, उन्होंने ब्रह्मचर्य को आधार बना लिया। उसके बनाने का कारण था। क्योंकि यह बात साफ समझ में आ गई कि मृत्यु का द्वार अगर कोई है, तो वह कामवासना है। काम ही उसका दरवाजा है। इसे मैं कुछ उदाहरण दूं तो खयाल में आ जाए। आदमियों में उदाहरण खोजने जरा कठिन हैं, क्योंकि आदमी के लिए यह घटना क्षण— क्षण घटती है और लंबे

फासले पर घटती है। लेकिन अगर हम पशुओं और पक्षियों और कीड़े—मकोड़ों के जीवन में उतरें, तो कई बहुत अदभुत मिसालें हैं।

जैसे अफ्रीका में एक मकोड़ा होता है। वह एक ही बार संभोग कर सकता है। संभोग करते ही मर जाता है। एक ही बार संभोग कर सकता है, लेकिन संभोग करते ही मर जाता है। वह मादा के ऊपर से मुर्दा ही उतरता है, जिंदा नहीं उतरता। लेकिन वैज्ञानिकों ने उसके संभोग का अध्ययन किया है और बड़े चकित हुए हैं। उनका खयाल है कि वह मकोड़ा एक संभोग में जितना सुख— जिसको हम सुख कहते हैं— जितना सुख पाता है, उतना एक आदमी जीवन में चार हजार संभोग करके भी नहीं पाता।

एक साधारण आदमी एक जीवन में कम से कम चार हजार संभोग कर सकता है। इसको अब जांचने के उपाय हैं। जब आप संभोग में होते हैं, तो आपके मस्तिष्क और आपके शरीर में विद्युत के जो आंदोलन होते हैं, बिजली के जो आंदोलन होते हैं, उनको नापने के अब यंत्र उपलब्ध हैं। कि कितने वोल्टेज, कितनी फ्रीक्केंसी की वेक आपके भीतर बिजली की घूमती हैं। और जब आप कहते हैं कि मुझे बहुत सुख मिला, तो वेक बताती हैं कि कितनी गति थी उनकी; जब आप कहते हैं कि कोई सुख नहीं मिला, तो वेब्स बताती हैं कि कितनी गति थी उनकी। उस मकोड़े की जितनी गति होती है वेक की, अब तक कोई आदमी नहीं बता पाया। लेकिन एक ही संभोग में उसकी मृत्यु हो जाती है।

और भी पशुओं पर अध्ययन हुआ है। और अध्ययन यह कहता है कि संभोग, कामवासना एक तरफ जीवन को जन्म देती है, दूसरी तरफ मृत्यु को। जीवन और मृत्यु इतने संयुक्त हैं, सब जगह! जिससे जीवन का जन्म होगा, उसी से मृत्यु का भी जन्म होगा।

इसलिए अगर हमने शिव को, शंकर को विनाश का और मृत्यु का देवता माना, तो हमने दूसरी तरफ उनके जीवन को बहुत रंगीन, बहुत रस— भरा, बहुत मोहासक्त भी चित्रित किया है।

पार्वती के पिता राजी न थे कि शंकर को वर की तरह चुना जाए। कौन मृत्यु के देवता को चुनने को राजी होगा! लेकिन सभी को चुनना पड़ता है। मृत्यु का ही देवता चुनना पड़ता है। पिता राजी न थे, यह स्वाभाविक था। कौन अपनी लड़की के लिए मृत्यु के देवता को चुनेगा! लेकिन कौन है ऐसा, जो मृत्यु के देवता के अतिरिक्त किसी और को चुन सकता है! और उपाय भी तो नहीं है। क्योंकि जन्म और मृत्यु संयुक्त हैं, और कामवासना मृत्यु का द्वार है।

इसलिए पिता इनकार करते रहे कि यह शादी नहीं होनी है, यह शादी नहीं करनी है। लेकिन पार्वती जिद्द पर थी, और उसे शंकर के सिवाय कोई भाता ही न था। स्वाभाविक है। क्योंकि जो मृत्यु का द्वार है, उसमें काम का आकर्षण भी इतना ही प्रबल होगा। जिसमें मृत्यु इतनी सघन है कि सारे जगत का विनाश उसके द्वारा होगा, उसमें वासना भी इतनी ही सघन होगी। यह सघनता समतुल होगी। पार्वती उत्सुक थी। पागल थी। विवाह हुआ। लेकिन पिता राजी न थे।

शंकर का आकर्षण जीवन का आकर्षण है, लेकिन शंकर देवता मृत्यु के हैं। इस सूचना से, इस प्रतीक से हमने यह कहना चाहा है कि जीवन और मृत्यु दो चीजें नहीं हैं। मृत्यु पीछे दिखाई पड़ती है आती हुई, जीवन अभी है। लेकिन जीवन आमंत्रण है और अंततः मृत्यु की गोद ही हमारा विश्राम बनती है।

कृष्ण कहते हैं, शंकर मैं हूं। मृत्यु भी मैं हूं। विनाश भी मैं हूं। जीवन भी मैं हूं। ऐसे वे कहते हैं कि सारे द्वंद्व के भीतर मैं हूं। और जब दोनों द्वंद्व के भीतर एक ही अस्तित्व है, तो द्वंद्व का अर्थ खो जाता है, द्वंद्व व्यर्थ हो जाते हैं।

हीगल ने पश्चिम में डायलेक्टिक्स पर बहुत काम किया है, द्वंद्व पर। और हीगल ने कहा, सारे जगत का विकास द्वंद्वात्मक है, डायलेक्टिकल है। फिर मार्क्स ने इसी बात के आधार पर डायलेक्टिकल मैटीरियलिज्म, द्वंद्वात्मक भौतिकवाद और कम्युनिज्म को जन्म दिया। मार्क्स ने उसमें से छोटी—सी बात पकड़ ली और वह यह कि जैसे जीवन का विकास द्वंद्वात्मक है, वैसे ही समाज का विकास भी द्वंद्वात्मक है। गरीब और अमीर की लड़ाई है और द्वंद्व है।

लेकिन न हीगल को खयाल है, न मार्क्स को, कि भारत और भी गहरी बात करता है। मार्क्स तो बहुत उथली बात करता है, समाज के अस्तित्व की ही। हीगल थोड़ा गहरा जाता है। और हीगल कहता है कि समस्त विकास द्वंद्वात्मक है। लेकिन भारत कहता है कि विकास ही नहीं, अस्तित्व ही द्वंद्वात्मक है। एक्सिस्टेंस इटसेल्फ इज डायलेक्टिकल, सारा अस्तित्व ही द्वंद्व है।

लेकिन द्वंद्व का अर्थ दो नहीं है। विपरीत दो नहीं, ऐसे दो, जो दोनों भीतर गहरे में जुड़े हैं। जैसे नदी है और दो किनारों के बीच बह रही है। हमें किनारे दो दिखाई पड़ते हैं, लेकिन नदी के नीचे हम गहरे में उतरें, तो जमीन संयुक्त है और जुड़ी है। और यह मजे की बात है कि नदी एक किनारा हो, तो बह नहीं सकती, दो किनारे चाहिए। लेकिन दो किनारे भीतर एक हैं, दो नहीं हैं। और अगर सचमुच ही दो किनारे दो हों, तो नदी दोनों के बीच की खाई में खो जाएगी, फिर भी नहीं बह पाएगी।

इसे थोड़ा समझ लें, यह थोड़ा जटिल है।

अगर एक किनारा हो, तो नदी बह नहीं सकती, दो किनारे चाहिए। लेकिन अगर सच में ही दो किनारे दो हों, तो नदी बीच की खाई में खो जाएगी, फिर भी बह नहीं सकती। इसका मतलब हुआ कि दो दिखाई पड़ने चाहिए और दो होने नहीं चाहिए। ऊपर से दो मालूम पड़ने चाहिए, भीतर से एक होने चाहिए।

इसलिए भारत ने डायलेक्टिक्स को, द्वंद्वात्मकता को एक नया अर्थ दिया। द्वंद्व ऊपरी है, अद्वंद्व भीतरी है। द्वैत ऊपर है, अद्वैत भीतर है। दो दिखाई पड़ते हैं, लेकिन वे एक के ही दो रूप हैं।

इसलिए कृष्ण कहते हैं, जीवन भी मैं हूं मृत्यु भी मैं हूं। ये दोनों किनारे मेरे हैं। लेकिन चूंइक दोनों किनारे ही मैं हूं इसलिए दोनों किनारे दो दुश्मन नहीं हैं, बल्कि एक ही अस्तित्व के दो छोर हैं। इसलिए न तू जीवन की चिंता कर अर्जुन, और न तू मृत्यु की चिंता कर। तू दोनों चिंताएं मुझ पर छोड़ दे, वे दोनों मैं हूं। तू व्यर्थ बीच में आकर चिंता अपने सिर ले रहा है।

लेकिन हमें कठिनाई लगती है। लोग आमतौर से कहते हैं कि हम चिंता छोड़ना चाहते हैं, लेकिन अब तक मैंने ऐसे बहुत कम लोग देखे, जो सच में ही चिंता छोड़ना चाहते हैं। कहते हैं जरूर, लेकिन कहने से किसी को भूल में पड़ने की जरूरत नहीं है। सच तो यह है कि वे कहते इसलिए हैं कि यह कहकर वे और एक नई चिंता अपने लिए पैदा करते हैं, कि मैं चिंता छोड़ना चाहता हूं! बस, और कुछ नहीं करते। एक नई चिंता, एक धार्मिक चिंता, एक नई अशांति कि मुझे शांति चाहिए!

लेकिन चिंता कोई छोड़ना नहीं चाहता। गहरे में चिंता छोड़ना बड़ा मुश्किल है, क्योंकि चिंता छोड़ने का अर्थ अहंकार को छोड़ने के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं होता है। अहंकार कोई भी नहीं छोड़ना चाहता। चिंता सभी छोड़ना चाहते हैं। और चिंता के सब फूल—पत्ते अहंकार में लगते हैं। अगर कोई चिंता पूरी छोड़ दे, तो अहंकार तत्काल छोड़ना पड़ेगा।

अर्जुन की तकलीफ क्या है? वह यह कह रहा है कि मैं कर्ता हूं। यह मैं हत्या करूंगा। यह मैं युद्ध करूंगा। यह पाप मेरे ऊपर होगा। तो मैं तो पुण्य करना चाहता हूं। मैं त्याग करता हूं। मैं तो संन्यास लेकर जंगल चला जाऊंगा। मैं तो बैठकर ध्यान, पूजा, प्रार्थना करूंगा। मैं गलत को नहीं करूंगा, ठीक को करूंगा। मैं गलत कैसे कर सकता हूं! मैं तो ठीक ही करूंगा। मैं कर्ता ही बनूंगा, तो अच्छे का बनूंगा, बुरे का नहीं बनूंगा। लेकिन कर्ता मैं रहूंगा। यही उसकी चिंता है, यही उसका संताप है।

ठीक से समझें, तो अहंकार के अतिरिक्त और कोई चिंता जगत में नहीं है।

सभी लोग कहते हैं, हम चिंता छोड़ना चाहते हैं, लेकिन अहंकार कोई नहीं छोड़ना चाहता है। इसलिए और एक नई चिंता सिर पर सवार हो जाती है कि चिंता कैसे छोड़े! लेकिन आपको अगर कोई सच में ही कहे कि चिंता छोड़ने की यह सरल—सी, बहुत सरल—सी कीमिया है, कि आप अपने को कर्ता मत मानें और फिर आप चिंता करके दिखा दें, तो मैं समझूं। आप चौबीस घंटे के लिए तय कर लें कि मैं अपने को कर्ता नहीं मानूंगा। फिर आप चौबीस घंटे में चिंता करके बता दें, तो मैं समझूं कि आपने एक चमत्कार किया है। यह हो नहीं सकता।

चिंता आती ही उसी क्षण में है, जहां मैं कर्ता मानता हूं। जहां मैं कर्ता नहीं मानता, चिंता का कोई सवाल नहीं है। तब मैं इस विराट प्रवाह का एक अंग हो जाता हूं। और करने का सारा भार विराट पर हो जाता है, मुझ पर नहीं। फिर अच्छा हो, तो उसका है; और बुरा हो, तो उसका है। और जीवन आए, तो उसका है। मृत्यु आए, तो उसकी है। बीमारी हो तो, स्वास्थ्य हो तो, सुख हो तो, दुख हो तो, जो भी हो, उसका है। मैं उसका एक हिस्सा हूं। फिर आपको चिंता करने का उपाय नहीं बचता।

इसे ऐसा समझें कि अहंकार घाव की तरह है। उसी घाव में जरा— जरा सी चोट रोज लगती है और चिंता पैदा होती है। अहंकार एक फोड़ा है, नासूर है। उसमें जरा—सी चोट लगी...।

और मजा ऐसा है न, कि अगर आपके पैर में कहीं चोट लग जाए, तो फिर दिनभर आपको उसी में चोट लगेगी! आपने कभी खयाल किया? बल्कि आप चकित भी होंगे कि हद्द हो गई, रोज इसी दरवाजे से निकलता हूं रोज इसी फर्नीचर के पास से गुजरता हूं रोज इसी कुर्सी पर बैठता हूं र रोज इसी टेबल की टांग से मुलाकात होती है, लेकिन आज इन सबने तय क्यों कर रखा है कि मेरे पैर में ही चोट लगती है!

चोट रोज भी लगती थी, आपको पता नहीं चलती थी। क्योंकि पता चलने के लिए फोड़ा चाहिए, घाव चाहिए। चोट कल भी लगती थी, कल भी इस दरवाजे के पास से निकलते वक्त पैर में लगा था, लेकिन आपको पता नहीं चला था। क्योंकि पता चलने के लिए दरवाजे का लगना काफी नहीं है, आपके पास संवेदनशील घाव भी चाहिए जिसमें पता चले।

अहंकार एक घाव है, जिसमें प्रतिपल चोट लगती है। रास्ते से गुजर रहे हैं और कोई अपने ही कारण हंस रहा है, और आपको चोट लग जाएगी। कोई ऐसे ही मौज ले रहा है, और आपको चोट लग जाएगी। कोई दो लोग बात कर रहे हैं एक—दूसरे के कान में, और आपका अहंकार पकड़ लेगा कि आप ही के संबंध में बात की जा रही है।

अहंकार, जिनके पास जितना घाव गहरा है, उनको इस जगत में ऐसा लगता है, सब कुछ उन्हीं के आस—पास हो रहा है! सब कुछ! कोई हंस रहा है, तो उनकी वजह से। कोई रो रहा है, तो उनकी वजह से। जीवन चल रहा है, तो उनकी वजह से। मृत्यु आ रही है, तो उनकी वजह से। अगर वे न होंगे, तो यह सारी सृष्टि खो जाएगी!

अर्जुन भी इसी वहम में है कि उसके ही केंद्र पर यह सब कुछ हो रहा है। सब उसके आधार पर हो रहा है। वह नहीं होगा, नहीं करेगा, या करेगा, इस पर सब कुछ निर्भर है। कृष्य उसे एक ही बात समझा रहे हैं कि कुछ भी तुझ पर निर्भर नहीं है। सब मुझ पर निर्भर है। और जब कृष्ण कहते हैं, सब मुझ पर निर्भर है, तो उनका अर्थ है, विराट पर निर्भर है।

और यक्ष तथा राक्षसों में धन का स्वामी कुबेर हूं।

यह बात और भी कठिन है। यह कठिन इसलिए है कि हम यह भी सोच लें कि वे शंकर हैं, मृत्यु के, विनाश के देवता हैं, स्वयं मृत्यु हैं, यह भी मान लें। लेकिन आज के समाजवादी युग में यह वचन ऐसा लगेगा कि जरूर गीता में कुछ अमेरिकी गुप्तचर विभाग ने डाल दिया है। कुबेर!

कृष्ण कहते हैं, यक्ष तथा राक्षसों का धन का स्वामी कुबेर भी मैं हूं!

हमारा मन होगा, इसको गीता से अलग कर डालना चाहिए। और कुछ भी रहो! कम से कम धनपति होने की तो बात मत कहो! और वह भी कुबेर!

कुबेर के लिए कहा जाता है, उसके पास अक्षय खजाना है, अनंत खजाना है। कोई सीमा नहीं, असीम खजाना है। कुबेर का अर्थ हुआ कि इस अस्तित्व में जो सबसे ज्यादा धनी है।

तो कृष्ण की यह बात जरूर कैपिटलिस्टिक, पूंजीवादी मालूम पड़ती है। इसलिए समझना थोड़ा कठिन होगा। लेकिन हम समझें, तो बहुत महत्वपूर्ण है।

गरीब आदमी कभी भी धन से मुक्त नहीं हो पाता। हो भी नहीं सकता। क्योंकि जो आपके पास नहीं है, उससे आप मुक्त नहीं हो सकते। जो आपके पास है, उससे ही आप मुक्त हो सकते हैं। जरूरी नहीं है कि हो जाएं, लेकिन चाहें तो हो सकते हैं। जो आपके पास नहीं है, उससे मुक्त कैसे होइएगा? जो है ही नहीं, उससे आप बंधे ही रहेंगे, उससे आप घिरे ही रहेंगे। जो नहीं है, वह आपको आकर्षित करता ही रहेगा। जो है, उससे ही छुटकारा हो सकता है। अगर दुनिया में धन की इतनी प्रतिष्ठा है, तो उसका कारण धन नहीं है, उसका कारण गरीबी है।

इसे थोड़ा ठीक से समझ लें।

अगर दुनिया में धन का इतना आकर्षण है, तो उसका कारण धन बिलकुल नहीं है; जैसा कि साधु—संत लोगों को समझाते हैं कि धन में बड़ा आकर्षण है। धन में बिलकुल आकर्षण नहीं है। धन बहुत कम है, इसलिए आकर्षण है। गरीबी बहुत ज्यादा है, इसलिए आकर्षण है। जिस दिन जमीन पर धन ऐसा हो जाए, जैसे हवा—पानी है, उस दिन धन में कोई आकर्षण नहीं रह जाएगा। बल्कि उलटी घटना भी घटती है। जिस गांव में कोई कार नहीं है, उसमें आप कार में निकल जाएं, तो कार में आकर्षण होता है। और जिस गांव में सबके पास कार है, उसमें आप पैदल निकल जाएं, तो पैदल में आकर्षण हो जाता है।

गरीबी के कारण धन में आकर्षण है। दीनता के कारण धन में आकर्षण है। धन हो तो धन में आकर्षण रह नहीं जाता। इसलिए इस दुनिया ने जो बड़े से बड़े निर्धन लोग देखे हैं, वे बडे से बड़े धनी घरों में पैदा हुए हैं।

महावीर या बुद्ध या नेमिनाथ या पार्श्वनाथ, जैनों के चौबीस तीर्थंकर राजाओं के पुत्र हैं! हिंदुओं के सब अवतार राजाओं के पुत्र हैं! बौद्धों के चौबीस बुद्ध राजाओं के पुत्र हैं! और ये सब, इनमें से कोई भी नहीं ऐसा है जो धन के पक्ष में हो। यह बड़े मजे की बात है। महावीर सडक पर भीख मांगते हैं! बुद्ध भिक्षापात्र लिए घूमते हैं! बुद्ध ने तो अपने संन्यासियों को ही भिक्षु का नाम दिया। भिक्षु शब्द इतना आद्दत हो गया— भिखारी! यह बुद्ध को भिक्षा मांगते देखकर आपको कुछ समझ में आता है कि बात क्या है?

जिसके पास धन है, वह धन से मुक्त हो जाता है। और अगर किसी के पास धन भी है और वह मुक्त नहीं हो रहा है, तो उसका मतलब इतना ही हुआ कि उसके पास बुद्धि बिलकुल नहीं है। धन :, हो और मुक्ति न आए, तो समझना कि बुद्धि बिलकुल नहीं है। और अगर धन न हो और मुक्ति उग जाए, तो समझना कि बहुत बुद्धि है।

गरीब तो बहुत बुद्धिमान हो, तो ही धन से मुक्त हो सकता है; बहुत, अतिशय बुद्धिमान हो, तो ही मुक्त हो सकता है। क्योंकि बहुत बुद्धि हो तो ही वह सोच सकता है कि जो नहीं है, अगर होता तो क्या होता। यह बहुत दूरगामी पहुंच है। जो मेरे पास नहीं है, अगर मिल जाए तो क्या होगा, इसको समझने के लिए बहुत गहरी पकड़ चाहिए जीवन के बाबत।

गरीब तो बहुत बुद्धिमान हो, तो मुक्त हो सकता है; लेकिन अमीर अगर बिलकुल बुद्ध हो, तो ही मुक्ति से बच सकता है। धन भी अगर आपके पास है और फिर भी धन की पकड़ नहीं छूटती, तो आप नासमझ हैं। हइ दर्जे के नासमझ हैं! क्योंकि जो है, उस पर से पकड़ तो छूट ही जानी चाहिए।

कृष्ण ने इसमें कहा कि राक्षसों में और यक्षों में मैं धनपति कुबेर हूं। इसमें दो बातें खयाल में लें। एक तो यह कि राक्षस का अर्थ ही होता है, जिसकी आत्मा लोभ है, ग्रीड है। राक्षस कोई जाति नहीं है। राक्षस व्यक्तित्व है, ए टाइप ऑफ पर्सनैलिटी। जहां लोभ ही जिसकी आत्मा है, उस आदमी का नाम राक्षस है। जमीन पर सब तरफ राक्षस हैं, बहुत तरह के राक्षस हैं।

कृष्ण कहते हैं कि अगर राक्षसों में तू मुझसे पूछता हो, तो मैं कोई छोटा—मोटा राक्षस नहीं हूं खुद कुबेर हूं।

लोभ है राक्षस की वृत्ति। कुबेर की हालत मिले, तो ही राक्षस मुक्त हो सकता है लोभ से, नहीं तो नहीं हो सकता। अनंत धन मिल जाए, तो ही धन की खोज बंद हो सकती है राक्षस की, नहीं तो बंद नहीं हो सकती। तो अगर इसे हम ठीक से समझें तो इसका अर्थ हुआ कि राक्षसों में एक कुबेर ही है, जो धन की पकड़ के बाहर है, लोभ के बाहर है।

लोभ के बाहर होना हो, तो दो उपाय हैं। या तो इतनी सजगता और इतनी बुद्धि और इतनी प्रज्ञा बढ़े कि आप जहां हैं, वहीं से लोभ आपको व्यर्थ दिखाई पड़ने लगे, एक। दूसरा रास्ता यह है कि आपके लोभ की इतनी अनंत तृप्ति हो जाए; जितना लोभ मांगता है, उससे ज्यादा आपको मिल जाए; आप मांग न सकें, इतना मिल जाए; आपकी मांग छोटी पड़ जाए, पूर्ति ज्यादा हो जाए; कुबेर की स्थिति पैदा हो जाए, तो आप लोभ के बाहर हो सकते हैं।

गरीब समाज सामूहिक रूप से कभी धार्मिक नहीं होता, व्यक्ति—गत रूप से कोई धार्मिक हो सकता है। अमीर समाज सामूहिक रूप से धार्मिक होने लगता है। और अगर समाज सच में ही अमीर हो जाए, तो समाज की मौलिक वृत्ति धार्मिक होनी शुरू हो जाती है।

यह भारत भी कभी धार्मिक था। यह धार्मिक तभी था, जब सामूहिक रूप से अमीर था। आज तो अगर किसी भी मुल्क के धार्मिक होने की संभावना है, तो वह अमेरिका की है।

गरीब आदमी व्यक्तिगत रूप से धार्मिक हो सकता है, सामूहिक रूप से धार्मिक नहीं हो सकता, क्योंकि जब शरीर की ही चीजें पूरी न होती हों, तो आत्मा की आकांक्षाओं को जगने का मौका नहीं मिलता। और जब नीचे तल की जरूरतें ही पकड़े रखती हों, तो आकाश में उड़ने का अवसर नहीं होता।

धर्म आत्यंतिक विलास है, दि अल्टिमेट लक्सरी। क्योंकि इतनी ऊंची है बात, इतनी ऊंची है, इतनी शिखर की है बात कि जब नीचे से सब जड़ें टूट जाएं और जमीन से सब संबंध अलग हो जाए और आदमी हल्का होकर आकाश में उड़ सके, जमीन की कोई पकड़ न रहे जाए, तब इस आत्यंतिक शिखर को उपलब्ध होता है।

कृष्ण की बात इस संदर्भ में देखने पर समझ में आएगी। वे कहते हैं, राक्षसों में मैं कुबेर हूं। क्योंकि राक्षस जब तक कुबेर न हो जाएं, तब तक परमात्मा की तरफ उनका कोई झुकाव नहीं होता। सिर्फ कुबेर ही झुक सकता है। इससे कम में झुकाव का कोई उपाय नहीं है। जब तक आपके ऊपर इतना न थोप दिया जाए कि उसके वजन में ही आपकी वासना मरने लगे; जब तक इतना आपके ऊपर न गिर पड़े आसमान आपकी आकांक्षाओं की मांगों का, कि आप उसके नीचे ऊब जाएं, तब तक...।

नहीं तो धन के इर्द—गिर्द आपका लोभ आपको घुमाता ही रहेगा, चाहे कितने ही कष्ट उठाने पड़ें। जब तक धन का होना ही कष्ट न हो जाए, तब तक आप धन से ऊपर नहीं उठ पाएंगे। धन के कारण आप कितने ही कष्ट उठा सकते हैं।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन भारत आया। जब उसने कश्मीर में प्रवेश किया, तो उसे बड़ी भूख लगी थी और बड़ी प्यास लगी थी। और पहाड़ी रास्ता था और उसे कुछ दिखाई नहीं पड़ रहा था, कोई आदमी नहीं मिल रहा था। और फिर उसे एक वृक्ष के नीचे एक गांव के बाहर एक आदमी फल बेचता हुआ दिखाई पड़ा। लाल सुर्ख फल थे; नसरुद्दीन ने कभी देखे नहीं थे। उसके मुल्क में होते भी नहीं थे।

उसने एक रुपया निकालकर उस आदमी को दिया कि कुछ फल मुझे दे दो। मैं बहुत प्यासा और भूखा हूं। उस आदमी ने पूरी ही टोकरी उसे उठाकर दे दी। नसरुद्दीन तो बहुत आनंदित हुआ। सोचा भी नहीं था कि एक रुपए में इतने फल मिल जाएंगे।

वह आदमी तो फल देकर चला गया। नसरुद्दीन उसकी जगह बैठ गया और एक फल उसने मुंह में रखा, तो आख से आंसू झरने लगे। वह लाल मिर्च थी। आग लगने लगी मुंह में, लेकिन चबाए चला गया। गटके चला गया! भीतर पेट तक आग की लपटें फैलने लगीं।

और तब एक आदमी पास से निकला। उसने नसरुद्दीन की आख से बहते हुए आंसू और लाल आंखें और कंपता हुआ शरीर देखा। उसने पूछा कि तू यह पागल क्या कर रहा है! यह मिर्च है। खाना मत। रुक। अन्यथा मौत हो जाएगी। नसरुद्दीन ने कहा कि मिर्च खा कौन रहा है? अब तो मैं अपने पैसे खा रहा हूं। मिर्च का खाना तो पहली मिर्च पर ही समाप्त हो गया। लेकिन पैसे खर्च किए हैं।

हममें से भी बहुत लोगों की आंखों में जो आंसू हैं, वे पैसे खाने की वजह से हैं। सब जला जा रहा है बाहर— भीतर, लेकिन पैसे तो खाने ही पड़ेंगे! आदमी की जिंदगी में इतनी जो पीड़ा और परेशानी और कठिनाई है......। जिनके पास पैसे नहीं हैं, उनके पास पैसे न होने से कठिनाई है, लेकिन वह कठिनाई बहुत बड़ी नहीं है। असली कठिनाई खोजनी हो, तो उन आदमियों को देखो जो पैसे खा रहे हैं! उनकी कठिनाई का कोई हिसाब नहीं है; उनकी कठिनाई का कोई अंत नहीं है।

लेकिन यह यात्रा दो ही तरह से रुक सकती है, यह पैसे खाने की यात्रा। या तो आप बिलकुल पैसे के सागर में गिरा दिए जाएं, जैसा कुबेर। और या फिर आपके पास इतनी प्रज्ञा हो और इतना होश हो, इतनी बुद्धि हो, कि आप पैसे खाने से बच सकें।

कृष्ण कहते हैं, राक्षसों में मैं कुबेर हूं।

मैं वह आदमी हूं राक्षसों में, जिसके पास इतना है, इतना अनंत कि उसकी सारी वासना मर गई है। और पाने का कोई उपाय नहीं रहा। और सोचने का और कल्पना करने का उपाय नहीं रहा। कल्पना से ज्यादा जिसके पास है, ऐसा कुबेर का प्रतीक है। कुबेर का अर्थ है, जिसके पास कल्पना से ज्यादा है, वासना से ज्यादा है। कृष्ण कहते हैं, मैं कुबेर हूं।

तथा शिखर वाले पर्वतों में सुमेरु पर्वत हूं श्रेष्ठतम, और पुरोहितों में बृहस्पति हूं देवताओं का पुरोहित। और हे पार्थ, सेनापतियों में स्वामी कार्तिक और जलाशयों में समुद्र हूं। और हे अर्जुन, मैं महर्षियों में भृगु और वचनों में एक अक्षर अर्थात ओंकार हूं। सब प्रकार के यज्ञों में जप—यज्ञ और स्थिर रहने वालों में हिमालय पहाड़ हूं।

इसमें दों—तीन प्रतीक बहुत कीमती हैं साधक की दृष्टि से, वह हम समझ लें।

वचनों में एक अक्षर ओंकार। ओम एक अक्षर है, लेकिन तीन ध्वनियां हैं, अ उ म। इन तीनों की इकट्ठी जो ध्वनि है, वह है ओम। ध्वनिशास्त्र कहता है, अ उ म तीन मौलिक ध्वनियां हैं। सभी ध्वनियां इन्हीं का विस्तार हैं। तीन बीज ध्वनियां हैं, अ उ म। शेष सारी ध्वनियां इनका ही फैलाव हैं। इन तीनों को मिलाकर बनाया है ओम। तो ओम महाबीज है। ओम से तीन ध्वनियां पैदा होती हैं, अ उ म। और फिर तीन ध्वनियों से ध्वनियों का सारा संसार प्रकट होता है।

इसे थोड़ा ऐसा समझना पड़े।

आधुनिक भौतिकी, फिजिक्स कहती है कि समस्त जीवन का मौलिक आधार इलेक्ट्रांस हैं, विद्युत—क्या हैं। भारतीय प्रज्ञा की खोज यह है कि समस्त अस्तित्व का मौलिक आधार ध्वनि—क्या हैं, विद्युत—क्या नहीं। साउंड, ध्वनि मौलिक है। पश्चिम की भौतिकशास्त्र की खोज है कि विद्युत मौलिक है।

लेकिन एक मजे की बात है कि पश्चिम का भौतिकशास्त्र कहता है कि ध्वनि भी विद्युत का एक प्रकार है। एक विशेष प्रकार से पड़ी हुई विद्युत ही ध्वनि बन जाती है। एक विशेष लयबद्धता में विद्युत ध्वनि बन जाती है। और भारतीय शास्त्र कहते हैं कि विद्युत भी ध्वनि का एक प्रकार है। विशेष रूप से की गई ध्वनि, आग को पैदा कर देती है।

इसलिए हम कहानियां सुनते हैं तानसेन की और..। वे सब कहानियां सही हों, न हों, लेकिन उनके पीछे भारतीय दृष्टि कारण है। और वह दृष्टि यह है कि अगर एक विशेष आघात किया जाए ध्वनि का, तो अग्नि पैदा हो जाती है, विद्युत पैदा हो जाती है।

अभी पश्चिम में भी ध्वनिशास्त्र पर नवीनतम खोजें विकसित होती हैं, तो भारतीय प्रज्ञा की खोज महत्वपूर्ण होती जाती है। अब तो वे भी कहते हैं कि यह संभव है कि विशेष ध्वनियों की चोट से आग पैदा हो जाए। क्योंकि उनका कहना है कि ध्वनि भी विद्युत का एक प्रकार है।

शायद यह शब्दों का ही फासला हो। मेरे देखे शब्दों का ही फासला है। ध्वनि का प्रकार विद्युत हो या विद्युत का प्रकार ध्वनि हो, एक बात तय है कि दोनों गहरे में संयुक्त हैं। ज्यादा उचित होगा कहना कि शायद कोई तीसरी ही चीज है, जो दोनों में प्रकट होती है, ध्वनि में और विद्युत में। शायद उसे भारतीय ध्वनि कहते हैं, और उसे आधुनिक विज्ञान विद्युत कहता है। ये शायद शब्दों के फासले हैं।

इसलिए जैसे आज आइंस्टीन का सूत्र, छोटा—सा सूत्र, जो आज के पूरे विज्ञान को समाहित कर लेता है, एनर्जी इज ईक्यल टु एम सी स्कायर। जैसा यह सूत्र आज के समस्त भौतिकशास्त्र को समाहित कर लेता है, वैसे ही ओम पूरब के सारे ध्वनिशास्त्र को समाहित कर लेता है। यह भी एक वैज्ञानिक सूत्र है। अ उ म, इन तीनों को इकट्ठा करके निर्मित हुआ है ओम। और इसके विशेष प्रयोग हैं।

और कृष्य कहते हैं कि समस्त अक्षरों में मैं एक अक्षर हूं ओम। सारे शास्त्र छोड़ दो, हर्ज न होगा। सारे शास्त्र भूल जाओ, हर्ज न होगा, एक ओम याद रह जाए, और एक ओम को अपने भीतर गुंजाने की कला याद रह जाए, और एक ओम के साथ अपने को लयबद्ध करने की क्षमता आ जाए, और ऐसी घड़ी आ जाए कि आप मिट जाओ और भीतर केवल ओम का उच्चार रह जाए, तो परमात्म—सत्ता में प्रवेश हो जाता है। क्योंकि ओम के बाद जो नीचे गिरेगा, फिर वह निर्ध्वनि, शून्य जगत में प्रवेश करता है। फिर वह परमात्मा के एकाकार, निराकार में प्रवेश कर जाता है। ओम द्वार है आखिरी।

अगर ओम से जगत की तरफ चलें, तो फिर अ उ म तीन ध्वनियां, और फिर तीन ध्वनियों से समस्त संसार का विस्तार है। अगर ओम के पीछे चलें, तो ओम के बाद शब्द, ध्वनियां सब खो जाते हैं। अंततः आप भी खो जाते हैं। सिर्फ ओंकार मात्र रह जाता है, सिर्फ ओम मात्र रह जाता है।

इसका अर्थ है कि ओम किसी मनुष्य के द्वारा पैदा की गई ध्वनि नहीं है, अस्तित्व की ध्वनि है। दि साउंड ऑफ एक्सिस्टेंस इटसेल्फ, अस्तित्व की ही ध्वनि है। जैसा कभी आपने सन्नाटे की ध्वनि सुनी है? रात कोई आवाज नहीं है, तो सन्नाटा मालूम पड़ता है। उसकी भी अपनी ध्वनि है। ठीक वैसे ही जब मनुष्य का सब अहंकार, सब विचार, सब शांत हो जाते हैं और गहन मौन होता है, उस मौन में, भीतरी सन्नाटे में, जो ध्वनि सुनाई पड़ती है, उसका नाम ओम है।

उस ओम में प्रवेश ही, कृष्ण कहते हैं, मुझमें प्रवेश है। समस्त अक्षरों में एकाक्षर ओंकार हूं। हजारों प्रकार के यज्ञ हैं, उन यशो में जप—यश हूं।

जप को थोड़ा हम समझ लें। यज्ञ का अर्थ होता है, कोई भी योजना, कोई भी व्यवस्था, जिसके माध्यम से हम अपने और अस्तित्व के बीच सेतु निर्माण करें, एक ब्रिज बनाएं। कोई भी योजना। एक बात तय है कि हम टूटे हुए हैं। अस्तित्व से कहां जुड़े हैं, हमें पता नहीं! कैसे वापस मिलन हो, इसका पता नहीं! तो कोई मार्ग, कोई सेतु, कोई रास्ता बनाने की व्यवस्था का नाम यज्ञ है। बहुत तरह से वह व्यवस्था बन सकती है। और जिस व्यवस्था से भी आप जगत के अस्तित्व से जुड़ जाते हैं, वही व्यवस्था यज्ञ हो जाती है।

इसलिए हजारों प्रकार के यश हैं। और अगर आप ऊपर से देखेंगे, तो आपकी कुछ भी समझ में न आएगा। लगेगा क्रियाकांड है, व्यर्थ का पाखंड है। लेकिन यह तो कोई भी चीज लगेगी।

अगर एक आदमी को, आदिवासी को हम पकड़ लाएं और एक रेडियो को खोलकर उसके सामने बिछा दें, तो वह कहेगा, यह क्या पागलपन है? उसने कभी रेडियो न देखा हो और उसे पता न हो कि तारों की एक व्यवस्था भी ध्वनि को पकड़ने का उपाय बन जाती है, तो वह कहेगा, यह क्या पागलपन है!

और फिर अगर कोई एक आदमी कहे कि मैं इस यंत्र को निर्मित कर रहा हूं और तारों को जोड़ता चला जाए, तो उस आदिवासी को तो यह आदमी भी पागल मालूम पड़ेगा कि यह क्या क्रियाकांड कर रहे हो! पागल हो गए हो! इसके द्वारा तुम सोचते हो कि दूर, हजारों मील दूर दिल्ली की आवाज पकड़ोगे!

स्वभावत:, उसके कहने में भी भूल नहीं है। उसका तर्क भी उचित है, उसके अनुभव पर आधारित है। अगर रेडियो आपने भी न देखा होता, तो आप भी यही कहते। अगर बिजली आपने भी न देखी होती और आप देखते एक मैकेनिक को यहां आकर तार फैलाते हुए और वह कहता कि तारों को फैलाकर रात यहां दिन जैसा उजाला कर देंगे, तो आप भी कहते कि दिमाग खराब हो गया है। सिगमंड फ्रायड ने लिखा है अपने संस्मरणों में कि पहली दफा जब उसके गांव में बिजली आई, तो उसका एक मित्र देहात से उसके घर मेहमान हुआ। सिगमंड फ्रायड भूल गया बताना कि बिजली कैसे बुझाई जाती है बटन से। उस आदमी को तो पता नहीं था। उसने लालटेन बुझाई थी, चूल्हे की आग बुझाई थी, सब बुझाया था। लेकिन बटन से भी कोई चीज बुझने वाली है, इसकी उसे कोई कल्पना भी नहीं हो सकती थी। संकोचवश उसने पूछा भी नहीं। कई दफा खयाल तो आया कि यह लालटेन कैसे बुझेगी! लेकिन यह सोचकर कि कोई मुझे मूढ़ समझेगा, अगर मैं पूछूं।

तो उसने सोचा सब सो जाएं, कमरा बंद करके कोई उपाय निकाल लेंगे और बुझा देंगे। कमरा बंद करके उसने बहुत उपाय किए। सब तरफ से फूंका। कुर्सी रखकर, ऊपर चढ़कर बल्व को फूंका। हिलाया। सब तरफ जांचा—परखा कि कोई तरकीब हो, कुछ हो। कहीं कुछ न था! उस बल्व में कोई बुझने का उपाय ही न था! आपको लगेगा, कैसा पागल था! लेकिन आप गलती करते हैं, उसके साथ अन्याय करते हैं। आप भी होते, यही करते। क्योंकि दूर दीवाल पर कहीं कोई छिपी हुई दरवाजे की आडू में बटन होगी, यह खयाल भी आए तो कैसे आए! आपको आ जाता है, क्योंकि आपको पता है। उसको पता नहीं था।

आधी रात तक उसने सब तरह के उपाय कर लिए। फिर उसने सोचा कि अब ऐसे ही आख बंद करके पड़े रहो, अब सुबह देखा जाएगा। रातभर लेकिन बार—बार उसको खयाल छूटे न, कि वह किसी तरह बुझ जाए तो अच्छा है।

सुबह जब फ्रायड ने उससे पूछा कि नींद तो ठीक हुई? उसने कहा, नींद तो सब ठीक हुई। लेकिन अब मैं अपनी छूता का खयाल छोड्कर पूछता हूं कि इस लालटेन को बुझाने का भी कोई उपाय है या नहीं? रातभर इसे मैं बुझाता रहा हूं। सब मैंने अपनी बुद्धि लगा दी! फ्रायड ने जाकर बटन दबाई। वह लालटेन बुझ गई। वह आदमी चमकृत हो गया। उसने कहा, क्या जादू करते हो! यह क्या मंत्र है!

जिस योजना की हमें व्यवस्था का पता न हो, वह योजना व्यर्थ मालूम पड़ने लगती है। बहुत—से यज्ञ इसीलिए व्यर्थ मालूम पड़ने लगे हैं। उनके भीतर कुछ द्वार हैं। वे भी योजनाएं हैं। उन योजनाओं से भी कहीं से संबंधित होने का मार्ग है। कुछ लोग आग जलाकर बैठे हैं और घी छिडक रहे हैं।

अब तो करीब—करीब पागलपन की हालत है, क्योंकि जो छिड़क रहे हैं, उनको भी पता नहीं कि वे क्या कर रहे हैं। जो देख रहे हैं, उनको भी पता नहीं कि वे क्या कर रहे हैं। क्या हो रहा है, क्यों हो रहा है, कुछ भी पता नहीं। हमारे हाथ में कुछ बातें रह गई हैं अधूरी। अन्यथा उनका पूरा का पूरा विज्ञान है, पूरी साइंस है। और एक विशेष व्यवस्था से जगत के अस्तित्व में प्रवेश होने का उपाय है। उस उपाय का नाम यश है।

कृषण कहते हैं, इन सब उपायों में जप—यश मैं हूं क्योंकि इन सब में सूक्ष्म और सबसे श्रेष्ठ जप— यश है।

जप—यज्ञ का अर्थ है, अपने भीतर ध्वनियों का एक ऐसा संघात निर्मित करना, ध्वनियों का एक ऐसा जाल निर्मित करना अपने भीतर कि वह जो परम ध्वनि है जगत की, उससे हमारा संबंध हो जाए। अपने भीतर ए सिस्टम ऑफ पर्टिकुलर साउंड पैदा करना, ताकि बाहर के जगत में जो ध्वनियों का फैलाव है, उनसे हमारा तालमेल हो जाए।

जब आप अपने भीतर कहते हैं, ओम, ओम, ओम, तब आप अपने भीतर अपने रोएं—रोएं को एक विशेष ध्वनि से संवादित, प्रभावित कर रहे हैं। अगर यह ध्वनि व्यवस्था से की जाए, तो आपका रोआं—रोआं, आपके शरीर का कोष्ठ—कोष्ठ इससे आंदोलित हो जाएगा। अगर यह ध्वनि ठीक से की जाए, तो बहुत शीघ्र आपका पूरा शरीर एक स्टेशन, एक ब्राडकास्टिंग स्टेशन हो जाएगा। आपके पूरे शरीर से एक विशेष ध्वनि इस विस्तार में, चारों तरफ के विस्तार में आंदोलित होने लगेगी।

और जब आपका पूरा शरीर एक विशेष ध्वनि में लयबद्ध हो जाता है, तब तत्कण बाहर के जगत से, उस ध्वनि से मेल खाती ध्वनि और आपके बीच सेतु निर्मित हो जाता है। यह सेतु निर्मित करने का अर्थ है जप—यज्ञ।

इसलिए सारे धर्मों ने अलग— अलग रूपों में जप का प्रयोग किया है। अलग—अलग नामों का प्रयोग किया है। कोई भी हो नाम, कोई भी हो मंत्र, लेकिन मौलिक आधार यही है कि आप अपने शरीर को एक ऐसी ध्वनि की व्यवस्था में ले आएं, कि विराट जगत में जो ध्वनि चल रही हैं, उनसे आपका संबंध निर्मित हो जाए। और यह संबंध निर्मित...।

कभी आपने खयाल किया हो, आप मेरी बात सुन रहे हैं, अगर सच सुन रहे हैं, तो आपको कई बातें पता नहीं चलेंगी, क्योंकि आप एक विशेष ढंग से मेरी ध्वनि से आबद्ध हो गए हैं। मैं बंद करूंगा बोलना, किसी को पता चलेगा, पैर सो गया है। घंटेभर तक उसे पता नहीं था! किसी को पता चलेगा, पैर में कंकड़ गड़ रहा है। घंटेभर से उसको कंकड़ गड़ने का पता नहीं था! किसी के हाथ में तकलीफ थी, किसी के सिर में दर्द था, वह घंटेभर भूल गया था। घंटेभर बाद मैं बोलना बंद करूंगा, दर्द वापस लौट आएगा। दर्द नहीं जाएगा; दर्द मुझे सुनकर नहीं जा सकता। लेकिन आप एक विशेष ध्यान में आबद्ध हो गए थे, इसलिए बहुत—से द्वार आपके अनुभव के बंद हो गए और एक ही तरफ आपकी चेतना प्रवाहित हो रही थी।

युद्ध के मैदान पर छुरी, तलवार, भाला भी घुस जाए, तो योद्धा को पता नहीं चलता। उसकी सारी चेतना फोकस्ड होती है। खेल के मैदान पर चोट लग जाए पैर में, हाकी लग जाए, पता नहीं चलता। खेल बंद होता है, तब पता चलता है कि खून बहा जा रहा है। क्या हुआ क्या था? आपकी चेतना एक दिशा में आबद्ध हो गई थी, सब दिशाएं बंद हो गई थीं।

जप—यज्ञ विराट की तरफ अपनी चेतना को आबद्ध करना है, फोकसिंग है, और सब तरफ से बंद हो जाना है। उस क्षण में आप किसी और लोक में प्रवेश कर जाते हैं।

कृष्य कहते हैं, यज्ञों में मैं जप—यश हूं।

जप—यज्ञ सूक्ष्मतम है। बाहर आग जलाना स्थूल बात है, मंत्र से भीतर भी आग जलाई जा सकती है। बाहर घी डालना स्थूल बात है, भीतर की आग में भी शीतल घी मंत्र से डाला जा सकता है। बाहर आयोजन करना स्थूल है, भीतर आयोजन करना सूक्ष्म है। सूक्ष्मतम आयोजन ध्वनि का है।

कभी आपने खयाल किया कि अगर आपके सारे शब्द छीन लिए जाएं, तो आप क्या बचेंगे? आपके पास जितने शब्द हैं, वे सब छीन लिए जाएं, तो आप क्या होंगे? एक सिफर, एक शून्य। आप सिवाय शब्दों के और क्या हैं? अगर एक आदमी के मस्तिष्क से हम सारी ध्वनियां निकाल लें, वह आदमी पूरा का पूरा वैसा ही रहेगा, लेकिन बिलकुल मूढ़ हो जाएगा, जड़ हो जाएगा। जीवित रहते हुए मुर्दा हो जाएगा।

आप हैं क्या? आप कुछ ध्वनियों का जोड़ हैं, कुछ शब्दों का जोड़ हैं। उससे ज्यादा आप नहीं हैं। इन्हीं शब्दों के बीच एक नये शब्द, एक नई ध्वनि की व्यवस्था को निर्मित करना है।

एक आदमी है, वह राम—राम, राम—राम अपने भीतर कह रहा है। वह कहे चला जाता है। धीरे— धीरे, धीरे— धीरे, धीरे— धीरे उसके चारों तरफ, भीतर उसके शरीर की दीवाल से राम—राम—राम सटते चले जाते हैं। राम की ध्वनि उसके शरीर की दीवाल से सब तरफ चिपकती चली जाती है। एक वक्त आता है कि एक राम—नाम का शरीर उसके भीतर पैदा हो जाता है। बाहर उसका शरीर रह जाता है, भीतर उसका अपना होना होता है। और दोनों के बीच में एक राम— नाम की........।

लोग राम—नाम की चदरिया ओढ़ते हैं, उससे कुछ न होगा। एक भीतर ओढी जाती है चदरिया इस शरीर के भीतर। इसके ऊपर ओढ़ने से बहुत फर्क नहीं पड़ता है। लेकिन अच्छा है। इसके भीतर ओढ़ने का उपाय है। और तब राम—राम सटता चला जाता है, इकट्ठा होता चला जाता है, उसकी पर्त बन जाती है भीतर। और वह पर्त बड़े अदभुत काम करना शुरू कर देती है, क्योंकि उस पर्त के साथ आप ध्वनियों के एक नये जगत में प्रवेश करते हैं। और जो बातें कल तक आपको अनुभव में नहीं आती थीं, वे आनी शुरू होती हैं; और जो कल तक अनुभव में आती थीं, वे बंद होने लगती हैं।

इसलिए कृष्ण कहते हैं कि मैं यज्ञों में जप—यज्ञ हूं और स्थिर रहने वालों में हिमालय पहाड़ हूं।

जैसे ही कोई जप में गहरा उतरता है, वैसे ही मन के कंपन कम हो जाते हैं। धीरे— धीरे कंपन खो जाते हैं और एक स्थिर हिमालय, एक स्थिर शिखर भीतर निर्मित हो जाता है।

गीता दर्शन—भाग—5
आभिजात्य का फूल—(प्रवचन—दसवां)
अध्याय—10

सूत्र—

अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां देवर्षीणां च नारदः ।
गन्धर्वाणां चित्ररथः सिद्धानां कपिलो मुनिः ।।26।।
उच्चैः श्रवसमश्वानां विद्धि माममृतोद्‌भवम्।
ऐरावत गजेन्द्राणां नराणां च नराधियम्।।27।।
और सब वृक्षों में पीपल का वृक्ष और देवर्षियों में नारद मुनि तथा गंधर्वों में चित्ररथ और सिद्धों में कपिल मुनि हूं। और हे अर्जुन तू घोडों में अमृत से उत्पन्न होने वाला उच्चैःश्रवा नामक घोड़ा और हाथियों में ऐरावत नामक हाथी तथा मनुष्यों में राजा मेरे को ही जान।

और सब वृक्षों में पीपल का वृक्ष, देवर्षियों में नारद मुनि तथा गंधर्वों में चित्ररथ और सिद्धों में कपिल हूं।

एक तीसरे द्वार से कृष्ण और प्रतीकों का भी उपयोग करते हैं, वृक्षों में पीपल!

पीपल बहुत विशेष वृक्ष है। हिंदुओं की मान्यता के अनुसार ही नहीं, वनस्पतिशास्त्र के अनुसार भी। और वनस्पतिशास्त्र के अनुसार ही नहीं, अब तो मनोविज्ञान के अनुसार भी। सारे वृक्ष रात्रि में कार्बन डाइआक्साइड छोड़ते हैं, सिर्फ पीपल को छोड्कर। पीपल भर रात में कार्बन डाइआक्साइड नहीं छोड़ता है।

इसलिए किसी भी वृक्ष के नीचे रात रुकना हानिकर है, सिर्फ पीपल को छोड्कर। किसी भी वृक्ष के नीचे रात रुकने का अर्थ घातक हो सकता है। कार्बन डाइआक्साइड की मात्रा बढ़ जाए, तो मृत्यु भी घटित हो सकती है। इसलिए रात्रि वृक्षों के नीचे रहने की मनाही है। लेकिन पीपल के वृक्ष के नीचे रात भी रहा जा सकता है। पीपल इस अर्थ में अनूठा है। चौबीस घंटे उससे जीवन निःसृत होता है।

मनोविज्ञान के हिसाब से अब एक बहुत अनूठी बात का पता चला है। मनसविद और शरीरशास्त्री दोनों ही निरंतर इस खोज में रहे हैं कि मनुष्य की चेतना का केंद्र कहां है। शरीर में सारी ग्रंथियों की खोज—बीन की गई है। मस्तिष्क में जिन ग्रंथियों के पास चेतना की निकटता मालूम पड़ती है, उन ग्रंथियों में जो रसस्राव है, बहुत चकित करने वाली बात है कि मस्तिष्क में जिस कारण बोध और चेतना निर्मित होती है, या जिसके अभाव में आदमी बेहोश हो जाता है, उस रासायनिक तत्व की सर्वाधिक उपलब्धि पीपल वृक्ष में है। मनुष्य के भीतर जो बुद्धि है, उस बुद्धि के प्रकट होने के लिए जिस

रासायनिक प्रक्रिया की जरूरत है और जिन रासायनिक तत्वों की मस्तिष्क में जरूरत है, उनकी सर्वाधिक मात्रा पीपल में उपलब्ध है। कॉलिन विल्सन ने मजाक में ही लिखा है, लेकिन विचारपूर्ण है बात। उसने लिखा है कि बुद्ध का बुद्धत्व जिस वृक्ष के नीचे हुआ— वट—वृक्ष, वह पीपल की जाति का ही वृक्ष है—उस वृक्ष के नीचे बुद्ध का बुद्धत्व घटित होना, किसी गहरे अर्थ में वृक्ष से भी संबंधित हो सकता है। क्योंकि चैतन्य की प्रक्रिया जिस रासायनिक संभावना से बढ़ती है, वह वट या पीपल, उस तरह के वृक्षों में सर्वाधिक है।

तो बोधि—वृक्ष, सिर्फ बुद्ध के नीचे बैठने से बोधि—वृक्ष कहलाए, ऐसा नहीं। बोधि—वृक्ष सारे वृक्षों में सर्वाधिक बुद्धि की संभावना वाला वृक्ष भी है।

कृष्ण कहते हैं, वृक्षों में मैं पीपल हूं।

इसका अर्थ यह हुआ कि अगर हम परमात्मा की खोज करने जाएं वृक्षों में भी, तो जहां भी बुद्धिमत्ता की छोटी—सी किरण हो, उसी से हमें खोज करनी पड़ेगी। जहां भी बुद्धिमत्ता है, वहीं ईश्वर है। अगर वृक्ष में भी बुद्धिमत्ता की कोई किरण है, तो वहीं ईश्वर है।

वर्षों तक वितान ऐसा सोचता था कि बुद्धि केवल आदमी में है, लेकिन वह बात भ्रांत सिद्ध हुई। बुद्धि पशुओं में भी है। उसकी मात्रा भिन्न होगी, उसका ढंग और होगा। उसे हम न समझ पाते हों, यह भी हो सकता है, क्योंकि हमसे पशुओं की बुद्धि का कोई संवाद नहीं है। लेकिन अब तो विज्ञान यह भी स्वीकार करता है कि पौधों में भी बुद्धि है। और पौधों के पास भी स्मृति है, मेमोरी है। और पौधे भी स्मृति को संरक्षित रखते हैं। शायद शीघ्र ही हम ये सारे रास्ते खोज लेंगे, जिनसे पौधों की स्मृति को भी खोला जा सके।

तो बोधि—वृक्ष के नीचे अगर बुद्ध को शान उत्पन्न हुआ हो, तो इस बोधि—वृक्ष को बुद्ध के इस शान के होने की घटना की भी स्मृति है। और वह वृक्ष तो अब तक बचाया जा सका है। बोधि—वृक्ष, जिसके नीच बुद्ध को ज्ञान हुआ, अब तक सुरक्षित है। क्या उस वृक्ष के अंतस्तल में, बुद्ध के जीवन में जो घटना घटी उस वृक्ष के नीचे, वह जो महाप्रकाश हुआ, उसकी कोई स्मृति संरक्षित है?

अब वैज्ञानिक कहते हैं कि वृक्षों की भी, पौधों की भी स्मृति है। उनका भी बोध है और उनकी भी संवेदनशीलता है। इतना ही नहीं, वे कहते हैं...। और इस पर अब काफी प्रयोग किए जा चुके हैं, रूस में, अमेरिका में, दोनों जगह। अब ऐसे यंत्र भी निर्मित हुए हैं, जो यह बता सकें कि वृक्ष की भावदशा क्या है।

जैसे आप बैठे हों और अचानक एक आदमी छुरा लेकर आपके सिर पर खड़ा हो जाए, आप भयभीत हो जाएंगे। आपके रोएं—रोएं में भय का संचार हो जाएगा। तो अब वैज्ञानिक यंत्र उपलब्ध हैं, जो आपके पास लगे होंगे, वे तत्काल खबर दे देंगे कि आप भय से कैंप रहे हैं। आपके भीतर भय दौड़ रहा है। क्योंकि जब आपके भीतर भय दौड़ता है, तो आपके शरीर की विद्‌युत, आपके शरीर की बिजली, एक खास ढंग से कंपित होने लगती है। वह कंपन पास के विद्‌युत यंत्रों में पकडा जा सकता है। जब आप प्रेम से भरे होते हैं, तब भी आपके भीतर दूसरे तरह के कंपन होते हैं। जब आप आनंद से भरे होते हैं, तो तीसरे तरह के कंपन होते हैं।

यह आश्चर्य की बात है, अचानक ही यह घटना घट गई। अचानक ही, एक वैज्ञानिक को ऐसे ही खयाल आया कि आदमी तो कैंप जाता है, क्या पशु भी इसी तरह, उनके भीतर भी कुछ इसी तरह की स्थिति बनती होगी? तो उसने पशुओं पर प्रयोग किए। पशु भी इसी तरह भयभीत होते हैं, प्रेम से भरते हैं, क्रोध से भरते हैं। उसे खयाल आया, क्या पौधे में भी यह संभव होगा?

तो उसने अपने कमरे में लाकर एक गमला रखा पौधे का, छुरा उठाकर आया पौधे के पास कि पौधे को अब काटे, तो पता चले कि पौधे को कटते वक्त भीतर क्या होता है। लेकिन वह चकित हुआ, जब वह छुरा पास लाया, तभी उसके यंत्र ने बताया कि पौधे के प्राण भीतर वैसे ही भय से कंप रहे हैं, जैसे आदमी के प्राण भय से कंपते हैं। छुरा मारा नहीं है अभी। अभी सिर्फ छुरा लेकर वह खड़ा है। तब तो स्वीकार करना पड़ेगा कि पौधे के पास भी हमारे जैसी ही संवेदनशीलता, हमारे ही जैसी आत्मा है।

और भी आकस्मिक रूप से एक घटना घटी कि वह जिस पौधे के ऊपर छुरा लेकर खड़ा था, उसके पास रखे दूसरे पौधे में भी भय का संचार हो गया। और तब तो उसने बहुत—से प्रयोग किए। और उसने पाया कि अगर आप एक पौधे को भी जाकर बगीचे में नुकसान पहुंचाते हैं, तो आपके चारों तरफ जितने पौधे आस—पास होते हैं, वे सब भी दुखी और पीड़ित हो जाते हैं; वह पौधा तो होता ही है।

तब तो इसका यह अर्थ हुआ कि पौधे की संवेदनशीलता शायद आदमी की संवेदनशीलता से भी ज्यादा शुद्ध है। क्योंकि आपके पास में कोई मारा जा रहा हो, तो जरूरी नहीं है कि आप दुखी हों; खुश भी हो सकते हैं, सुखी भी हो सकते हैं। लेकिन उस वैज्ञानिक के प्रयोगों में ऐसा कभी उसने नहीं पाया कि एक पौधे को काटा जा रहा हो, या काटे जाने की स्थिति बनाई जा रही हो, तो पास का कोई भी पौधा प्रसन्न हुआ हो। वे सभी एक साथ दुखी हो जाते हैं।

आदमी में ऐसा पाना मुश्किल है। अगर हिंदू मारा जा रहा हो, तो मुसलमान खुश हो सकता है। मुसलमान मारा जा रहा हो, हिंदू खुश हो सकता है। मित्र मारा जा रहा हो, तो दुख होता है, दुश्मन मारा जा रहा हो, तो हम प्रसन्न भी हो सकते हैं। उस वैज्ञानिक के प्रयोगों से यह पता चला है कि पौधों में ऐसा दुर्भाव नहीं है, ऐसी ईर्ष्या और ऐसी शत्रुता—मित्रता का विभाजन नहीं है।

यह पूरा जीवन ही आत्मा से व्याप्त है। हम पहचान पाते हों, न पहचान पाते हों; हम समझ पाते हों, न समझ पाते हों; क्योंकि हमारी समझ की बड़ी छोटी—सी सीमा है। आदमी की समझ आदमी के बाहर काम नहीं पड़ती। सच तो यह है कि एक आदमी की समझ भी दूसरे आदमी के काम नहीं पड़ती। और एक आदमी की समझ भी दूसरे आदमी को समझने में असमर्थ हो जाती है।

हम सब राबिन्सन क्रूसो हैं अलग—अलग। दूसरे तक भी पहुंचना मुश्किल होता है। आपको मैं खुश देखता हूं तो भी मैं आपकी खुशी नहीं समझ पाता कि आपके भीतर क्या हो रहा है। आपकी

मुस्कुराहट देखता हूं? आपके चेहरे पर आ गई झलक देखता हूं लेकिन आपके भीतर कौन—सा सुख घटित हो रहा है, कैसे सुख की तरंग आपके भीतर बह रही है, उसका मैं कोई अनुभव नहीं कर पाता, अनुमान लगाता हूं। वह अनुमान झूठा भी हो सकता है। क्योंकि आप अभिनय कर रहे हों, यह भी हो सकता है।

हममें से अधिक लोग अभिनय कर रहे हैं। उससे बड़ी जटिलता पैदा होती है। हर आदमी को अपने दुख का पता होता है और दूसरे आदमी की झूठी हंसियों का पता होता है, झूठी मुस्कुराहटों का। तो हर आदमी सोचता है, मुझसे ज्यादा दुखी कोई भी नहीं। सारे लोग कितने प्रसन्न मालूम हो रहे हैं! हर आदमी सोचता है, सारे लोग प्रसन्न हैं, सारी दुनिया खुश मालूम होती है, मैं ही एक दुखी हूं मैं ही एक परेशान हूं! यह परमात्मा मुझसे ही नाराज क्यों है!

उसे पता नहीं कि वह भी जब दूसरों के सामने मुस्कुराता है, जब सुबह उससे कोई रास्ते पर पूछता है कि कैसे हो, तो वह कहता है, बहुत अच्छा हूं मजे में हूं, तब उसे पता भी नहीं कि भीतर उसके न कोई मजा होता है, न बहुत अच्छे की कोई खबर होती है, लेकिन

उस दूसरे आदमी को वहम पैदा होगा कि बहुत मजे में है, बहुत अच्छा है। यह औपचारिक वक्तव्य था।

हमारे चेहरे औपचारिक हैं, फार्मल हैं, दूसरों को दिखाने के लिए हैं। भीतर वैसी बात नहीं है। हमारा दुख भी जरूरी नहीं कि सच्चा हो। हमारा सुख भी जरूरी नहीं कि सच्चा हो। लेकिन हम दूसरों के चेहरे ही देख सकते हैं, उनकी आत्मा को नहीं देख पाते। हम अंदाज लगा सकते हैं कि ऐसा ही हमें होता है। किसी आदमी की आख से आंसू गिर रहे हों, तो हम अनुमान लगाते हैं, इनफरेंस करते हैं कि जब दुख होता है, तो मेरे आंसू बहते हैं। उसको भी दुख हो रहा होगा। यह जरूरी नहीं है। यह आवश्यक नहीं है। यह अनुमान है।

एक आदमी की समझ भी दूसरे के प्राणों में प्रवेश नहीं कर पाती दूसरे आदमी की, जो कि ठीक हमारे जैसा ही है। तो अगर आदमी की समझ पशुओं में प्रवेश न कर पाए, तो कोई आश्चर्य नहीं है। इसलिए दुनिया के बहुत—से धर्मों ने पशुओं में आत्मा ही नहीं मानी, इसलिए पशुओं को काटने में कोई अड़चन नहीं पाई। समझा कि पशु शायद आदमी के लिए ही बने हैं कि उनको काटो; वे आदमी का भोजन हैं! उसका कुल कारण इतना था कि पशुओं के पास आत्मा के होने का जो ढंग है, उससे हमारा कोई संबंध नहीं। जुड़ पाता। हमारे और पशुओं के बीच कोई संवाद नहीं हो पाता।। हमारी और उनकी भाषा कहीं मिल नहीं पाती। उनके संकेत हमारी समझ में नहीं आते। और इसलिए स्वभावत:, पशु हमारे लिए यंत्रवत मालूम होता है।

फिर पौधे तो और भी दूर हो जाते हैं। इसलिए पौधों को तो कोई कठिनाई हम सोच ही नहीं सकते कि उनको पीड़ा होती होगी, कि दुख होता होगा, कि सुख होता होगा, कि वे भी कभी आनंदित होकर समाधिस्थ होते होंगे, कि कभी वे भी नाचते होंगे किसी खुशी में, और कभी उनके प्राणों से भी आंसू बहते होंगे। उनके आंसू का ढंग हमें पता नहीं, उनकी मुस्कुराहट हमें पता नहीं, उनकी भाषा का कोई संकेत भी हमारे पास नहीं है।

लेकिन इस मुल्क में हमने और— और रास्तों से भी मनुष्य इतर अस्तित्व में प्रवेश करने की कोशिश की है। महावीर इतने अभिभूत हो गए थे समस्त जीवन, जहां—जहां भी अस्तित्व है, वहां—वहा जीवन है, इससे; कि उन्होंने अपने साधुओं को कहा है कि गीली जमीन पर भी मत चलना। क्योंकि गीली जमीन पर अगर घास का अंकुर भी हो गया हो, तो उस अंकुर पर भी पैर पड़ जाना हिंसा है। उन्होंने कहा है कि कच्चे फल को तोड़कर मत खाना। क्योंकि कच्चा फल जब तोड़ा जाता है, तो वृक्ष के प्राणों में वैसी ही पीड़ा होती है, जैसे कोई आपका हाथ तोड़ ले। जब वृक्ष से फल पक जाए और गिर जाए, तभी।

महावीर की अहिंसा शायद आने वाले पचास वर्षों में पुनर्स्थापित हो सके। क्योंकि विज्ञान जो खोज कर रहा है पौधों के भीतर संवेदना की, वह महावीर को सही सिद्ध कर जाएगी कि वे ठीक कहते थे, कि वहां भी प्राण इतना ही है, जितना हमारे भीतर। वहां भी संवेदना इतनी ही है, जितनी हमारे भीतर। वहां भी आत्मा इतनी ही है, जितनी हमारे भीतर।

कृष्ण कहते हैं, वृक्षों में मैं पीपल हूं।

आपको तो अंदाज नहीं होगा, लेकिन जो लोग— बहुत कम लोग जमीन पर वृक्षों के साथ मेहनत किए हैं—जिन्होंने पता लगाने की कोशिश की कि वृक्षों में सबसे ज्यादा प्रतिभा कहां है। तो उन सबके नतीजे पीपल जाति के वृक्षों के करीब आते हैं। पीपल बहुत प्रतिभावान, बहुत प्रज्ञावान वृक्ष है। वृक्षों में प्रज्ञा सर्वाधिक उसमें। प्रकट हुई है।

इसलिए पीपल की पूजा ऐसे ही आकस्मिक शुरू नहीं हो गई थी।। वह पीपल के भीतर जो प्रज्ञा की संभावना है, उसके कारण शुरू हो गई थी।

कई बार जब विज्ञान खो जाते हैं, तो हमारे हाथ में अंधविश्वास रह जाते हैं। आज भी हम पीपल के नीचे अपने परमात्मा को स्थापित करते हैं, मूर्ति को निर्मित करते हैं। आज भी हम पीपल की पूजा करते हैं, आज भी पीपल को नमस्कार कर लेते हैं, उसको सिर झुका लेते हैं। लेकिन शायद हमें पता कुछ भी नहीं कि हम क्या कर रहे हैं और क्यों कर रहे हैं! और अगर पता न हो, तो हमारे नमस्कार में कोई भी अर्थ नहीं रह जाता।

पीपल को नमस्कार का एक ही अर्थ है कि प्रज्ञा कहीं भी हो, नमस्कार के योग्य है। पीपल में हो, तो भी।

लेकिन हम तो अगर मनुष्य भी हमारे पड़ोस में प्रज्ञावान हो, तो उसको भी नमस्कार करने में पीड़ा अनुभव करेंगे। और पीपल को हम नमस्कार कर लेंगे! और अगर पड़ोसी में भी प्रज्ञा हो, उसमें भी शान का जन्म हुआ हो, तो भी हमारा सिर उसके सामने नहीं झुकेगा। तो साफ है कि हमें पता नहीं कि पीपल को नमस्कार करते वक्त हम क्या कर रहे हैं। पीपल को नमस्कार करते वक्त कौन—सा विज्ञान काम कर रहा है, कौन—सा स्मरण काम कर रहा है, उसका हमें कोई भी बोध नहीं है।

अगर वृक्षों में भी प्रज्ञा स्थापित होती हो, अगर उनमें भी कहीं बुद्धि का फूल खिलता हो, तो भी हमारा सिर झुकेगा, यह भाव है। लेकिन आदमी में अगर प्रज्ञा का फूल खिले, तो हमारा तो सिर वहां भी झुकने को राजी नहीं होता। अहंकार बाधा डालता है।

और मजे की बात यह है कि जो आदमी पीपल के सामने आसानी से झुक सकता है, वह आदमी के सामने आसानी से न झुक सकेगा। क्योंकि पीपल के सामने झुकने में ऐसा हमें खयाल ही नहीं होता है कि हम किसी के सामने झुक रहे हैं। आदमी के सामने झुकने में पता चलता है, हम किसी के सामने झुक रहे हैं।

इसलिए पत्थर की मूर्ति के सामने सिर रख देना आसान है, जिंदा आदमी के सामने सिर रखना बहुत कठिन है। इसीलिए जब गुरु मर जाते हैं, तो मूल्यवान हो जाते हैं। जब जिंदा होते हैं, तब मूल्यवान नहीं होते। क्राइस्ट मर जाएं, तो ईश्वर हो जाते हैं। जिंदा हों, तो सूली पर लटकाए जाते हैं! बुद्ध जिंदा हों, तो हम पत्थर मारते हैं। और मर जाएं, तो हम उनकी इतनी प्रतिमाएं बनाते हैं कि सारी पृथ्वी को उनकी प्रतिमाओं से भर देते हैं! क्या होगा कारण? क्या होगा राज इसके भीतर?

अगर जीसस हमारे सामने खड़े हों, तो ठीक हमारे ही जैसा आदमी सामने होता है। सिर झुकाने में हमें पीड़ा मालूम पड़ती है, कष्ट होता है, अहंकार को चोट लगती है। लेकिन क्राइस्ट मौजूद न हों, बुद्ध खो गए हों, महावीर मौजूद न हों, कृष्ण मौजूद न हों, तो हमें कोई अड़चन नहीं होती, क्योंकि सामने कोई भी नहीं होता। लेकिन ध्यान रहे, मुर्दा गुरु कितना ही बड़ा हो, उससे उतना लाभ नहीं लिया जा सकता, जितना छोटे से छोटे जिंदा गुरु से लिया जा सकता है।

लेकिन जिंदा गुरु के सामने झुकना बहुत मुश्किल बात है। और यह हालत यहां तक पहुंच गई है कि अब अगर किसी गुरु को आपको अपने चरणों में झुकाना हो, तो उसे एक ही काम करना चाहिए, उसे कहना चाहिए, कोई मेरा पैर न छुए। कोई मेरे सामने न झुके। बल्कि अच्छा तो यह हो कि वह आपके चरणों में झुके, तो आपको लगे कि ही, यह आदमी ठीक है।

एक मित्र मुझे मिलने आए थे। उन्होंने कहा कि मैं कृष्णमूर्ति से बहुत प्रभावित हुआ। मैंने कहा, कारण क्या है प्रभावित होने का? तो उन्होंने कहा, जब मैं उनके पास मिलने गया और उनके सामने बैठकर बात करने लगा, तो उन्होंने हाथ मेरे घुटने पर रख लिया और वे अपना हाथ मेरे घुटने पर सहलाते हुए मेरे पैर पर भी ले गए।

यह उन्होंने किसी प्रेम के क्षण में किया होगा। लेकिन उनको भी पता नहीं होगा कि इस आदमी के अहंकार को रस आया, इस आदमी के अहंकार को मजा आया।

इधर मैंने देखा है कि कृष्णमूर्ति के पास, जिनको हम गहनतम अहंकारी कहें, उन लोगों की भीड़ इकट्ठी हो गई है। और उसका कुल एक कारण है। उसका कुल एक कारण है कि कृष्णमूर्ति कहते हैं, न मैं गुरु हूं न मैं अवतार हूं न मैं शिक्षक हूं न मैं तुम्हें सिखाने वाला हूं।

मैं तो कुछ भी नहीं हूं। लोग चालीस—चालीस साल से उनको सुन रहे हैं। चालीस साल से निरंतर उनसे सीख रहे हैं। लेकिन यह सुनकर उनके मन को बड़ी तृप्ति मिलती है कि नहीं, कृष्णमूर्ति किसी के गुरु नहीं हैं। इसका गहरा मजा यह है कि मैं किसी का शिष्य नहीं हूं।

यह बहुत मजे की बात है। कृष्णमूर्ति जीवनभर अहंकार से मुक्त होने की बात करते हैं। ठीक बात करते हैं। लेकिन जो वर्ग उनके आस—पास इकट्ठा होता है, वह गहन अहंकार वाले लोगों का वर्ग है। उसको मजा आता है। उसे लगता है कि बिलकुल ठीक है।

यह वर्ग महावीर और बुद्ध के पास इकट्ठा कभी भी नहीं होगा। यह वर्ग कृष्ण के पास नहीं जा सकता। क्योंकि कृष्ण कहेंगे, सर्व धर्मान परित्यज्य मामेकं शरणं वज— सब छोड़, सब धर्म—वर्म छोड़ और मेरी शरण आ। यह वर्ग कहेगा, क्या आप कह रहे हैं? आपकी शरण और हम आएं! आपमें ऐसा क्या है? आप हैं कौन?

यह वर्ग जो कृष्णमूर्ति के पास इकट्ठा है, यह कृष्ण के पास इकट्ठा नहीं हो सकता। लेकिन मजे की बात यह है कि इस वर्ग को कृष्ण के पास पहुंचने से ही लाभ होगा। इस वर्ग को कृष्णमूर्ति के पास लाभ नहीं हो सकता। जो वर्ग कृष्ण के पास इकट्ठा है, वह अगर कृष्णमूर्ति के भी पास हो, तो उसको लाभ हो सकता है।

आप मेरा मतलब समझे?

अगर विनम्र आदमी कृष्णमूर्ति के पास भी इकट्ठे हों, तो उनको लाभ हो सकता है। लेकिन अहंकार वाले आदमी के अहंकार को तो और पुष्टि मिल जाती है।

यह हमारी सदी ईश्वर को इनकार करने की सदी है। इसलिए नहीं कि हमको पता चल गया है कि ईश्वर नहीं है। बल्कि इसलिए कि हमारी सदी इस पृथ्वी के इतिहास में सबसे ज्यादा अहंकारग्रस्त, सबसे ज्यादा ईगोसेंट्रिक, अहंकार—केंद्रित सदी है। हम ईश्वर को भी बर्दाश्त नहीं कर सकते। हमसे ऊपर कोई ईश्वर हो, इसको भी हम बर्दाश्त नहीं कर सकते।

पश्चिम में एक विचार चलता है, ह्यूमनिस्ट, मानवतावादियों का। वे कहते हैं, मनुष्य के ऊपर और कोई भी सत्य नहीं है। मनुष्य आखिरी सत्य है।

लेकिन जब कोई कहता है, मनुष्य आखिरी सत्य है, तो उसका अर्थ है कि अब प्रगति का कोई उपाय न रहा। जब कोई कहता है, मनुष्य आखिरी सत्य है, तो उसका अर्थ है कि अब ऊपर आंखें उठाने की कोई जगह न रही। उसका अर्थ है कि अब हम जो हैं, अब हम वही होने को आबद्ध हैं। अब इसमें कोई क्रांति, इसमें कोई विस्फोट, इसके पार जाने का अब कोई उपाय नहीं है।

अपने से श्रेष्ठतर की तरफ जो आख है, वह पार जाने का उपाय है, द्वार है। और जिस दिन आदमी स्वयं के पार जाना बंद कर देता है, उसी दिन आदमी सड़ जाता है, नष्ट हो जाता है।

नीत्शे ने कहा है, जिस दिन आदमी की प्रत्यंचा पर, जिस दिन आदमी के धनुष पर दूर और आदमी के पार जाने का बाण नहीं चढ़ेगा, उसी दिन आदमी समाप्त हो जाएगा।

सदा अपने से पार जाना है। लेकिन पार जाना तभी संभव है, जब पार जाने वाली किसी बात के प्रति हमारा समर्पण हो।

ये हिंदू बहुत अदभुत लोग थे एक अर्थ में, कि अगर पीपल में भी उन्हें कोई पार जाने वाली चीज दिखाई पड़ी, प्रज्ञा की कोई झलक मिली, कोई लौ, कोई छोटा—सा दीया वहां भी दिखाई पड़ा, तो उन्होंने वहां भी अपना सिर जमीन पर रख दिया।

कोई जरूरत नहीं है आदमी को पीपल के सामने झुकने की। क्या है जरूरत? और पीपल की क्या है सामर्थ्य कि आदमी को अपने सामने झुका ले! आदमी चाहे तो काटे और सारे पीपल पृथ्वी से अलग कर दे। लेकिन असहाय पीपल के सामने भी, जिसको काटकर हटाया जा सकता है, जब आदमी ने सिर झुकाया, तो कुछ गहरा कारण था। और वह गहरा कारण यह था कि समस्त वृक्षों में पीपल के पास एक अपनी तरह की बुद्धिमत्ता है। उस बुद्धिमत्ता से संबंध भी जोड़ा जा सकता है।

यूनानी चिकित्सा के जन्मदाता लुकमान ने एक लाख वनस्पतियों के गुणधर्म लिखे हैं। बड़ी चकित करने वाली बात है। क्योंकि लुकमान के पास न तो कोई प्रयोगशाला थी, न कोई रासायनिक उपाय थे, न यंत्र थे, जिनके माध्यम से एक लाख वनस्पतियों के गुणधर्म जाने जा सकें। लुकमान तो गांव—गांव भटकने वाला फकीर था। एक झोली के सिवाय उसके पास कुछ भी न था, जिसमें उसका भिक्षा का पात्र होता। इस लुकमान को एक लाख वनस्पतियों के गुणधर्मों का पता चलना, बड़ी हैरानी की बात है। और इसके पहले किसी को भी पता न था, इसलिए किसी दूसरे से पता चला हो, इसका उपाय नहीं है।

लुकमान ने खुद जो कहा है, वह भरोसे की बात नहीं थी। लेकिन अब उस पर भरोसा आ सकता है। इसलिए मैं अक्सर कहता हूं कि हमें जल्दी गैर— भरोसा नहीं करना चाहिए, क्योंकि हो सकता है, बाद की खोज—बीन हमारे संदेहों को गिरा दे।

लुकमान ने कहा है कि मैंने तो पौधों से ही पूछ लिया कि तुम्हारा गुणधर्म क्या है! और तो मेरे पास कोई उपाय न था। मैं तो पौधों के पास ही आख बंद करके ध्यानस्थ होकर बैठ जाता था। उसी से पूछ लेता था कि तू किस बीमारी में काम आ सकता है, तू मुझे बता दे! पौधा जो बता देता, वह मैं लिख लेता था। ऐसे मैंने एक लाख पौधों से पूछ लिया।

और बड़ी हैरानी की बात है कि लुकमान ने जिस पौधे का जो गुणधर्म कहा है, हमारी श्रेष्ठतम विज्ञान की प्रक्रिया भी उससे भिन्न गुणधर्म नहीं बता पाती है। वही गुणधर्म उस पौधे के हैं! उसी बीमारी पर वह काम आता है!

तो इतिहासविदों को, चिकित्साशास्त्रियो को, सभी को हैरानी रही है कि कोई कारण तो दिखाई नहीं पड़ता है कि लुकमान को पता कैसे चला। लेकिन लुकमान जो कारण बताता है, वह भी मानने योग्य मालूम नहीं पड़ता। पौधे क्या बताएंगे!

लेकिन अभी अमेरिका में इस सदी में एक आदमी हुआ, कायसी। और कायसी की घटना ने सिद्ध किया कि लुकमान ने ठीक कहा होगा। क्योंकि कायसी को अचानक एक क्षमता उपलब्ध हो गई। कायसी बहुत बीमार था। और चिकित्सकों ने इनकार कर दिया। सब तरह की चिकित्सा हुई, वह ठीक नहीं हुआ, नहीं हुआ। ठीक नहीं हुआ। उन्होंने इनकार कर दिया।

कायसी इतना दुखी हो गया कि आत्मघात का सोचने लगा। एक दिन वह आत्मघात का सोचते—सोचते बेहोश हो गया। और बेहोशी में उसने जोर से चिल्लाकर कहा कि यह—यह दवा अगर मुझे दी जाए, तो मैं ठीक हो जाऊंगा। घर के लोगों ने वह दवा नोट कर ली। चिकित्सकों से पूछा। उन्होंने कहा, ऐसी दवा का हम नाम भी नहीं जानते! यह कौन—सी दवा है! और जब कायसी होश में आया, तो उसे भी कुछ पता नहीं था कि उसने कोई दवा का नाम लिया है। दवा की खोज—बीन की गई। वह दवा मिल गई। लेकिन दवा ऐसी थी कि बीस साल पहले किसी ने स्विटजरलैंड में उसका पेटेंट करवाया था। लेकिन बनाई नहीं गई थी। फिर कभी बाजार में आई नहीं। सिर्फ पेटेंट था उसका। कभी बाजार में विज्ञापन नहीं हुआ। कभी चिकित्साशास्त्र की किताबों में उसका नाम नहीं आया। कभी किसी डाक्टर ने किसी मरीज को वह दी नहीं। किसी ने दवा बनाई थी। पेटेंट करवाई। और फिर वह कभी बाजार में नहीं आ सकी। वह आदमी मर गया, जिसने दवा बनाई थी। लेकिन उसका फार्मूला पेटेंट था।

उस नाम का कायसी को पता चलना एक चमत्कार था। कायसी अमेरिका में था और स्विटजरलैंड में वह पेटेंट हुआ था। वह दवा बनाई गई और कायसी उससे ठीक हो गया। तब तो कायसी के हाथ में एक सूत्र लग गया। फिर तो उसने अंदाजन एक लाख मरीजों को ठीक किया। इस सदी की यह सबसे बड़ी चमत्कारपूर्ण घटना थी। जैसे लुकमान वापस आ गया हो।

कायसी किसी भी मरीज को, उसका नाम, पता आप भेज दें। वह बेहोशी में, रोज बेहोश होगा, और रोज बेहोशी में वह जवाब दे देगा, कि यह—यह दवा! कायसी विद्यार्थी नहीं था चिकित्साशास्त्र का, दवाओं के नाम भी उसे पता नहीं थे। बीमारियों का उसे कोई अंदाज नहीं था। लेकिन बेहोशी में वह बोल देता था, यह—यह दवा उपयोग आएगी। और वह दवा सदा उपयोग में आती थी। और उस दवा से ऐसे मरीज ठीक हुए, जिनको चिकित्साशास्त्र ने ठीक करने की सामर्थ्य छोड़ दी थी।

कायसी को क्या हो रहा था? रहस्यपूर्ण मामला है। कायसी भीतर चेतना के किस तल पर उतर रहा था? उसका भी कुछ साफ नहीं है। कायसी को खुद भी कोई पता नहीं था। कायसी खुद भी होश में आकर डरता था कि मैं नहीं जानता, कोई ठीक होगा या नहीं होगा। और यह दवा लेने से फायदा होगा या नुकसान होगा, इसकी मेरी कोई जिम्मेवारी नहीं है। क्योंकि बेहोशी में मैंने कहा है, उसकी। क्या जिम्मेवारी? यह आप अपनी जिम्मेवारी पर ले सकते हैं!

क्या कायसी और बीमारियों के बीच कोई अंतर्संबंध स्थापित हो जाता था? क्या कायसी और दवाओं के बीच कोई अंतर्संबंध स्थापित हो जाता था? कई बार तो कायसी कहता था, फलां वृक्ष की पत्तियां और फलां वृक्ष का फूल और यह—यह मिलाकर दे देने से ठीक हो जाएगा। और आदमी उसको दे देने से ठीक हो जाते थे। क्या कायसी को वनस्पतियों से कोई अंतर्संबंध स्थापित हो जाता था?

कायसी की घटना ने पुनर्विचार का मौका दिया कि शायद लुकमान ठीक कहता हो। और तब भारतीय आयुर्वेद के संबंध में भी बहुत—सी बातें साफ हो सकती हैं। क्योंकि भारतीय आयुर्वेद के पास भी जो शान उपलब्ध हुआ है, वह ज्ञान सिर्फ प्रयोगशाला से उपलब्ध हुआ हो, ऐसा नहीं मालूम पड़ता। उसमें बहुत—सा ज्ञान तो वनस्पतियों के साथ सीधे संबंध, अंतर्संबंध से उपलब्ध हुआ है। क्या कोई रास्ते हैं जिनसे हम वनस्पतियों से भी संबंधित हो सकते हैं? रास्ते हैं। आप अपने भीतर जितने गहरे उतरते हैं, उतने ही आप अस्तित्व में भी गहरे उतरते जाते हैं। आप अगर एक कदम नीचे उतरें, तो आप पशुओं से संबंधित हो सकते हैं। और एक कदम नीचे उतरें, तो आप वनस्पतियों से संबंधित हो सकते हैं। और एक कदम नीचे उतरें, तो आप खनिज पदार्थों से संबंधित हो सकते हैं। आप जितने अपनी गहराई में उतरते हैं, उतने ही आप अस्तित्व के गहरे तलों से संबंधित हो सकते हैं।

कृष्ण का यह कहना कि वनस्पतियों में मैं पीपल हूं सिर्फ प्रतीक ही नहीं है; बहुत उदबोधक है।

दूसरा प्रतीक कृष्ण कहते हैं, देवर्षियों में मैं नारद मुनि।

नारद एक अनूठा चरित्र हैं। शायद विश्व की किसी भी माइथोलाजी में नारद जैसा चरित्र नहीं है। अगर नारद को हम समझना चाहें, तो दों—तीन बातें समझें, तो खयाल में आए कि कृष्ण को नारद से अपना संबंध जोड़ने की क्या जरूरत पड़ी होगी!

नारद पहली बात तो गंभीर व्यक्तित्व नहीं है, गैर—गंभीर व्यक्तित्व है। नारद के व्यक्तित्व में गंभीरता बिलकुल नहीं है। जीवन को एक खेल और नाटक से ज्यादा समझने की वृत्ति नहीं है। और जीवन को एक मनोरंजन, एक उत्सव, और वह भी बहुत गैर—गंभीर ढंग से।

तो नारद के साथ कृष्ण का यह कहना कि देवर्षियो में मैं नारद हूं कुछ बातों की सूचना है। एक तो यह सूचना है कि कृष्ण, जो गंभीर ऋषि हैं, उनके साथ अपने को नहीं जोड़ेंगे। नहीं जोड़ने का कारण है। गंभीरता भी एक तरह की बीमारी है। सीरियसनेस एक तरह की बीमारी है। और गहरी बीमारी है।

गंभीर आदमी न तो हंस सकता है, न नाच सकता है, न जी सकता है। गंभीर आदमी जीता है मरा—मरा। गंभीर आदमी की जिंदगी एक क्रमिक मौत है। गंभीर आदमी होता है आत्मघाती, स्युसाइडल। गंभीरता उसके ऊपर होती है, जैसे मरघट उसके चारों तरफ हो, जिंदगी नहीं। और गंभीर आदमी न तो प्रार्थना कर सकता है, न पूजा कर सकता है। क्योंकि पूजा और प्रार्थना, सब जीवन के उत्सव से संबंधित हैं, जीवन की गंभीरता से नहीं।

गंभीर ऋषि हुए हैं। लेकिन जो गंभीर ऋषि है, उसका अर्थ यह हुआ कि अभी जीवन के आधे हिस्से से ही उसने अपने को एक माना है, शेष आधे हिस्से से नहीं। जीवन की समग्रता से उसका संबंध नहीं है। जीवन के अधूरे हिस्से से उसका संबंध है। जो ठीक है, उससे उसका संबंध है; जो साफ—सुथरा है, उससे उसका संबंध है; जो उपयोगी है, उससे उसका संबंध है। लेकिन जो गैर—उपयोगी है, जो मात्र खेल है, जो मात्र मनोरंजन है, उससे उसका संबंध नहीं है। हम सोच भी नहीं सकते कि ऋषि झूठ बोल सके, लेकिन नारद बोल सकते हैं। हम सोच भी नहीं सकते कि ऋषि किसी को उलझाए, लेकिन नारद उलझा सकते हैं। हम सोच भी नहीं सकते कि ऋषि को इसमें कुछ रस आए, उलझाने में, लेकिन नारद को रस है। तो जो गंभीर हैं, वे तो नारद को ऋषि तक मानने को राजी न होंगे।

मैं मुल्ला नसरुद्दीन की आपको न मालूम कितनी बार कहानियां कहता हूं। मुल्ला नसरुद्दीन सूफियों के लिए एक बड़े से बड़ा मिस्टिक है, बड़े से बड़ा रहस्यवादी है। अधिक लोग तो समझते हैं, वह एक मूढ़ है। कोई समझता है, वह एक जोकर है, एक लोगों को हंसाने वाला व्यक्ति है। लेकिन सूफी मानते हैं कि मुल्ला नसरुद्दीन एक गहरे से गहरा रहस्यवादी संत है। और वह है।

लेकिन जीवन को गंभीरता से लेना उसका ढंग नहीं है। और बहुत बार आपके ऊपर भी मजाक करना हो, तो वह अपने ऊपर मजाक करवाता है। और बहुत बार आपकी कोई कमजोरी प्रकट करनी हो, तो वह अपनी ही कमजोरी के द्वारा उसको जाहिर करता है। बहुत बार आप पर न हंसकर, वह खुद अपने को इस हालत में रख देता है कि आप उस पर हंसे। वह पूरी मनुष्य—जाति को एक कास्मिक जोक, एक विराट मजाक समझता है।

नारद भी उसी तरह का व्यक्तित्व हैं, दूसरे पहलू से। नारद के लिए जगत एक मंच है, एक नाटक है। और कृष्य का नारद को चुनना, कि देवर्षियो में मैं नारद हूं कुछ बातों की सूचना देता है।

एक, कि जगत को एक खेल और एक नाटक से जो ज्यादा समझता है, वह आदमी धार्मिक नहीं है। यह बहुत कठिन मालूम पड़ेगा। क्योंकि धार्मिक आदमी जगत को बड़ी गंभीरता से लेता है, बड़ी गंभीरता से! धार्मिक आदमी जगत के प्रति बड़ा गणित का हिसाब रखता है, कैलकुलेटिग होता है। धार्मिक आदमी मजाक में भी असत्य का उपयोग नहीं कर सकता। और धार्मिक आदमी एक— एक कदम सम्हलकर रखता है कि कहीं कोई भूल—चूक न हो जाए। धार्मिक आदमी हंसता है, तो भी सोचता है, हंसना कि नहीं हंसना!

ईसाइयों ने तो मान रखा है कि जीसस कभी हंसे ही नहीं। कभी नहीं हंसे। मैं तो नहीं मान सकता कि यह बात सच होगी, लेकिन ईसाइयत ऐसा मानती है कि जीसस कभी हंसे नहीं। क्योंकि हंसना तो प्रोफेन, बहुत अपवित्र मालूम होता है। जीसस जैसा आदमी हंसे! नहीं।

तो ईसाइयों ने जीसस का जैसा चेहरा बनाया, उदास, जैसे सारी दुनिया का बोझ उनके ऊपर है। और ईसाई मानते भी हैं कि सारी दुनिया का पाप उन्होंने अपने ऊपर ले लिया, तो निश्चित ही भारी बोझ हो जाएगा! एक आदमी का पाप ही एक आदमी के ऊपर काफी बोझ है। और जीसस सारी दुनिया का पाप अपने ऊपर ले लिए हैं! और जीसस के द्वारा सारे जगत की मुक्ति का उपाय हो रहा है! तो भारी उपक्रम है, भारी बोझ है।

लेकिन मैं मानता हूं कि जीसस को समझा नहीं जा सका। जीसस को समझना मुश्किल पड़ा है। खुद जीसस के व्यक्तित्व को हम ठीक से देखें, तो हमें पता चलेगा कि यह बात ठीक नहीं मालूम पड़ती है। जीसस जरूर हंसते रहे होंगे। क्योंकि जीसस अच्छे खाने से भी प्रेम करते थे, सुंदर स्त्रियों को भी पसंद करते थे, भोजन में शराब भी थोड़ी ले लेने में उन्हें कोई हर्ज न था। ऐसा आदमी न हंसा हो, यह माना नहीं जा सकता। लेकिन इनके आस—पास जरूर कुछ गंभीर लोग इकट्ठे हो गए होंगे।

एक मजे की बात है कि दुनिया में कुछ गंभीर लोग पैथालाजिकली बीमार हैं। और ऐसे लोग धर्म की तरफ बड़ी जल्दी आकर्षित होते हैं। उसका कारण है, क्योंकि जिंदगी में उनको कहीं कोई उपाय नहीं मिलता अपनी उदासी के लिए। तो बीमार तरह के लोग मंदिरों में, मस्जिदों में और चर्चों में इकट्ठे हो जाते हैं। जिंदगी तो हंसती मालूम पड़ती है, वहां उन्हें बिलकुल जिंदगी बेकार मालूम पड़ती है। जहां भी फूल खिलते हैं, वहां वे बिलकुल भाग खड़े होते हैं। जहां कोई हंसता है, प्रसन्न होता है, वहां से वे हट जाते हैं।

तो बीमारों और विक्षिप्तों के समूह कहीं न कहीं तो इकट्ठे होंगे। और धर्म उनके लिए बहुत सुगम उपाय है। क्योंकि धर्म के नाम पर उदास होना, एक रेशनलाइजेशन बन जाता है, एक बुद्धियुक्त बात बन जाती है। फिर उनकी उदासी को आप बीमारी नहीं कह सकते, उनकी उदासी तपश्चर्या हो जाती है। और उनके दुख को फिर आप यह नहीं कह सकते कि तुम नाहक दुखी हो। उनका दुख एक मेटाफिजिक्स, एक दर्शनशास्त्र बन जाता है। वे दुखी यूं ही नहीं हैं, बल्कि वे दुखी लोग इकट्ठे होकर सभी हंसने वालों को पापी कहेंगे।

और हालत यह है— यह सोचने जैसी है— कि दुखी लोग हमेशा मुखर होते हैं। पीड़ित और परेशान लोग बहुत बकवासी होते हैं। वे काफी बोलने वाले लोग होते हैं। वे अपने दुख को मुखर कर देते हैं, और वे दुख के आस—पास दर्शनशास्त्र खड़े कर लेते हैं। और जो हंसता है, उसे वे कंडेम, उसे वे निंदा कर सकते हैं।

अगर हम दुनिया के धर्मों का इतिहास देखें, तो बड़ी दुर्घटना मालूम पड़ती है। महावीर बहुत प्रसन्न आदमी मालूम पड़ते हैं। उनके रोएं—रोएं से प्रसन्नता की झलक है। उनके रोएं—रोएं से जो हवा उठती है, वह एक गहरे आनंद की है। लेकिन उनके आस—पास धीरे— धीरे जो वर्ग इकट्ठा होता है, वह बिलकुल ही रुग्ण है।

कृष्ण तो बांसुरी बजाते हुए मालूम पड़ते हैं। नाचते हुए मालूम पड़ते हैं। जिंदगी से उन्हें प्रेम है। जिंदगी एक उत्सव है। और जिंदगी अपने आप में एक आनंदपूर्ण खेल है। लेकिन बांसुरी बजाने वाले आदमी के आस—पास भी ऐसे लोग इकट्ठे होने लगते हैं, जो उदास हैं, रुग्ण हैं, जिंदगी से थके हैं, परेशान हैं। धीरे— धीरे ये लोग सख्ती से संगठन निर्मित कर लेते हैं। और सारे धर्म पैदा होते हैं आनंद से, और सारे धर्म दुखी लोगों के हाथ में पड़ जाते हैं।

धर्म जब भी पैदा होता है, तो किसी विराट आनंद से पैदा होता है; और जब भी धर्म संगठित होता है, तो गलत लोग उसे संगठित कर लेते हैं। असल में आनंदित आदमी तो संगठित होना भी नहीं चाहता। आनंदित आदमी तो अकेला भी काफी होता है। लेकिन दुखी आदमी समूह इकट्ठे करने लगते हैं। उदास आदमी समूह इकट्ठे करने लगते हैं।

कृष्य का यह वक्तव्य बहुत विचारने जैसा है कि वे कहते हैं कि मैं देवर्षियों में नारद हूं।

जिंदगी एक नाटक है। और वही है ऋषि, जो जिंदगी की पूरी नाटकीयता को समझ ले। जीवन एक खेल है, एक लीला है। उसे जो गंभीरता से लेता है, वह बीमार है। जिंदगी को जो हल्केपन से ले ले, खेल से ज्यादा मूल्य का न माने..।

इसे हम ऐसा समझें तो आसान हो जाए। एक आदमी धन इकट्ठा करता है, बड़ी गंभीरता से। एक—एक पाई—पाई जोड़ता है। वहीं जिंदगी लगी है उसकी। सभी कुछ यही है। अगर वह एक ढेर लगा लेगा धन का, तो उपलब्धि हो जाएगी जीवन की। बड़ी गंभीरता से धन इकट्ठा करता है। फिर पाता है कि सब व्यर्थ हो गया। जिंदगी तो हाथ से चली गई, ढेर रह गया मिट्टी का। तब वह इतनी ही गंभीरता से इसका त्याग भी करता है। तब वह इसे छोड्कर भागता है।

तो मैं ऐसे साधुओं को जानता हूं, जिनके सामने आप पैसा रखें, तो वे आख बंद कर लेंगे। मैं ऐसे साधुओं को जानता हूं जो पैसा नहीं छुएंगे।

एक संन्यासी मुझे मिलने आए थे। उस दिन मुझे समय न था, तो मैंने कहा, कल सुबह आप मिलने आ जाएं। उन्होंने कहा, बड़ी मुश्किल है। उनके साथ एक सज्जन और थे। उन्होंने कहा कि अगर ये कल सुबह आने को राजी हों, तो मैं आ जाऊं। तो मेरी कुछ समझ में न पड़ा। मैंने कहा, इनकी क्या जरूरत है? आप अकेले आ जाएं! उन्होंने कहा, बात ऐसी है कि पैसा मैं खुद नहीं रखता। तो टैक्सी वगैरह को देने—लेने के लिए इनको, ये रखते हैं पैसा।

बड़े मजे की बात है। एक ही पाप को करने के लिए दो आदमियों की जरूरत पड़ रही है! पैसा दूसरा आदमी रखता है। वह साथ आए, तो वे आ सकते हैं, क्योंकि देने वगैरह के लिए! वे पैसा नहीं छूते!

कुछ पागल हैं जो पैसा ही छूते हैं, और किसी चीज को छूने में उन्हें कुछ रस ही नहीं आता! एक पागल ये दूसरे हैं, शीर्षासन किया हुआ पागल हैं। वे उलटा कहते हैं, हम छू नहीं सकते पैसा। लेकिन गंभीर दोनों हैं। पैसे के बाबत दोनों गंभीर हैं, सीरियस हैं। पैसा बड़ी कीमती चीज दोनों को मालूम पड़ती है। दोनों को! एक को लगता है, पैसा मोक्ष है; एक को लगता है, पैसा नर्क है। लेकिन पैसा सिर्फ पैसा है, ऐसा दोनों को नहीं लगता।

नारद इस जिंदगी में इन दोनों तरह के आदमियों से अलग आदमी हैं। दोनों से अलग आदमी हैं। जिंदगी कोई गंभीर बात नहीं है। जैसे कोई रामलीला के मंच पर राम बन गया हो, और रावण बन गया हो।

तो रावण भी कोई रामलीला के मंच पर ऐसा नहीं समझता कि मैं कोई पाप कर रहा हूं। पाप एक ही है कि अगर वह खेल ठीक से न खेल पाए; अगर अभिनय ठीक से न कर पाए, तो एक ही पाप है। रावण होने में कोई पाप नहीं है। और न राम ही यह समझते हैं कि हम कोई बड़ा भारी पुण्य कर रहे हैं। एक ही पुण्य है कि अभिनय कुशलता से हो जाए। मंच के बाहर उतरकर बात समाप्त हो जाती है। इस झगड़े को घर तक ले जाने की कोई जरूरत भी नहीं पड़ती। मंच के पीछे भी ले जाने की कोई जरूरत नहीं है। जिंदगी को लेकिन हम गंभीरता से ले लेते हैं।

जिंदगी को जो अभिनय की तरह ले पाए, उसने गहनतम सत्य को जान लिया। फिर अतियों में चुनाव नहीं होता, फिर आदमी मध्य में चल सकता है। फिर: उसे एक पागलपन छोड़कर दूसरे पागलपन में उतरने की जरूरत नहीं रहती। फिर वह दोनों पागलपन छोड़ सकता है, या दोनों पागलपन के बीच हंसते हुए गुजर सकता है।

नारद इस जिंदगी को एक खेल समझते हैं, एक मंच से ज्यादा नहीं। उसका कोई आत्यंतिक मूल्य नहीं है, कोई अंतिम मूल्य नहीं है। इसलिए नारद के लिए अभिनय है सब कुछ। कृष्ण के लिए भी वही बात है। कृष्ण के लिए भी जीवन एक अभिनय है। कृष्ण के लिए भी जीवन कोई गंभीर बात नहीं है।

इसीलिए हमने इस मुल्क में कृष्ण को पूर्णावतार कहा। राम को हम पूर्णावतार नहीं कह सके। कारण है। राम थोड़े गंभीर हैं। मर्यादा है, तो गंभीरता होगी। गैर—गंभीर आदमी में मर्यादा नहीं हो सकती। गैर—गंभीर आदमी मर्यादा—तोड़क होगा। इसलिए राम को हमने अवतार कहा, लेकिन पूर्ण अवतार हम न कह सके। इसलिए हिंदू चिंतन की समझ बड़ी गहरी है। हमने अवतार कहा, हमने श्रेष्ठतम जगह पर राम को रखा। लेकिन फिर भी हमने कहा, वह अंश ही अवतार हैं।

पूर्ण अवतार तो हम कृष्ण को ही कह सके, क्योंकि कोई मर्यादा नहीं है। कृष्ण से ज्यादा मर्यादा—मुक्त व्यक्तित्व पृथ्वी पर हुआ ही नहीं। और अब शायद कभी हो भी न सके। क्योंकि उतना मर्यादा— मुक्त व्यक्ति पैदा हो, इसके लिए एक बड़ा मर्यादा—मुक्त समाज चाहिए। नहीं तो आप पहचान ही नहीं सकेंगे।

आप भला कहते हों कि हम कृष्ण के भक्त हैं। अभी चौपाटी पर खड़े होकर बांसुरी वगैरह बजाने लगें और दो चार सखियां नाचने लगें, आप पुलिस में खबर कर दोगे, कि यह आदमी भ्रष्ट किए दे रहा है! यह तो सारा आचरण समाप्त हो जाएगा। और यह तो नीति— नियम का क्या होगा? फासला लंबा है अब, इसलिए आपको अड्चन नहीं होती।

लेकिन जिन लोगों के बीच कृष्ण पैदा हुए थे, वे लोग भी बहुत अदभुत रहे होंगे। इस आदमी में भी वे कुछ देख सके। इस मर्यादा—मुक्त, मर्यादा—शून्य व्यक्तित्व में भी उन्हें कोई झलक मिल सकी। वे लोग भी साधारण न रहे होंगे।

कृष्ण को हमने कहा पूर्ण अवतार, इसलिए कि जीवन को उसकी समग्रता में उन्होंने किया है स्वीकार—समग्रता में। किसी चीज का कोई अस्वीकार नहीं है। जिसको हम आमतौर से बुरा कहें, कृष्ण के लिए उसका भी कोई अस्वीकार नहीं है।

इसलिए जो लोग कृष्ण के जीवन में कसिस्टेंसी खोजते हैं, संगति खोजते हैं, वे बड़ी मुश्किल में पड़ते हैं। और इसलिए कृष्ण को पूरा स्वीकार— कृष्ण जैसा आदमी होना तो कठिन है— कृष्ण को उनका पूरा का पूरा स्वीकार करने में भी हमारी हिम्मत नहीं होती।

अगर हम सूरदास से पूछें, तो वे कृष्ण के बालपन को ही स्वीकार करते हैं। बाद की अवस्था में सूरदास जरा पीछे हट जाते हैं, झिझक जाते हैं। क्योंकि अगर बच्चा है और स्त्रियों से छेड़खानी कर रहा है, तो हम बर्दाश्त कर सकते हैं; समझ में आ जाता है; छोड़ा जा सकता है। लेकिन जवान! तो सूरदास को भी चिंता होती है कि यह बात तो थोड़ी आगे हो जाएगी।

केशव ने हिम्मत की है कृष्ण के युवा व्यक्तित्व को पकड़ने की, लेकिन लोग केशव को गाली देते हैं। और कृष्ण के भक्त कहते हैं, केशव ने सब ख़राब कर डाला। लोग तो यह कहते हैं कि केशव ने अपने ही विचारों को कृष्ण में डाल दिया। यह बात सच नहीं है। यह बात सच नहीं है। केशव ने तो कृष्ण के उस युवा व्यक्तित्व को उभारा है, जो सूर से बच गया। लेकिन केशव की भी तकलीफ वही है। वे भी एक ही हिस्से को, उनके युवा प्रेम की कथा को, उनके रास को ही उभार पाते हैं, बाकी हिस्से उनको भी मुश्किल हो जाते हैं।

गांधी को कृष्ण से बहुत प्रेम था, गीता से बहुत प्रेम था। लेकिन एक बड़ी अड़चन थी उनको, कि उसमें हिंसा का मामला है। और उससे वे कभी संगति नहीं बिठा पाए। वे कहते थे कि गीता मेरी माता है, लेकिन वे कभी संगति नहीं बिठा पाए; वह सौतेली माता ही रही। संगति नहीं बिठा पाए इसलिए कि इस हिंसा का क्या होगा? गांधी की अहिंसा से इसका मेल कहां है? तो एक ही तरकीब थी— उसको मैं तरकीब कहता हूं— तो गांधी कहते थे, यह सिर्फ प्रतीक है युद्ध। यह वास्तविक युद्ध नहीं है। बुराई और भलाई के बीच प्रतीक है। इस भांति वे अपने को समझा लेते थे कि कृष्ण हिंसा को कोई सहारा नहीं दे रहे हैं।

लेकिन यह बात ठीक सच नहीं है। यह महाभारत प्रतीक नहीं है। यह महाभारत वास्तविक युद्ध है। इस वास्तविक युद्ध में हिंसा हुई है। उसी हिंसा से कृष्य भागते हुए अर्जुन को रोक रहे हैं। उसी हिंसा से डरकर अर्जुन भाग रहा है। अर्जुन को अगर रास्ते में कहीं गांधीजी मिल जाते, तो सारी कथा दूसरी होती। कृष्ण मिल गए, इसलिए सारा का सारा मामला दूसरा हुआ। पूरा इतिहास और हुआ। गांधीजी कभी भी नहीं स्वीकार कर पाए मन में कि यह युद्ध और हिंसा का क्या हो।

गांधीजी की तकलीफ कठिन थी। नब्बे परसेंट वे जैन थे और दस परसेंट हिंदू थे। गुजरात ऐसे भी नब्बे परसेंट जैन है, हिंदू हो तो भी। बचपन से गांधी के मन पर जो प्रभाव था, वह जैन का था, जैन साधु का, खासकर राजचंद्र का प्रभाव था। गांधी ने अपने तीन गुरुओं में राजचंद्र को गिनाया है। राजचंद्र को, रस्किन को, टाल्सटाय को, तीनों जैनी हैं। दो तो ईसाई हैं, लेकिन उनकी भी बुद्धि बिलकुल जैन है। यह प्रभाव था, और फिर गीता पर प्रेम था हिंदू का।

इसलिए मामला ऐसा हो गया कि इन दोनों के बीच सारी दुविधा खड़ी हो गई और असंगति मालूम पड़ती रही। इसलिए फिर उन्होंने एक रास्ता निकाल लिया कि यह प्रतीक युद्ध है। युद्ध कभी हुआ नहीं। और कृष्ण कैसे हिंसा की बात कर सकते हैं! यह तो बुराई को मारने की बात है।

लेकिन यह बात ठीक नहीं है। यह गांधीजी की अपनी व्याख्या है, खुद की दुविधा को हल कर लेने की।

कृष्ण के साथ यह कठिनाई सदा रही है। कृष्ण ने वायदा किया था कि मैं शस्त्र नहीं उठाऊंगा युद्ध में, और फिर शस्त्र उठा लिया। वचन भंग हो गया! कृष्ण जैसे आदमी से हम वचनभंग की आशा नहीं करते। जब कहा था कि शस्त्र नहीं उठाएंगे, तो नहीं उठाना था। फिर शस्त्र उठा लिया! इनकसिस्टेंसी मालूम पड़ती है। असंगत है यह आदमी!

लेकिन हमारे सोचने का ढंग गंभीर है, इसलिए मालूम पड़ती है। कृष्ण के सोचने का ढंग गैर—गंभीर है। यह खेल की बात है। इसमें बहुत गंभीर कृष्ण नहीं हैं। इसमें गंभीर होने का उन्हें कोई प्रयोजन नहीं है।

सुना है मैंने, मुल्ला नसरुद्दीन पर एक अदालत में मुकदमा चला और मजिस्ट्रेट ने पूछा कि तुम्हारी उम्र कितनी है? उसने कहा, चालीस साल। उस मजिस्ट्रेट ने कहा, लेकिन जहां तक मेरा खयाल है, पांच साल पहले भी तुम पर मुकदमा चला था, और तब भी तुमने कहा था चालीस साल! तो नसरुद्दीन ने कहा कि मैं अपने वचन पर दृढ़ रहना जानता हूं। मैं कोई ऐसा आदमी नहीं हूं कि ऐसे बदल जाऊं। जो एक दफा कह दिया, कह दिया!

यह एक संगति है! कृष्ण में ऐसी संगति न खोजी जा सकेगी। कृष्ण पल—पल असंगत हैं। अगर एक ही कोई संगति है उनमें, तो वह यह है कि वह सब असंगतियों के बीच भी एक तालमेल है। अपनी असंगतियों में वे बिलकुल संगत हैं। और किसी चीज में संगत नहीं हैं।

यह जो विराट, यह जो बहुमुखी, बहुआयामी, बहुत दिशाओं में फैला हुआ व्यक्तित्व है, इसको हमने पूर्ण कहा। राम तक को हम अपूर्ण ही कहेंगे, आशिक कहेंगे। राम गंभीर हैं, अति गंभीर हैं। कृष्ण का यह जो गैर—गंभीर, लीलामयी व्यक्तित्व है, उसके ही प्रतीक के लिए उन्होंने देवर्षियों में नारद को चुना।

गंधर्वों में चित्ररथ, सिद्धों में कपिल मुनि हूं।

कपिल के संबंध में थोड़ी—सी बातें खयाल में ले लेनी जरूरी हैं। कृष्ण को समझना आसान होगा।

जगत में दो निष्ठाएं हैं। एक निष्ठा का नाम है योग, और एक निष्ठा का नाम है सांख्य। यह बड़ा हैरानी का मालूम होगा, क्योंकि कृष्ण को हम योगेश्वर कहते हैं। यह फिर असंगत बात है। कृष्ण ने जो कपिल को चुना, कपिल का योग से कोई संबंध नहीं है। कपिल योग—विरोधी हैं।

दो निष्ठाएं हैं। एक है योग। योग का मानना है कि सत्य को, परमात्मा को पाना हो, तो कुछ करना पड़ेगा। कोई अभ्यास, कोई साधन, कोई साधना, कोई प्रक्रिया, कुछ क्रिया से गुजरना पड़ेगा। बिना क्रिया से गुजरे हुए उस परमात्मा तक नहीं पहुंचा जा सकता। क्योंकि

आदमी है अशुद्ध, तो किसी आग से गुजरकर उसे शुद्ध होना पड़ेगा। माना कि छिपा है उसमें वह सत्य, लेकिन वह सत्य ऐसे ही है जैसे कि सोना मिट्टी से मिला हुआ पडा हो। उस मिट्टी को छानकर अलग करना पड़ेगा। जलाना पड़ेगा, सोने को आग में तपाना पड़ेगा, ताकि कचरा जल जाए और शुद्ध स्वर्ण निखर आए। कुछ करना पड़ेगा। योग का मानना है, बिना कुछ किए कुछ भी नहीं हो सकता।

सांख्य का मानना इसके बिलकुल विपरीत है। सांख्य का मानना है कि कुछ करने का सवाल ही नहीं है, मात्र जानना काफी है। सिर्फ जानना काफी है, करने का कोई सवाल नहीं है। यह कोई सोना नहीं है, जो अशुद्ध हो गया है। आदमी परमात्मा है, सिर्फ विस्मृत हो गया स्वयं को। इसे कुछ शुद्ध नहीं होना है। आदमी शुद्ध परमात्मा ही है। कोई अशुद्धि उसमें नहीं हो गई। और सांख्य का कहना है, अगर परमात्मा भी अशुद्ध हो सके, तो फिर इस दुनिया में शुद्धि का कोई उपाय नहीं है। परमात्मा का तो अर्थ ही है कि जो अशुद्ध हो ही न सके। सिर्फ विस्मरण है यह, अशुद्धि नहीं है।

इस फर्क को ठीक से समझ लें। यह विस्मरण है। आप एक नशे में हैं और भूल गए हैं कि आप कौन हैं। या आप नींद में हैं और कोई ने आपको चौंकाकर उठा दिया और आपको याद न आया कि आप कौन हैं। या आप अपने को कुछ और समझ बैठे हैं और आपने अपना तादात्म्य वही बना लिया और आपको खयाल में न रहा कि आप कौन हैं। यह सिर्फ एक विस्मरण है।

विवेकानंद कहते थे — पुरानी कथा है ईसप की, पंचतंत्र में भी है— कि एक सिंहनी छलांग लगाती थी एक पहाड़ी टीले से दूसरे टीले पर। वह गर्भिणी थी, और बीच छलांग में उसको बच्चा हो गया। नीचे भेडों का एक झुंड गुजरता था, वह बच्चा उस भेड़ों के झुंड में गिर गया। भेड़ों ने उसे बड़ा कर लिया। वह बच्चा बड़ा हो गया।

वह बच्चा था तो शेर का, लेकिन उस बच्चे को यही पता था कि मैं भेड़ हूं। भेड़ों के बीच बड़ा हुआ था, भेड़ों ने बड़ा किया था। कोई कारण भी नहीं था उसको पता चलने का कि वह सिंह है या शेर है या कुछ और है। लेकिन वह बड़ा होने लगा। भेड़ों से ऊपर निकल गया। फिर भी उसकी मान्यता तो भेड़ों की ही रही। भेड़ें यही सोचती थीं कि कुछ शरीर इसका थोड़ा लंबा हो गया। वह भी यही सोचता था। भेड़ों जैसा ही चलता था, भेड़ों के झुंड में ही घसर—पसर होता था। भेड़ें जहां मुड़ जातीं, भेड़ों का नेता, वहीं वह भी मुड़ जाता था। भेड़ों जैसी ही आवाज करता था।

एक दिन मुसीबत में पड़ा। भेड़ों के इस झुंड पर एक दूसरे सिंह ने हमला किया। भेड़ें भागीं। वह दूसरा सिंह यह देखकर बड़ी मुश्किल में पड़ा कि भेड़ों के बीच में एक सिंह भी भाग रहा है! न तो भेड़ें उससे भयभीत हैं, न उस सिंह को ऐसा लगता है कि भेड़ों के साथ भाग रहा है! वह दूसरा सिंह बड़ी मुश्किल में पड़ गया। उसने पीछा किया। बामुश्किल वह इसको पकड़ पाया। भेड़ बन गए सिंह को बामुश्किल पकड़ पाया। पकड़ा, तो वह जैसे भेड़ें मिमियाने लगें, वैसा मिमियाने लगा। उस दूसरे सिंह ने कहा कि तू यह कर क्या रहा है? वह दूसरा सिंह उसे पकड़कर नदी के किनारे ले गया और उसने कहा कि जरा अपने चेहरे को पानी में झांक और मेरे चेहरे को भी साथ में पानी में देख! उस भेड़ बन गए सिंह ने पानी में झांककर दोनों चेहरे देखे और उसके भीतर से सिंह की गर्जना निकल गई। वह सिंह हो गया।

सांख्य कहता है, आदमी ऐसे ही भ्रम में है। कुछ अशुद्ध नहीं हो गया है, सिर्फ पहचान खो गई। तो उस पहले सिंह को, भेड़ बन गए सिंह को शुद्ध नहीं होना पड़ा। न काट—पीट करनी पड़ी; न कोई आसन, न कोई ध्यान, कुछ भी नहीं करना पड़ा। सिर्फ इतना बोध, स्मरण, रिमेंबरिंग कि मैं कौन हूं। सारा काम हो गया।

कपिल सांख्य की दृष्टि के आधार हैं। यह बहुत मजे की बात है कि कृष्ण कहें कि मैं मुनियों में कपिल मुनि हूं। कृष्ण भी गहरे में तो यही मानते हैं और जानते हैं कि आदमी केवल भूल गया है, मात्र भूलने की दुर्घटना हुई है।

लेकिन ऐसे बहुत कम लोग हैं, जो पुनर्स्मरण कर सकें। यह भी तो हो सकता है कि जब उस दूसरे सिंह को यह खयाल आया कि एक सिंह भेड़ बना जा रहा है, तो वह इस सिंह को पकड़ भी ले—इस कथा में तो यह बात नहीं है—वह सिंह जाने से इनकार ही कर दे नदी तक। संभावना यही होनी चाहिए। कहानी वाले ने खयाल नहीं किया, ईसप ने या पंचतंत्र ने खयाल नहीं किया। संभावना तो यह होनी चाहिए कि वहीं बैठ जाए और इनकार कर दे जाने से। या चला भी जाए, तो आख बंद कर ले घबड़ाहट से। पानी में देखे ही नहीं। तब फिर कुछ करना पड़े; तब इसको नदी तक घसीटना भी पड़े; तब शायद जबर्दस्ती इसकी आंखें भी खोलना पड़े। तब शान काफी न हो, कुछ करना भी जरूरी हो जाए।

सौ में से निन्यानबे लोगों के लिए सांख्य का रास्ता सही मालूम हो, तो भी चलने योग्य मालूम नहीं हो सकता। निन्यानबे प्रतिशत लोगों को तो कुछ करना ही पड़ेगा। उस करने से ज्ञान नहीं होता, लेकिन उस करने से आदमी नदी के किनारे तक पहुंच जाता है। उस करने से स्मरण नहीं आता, लेकिन उस करने से आख खुल जाती है और स्मरण की संभावना प्रबल हो जाती है। जो चाहे, वह तो इसी वक्त भी स्मरण कर ले।

सुना है मैंने, झेन फकीर हुआ, रिझांई। जब वह अपने गुरु के पास गया, तो उसके गुरु ने उससे पूछा कि तू कुछ होने में उत्सुक है या कुछ करने में? अगर तू कुछ करने में उत्सुक है, तो मैं तुझे कुछ क्रियाएं बताऊं। तू दस—पांच साल क्रियाएं कर। और अगर तू होने में उत्सुक है, तो इसी वक्त भी हो सकता है।

रिझाई ने कहा कि जब इसी वक्त हो सकता हूं तो फिर इसी वक्त हो जाने की कोई व्यवस्था मुझे दें। कैसे मैं इसी वक्त हो जाऊं? तो उसके गुरु ने कहा, जो कैसे पूछता है, वह क्रिया के लिए पूछ रहा है। तुझे दस—पांच साल क्रिया करनी पड़ेगी। जो पूछता है कैसे? इसका मतलब है क्रिया। क्या करूं? उसके गुरु ने कहा, तू हो सकता हो परमात्मा, इसी वक्त हो जा। और कुछ करने की जरूरत नहीं है। उसने कहा कि मैं कैसे हो जाऊं? आप कहते हैं, इससे मैं कैसे हो जाऊं!

तो उसके गुरु ने उसे क्रियाएं दीं, साधनाएं दीं। दस साल तक उसने निरंतर साधना की। और दस साल के बाद जब वह गुरु के सामने आया, तो उसने कहा कि अभी और करना है कि होना है? उसने कहा, अब काफी हो गया दस साल। मैं करने से थक भी गया। और करने से कुछ होता भी नहीं। तो उसके गुरु ने कहा, अगर तुझे यह समझ में आ गया हो कि करने से कुछ भी नहीं होता, तो तू अभी इसी वक्त हो सकता है। लेकिन कैसे मत पूछना!

और कथा यह कहती है कि जैसे ही गुरु ने हाथ ऊपर उठाया और कहा कि इसी वक्त हो सकता है, कैसे मत पूछना! रिझाई ज्ञान को उपलब्ध हो गया।

रिझाई से बाद में लोग पूछते थे कि तुमने क्या किया उस क्षण में, जब गुरु ने अंगुली ऊपर उठाई! उसने कहा, किया कुछ भी नहीं। लेकिन दस साल कर—करके थक गया। परेशान हो गया। करना भी व्यर्थ है, सिर्फ स्मरण ही सार्थक है। उस क्षण में सारा करना मुझसे गिर गया, और मुझे याद आया कि मैं ईश्वर हूं। होने का क्या सवाल है! करने का क्या सवाल है! यह स्मरण आते ही सारे जीवन की धारा बदल गई। अंधेरे की जगह प्रकाश हो गया। शरीर की जगह आत्मा हो गई। सीमाओं की जगह असीम हो गया।

लेकिन यह घटना मुश्किल से घटती है कभी, कभी लाख में एकाध आदमी को, कि कोई सुनकर हो जाता है। नहीं तो करने से गुजरना पड़ता है। वह करने से गुजरना जो है, उससे जान उत्पन्न नहीं होता। लेकिन हम उस जगह पहुंच जाते हैं, जहां शान सहज फलित हो सकता है।

लेकिन कृष्ण ने ध्यान रखा है। उन्होंने कहा कि मैं कपिल मुनि हूं। आत्यंतिक सत्य तो यही है, परम सत्य तो यही है, परम दृष्टि तो यही है कि आपको कुछ भी करना नहीं है।

लेकिन हमारी भी मुसीबत है। हम इस जगत में जो भी पाते हैं, करके ही पाते हैं। धन पाना हो, तो कुछ करके पाते हैं। यश पाना हो, तो कुछ करके पाते हैं। बिना किए न तो यश मिलता है, न बिना किए धन मिलता है। विद्या—बुद्धि, कुछ भी पाते हों, करके पाते हैं। इस जगत में जो भी मिलता है, उसके लिए चलना पड़ता है, करना पड़ता है। इसलिए हमारी पूरी की पूरी समझ करने से बंध जाती है। हम यह सोच ही नहीं सकते कि कोई ऐसी चीज भी हो सकती है, जो न करें और मिल जाए। कुछ न करें, शांत बैठ जाएं, और मिल जाए। कुछ न करें, मौन हो जाएं, और मिल जाए।

लेकिन ऐसी भी एक चीज है और उसी चीज का नाम धर्म है— आत्मा कहें, भगवत्ता कहें, जो नाम देना चाहें। एक सत्य ऐसा भी है, जो आपके करने से नहीं मिलता।

और ध्यान रहे, जो आपके करने से मिलेगा, वह आपसे छोटा होगा। आप करके पाएंगे, वह आपसे बड़ा नहीं हो सकता। इसलिए परमात्मा करने से नहीं मिल सकता। क्योंकि अगर करने से मिलता हो, तो वह भी एक कमोडिटी, तो वह भी एक चीज, वस्तु होगी, जो आपने कर ली। तिजोड़ी में जैसे और चीजें रख दी हैं लाकर, वैसे ही एक दिन परमात्मा को भी लाकर रख दिए! वह आपकी मुट्ठी की चीज होगी, अगर आपके करने से मिल जाए। क्षुद्र हो जाएगी।

एक बात तय है कि आप जो भी करेंगे, वह आपसे बड़ा नहीं हो सकता। आप जो भी करके पाएंगे, वह आपसे छोटा होगा। अगर आपको अपने से बड़े को पाना है, तो करने से मिलने वाला नहीं है, खोने से मिलेगा। अपने को खोने से मिलेगा। अपने को छोड़ने से मिलेगा। कर्ता का भाव ही छोड़ देना पड़ेगा, कर्म भी छोड़ देना पड़ेगा। चुप बैठकर, शांत बैठकर।

एक ही है तीर्थयात्रा। जब कोई सब यात्राएं बंद कर देता है— शरीर की भी और मन की भी— तब तीर्थयात्रा शुरू हो जाती है। एक ही है मार्ग उस तक पहुंचने का कि जब कोई सब मार्ग छोड़ देता है, और अपने ही भीतर ठहर जाता है। एक ही है दिशा उसकी, जब कोई सारी दस दिशाओं को छोड़ देता है, और ग्यारहवीं दिशा में भीतर ठहर जाता है, कोई यात्रा नहीं करता। यह है सांख्य। और दो ही जगत की निष्ठाएं हैं, योग और सांख्य।

कृष्ण कहते हैं, मैं सांख्य हूं मैं कपिल हूं। समस्त मुनियों में, सिद्धों में, मैं कपिल हूं।

सिद्ध कहते हैं उन्हें, जिन्होंने पा लिया। पाने वाले दो तरह के लोग हैं, जिन्होंने कुछ कर—कर के पाया, और जिन्होंने बिना किए पाया। कृष्ण कहते हैं, मैं वही हूं जिन्होंने बिना किए पाया। करके पाया, तो उसका अर्थ है कि बड़ा गहन अंधकार रहा होगा। बड़ा गहन अंधकार रहा होगा। बड़ा गहन अहंकार रहा होगा, इसलिए कर—करके।

बुद्ध के जीवन से एक घटना आपको कहूं तो खयाल में आ जाए कि क्या है मतलब! बुद्ध ने महल छोड़ा, राज्य छोड़ा, छह वर्ष तक कठोर तपश्चर्या की। जो भी किया जा सकता था, वह सब किया। लेकिन हर करने के बाद पाया कि उपलब्धि नहीं हुई। जिस गुरु के पास गए, उसी गुरु को मुसीबत में डाल दिया, क्योंकि गुरु ने जो— जो कहा...।

गुरुओं को एक सुविधा रहती है उन लोगों की वजह से, जो केवल सुनते हैं और करते नहीं। उनसे बड़ी सुविधा रहती है। गुरु को अड़चन नहीं आती उन लोगों से, जो रोज सुनकर चले जाते हैं और कभी करते नहीं। क्योंकि वे झंझट नहीं देते।

यह बुद्ध जिस गुरु के पीछे पड़ गया, वही गुरु दिक्कत में आ गया। क्योंकि गुरु ने जो कहा, वही इसने करके दिखाया। और करने के बाद कहा कि अभी मुझे मिला नहीं! और इसके करने में तो इतनी निष्ठा थी, और इसका करना तो इतना वास्तविक था कि गुरु भी यह हिम्मत नहीं जुटा सकता था कहने की कि तुमने गलत किया या पूरा नहीं किया। गुरु से भी ज्यादा कुशल था इसका करना। तो गुरु हाथ जोड़ लेते। गौतम को कहते कि जो मैं जानता था, वह मैंने करवा दिया। अगर इससे नहीं होता, तो मुझे क्षमा करो, कहीं और जाओ!

अगर आप करने लगें, तो दुनिया में गुरुओं की संख्या एकदम कम हो जाए। एकदम! दुनिया में जो इतनी भीड़ है गुरुओं की, वह आपकी कृपा से है। जो—जो गुरु कहते हैं, अगर आप करके बता दें, तो गुरु भाग खड़े हों, क्योंकि उनको भी पता चल जाए कि कुछ हो नहीं रहा है। आप कभी करते नहीं, इसलिए गुरु की कभी परीक्षा नहीं हो पाती कि वह जो कह रहा है, वह हो भी सकता है या नहीं। वह कहे चला जाता है, क्योंकि कोई करने वाला भी नहीं आता। बुद्ध से गुरुओं ने क्षमा मांगी। वह बड़ी महत्वपूर्ण है। उन्होंने कहा कि क्षमा करो। और अगर कभी तुम्हें मिल जाए, तो हमें भी खबर कर देना। लेकिन अब यहां से तुम जाओ! क्योंकि हम जो जानते थे, हम जो करा सकते थे, वह हमने करा दिया। और तुमसे ज्यादा योग्य शिष्य हमने कभी पाया नहीं। लेकिन मजबूरी है, इसके आगे हमें कुछ पता नहीं।

तो बुद्ध, जितने गुरु उस समय उपलब्ध हो सकते थे बिहार में, एक—एक गुरु के द्वार पर भटक लिए। छह साल में उन्होंने सब कर डाला, जो भी किसी ने कहा। कभी नहीं कहा कि इससे क्या होगा! किया पहले। और जब नहीं हुआ तो कहा कि कर लिया मैंने पूरा और हो नहीं रहा है।

छह साल के अथक श्रम के बाद वे उस जगह पहुंच गए, जहां सांख्य शुरू होता है, योग समाप्त हो जाता है। छह साल के बाद

थककर एक दिन सुबह वे स्नान करने निरंजना नदी में उतरे। शरीर बिलकुल कृश हो गया है। उपवास लंबे किए हैं। अनाहार किया है। शरीर को तपाया है, सुखाया है, जलाया है। निरंजना से निकलते वक्त वे इतने अशक्त थे कि नदी की धार को पार न कर सके और तट पर चढ़ने में मुसीबत मालूम पड़ी। पैर जवाब दे गए। तो एक वृक्ष की जड़ को पकड़कर रुके रहे।

उस क्षण उन्हें खयाल आया कि शरीर को सताकर, गलाकर, सब करके कुछ पाया नहीं। और हालत यह हो गई कि इस छोटी— सी नदी निरंजना को मैं पार नहीं कर पाता हूं और भवसागर को पार करने का विचार कर रहा हूं! यह नहीं होगा। किसी तरह नदी के बाहर निकले।

तो जिस तरह छह साल पहले उन्होंने राज्य छोड़ दिया था, महल छोड़ दिया था, उस दिन उन्होंने करना छोड़ दिया। योग छोड़ दिया। त्याग छोड़ दिया। उस दिन उन्होंने सब जो छह साल में किया था, वह भी छोड़ दिया। भोग पहले छोड़ चुके थे, त्याग भी छोड़ दिया। धन की दौड़ पहले छोड़ चुके थे, धर्म की दौड़ भी छोड़ दी। उस दिन उन्होंने तय कर लिया कि अब कुछ करना ही नहीं है। अब मैं जो हूं हूं। और नहीं हूं तो नहीं हूं।

मिला तो नहीं करने से। तो यह तो वे सोच ही नहीं सकते थे कि न करने से मिल जाएगा। जब करने से नहीं मिला, तो यह तो खयाल भी नहीं आ सकता था कि न करने से मिल जाएगा। इसका तो उन्हें भी पता नहीं था। छोड़ दिया। लेकिन एक बात तय हो गई कि अब कुछ करना नहीं है। अब जो है, ठीक है। स्वीकार है। जैसा भी हूं। अज्ञानी, तो अज्ञानी। अंधेरा, तो अंधेरा। पाप, तो पाप। जो भी है, जैसा भी है, स्वीकार है। अब मुझे कुछ पाना नहीं, कुछ खोजना नहीं।

ऐसी चित्त की दशा बड़ी अनूठी है। उस रात जब वे सोए, तो शायद जमीन पर इस तरह की शांति में बहुत कम लोग कभी—कभी सोते हैं। कोई तनाव ही न था। कुछ पाना नहीं था, तो कोई तनाव भी नहीं था। सुबह उठकर पाने की कोई आकांक्षा ही नहीं थी। सुबह हो तो ठीक, न हो तो ठीक। भविष्य मिट गया। उस रात, बुद्ध ने बाद में कहा है, कि मैं पहली दफा सोया, एक फूल की तरह, हल्का। कुछ नहीं था। न पीछा रहा, सब अतीत मिट गया, सब बेकार था। और सब भविष्य मिट गया, क्योंकि अब कुछ पाने की इच्छा न थी।

सुबह पांच बजे भोर उनकी नींद खुली। जब भीतर कोई भी तनाव न हो, तो आख निर्मल हो जाती है। जब भीतर कोई तनाव न हो, तो आंखों पर से सब धुआं खो जाता है। आख शुद्ध हो जाती है, साफ हो जाती है, पारदर्शी हो जाती है। आख खुली उनकी। भोर का आखिरी तारा डूब रहा था। उस तारे को डूबता हुआ वे देखते रहे, देखते रहे। तारा डूब गया, और उनको ज्ञान हो गया।

बुद्ध को ज्ञान हुआ, योग भी छोड़ देने पर। क्योंकि योग भी एक तनाव है। क्रिया भी एक तनाव है। कुछ करते रहना भी एक तनाव है, एक बेचैनी है। तो बुद्ध ने कहा है कि मैंने पाया तब, जब पाने की भी इच्छा मेरे भीतर नहीं रही। मिला तब, जब मिलने की भी कोई भावना मेरे भीतर न थी।

इसलिए बुद्ध तो एकदम से चौंक ही गए कि यह क्या हुआ! और यह कहां छिपा था इतने दिन तक, जो आज दिखाई पड़ गया! यह छिपा था अपनी ही क्रिया की ओट में।

यह छिपा था अपने ही कर्ता की ओट में। यह छिपा था, मैं कर रहा हूं कुछ, उस अहंकार की ही आड में। कोई करना न था। कोई कर्ता नहीं। कोई कर्म नहीं। मन बिलकुल शून्य हो गया। उस शून्य में खिल गया यह फूल।

और जब बुद्ध से किसी ने पूछा कि आपको क्या मिल गया है कि आप इतने आनंदित हैं? तो बुद्ध ने कहा, मिला मुझे कुछ भी नहीं। जो मिला ही हुआ था, उसका पहली दफा पता चला है। जो मिला ही हुआ था, उसका पता चला है। मिला मुझे कुछ भी नहीं।

सांख्य का यही अर्थ है। सांख्य का यही अर्थ है कि जो मिलेगा, वह मिला ही हुआ है। जो जानेंगे कभी हम, वह मौजूद है अभी, इसी क्षण। उसे कहीं बाहर से पाना नहीं है। वह अशुद्ध भी नहीं है कि उसे शुद्ध करना है। सिर्फ लौटकर, शांत होकर, मौन होकर, उसे देखना है।

कृष्ण कहते हैं, सिद्धों में मैं कपिल मुनि हूं।

और हे अर्जुन, घोड़ों में उच्चैःश्रवा नामक घोड़ा, हाथियों में ऐरावत नामक हाथी और मनुष्यों में मैं ही सम्राट हूं।

अर्जुन जिस तरह भी समझ सके, कृष्ण हर एक कोटि में जो भी श्रेष्ठतम संभावना है, उसकी तरफ इशारा कर रहे हैं। लेकिन एक बात कीमती समझ लेने जैसी है कि घोड़ा हो, कि हाथी हो, कि वृक्ष हो, कृष्ण के मन में कोई दुर्भाव नहीं है। कृष्ण को कहते हुए जरा भी ऐसा संकोच नहीं मालूम पड़ता है इसमें कि मैं घोड़ों में फलां घोडा हूं हाथियों में फलां हाथी हूं। जरा भी संकोच मालूम नहीं पड़ता। अन्यथा इसे कहने की कोई जरूरत न थी।

कृष्ण के लिए निकृष्ट और श्रेष्ठ, छोटा और बड़ा, ऐसा कुछ भी नहीं है। कृष्ण कहते हैं, मैं सभी के भीतर हूं। लेकिन जिस कोटि में भी आभिजात्य प्रकट होता है, जिस कोटि में भी कोई व्यक्तित्व पूरी खिलावट को उपलब्ध होता है, वहां तू मेरी प्रतीति आसानी से कर सकेगा। अगर तू घोड़ों को ही समझना चाहता हो, तो घोड़ों में भी मैं हूं। अगर तू हाथियों को समझना चाहता हो, तो हाथियों में भी मैं हूं। अगर वृक्षों को समझना चाहता हो, तो वृक्षो में भी मैं हूं। और कहां आसानी होगी तुझे जानने को, उस तरफ मैं इशारा किए देता हूं।

अर्जुन ने कृष्ण से पूछा है कि मैं किस—किस भाव में आपको खोजूं? कहां—कहां खोजूं? कैसे देखूं? तो वे कहते हैं, कहीं भी। अगर घोड़े भी खड़े हों, तो वहां भी मैं मौजूद हूं। वहां भी तू देख लेना। तो मैं तुझे सूत्र दिए देता हूं। अगर हाथी खड़े हों, तो वहां भी मैं मौजूद हूं। तुझे सूत्र दिए देता हूं कि कहां तू मुझे खोज लेगा। अगर वृक्षों की पंक्ति हो, तो वहां भी मैं मौजूद हूं। तू जहां भी खोजना चाहे, मैं मौजूद हूं। ऐसी कोई जगह नहीं है, जहां मैं नहीं हूं। लेकिन जहां भी तू मुझे खोजेगा, वहां आसानी होगी तुझे कि तू श्रेष्ठतम को देख।

ऐसा है कि एक बीज पड़ा हो यहां और एक फूल भी पड़ा हो यहां, आपको बीज दिखाई नहीं पड़ेगा, फूल दिखाई पड़ेगा। हालांकि बीज भी कल फूल बन सकता है। लेकिन बीज दिखाई नहीं पड़ेगा, फूल दिखाई पड़ेगा। बीज में भी फूल है। और हाथियों में भी कृष्ण वैसे ही हैं, जैसे ऐरावत में। और पौधों में भी वैसे ही हैं, जैसे पीपल में। लेकिन पीपल में देखना आसान होगा, वहां व्यक्तित्व खिला हुआ है। ऐरावत में देखना आसान होगा, वहां व्यक्तित्व खिला हुआ है। फूल जहां है, वहां पहचान आसान होगी; बीज में पहचान मुश्किल होगी। इसलिए कृष्ण गिनाते जा रहे हैं कि कहां— कहां, कहां—कहां मैं खिल गया हूं।

और ऐसा आप मत सोचना कि मनुष्यों में ही खिलावट होती है। पशुओं में भी होती है, पौधों में भी होती है। और ऐसा भी आप मत सोचना कि मनुष्यों में ही श्रेष्ठ मनुष्य और निकृष्ट मनुष्य होते हैं। पौधों में भी होते हैं, पशुओं में भी होते हैं।

बुद्ध ने अपने पिछले जन्म की एक कथा कही है, और उसमें कहा है कि पिछले एक जन्म में मैं हाथी था। उनके एक शिष्य ने पूछा कि आप हाथी थे! फिर आप मनुष्य कैसे हुए? ऐसा कौन—सा कृत्य था, जिससे आप हाथी के जीवन से यात्रा करके मनुष्य हो सके? तो बुद्ध ने जो कृत्य कहा है, वह समझने जैसा है। उस कृत्य के कारण वह हाथी विशेष हो गया।

बुद्ध ने कहा, जंगल में लगी थी आग। भयंकर थी आग। सारे पशु—पक्षी भागते थे। मैं भी भाग रहा था। एक वृक्ष के नीचे मैं सांस सम्हालने को रुका एक क्षण को, और मैंने एक पैर ऊपर उठाया

कि आगे बढ़ूं। तभी मैंने देखा कि एक झाड़ी से एक खरगोश भागकर आया और मेरे पैर के नीचे जो जगह थी, जो मेरे पैर उठाने से खाली हो गई थी, वहां आकर सिकुड़कर, सुरक्षा में मेरे पैर के नीचे बैठ गया।

फिर मेरे मन को हुआ कि अगर मैं पैर नीचे रखूं तो यह खरगोश मर जाएगा। फिर मेरे मन को हुआ कि अपने को बचाने को तो मैं भाग रहा हूं और इसको मार डालूं! तो जैसा मेरा बचना महत्वपूर्ण है, वैसा ही इसका बचना भी महत्वपूर्ण है। और फिर मुझे खयाल आया कि इतने भरोसे से मेरे पैर की छाया में जो आकर बैठ गया है, यह अब उचित न होगा कि उसके भरोसे को तोड़ दूं।

तो मैं पैर को वैसा ही किए खड़ा रहा। आग निकट आती चली गई और अंततः मैं जलकर मर गया। उस दिन तो मुझे पता नहीं था कि इसका कोई फायदा होगा। लेकिन उस कृत्य के कारण ही मैं मनुष्य हुआ हूं। वह जो एक छोटा—सा कृत्य था, उसके कारण ही मैं मनुष्य हुआ हूं।

अगर हम पशुओं को भी गौर से देखें, तो आपको पता चलेगा, उनमें भी व्यक्तित्व है। श्रेष्ठ, निकृष्ट उनमें भी है। उनमें भी आपको ब्राह्मण और शूद्र मिल जाएंगे। अब तो हम आदमियों में भी मिटाने की कोशिश कर रहे हैं, लेकिन उनमें भी आपको ब्राह्मण—शूद्र मिल जाएंगे। वहां भी आपको लगेगा कि कोई वृत्ति और ही है।

रमण महर्षि के आश्रम में जब भी रमण बोलते थे— जब भी वे बोलते थे—तो उनके सुनने वालों में एक गाय भी नियमित आती थी। यह वर्षों तक चला। दूसरों को तो खबर हो जाती थी, गाय को तो कोई खबर भी नहीं की जा सकती थी। दूसरों को पता होता कि आज रमण पांच बजे बोलेंगे। गाय को कैसे खबर होती! गाय को कौन खबर करने वाला था! लेकिन पांच बजे, दूसरे चाहे थोड़ी देर— अबेर पहुंचें, गाय ठीक समय पर उपस्थित हो जाती।

जब गाय मरी, तो रमण ने कहा कि वह मुक्त हो गई। और रमण ने गाय के साथ वही व्यवहार किया, जो उन्होंने सिर्फ एक और व्यक्ति के साथ किया जीवन में और फिर कभी नहीं किया। जब उनकी मां मरी, तो जो व्यवहार उन्होंने किया, वही व्यवहार उन्होंने उस गाय के मरने पर किया। और दोनों की पूरी की पूरी अंत्येष्टि ठीक वैसे ही की, जैसी अपनी मां की की, वैसी उस गाय की की।

कोई ने रमण से पूछा कि आप यह क्या कर रहे हैं एक गाय के लिए! उन्होंने कहा, वह तुम्हें गाय दिखाई पड़ती थी। तुम आदमी दिखाई पड़ते हो, इससे ही आदमी नहीं हो जाते। वह गाय दिखाई पड़ती थी, इसलिए सिर्फ गाय ही नहीं थी। वह गायों में बड़ी श्रेष्ठ थी। उसने एक दूसरा आयाम छू लिया था। और वह मुक्त हो गई। तो कृष्ण का यह कहना कि घोड़ों में भी मैं हूं कभी तो बहुत ऐसा लगेगा कि कैसी बात है! कुछ और प्रतीक कृष्ण को नहीं मिले! ये घोड़े और हाथी और वृक्ष, यह क्या बात है! लेकिन यह बहुत विचारपूर्वक है।

अस्तित्व जहां भी है, वहीं परमात्मा है। लेकिन अर्जुन से उन्होंने कहा कि तू पहचान सकेगा अस्तित्व को जहां खिलता है फूल, बीज तुझे नहीं दिखाई पड़ सकते।

गीता दर्शन—भाग—5
काम का राम में रूपांतरण—(प्रवचन—ग्यारहवां)
अध्याय—10

सूत्र—(123)

आयुधानामहं वज्रं धेनूनामास्मि कामधुक्।
प्रजनश्चास्थि कन्दर्पः सर्पाणामस्मि वासुकिः ।।28।।
अनन्तश्चास्मि नागानां वरुणो यादसामहम्।
पितृणामर्यमा चास्मि यमः संयमतामहम्।।29।।

प्रह्लादश्चास्मि दैत्यानां कालः कलयतामहम्।
मृगाणां न मृगेन्द्रोउहं वैनतेयश्ल पक्षिणाम्।।3०।।
और हे अर्जुन मैं शस्त्रों में वज्र और गौओं में कामधेनु हूं, और संतान की उत्पत्ति का हेतु कामदेव हूं, सर्पों में सर्पराज वासुकि हूं।

तथा मैं नागों में शेषनाग और जलचरों में उनका अधिपति वरुण देवता हूं और पितरों में अर्यमा नामक पित्रेश्वर तथा शासन करने वालों में यमराज मैं हूं।

और हे अर्जुन मैं दैत्यों में प्रह्लाद और गिनती करने वालों में समय हूं, तथा पशुओं में मृगराज सिंह और पक्षियों में गरूड़ मैं ही हूं।

और हे अर्जुन, शस्त्रों में वज्र, गौओं में कामधेनु, और जीवन की उत्पत्ति का हेतु कामदेव मैं हूं।

परसों रात्रि शिव पर बोलते हुए मैंने आपसे कहा था कि 'ऋ' के वे प्रतीक हैं, विनाश की शक्ति वे हैं। साथ ही प्रेम और काम भी उनके जीवन में उतना ही गहरा है।

एक मित्र को चोट लगी होगी इस बात से, तो उन्होंने मुझे पत्र लिखा है कि यह आपने ठीक नहीं किया। हमारे पूज्य देव को, महादेव को आपने काम और प्रेम से संयुक्त किया। कल उनका पत्र मिला था, मैं कल चुप रह गया, क्योंकि आज यह सूत्र आने को था। उन्होंने यह भी लिखा है कि शंकर ने तो, शिव ने तो कामदेव को भस्म कर दिया था। कैसे आप उनमें काम की बात कहते हैं? तो पहले उन्हें थोड़ा—सा उत्तर दे दूं और फिर इस सूत्र को समझाने में लगू।

काम को भी भस्म तभी किया जा सकता है, जब काम हो; नहीं तो काम को भस्म नहीं किया जा सकता। भस्म भी हम उसे ही कर सकते हैं, जो मौजूद हो। और मजे की बात तो यह है कि काम को केवल वही भस्म कर सकता है, जिसमें काम इतना प्रगाढ़ हो कि अग्नि बन जाए। छोटे—मोटे काम की वासना वाला आदमी काम को भस्म नहीं कर पाता। काम की भी लपट चाहिए।

और यह दृष्टि, कि काम के होने से कोई देवता अपमानित हो जाता है, अपनी ही नासमझी पर निर्भर है। क्योंकि कृष्ण इस सूत्र में कहते हैं कि जीवन की उत्पत्ति का कारण कामदेव मैं हूं। उन मित्र को बड़ी तकलीफ होगी। तब तो शिव ने जिसको भस्म किया होगा वे कृष्ण हैं! और उनको तो भारी पीड़ा होगी कि कृष्ण अपने ही मुंह से कहते हैं कि मैं कामदेव हूं।

लेकिन सत्यों को समझना हो, तो पीड़ाओं की तैयारी चाहिए। और जो सत्य को समझने की हिम्मत न रखते हों, उन्हें उस तरफ आख ही बंद कर लेनी चाहिए। उस तरफ प्रयास ही नहीं करना चाहिए।

कुछ मौलिक बातें आपसे कहूं तब यह सूत्र आपकी समझ में आ सके। यह सूत्र कठिन मालूम पड़ेगा। इसलिए नहीं कि कठिन है, इसलिए कि हमारी बुद्धि न मालूम कितनी व्यर्थ की धारणाओं से भरी है। और न मालूम कितनी निंदाएं और न मालूम कितने विक्षिप्त खयाल हमारे मन को घेरे हुए हैं।

जीवन की समस्त उत्पत्ति काम से ही है। जगत की सृष्टि भी काम से ही है। सृजन का सूत्र ही काम है। अगर ब्रह्मा ने भी जगत को उत्पन्न किया, तो शास्त्र कहते हैं, कामना पैदा हुई। काम का जन्म हुआ ब्रह्मा में, तो ही उत्पन्न होगा कुछ। इस जगत में जब भी कुछ पैदा होता है, तो पैदा होने का सूत्र ही काम है।

और ऐसा नहीं है कि बच्चे ही जब पैदा होते हैं, तभी काम की शक्ति काम आती है। नहीं, कुछ और भी पैदा होता है— एक कविता पैदा होती है, एक चित्र पैदा होता है, एक मूर्ति निर्मित होती है—जहां भी कोई व्यक्ति कुछ सृजन करता है, तो उसके भीतर जो ऊर्जा, जो शक्ति काम में आती है, वह काम ही है। उत्पत्ति मात्र काम है। सृजन मात्र काम है।

इसलिए जो लोग इस सत्य को बिना समझे काम से शत्रुता में लग जाएंगे, उनका जीवन निष्क्रिय, और उनका जीवन सृजनहीन और उनका जीवन एक लंबी मृत्यु हो जाएगी। काम से ही सब उत्पन्न होता है।

लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि काम में ही सब समाप्त हो जाता है। काम के पार जाया जा सकता है। लेकिन वह पार जाना भी काम के ही मार्ग से होता है, वह सृजन भी कामवासना के ही मार्ग से होता है।

कामवासना क्या है और यह कामदेव की धारणा क्या है?

शायद पूरी पृथ्वी पर हिंदू धर्म अकेला धर्म है, जिसने काम को भी अपनी जीवन—दृष्टि में समाहित किया है। यह बड़े साहस की बात है। क्योंकि सामान्यतया धर्म काम के विरोधी हैं। और हम सोच भी नहीं सकते कि कोई ईसाई परम पुरुष कह सके कि मैं कामदेव हूं। हम सोच भी नहीं सकते कि कोई जैन धारणा इस बात की स्वीकृति दे सके ईश्वर को कहने की कि मैं कामदेव हूं। यह असंभव है, सोचना भी असंभव है। लेकिन कृष्ण इसे सहजता से कह रहे हैं। और बड़े साहस की बात है।

साहस की इसलिए है कि हम केवल कामवासना के एक ही रूप से परिचित हैं। और इसलिए जब भी कामवासना का खयाल भी हमारे मन में आता है, तो जो चित्र हमारे सामने मौजूद होता है, वह हमारी ही कामवासना के अनुभव का है। हमें कामवासना के दूसरे रूप का कोई पता ही नहीं है।

एक ही ऊर्जा है मनुष्य के भीतर, उसे हम कोई भी नाम दें। अगर वही ऊर्जा नीचे की तरफ प्रवाहित होती है, तो कामवासना और सेक्स बन जाती है। और वही ऊर्जा अगर ऊपर की तरफ प्रवाहित होने लगती है, तो अध्यात्म, कुंडलिनी, हम जो भी नाम देना चाहें। वही ऊर्जा, शक्ति वही है; सिर्फ आयाम, दिशा बदल जाती है।

नीचे की ओर गिरती हो वही शक्ति, तो वासना हो जाती है, ऊपर की ओर उठती हो वही शक्ति, तो आत्मा हो जाती है। नीचे की ओर गिरती हो, तो दूसरों को पैदा करती है, ऊपर की ओर उठने लगे, तो स्वयं को जन्म देती है। नीचे की ओर बहना हो उसे, तो किसी और को आधार बनाना पड़ता है, ऊपर की ओर बहना हो, तो स्वयं ही आधार होना पड़ता है। नीचे की ओर बहती हो काम—ऊर्जा, तो जननेंद्रिय के मार्ग से प्रकृति में लीन हो जाती है; और अगर ऊपर की ओर बहने लगे, तो सहस्रार से लीन होकर ब्रह्म में लीन हो जाती है।

काम—ऊर्जा दो स्थानों से विलीन होती है। या तो जननेंद्रिय से, जो कि पहला चक्र है; और या सहस्रार से, जो अंतिम चक्र है। ये दो छोर हैं आपके व्यक्तित्व के। काम—केंद्र से आप प्रकृति से जुड़े हैं और सहस्रार से आप परमात्मा से जुड़े हैं। लेकिन शक्ति एक ही है। लेकिन हमारी हालत ऐसी है कि जिस आदमी को आग का एक ही परिचय हो, घर जल जाने का, वह सोच भी नहीं सकता कि आग रोटी भी पकाती है, और वह सोच भी नहीं सकता कि रात के अंधेरे में आग प्रकाश भी देती है; और वह सोच भी नहीं सकता कि ठंड से मरते हुए आदमी के लिए आग जीवन भी हो जाती है। जिसका एक ही अनुभव हो कि उसने आग से मकान को जलते और बरबाद होते देखा हो, उसे आग के दूसरे रूपों का कोई भी पता नहीं होता।

हम कामवासना के एक ही रूप को जानते हैं, जिससे हम अपनी जीवन—शक्ति को क्षीण होते देखते हैं। हम एक ही रूप को जानते हैं, जिसके कारण हमारे जीवन में सारी विपत्तियां और सारे उपद्रव खड़े होते हैं। हम एक ही रूप को जानते हैं, जिससे हमारे आस—पास संसार निर्मित होता है। हम एक ही रूप जानते हैं, जिससे क्रोध, लोभ, भय, ईर्ष्या, वैमनस्य, सबका जन्म होता है। हम कामवासना का अधोगामी रूप ही जानते हैं।

इसलिए अगर कोई कहे कि कृष्ण भी कामदेव हैं, तो हमें बहुत घबड़ाहट होती है। क्योंकि काम का जो रूप हम जानते हैं, वह सोचकर भी हमें घबड़ाहट होती है। हम तो चाहेंगे कि कृष्ण कामवासना के बिलकुल ऊपर हों, बिलकुल दूर हों, उनको छू भी न जाए। यह हमारा ही अनुभव है, जिसके कारण हम ऐसा सोचते हैं। लेकिन कृष्ण जब कहते हैं, मैं कामदेव हूं, तो वे कामवासना के दूसरे रूप को भी समाहित कर रहे हैं। वह दूसरा रूप ही हमारी दृष्टि में नहीं है, इसलिए हमें अड़चन और कठिनाई होती है। जैसे काम की शक्ति, सेक्स एनर्जी बाहर की तरफ बहती है, नीचे की तरफ बहती है, दूसरे शरीरों की तरफ बहती है—यह बहाव का एक ढंग है।

और ध्यान रहे, दुनिया में ऐसा कोई भी बहाव नहीं है, जो विपरीत न बह सके। अगर मैं चलकर आपके पास आ सकता हूं तो लौटकर आपसे दूर भी जा सकता हूं। ऐसा कोई भी रास्ता नहीं है, जो एक ही तरफ चलता हो। जिस रास्ते से चलकर आप यहां तक आए हैं, उसी से चलकर आप अपने घर वापस लौट जाएंगे। कोई ऐसा दरवाजा नहीं है, जिससे आप बाहर आते हों और उसी से आप भीतर न जा सकते हों। हर द्वार, हर मार्ग, हर प्रवाह दो आयामों में होता है, दो दिशाओं में होता है। आप पीछे लौट सकते हैं।

कामवासना का हम एक ही द्वार जानते हैं और एक ही रूप, दूसरे की तरफ प्रवाहित होने वाला। और ध्यान रहे, जब भी कोई दूसरे की तरफ प्रवाहित होता है, तो परतंत्र हो जाता है। इसलिए कामवासना गहरे में हमारे लिए एक परतंत्रता है। इसलिए जो लोग भी स्वतंत्र होना चाहते हैं, मुक्त होना चाहते हैं, उनका संघर्ष कामवासना से शुरू हो जाता है।

इस दुनिया में गहरी से गहरी गुलामी सेक्स की गुलामी है। दूसरे आदमी पर निर्भर होना पड़ता है। दूसरा अपने से भी ज्यादा महत्वपूर्ण हो जाता है। दूसरे के इर्द—गिर्द चक्कर काटना पड़ता है, परिक्रमा करनी पड़ती है। एक गहरी गुलामी है।

इसलिए जो लोग भी मुक्ति की दिशा में चलते हैं, उनका मन अगर वितृष्णा से भर जाता हो कामवासना से, तो आश्चर्य नहीं है; तर्कयुक्त है, स्वाभाविक है। लेकिन शत्रुता से भर जाने से कुछ भी न होगा। और लड़ने से भी कुछ न होगा।

मजे की बात है! अगर मुझे स्त्री आकर्षित करती है या पुरुष आकर्षित करता है या कोई मुझे आकर्षित करता है, तो लड़ने वाला, जो मुझे आकर्षित करता है, उससे भागेगा। लेकिन मैं कहीं भी भाग जाऊं, जो मेरे भीतर आकर्षित होता था, वह मेरे साथ ही रहेगा। मैं एक स्त्री को छोड़कर भाग सकता हूं, एक पुरुष को छोड़कर भाग सकता हूं लेकिन जो भी मेरे भीतर प्रवाहित होता था नीचे की ओर, वह मेरे साथ ही चला जाएगा। वह अ को छोड़ देगा तो ब पर आकर्षित होगा, ब को छोड़ देगा तो स पर आकर्षित होगा। और मैं यह भी कर सकता हूं कि सबको छोड़कर निपट जंगल में बैठ जाऊं, तो मेरी कल्पना में ही मैं उन सबको पैदा करना शुरू कर दूंगा, जो मेरे आकर्षण के बिंदु बन जाएंगे।

स्त्रियों को छोड़कर भाग जाने से कोई स्त्रियों से मुक्त नहीं होता। स्त्रियों के बीच रहकर कभी मुक्त हो भी जाए, भागकर तो मुक्त होना बहुत मुश्किल हो जाता है। क्योंकि जिससे हम भागते हैं, वह हमारा पीछा करता है कल्पना में।

और ध्यान रहे, कोई भी स्त्री वस्तुत: इतनी सुंदर नहीं है, जितनी कल्पना में सुंदर हो जाती है। न कोई पुरुष इतना सुंदर है, जितना कल्पना में सुंदर हो जाता है। कल्पना कहीं फ्रस्ट्रेट ही नहीं होती, कल्पना को कहीं विषाद का क्षण ही नहीं आता! वास्तविक अस्तित्व में तो हम सब विषाद को उपलब्ध हो जाते हैं।

जो शरीर कल बहुत सुंदर मालूम पड़ता था, दो दिन बाद साधारण मालूम पड़ने लगेगा। चार दिन बाद उससे ही घबड़ाहट होने लगेगी। पंद्रह दिन के बाद उससे भागने का मन भी होने लगेगा। लेकिन कल्पना में ऐसा क्षण कभी नहीं आता। कल्पना बड़ी सुगंधित है। कल्पना के शरीरों से न पसीना बहता है। न कल्पना के शरीरों से दुर्गंध आती है। न कल्पना के शरीर झगड़ते हैं, लड़ते हैं। कल्पना के शरीर तो आपकी ही कल्पनाएं हैं, आपको कभी भी दुख नहीं देते। लेकिन वास्तविक शरीर तो दुख देंगे। वास्तविक व्यक्ति तो दुख देंगे। वास्तविक व्यक्तियों के बीच तो कलह और संघर्ष होगा।

इसलिए जो लड़ने में लग जाएगा, वह भागेगा। लेकिन जो समझने में लगेगा, वह अपनी धारा को बदलेगा, भागेगा नहीं। दूसरे से भागने का कोई प्रयोजन नही है। मेरी ही शक्ति जो दूसरे की तरफ प्रवाहित होती है, वह मेरी तरफ प्रवाहित होने लगे, यह है सवाल।

और जब काम की ऊर्जा अपनी तरफ बहनी शुरू होती है, स्व की तरफ बहनी शुरू होती है, पर की तरफ नहीं, तब हमें कामवासना का वास्तविक अर्थ और प्रयोजन पता चलता है। तब हमें पता चलता है कि जिसे हमने जहर समझा था, वह अमृत हो जाता है। और तब हमें पता चलता है कि जिसे हमने परतंत्रता समझा था, वही हमारी स्वतंत्रता बन जाती है। और तब हमें पता चलता है कि जिसे हमने नर्क का द्वार समझा था, वही हमारी मुक्ति का द्वार भी है।

जब कृष्ण कहते हैं, मैं कामदेव हूं तो इस सारी दृष्टि को सामने रखकर कह रहे हैं।

काम की ऊर्जा हमारी शक्ति का नाम है। हम जो भी हैं, काम की ऊर्जा के संघट हैं। अगर हमारी ऊर्जा बाहर बहती रहे, तो बिखर जाती है, दूर फैलती चली जाती है। अगर यही ऊर्जा भीतर आने लगे, तो संगठित होने लगती है, इंटीग्रेट होने लगती है, क्रिस्टलाइज होने लगती है, केंद्रित होने लगती है। और धीरे— धीरे जब सारी बाहर जाने वाली ऊर्जा स्वयं पर ही आकर इकट्ठी हो जाती है, तो जो क्रिस्टलाइजेशन, जो सेंटरिग, जो केंद्रीयता हमारे भीतर पैदा होती है, वही हमारी आत्मा का अनुभव है।

जिस व्यक्ति की कामवासना बाहर भटकती जाती है, उसका अनुभव संसार का अनुभव है, आत्मा का अनुभव नहीं। और जिस व्यक्ति की ऊर्जा भीतर इकट्ठी होती जाती है, संगठित होती चली जाती है, अंतत: एक ऐसा बिंदु निर्मित हो जाता है वज की भांति, जो बिखर नहीं सकता। उस अनुभव के साथ ही हम पहली दफा आत्मा के जगत में प्रवेश करते हैं या ब्रह्म के जगत में प्रवेश करते हैं। लेकिन वह भी सृजन है, अपना ही सृजन। वह भी जन्म है, अपना ही जन्म।

बुद्ध के पास जब कोई भिक्षु आता था, तो वे उससे पूछते थे, तेरी उम्र कितनी है? एक भिक्षु आया बुद्ध के पास और बुद्ध ने उससे पूछा, तेरी उम्र कितनी है? उसने कहा, केवल चार दिन!

उम्र उसकी कोई सत्तर वर्ष मालूम होती थी। बुद्ध थोडे चौंके, और लोग भी चौंके। बुद्ध ने दुबारा पूछा कि कहीं कुछ भूल—चूक सुनने—समझने में हो गई है, तेरी उम्र कितनी है? उस आदमी ने कहा कि मैं पुन: कहता हूं मेरी उम्र है चार दिन। बुद्ध ने कहा, तुम कोई व्यंग्य करते हो? मजाक करते हो?

उसने कहा कि नहीं, चार दिन पहले ही आपको सुनते क्षण में मुझे अपने होने का पहली दफा पता चला, वही मेरा जन्म है। उसके पहले तो मैं था ही नहीं। संसार था, मैं नहीं था। मैं तो अभी चार दिन पहले पहली दफे हुआ हूं। और अभी बहुत कमजोर हूं एक छोटे शिशु की तरह हूं। अभी आपके सहारे की मुझे जरूरत है। अभी आपकी छाया की मुझे जरूरत है। अभी मैं बिखर सकता हूं। अभी बहुत कोमल तंतु हूं। लेकिन जन्म मेरा अभी चार दिन पहले हुआ है।

उस दिन बुद्ध ने कहा था, भिक्षुओ, आज से हमारे भिक्षुओं की उम्र को नापने की यही व्यवस्था होगी। तुम अपनी उस उम्र को छोड़ देना, जब तुम नहीं थे। तुम उसी उम्र को गिनना, जब से तुम हुए हो। जिस दिन तुम अपने को जानो, उसी दिन को समझना तुम्हारा जन्म। माता—पिता ने तुम्हारे जिसको जन्म दिया था, वह तुम नहीं हो।

माता—पिता एक शरीर को जन्म देते हैं। लेकिन स्वयं को जन्म देना हो, तो स्वयं ही देना पड़ता है। यह जन्म घटित होता है, जब काम की ऊर्जा भीतर की ओर प्रवाहित होनी शुरू होती है।

यह सारा जगत आज विक्षिप्त है। मनस्विद कहते हैं— फ्रायड या जुग या एडलर— वे कहते हैं कि यह सारी विक्षिप्तता का निन्यानबे प्रतिशत कारण कामवासना है। वे ठीक ही कहते हैं। लेकिन उनका निदान तो ठीक है, उनका इलाज ठीक नहीं है। उनकी डायग्नोसिस बिलकुल सही है, लेकिन वे जो दवाएं बताते हैं, वे ठीक नहीं हैं।

उनका खयाल है, यह सारा मनुष्य इतना पीड़ित है, यह अतिशय कामुकता के कारण। इतनी कलह और इतनी ईर्ष्या और इतना संघर्ष और इतना लोभ, इस सबके भीतर अगर हम प्रवेश करना शुरू करें, तो निश्चित ही केंद्र पर कामवासना मिलेगी। तो फ्रायड कहता है कि यह कामवासना को ठीक से तृप्त करने का उपाय न हो, तो आदमी विक्षिप्त होता चला जाएगा। तो कामवासना को ठीक से तृप्त होने का उपाय होना चाहिए।

यह भी थोड़ी दूर तक ठीक है। लेकिन कामवासना को तृप्त करने के कितने ही उपाय किए जाएं, आदमी कामवासना की तृप्ति से कभी भी शांत नहीं होता। हो नहीं सकता। कामवासना को रूपांतरित किए बिना आदमी कभी भी शांत नहीं हो सकता। एक ट्रांसफामेंशन चाहिए।

यह कामवासना जो बाहर की तरफ दौड़ती है, इसकी कितनी ही तृप्ति का उपाय किया जाए, कोई तृप्ति उपलब्ध नहीं होती। बल्कि एक और नया खतरा पश्चिम में फ्रायड को मानकर फलित हुआ है। और वह यह कि पचास साल पहले, फ्रायड के पहले पश्चिम में खयाल था लोगों को कि कामवासना तृप्त हो जाएगी, तो लोग बड़े शांत, संतुष्ट हो जाएंगे। क्योंकि अगर उसी की अतृप्ति से बेचैनी है, तो तृप्ति से शांति हो जाएगी।

लेकिन आज अमेरिका में उसे तृप्त करने की सर्वाधिक सुविधाएं उपलब्ध हो गई हैं, संभवत: पृथ्वी पर कहीं भी नहीं थीं। सब तरह की स्वतंत्रता, एक परमिसिव सोसाइटी, सब तरह से मुक्त करने वाला समाज पैदा हो गया है। लेकिन अनूठा अनुभव हुआ। अतृप्तियां पुरानी अपनी जगह हैं, और एक नई अतृप्ति पैदा हो गई है। वह है, कामवासना की व्यर्थता का बोध। पुरानी अतृप्ति में कम से कम एक आशा थी कि कभी कहीं कोई कामवासना तृप्त होगी, तो मन शांत हो जाएगा। अब वह भी आशा न रही। अतृप्ति पुरानी अपनी जगह खड़ी है, एक नई अतृप्ति, और ज्यादा गहरी, कि यह कामवासना ही बिलकुल व्यर्थ है, स्थूटायल है। इसमें कुछ होने वाला नहीं है।

आज पश्चिम का आदमी ऐसी बेचैनी में है, जिसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते। वह रहेगा, क्योंकि फ्रायड का वक्तव्य अधूरा है। फ्रायड के साथ बुद्ध को और कृष्ण को और महावीर को भी जोड़ना अनिवार्य है। फ्रायड का निदान बिलकुल ठीक है, लेकिन फ्रायड का उपचार ठीक नहीं है।

कृष्ण या बुद्ध या महावीर कामवासना को रूपांतरित करने की व्यवस्था देते हैं। और जब कामवासना रूपांतरित होती है, तो फिर उसको कामवासना न कहकर हम कामदेव कहते हैं।

इस फर्क को आप समझ लें।

जब तक कामवासना नीचे की तरफ बहती है, तब तक कामवासना एक राक्षस की तरह होती है, एक दानव की तरह। चूसे चली जाती है आदमी को। पीए चली जाती है। उसकी सारी शक्तियों को खींचे चली जाती है। उसे रुग्ण और दीन और दरिद्र किए चली जाती है। खोखला कर देती है भीतर से। सब सत्य खिंच जाता है, फिंक जाता है, और आदमी धीरे— धीरे एक चली हुई कारतूस की तरह हो जाता है। मरने के पहले ही आदमी मर जाता है।

के आदमी को खालीपन का अनुभव होता है, जैसे भीतर कुछ भी नहीं है। वह खालीपन कुछ और नहीं है, कामवासना ने सारी शक्तियों को अपशोषित कर लिया है। जवान आदमी को भरापन मालूम पड़ता है। वह भरापन भी कुछ नहीं है, वह भरापन भी कामवासना का ही भराव है। बूढ़े और जवान आदमी में उतना ही फर्क है, जितना भरी हुई कारतूस में और चल गई कारतूस में है। और कोई ज्यादा फर्क नहीं है। न तो जवान भरा हुआ है, न का खाली है। भ्रांति उस ऊर्जा की वजह से हो रही है। भरे आदमी तो केवल वे ही हैं, जिनकी काम— ऊर्जा ऊपर की तरफ प्रवाहित होनी शुरू होती है। उन्हीं के लिए फुलफिलमेंट है, उन्हीं के लिए आप्तता है।

जिस दिन कामवासना ऊपर की तरफ प्रवाहित होती है, उस दिन कामदेव हो जाती है। इसलिए शायद हम अकेली कौम हैं जमीन पर, जिन्होंने कामवासना को भी देवता की स्थिति दी है। उसको भी देव कहने की हिम्मत जुटाई है। लेकिन वह रूपांतरित है; ऊपर उठ गया है। दूसरे से संबंध छूट गया है। शक्ति अपने ही भीतर प्रवाहित होने लगी है, अपने ही अंतस्तल में। अंतर्यात्रा पर निकल गई है।

कृष्ण कहते हैं, मैं कामदेव हूं समस्त जीवन के सृजन का मूल आधार मैं हूं।

और कामदेव कहने की क्या जरूरत! वे कोई और देवताओं का नाम भी ले सकते थे। देवों में कामदेव का ही नाम लेने का प्रयोजन भी है। क्योंकि कामदेव के ऊपर जो उठ जाए...। मैंने पहले आपसे कहा, काम—राक्षस। ऐसा हम करें शब्द का प्रयोग, नीचे की तरफ बहती

काम—ऊर्जा। फिर कामदेव, ऊपर की तरफ बहती हुई काम— ऊर्जा। कामदेव के भी ऊपर जो उठ जाए, वह देवताओं से पार हो जाता है।

बाहर की तरफ बहती ऊर्जा, काम—राक्षस। भीतर की ओर बहती हुई ऊर्जा, कामदेव। और कहीं भी बहती हुई ऊर्जा नहीं, ठहरी हुई ऊर्जा, न बाहर, न भीतर, समस्त गति को खो दिया हो ऊर्जा ने, ठहर गई ऊर्जा, थिर हो गई ऊर्जा, जैसे कि दीये की ली ठहर जाए, हवा का कोई झोंका न हो; उस स्थिति में आदमी कामदेव के भी ऊपर उठ जाता है।

इसलिए साधक को पहले दूसरे की परेशानी रहती है कि दूसरा खींचता है। फिर अंतिम परेशानी आती है कि स्वयं का खिंचाव है। उसके भी पार जाकर, द्वंद्व के पार आदमी हो जाता है।

जो व्यक्ति कामदेव के पार हो जाता है, वह देवताओं के पार हो जाता है। इसलिए हमने, बुद्ध को जब ज्ञान हुआ, तो कथाएं कहती हैं कि समस्त देवता उनके चरणों में सिर रखकर मौजूद हुए। क्या हो गया बुद्ध को कि देवता उनके चरणों में सिर रखें! क्योंकि देवता, कितने ही ऊपर हों, कामदेव के ऊपर नहीं होते। लेकिन जब कोई व्यक्ति बुद्धत्व को उपलब्ध होता है, तो वह काम के अंतिम रूप से

ऊपर चला जाता है। फिर देवता भी नीचे पड़ जाते हैं। फिर देवता भी बुद्ध को नमस्कार करने आते हैं।

बुद्ध को अंतिम क्षण में, या महावीर को अंतिम क्षण में, या जीसस को अंतिम क्षण में, जो आखिरी संघर्ष है, जो आखिरी पार होना है, वह काम ही है। काम के जो पार हो गया, वह देवत्व के पार हो गया। वह फिर भगवत्ता में सम्मिलित हो गया।

तीन कोटियां हैं। मनुष्य हम उसे कहें, जिसकी कामवासना नीचे की ओर बहती है। देव हम उसे कहें, जिसकी कामवासना ऊपर की ओर बहती है या भीतर की ओर बहती है। भगवान हम उसे कहें, जिसकी कामवासना बहती नहीं— न बाहर न भीतर, न नीचे न ऊपर। ये तीन कोटियां हैं।

इसलिए बुद्ध को हम भगवान कहते हैं। भगवान कहने का कुल कारण इतना है कि अब वे देव के भी पार हैं।

कृष्ण कहते हैं, मैं देवताओं में कामदेव हूं। अगर देवताओं में ही मुझे खोजना हो, तो तुम काम में खोजना। क्योंकि काम ही सृजन का मौलिक आधार है। जगत में जो भी घटता है, सुंदर, शुभ, सत्य, वह सब काम की ऊर्जा का ही प्रतिफलन है। चाहे कोई गीत पैदा होता हो सुंदर, चाहे कोई चित्र बनता हो सुंदर, और चाहे कोई व्यक्तित्व निर्मित होता हो सुंदर, वह सब काम—ऊर्जा का ही फैलाव है। इस जगत में जो भी सुंदर है और शुभ है, वह सब काम की ऊर्जा की ही लहरें हैं।

हमने ही अकेले पृथ्वी पर ऐसे मंदिर बनाए, खजुराहो, कोणार्क, जहां हमने भीतर परमात्मा को स्थापित किया और भित्ति—चित्रों पर काम के अनूठे—अनूठे चित्र खोदे। असंगत मालूम पड़ता है। खजुराहो के मंदिर में प्रवेश करें, तो घबड़ाहट मालूम होती है। मंदिर, जहां प्रभु को स्थापित किया है भीतर, उसकी भित्ति, उसकी दीवालों पर संभोग के, मैथुन के, काम के चित्र खुदे हैं, स्तुतियां निर्मित हैं! और ऐसी मूर्तियां पृथ्वी पर किसी ने कभी नहीं बनाईं। बाप बेटी के साथ मंदिर में प्रवेश करने में घबड़ाता है। भाई भाई के साथ जाने में डरेगा। बेटा मां के साथ मंदिर में जाने में भयभीत होगा। इस भय और डर के कारण शायद हम कहेंगे कि ये मंदिर ठीक नहीं बने, गलत बने हैं।

गांधीजी के एक भक्त थे, पुरुषोत्तमदास टंडन। उनका सुझाव था गांधीजी को कि इन मंदिरों पर मिट्टी ढांककर इनको दाब देना चाहिए। गांधीजी को भी बात तो जँचती थी कि ढांक दिए जाएं ये मंदिर; ये भारतीय संस्कृति को विकृत करते हुए मालूम पड़ते हैं।

जिनको भारतीय संस्कृति का कोई पता नहीं है, उन्हीं को ऐसा लगेगा। लेकिन नहीं हो सका वह, क्योंकि खजुराहो जगत—ख्याति का मंदिर है और भारत का टूरिज्म का बड़ा धंधा खजुराहो और कोणार्क जैसे मंदिरों पर निर्भर है। अगर बाहर से पर्यटक देखने न आते हों इन मंदिरों को, और इन मंदिरों की जगत—ख्याति न हो, तो हमने जरूर इन पर मिट्टी ढांक दी होती, इनको पूर दिया होता, इनको मिटा दिया होता।

इतना हमें क्यों डर लगता है? मां अपने बेटे के साथ इस मंदिर में जाने में भयभीत क्यों होती है? क्योंकि हम जीवन के तथ्यों को स्वीकार नहीं करते। हम जीवन के तथ्यों को झुठलाते हैं; हम बेईमान हैं। जीवन की सीधी सचाइयों के प्रति हम बहुत बेईमान हैं। नहीं तो बात ही क्या है? जब कोई मां बनती है किसी बेटे की, तभी काम— ऊर्जा के कारण बनती है। जब कोई बाप बनता है किसी बेटे का, तो काम—ऊर्जा के कारण बनता है।

लेकिन काम—ऊर्जा के प्रति हमने इस तरह के छिपाव खड़े किए हैं कि हम दुनिया में बात ही नहीं होने देते। जो मौलिक है सत्य, उसको हम ऐसे छिपाते हैं, जैसे वह घटता ही नहीं है। उस घबड़ाहट के कारण ये मंदिर हमें प्रवेश करने में डर पैदा करवाते हैं।

यह मंदिर बहुत सत्य है। सत्य, नग्न रूप से सत्य है। और विचार करके इसे निर्मित किया गया है। दीवाल के बाहरी हिस्सों पर कामवासना के चित्र हैं। और मंदिर इस बात का प्रतीक है कि जब तक तुम्हारा मन दीवाल के बाहर के चित्रों में लीन हो, तब तक भीतर प्रवेश नहीं हो सकेगा। जिस दिन तुम्हें बाहर मंदिर की दीवाल पर खुदे हुए मैथुन के गहन चित्र जरा भी आकर्षित न करें, उसी दिन तुम भीतर आना, उसी दिन तुम परमात्मा के मंदिर में प्रवेश कर सकोगे।

संसार इस मंदिर के बाहर खुदे हुए चित्रों की परिधि है। और जब तक किसी का मन कामवासना में डोल रहा है, तब तक वह मंदिर में प्रवेश नहीं हो सकता। और कामवासना में डोलने के दो ढंग हैं। या तो कामवासना के लिए डोल रहा हो, या कामवासना से भयभीत होकर डरकर डोल रहा हो।

जो आदमी इस मंदिर के पास जाता है और आंखें गड़ाकर इन चित्रों को देखने लगता है, वह भी उनसे उलझा है, और जो इन चित्रों को देखकर आंखें नीची करके दुबककर अंदर घुस जाता है, वह भी इन्हीं चित्रों से उलझा हुआ है। जो आदमी इन चित्रों के पास से ऐसे गुजर जाता है, जैसे चित्र हों ही न, वही आदमी मंदिर में प्रवेश के योग्य है। कामवासना से जो पार नहीं जाता, वह मंदिर में प्रवेश नहीं पा सकता है।

लेकिन कामवासना का विरोध करके कोई कभी पार नहीं गया है। इस जगत में समझने के अतिरिक्त पार जाने का कोई भी उपाय नहीं है। लड़ते हैं नासमझ, जानते हैं समझदार। और जानना ताकत है। ज्ञान शक्ति है।

बेकन ने कहा है, नालेज इज पावर। सभी अर्थों में सही है। जहां भी ज्ञान है, वहीं शक्ति है। और जिस चीज का हमें ज्ञान है, हम उसके मालिक हो सकते हैं। और जिसका हमें ज्ञान नहीं है, हम उससे चाहे भयभीत हों, चाहे पराजित हों, चाहे उसके गुलाम रहें, चाहे उससे डरकर भागते रहें, हम उसके मालिक कभी भी न हो सकेंगे।

आकाश में बिजली कौंधती है, आज हम उसके मालिक हो गए हैं। वैसे ही ठीक कामवासना और भी बड़ी बिजली है, जीवंत बिजली है, उसके भी मालिक होने का उपाय है। लेकिन मालिक केवल वे ही हो सकते हैं, जो उसके प्रति भी सदभाव रखकर चलें।

जब कृष्ण कहते हैं, मैं कामदेव हूं, तो सदभाव रखा जा सकता है। तब कोई विरोध, तब कोई निंदा का सवाल नहीं है। तब यह भी शक्ति परमात्मा की है, और इस शक्ति का कैसे अधिकतम उपयोग हो सके, और कैसे यह शक्ति जीवन के लिए मंगलदायी हो जाए, और कैसे यह शक्ति हमारी मृत्यु का कारण न बने, वरन परम जीवन में प्रवेश का द्वार हो जाए, इसकी दिशा में मेहनत की जा सकती है।

सिर्फ अकेले हिंदुस्तान ने एक विज्ञान को जन्म दिया जिसका नाम तंत्र है। एक पूरे विज्ञान को जन्म दिया, जिसके माध्यम से काम की ऊर्जा ऊर्ध्वगामी हो जाती है। और जिसके अंतिम प्रयोगों से काम—ऊर्जा थिर हो जाती है, उसका प्रवाह समाप्त हो जाता है। कृष्ण कहते हैं, मैं कामदेव हूं।

लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि कोई कामवासना में पड़ा रहे। काम को भी दिव्य बनाना है, तभी यह कृष्ण के कामदेव की बात समझ में आएगी। उसे भी दिव्यता देनी है।

हमारा तो काम पशुता से भी नीचे चला जाता है, दिव्यता तो बहुत दूर की बात है। पशुओं की कामवासना में भी एक तरह की स्वच्छता है। और पशुओं की कामवासना में भी एक तरह की सरलता है, एक निर्दोष भाव है। आदमी की कामवासना में उतना निर्दोष भाव भी नहीं है। आदमी की कामवासना, लगती है, पशुओं से भी नीचे गिर जाती है। क्या कारण होगा?

क्योंकि पशुओं की कामवासना उनकी शुद्ध शारीरिक घटना है। और आदमी की कामवासना शारीरिक कम और मानसिक ज्यादा है। मानसिक होने से विकृत है। मानसिक होने से विकृत है, सेरिब्रल होने से विकृत है। एक आदमी संभोग में उतरे, यह निर्दोष हो सकता है। लेकिन एक आदमी बैठकर और संभोग का चिंतन करे, यह विकृत है, यह बीमार है।

तीन संभावनाएं हैं। या तो कामना, काम की शक्ति, प्रकृत हो, नेचुरल हो। अगर नीचे गिर जाए, तो विकृत हो जाए, अननेचुरल हो जाए। अगर ऊपर बढ़ जाए, तो संस्कृत हो जाए, सुपरनेचुरल हो जाए। प्रकृत कामवासना दिखाई पड़ती है पशुओं में, पक्षियों में। इसलिए नग्न पक्षी भी हमारे मन में कोई परेशानी पैदा नहीं करता। लेकिन कुछ लोग इतने रुग्ण हो सकते हैं कि नग्न पशु—पक्षी भी परेशानी पैदा करें।

अभी मैंने सुना है कि लंदन में की औरतों के एक क्लब ने एक इश्तहार लगाया हुआ है। और उसमें कहा है कि सड़क पर कुत्तों को भी नग्न निकालने की मनाही होनी चाहिए।

अब बूढ़ी स्त्रियों को सडक पर नग्न कुत्तों के निकलने में क्या एतराज होगा? इस एतराज का संबंध कुत्तों से कम, इन स्त्रियों से ज्यादा है। इनके मन में कहीं कोई गहरा विकार है। वही विकार प्रोजेक्ट होता है।

हम बच्चे को देखते हैं नग्न, तो तकलीफ नहीं होती। बड़े आदमी को नग्न या बड़ी स्त्री को नग्न देखते हैं, तो पीड़ा क्या होती है? वह पीड़ा कोई विकार है। वह नग्न व्यक्ति में है, ऐसा नहीं, वह हमारे भीतर है।

आदिवासी हैं, उनकी स्त्रियां अर्द्धनग्न हैं, करीब—करीब नग्न हैं, लेकिन किसी को कोई विकार पैदा होता मालूम नहीं होता। और हमारी स्त्रियां इतनी ढंकी हुई हैं, जरूरत से ज्यादा ढंकी हुई हैं, बल्कि इस ढंग से ढंकी हुई हैं कि जहां—जहां ढांकने की कोशिश की गई है, वहीं—वहीं उघाड़ने का इंतजाम भी किया गया है। हमारा ढांकना उघाड़ने की एक व्यवस्था है। हम ढांकते हैं, लेकिन उस ढांकने में बीमारी है। इसलिए जो—जो हम ढांकते हैं, उसे हम दिखाना भी चाहते हैं। तो ढांकने से भी हम दिखाने का इंतजाम कर लेते हैं।

हमारी ढंकी हुई स्त्री भी रुग्ण मालूम पड़ेगी। एक आदिवासी नग्न स्त्री भी रुग्ण मालूम नहीं पड़ेगी। वह प्रकृत है, पशुओं जैसी प्रकृत है।

एक और नग्नता भी है। एक पशुओं की नग्नता है, एक हमारी नग्नता है — कपड़ों में ढंकी। एक महावीर की नग्नता भी है। महावीर भी नग्न खड़े हैं। लेकिन उनकी नग्नता से किसी को कोई बेचैनी नहीं मालूम पड़ेगी। और अगर बेचैनी मालूम पड़े, तो जिसे मालूम पड़ती है, वही जिम्मेवार होगा। महावीर की नग्नता फिर बच्चे जैसी हो गई, फिर इनोसेंट हो गई। अब महावीर की नग्नता में, आदमी के ढंके होने से ऊपर जाने की स्थिति आ गई। अब ढांकने को भी कुछ न बचा। अगर हम महावीर से पूछें कि आप नग्न क्यों खड़े हैं? तो वे।_र कहेंगे, जब ढांकने को कुछ न बचा, तो ढांकना भी क्या है!

हम ढांक क्या रहे हैं? हम अपने शरीर को नहीं ढांक रहे हैं। अगर बहुत गौर से हम समझें, तो हम अपने मन को ढांक रहे हैं। और चूंकि शरीर कहीं खबर न दे दे हमारे मन की, इसलिए हम शरीर को ढांके हुए बैठे हैं। लेकिन जब कोई डर ही न रहा हो, शरीर की तरफ से कोई खबर मिलने का उपाय न रहा हो, क्योंकि मन में ही कोई उपाय न रहा हो, तो महावीर नग्न होने के अधिकारी हो जाते हैं।

तीन संभावनाएं हैं। अगर कामवासना विकृत हो जाए, जैसी कि आज जगत में हो गई है.. .एकदम विकृत मालूम पड़ती है, और चारों तरफ से घेरे हुए है हमें। चाहे आप फिल्म देख रहे हों, तो भी कामवासना अनिवार्य है। चाहे आप अखबार पढ़ रहे हों, चाहे आप किताब पढ़ रहे हों, चाहे कहानी पढ़ रहे हों, और यह तो छोड़ दें, अगर आप साधु—संतों के प्रवचन भी सुन रहे हों, तो भी कामवासना अपना निषेधात्मक रूप प्रकट करती रहती है।

यह बहुत मजे की बात है कि मैंने बहुत—सी किताबें देखी हैं उन लोगों की भी जिन्होंने पोर्नोग्राफी, जिन्होंने अश्लील साहित्य लिखा है, और स्त्री—पुरुषों के अंगों की नग्न चर्चा की है। उन साधु—संतों की किताबें भी मैंने देखी हैं, जिन्होंने स्त्री—पुरुषों के अंगों की चर्चा की है निंदा के लिए। लेकिन बड़े मजे की बात है, कोई पोनोंग्राफर इतने रस से चर्चा नहीं कर पाता, जितने साधु—संत कर पाते हैं। इतना रस नहीं मालूम पड़ता। कोई अश्लील लिखने वाला इतने रस से चर्चा नहीं करता।

यह विकृत रस है। भीतर दमन है, भीतर दबाया है, जबरदस्ती की है, वह पीछे से निकलता है।

झेन कथा है एक। दो फकीर, एक का और एक युवा, एक नदी के पास से गुजरते हैं। का फकीर आगे है; भिक्षु है बौद्ध। एक युवा लड़की खड़ी है नदी के किनारे। और वह उस के से कहती है कि मुझे नदी के पार जाना है, और मैं डरती हूं। और उस के का मन हुआ कि हाथ से सहारा देकर नदी पार करा दे। लेकिन यह सोचा उसने कि हाथ का सहारा दे दे, कि भीतर वासना पूरी तरह खड़ी हो गई। वह घबड़ा गया। लड़की से नहीं, अपने से घबड़ा गया। आंखें नीची कर लीं और नदी पार हो गया।

नदी के उस पार जाकर उसे खयाल आया कि मैं तो का आदमी हूं और मेरा अपने ऊपर संयम है, इसलिए लड़की का हाथ मैंने नहीं पकड़ा। हमारे सब संयम इसी तरह के कमजोर हैं। लेकिन मेरे पीछे जो युवा संन्यासी आ रहा है, कहीं वह इस भूल में न पड़ जाए, जिसमें मैं पड़ा जा रहा था, पड़ते—पड़ते बचा, बाल—बाल बचा। लौटकर उसने देखा, तो उसकी तो छाती बैठ गई। वह युवा संन्यासी उस लड़की को कंधे पर बिठाकर नदी पार कर रहा है!

उस लड़के ने, उस युवा संन्यासी ने लड़की को किनारे के पार उस तरफ छोड़ दिया। फिर वे दोनों अपने आश्रम की तरफ चलने लगे। मीलभर का रास्ता, के ने एक शब्द भी नहीं बोला। आग जल रही है उसके भीतर। द्वार पर मोनेस्ट्री के, आश्रम के द्वार पर उसने रुककर उस युवक से कहा कि याद रखो, तुमने जो पाप किया है, वह मुझे गुरु को जाकर बताना ही पड़ेगा।

उस युवक ने पूछा, कौन सा पाप! कैसा पाप! उस के ने कहा, उस लड़की को कंधे पर बिठालना। वह युवा संन्यासी हंसने लगा। उसने कहा, मैं तो उसे कंधे से नदी के उस पार उतार भी आया, आप उसे अभी भी कंधे पर लिए हुए हैं! यू आर स्टिल कैरीइंग हर। अभी भी आप उसे खींच रहे हैं!

चाहे सिनेमागृह में जाएं, तो एक रूप है वासना का। और मंदिर में जाकर चर्चा सुनें, तो यह खींचने वाला रूप है वासना का। लेकिन सब तरफ वासना घेरे हुए है। सब तरफ वासना घेरे हुए है। यह तो रुग्ण मालूम होती है अवस्था; पशु से भी नीचे गिर गई अवस्था मालूम पड़ती है।

इससे ऊपर उठा जा सकता है। लेकिन उठने के लिए पहली ध्यान रखने की बात जरूरी जो है, वह यह है कि जो भी इससे लड़ने लगेगा, वह ऊपर नहीं उठ पाएगा। क्योंकि जिससे हम लड़ते हैं, उसमें हमारा रस निर्मित होता है। आप अपने मित्र को भी भूल सकते हैं; शत्रु को भूलना इतना आसान नहीं है। मित्र को भूल जाने में इतनी कठिनाई नहीं है, मित्र भूल ही जाते हैं, समय भुला देता है। लेकिन शत्रु! शत्रु को भुलाना बहुत मुश्किल है।

जिससे आप लड़ते हैं, उससे चौबीस घंटे लड़ना पड़ता है। और एक बड़ी कीमिया की बात है भीतरी कि जिससे आप बहुत दिन तक लड़ते हैं, आप उसके जैसे ही हो जाते हैं। किसी से भी लड़कर देखें आप। अगर दों—चार साल किसी दुश्मन से आपकी दुश्मनी चल जाए, तो चार साल के बाद आप पाएंगे कि आप अपने दुश्मन जैसे हो गए।

दो मित्र भी इतने एक से नहीं होते, जितने दो शत्रु अंत में एक से हो जाते हैं। क्योंकि जिससे लड़ना पड़ता है, उसकी ही तरकीबें काम में लानी पड़ती हैं। और जिससे लड़ना पड़ता है, उसी की भाषा काम में लानी पड़ती है। और जिससे लड़ना पड़ता है, उसका सत्संग भी करना पड़ता है। और जिससे लड़ना पड़ता है, चौबीस घंटे चेतना में उसका भाव बना रहता है।

इसलिए कामवासना से लड़ने वाले लोग एक बहुत मानसिक व्यभिचार में पड़ जाते हैं। भीतर व्यभिचार चलने लगता है। उनके सपने विकृत हो जाते हैं।

अगर हम साधुओं के सपने देखें, तो हम बहुत घबड़ा जाएं। वैसे सपने कारागृहों में बंद अपराधी भी नहीं देखते हैं। सपने! अगर हम सपनों में प्रवेश कर सकें, तो हमें बहुत घबड़ाहट होगी। अच्छे आदमी बुरे सपने देखते हैं। बुरे आदमी इतने बुरे सपने नहीं देखते। कोई कारण नहीं है देखने का। बुरा वे दिन में ही कर लेते हैं, रात में करने को बचता नहीं। अच्छा आदमी जो दिनभर रोक लेता है..। कभी आपने उपवास किया हो, तो रात में आपको राजमहल में भोजन का निमंत्रण मिलेगा ही, जाना ही पड़ेगा। वह जो आपने दिन में रोक लिया है, वह रात सपने में आपका मन पूरा करेगा।

आप यह मत सोचना कि सपना है, इसका क्या मूल्य?

सपना भी आपका है, किसी और का नहीं है। और सपना आपसे पैदा होता है। जैसे आपसे कर्म पैदा होता है, वैसे ही स्वप्न भी आपसे पैदा होता है। अगर मैं एक आदमी की हत्या करता हूं दिन में, तो मैं उतना ही जिम्मेवार हूं जितना मैं हत्या करने का सपना देखूं तब। अदालत मुझे नहीं पकड़ेगी, वह दूसरी बात है। लेकिन सपना भी मुझमें ही पैदा होता है, जैसे कर्म मुझमें पैदा होता है। कर्म भी मेरा है, स्वप्न भी मेरा है।

और मजा यह है कि कर्म तो मैं किसी दूसरे से भी करवा सकता हूं सपना मैं किसी दूसरे से नहीं दिखवा सकता। मैं किसी की हत्या करवाना चाहूं तो एक आदमी को भी रख सकता हूं लेकिन मेरा सपना मैं ही देख सकता हूं दूसरा नहीं देख सकता, नौकर नहीं रखे जा सकते। इसका मतलब यह हुआ कि कर्म से भी गहरा संबंध सपने का मुझसे है। सपने के लिए तो मैं निपट जिम्मेवार हूं। और कोई जिम्मेवार नहीं है।

यह जो हमारे चित्त की रुग्णता पैदा होती है, वह है दमन, संघर्ष, वैमनस्य, शत्रुता, अज्ञान से भरा हुआ।

कामवासना कामदेव बन जाती है, अगर हम शांत, मौन, प्रेम से उस ऊर्जा को समझने की कोशिश करें, जो हमारे भीतर वासना बन गई है। और फिर उसे ऊपर उठा ले जाने का विज्ञान है। उसको बदलने का इंच—इंच शास्त्र है। फिर हम उसे बदलना शुरू करें।

कभी दो—चार छोटे प्रयोग करें, आप चकित हो जाएंगे। जब भी आपको कामवासना उठे, तब आप अपना ध्यान तत्क्षण सहस्रार के पास ले जाएं। आख बंद कर लें, और अपने ध्यान को दोनों आंखों को ऊपर ले जाएं और अनुभव करें कि आपकी चेतना खोपड़ी के छप्पर से लग गई है। एक सेकेंड, और आप अचानक पाएंगे कि वासना तिरोहित हो गई। जब भी वासना उठे, तब तत्क्षण अपनी चेतना को खोपड़ी के पास ले जाएं, और आप पाएंगे, वासना तिरोहित हो गई। कितनी ही प्रगाढ़ वासना उठी हो, एक क्षण में विलीन हो जाएगी। क्योंकि वासना को चलने के लिए आपकी चेतना के सहयोग की जरूरत है।

और जो लोग इस तरह जीना शुरू कर देते हैं, कि उनकी चेतना धीरे— धीरे— धीरे सतत ऊपर की ओर प्रवाहित रहने लगती है, उनमें वासना पैदा होनी बंद हो जाती है। और अंततः चेतना की डोर को पकड़कर वासना की ऊर्जा ऊपर चढ़ने लगती है। और जिस दिन

वासना ऊपर चढ़ती है, उस दिन जीवन में जैसे आनंद का अनुभव होता है, वैसा हजारों संभोगों में भी नहीं हो सकता। क्योंकि हर संभोग शक्ति को खोना है और हर समाधि शक्ति को पाना है।

नीचे उतरना, अपनी चेतना के तल को भी नीचे गिराना है। ऊपर उठना, अपनी चेतना के तल को भी ऊपर उठाना है। और जितने हम ऊपर उठते हैं और जितने हम हल्के होते हैं, उतने गहन आनंद में प्रवेश होता है।

जिस दिन कोई व्यक्ति अपनी खोपड़ी के पार भी अपनी चेतना को ले जाने में समर्थ हो जाता है, उस दिन उसे अनंत आनंद की उपलब्धि होती है।

इसे हम ऐसा समझ सकते हैं, जब कोई व्यक्ति अपनी ऊर्जा को काम—केंद्र से नीचे गिराता है, तब उसे सुख का आभास होता है, और जब कोई व्यक्ति अपनी काम—ऊर्जा को सहस्रार से आकाश में तिरोहित करता है, तब उसे आनंद का अनुभव होता है।

इसलिए कृष्ण कहते हैं, मैं कामदेव हूं। समस्त जन्म, समस्त सृजन मेरे ही द्वारा है। मैं ही हूं।

यह जीवन को स्वीकार करने का अदभुत सूत्र है।

अल्बर्ट श्वीत्वर ने संभवत: इस सदी का हिंदू धर्म के ऊपर सबसे गहरा क्रिटिसिज्म, सबसे गहरी आलोचना लिखी है। अल्बर्ट श्वीत्वर इस सदी के दो—चार विचारशील लोगों में एक था। और उसके विचार का मूल्य है, और उसकी आलोचना विचारणीय है। उसने कहा है कि हिंदू धर्म लाइफ निगेटिव है, जीवन को अस्वीकार करता है, जीवन का निषेध करता है, जीवन का शत्रु है, जीवन को स्वीकार नहीं करता।

निश्चित ही श्वीत्वर को कुछ भूल हो गई है। और श्वीत्वर की भूल का कारण है। क्योंकि श्वीत्वर गांधी को पढ़कर समझता है कि वे हिंदू धर्म के प्रतीक हैं। श्वीत्वर महावीर और बुद्ध को पढ़कर समझता है कि वे हिंदू धर्म के प्रतीक हैं। श्वीत्वर को अगर हिंदू धर्म समझना है, तो उसे कृष्ण को पढ़ना चाहिए। न तो महावीर और न बुद्ध और न गांधी, ये हिंदू धर्म के प्रतीक नहीं हैं। और इनको पढ़ने से ऐसा वहम पैदा हो सकता है, ऐसा भय पैदा हो सकता है कि जीवन का निषेध है, जीवन का विरोध है। कृष्ण को पढ़ने पर पता चलेगा कि जीवन का इतना समग्र स्वीकार कहीं और संभव नहीं है। कृष्ण कहते हैं, मैं कामदेव हूं।

काम की जहां स्वीकृति हो गई, वहां जीवन स्वीकार हो जाता है। और जहां काम की अस्वीकृति हुई, वहां जीवन का अस्वीकार हो जाता है।

बड़े मजे की बात है। श्वीत्वर ईसाई है। ईसाइयत ज्यादा जीवन निषेधक है। ईसाइयत में जीवन का ज्यादा विरोध है। ईसाइयत में काम, सेक्स पाप है। मूल पाप है, महापाप है। और श्वीत्वर ईसाई है और फिर वह देख पाता है कि हिंदू धर्म जीवन निषेधक है, तो वह गांधी को समझने चल पड़ता है, तो भूल होगी। भूल इसलिए होगी कि गांधी पर जो प्रभाव हैं जीवन निषेध के, वे रस्किन और टाल्सटाय के द्वारा ईसाइयत से आए हुए प्रभाव हैं।

एक बहुत मजे की घटना पश्चिम में घटी है कि पश्चिम ने जीवन के विरोध का सबसे बड़ा प्रयोग किया था ईसाइयत के द्वारा। ईसाइयत में भयंकर विरोध है। हम राम के साथ सीता को खड़ी कर सकते हैं, और राम को भगवान मान सकते हैं। हम कृष्ण के साथ गोपियां नाचती हों, तो बिना एतराज किए कृष्ण को भगवान मान सकते हैं। ईसाइयत नहीं मान सकती। ईसाइयत तो मानती ही है कि कामवासना ही इस जगत में पाप का कारण है। इसलिए कामवासना से हट जाना है। और हट जाने का मतलब गहरा दमन है।

दो हजार साल में ईसाइयत ने पश्चिम में कामवासना का इस बुरी तरह दमन किया कि आज उस दमन का प्रतिफल पश्चिम में आ रहा है। जब कोई चीज बहुत दबाई जाती है, तो उसका प्रतिकार और रिएक्शन और प्रतिक्रिया शुरू हो जाती है। ईसाइयत ने जिस चीज को खूब दबाया था जोर से, आज वह जोर से फैलकर पैदा हो गई है। आज पश्चिम में जो वासना का खुला खेल है, उसमें जिम्मेवार पश्चिम के आज के लोग कम और दो हजार साल के वे लोग ज्यादा हैं, जिन्होंने वासना को बिलकुल दबाने का पागलपन से भरा हुआ आग्रह किया।

श्वीत्ज की आलोचना अनुचित है। लेकिन उसके कारण है, क्योंकि ऐसे लोग भारत में जरूर हुए हैं, जो जीवन निषेधक हैं। लेकिन भारत की मूल धारा जीवन निषेधक नहीं है। भारत की मूल धारा जीवन को उसकी समग्रता में स्वीकार करती है, उसकी पूर्णता में स्वीकार करती है। जीवन जैसा है, भारत उसको अंगीकार करता है और फिर अंगीकार के द्वारा उसे रूपांतरित करता है।

इस भेद को ठीक से समझ लें। आप किसी चीज से लड़ सकते हैं बदलने के लिए, आप किसी चीज को स्वीकार कर सकते हैं बदलने के लिए। स्वीकार करके जो बदलाहट है, वह गहरी होती है। लड़कर जो बदलाहट है, वह गहरी नहीं होती। क्योंकि जिससे आप लड़ते हैं, उसे आप समझ ही नहीं पाते। समझने के लिए मैत्री चाहिए। कामवासना से भी मैत्री चाहिए।

कृष्ण कहते हैं, मैं कामदेव हूं। वे यह कहते हैं कि यह पूरा जीवन मुझसे ही पैदा होता है। यह जीवन का सारा खेल मेरा ही खेल है। और यह सब दिव्य हो सकता है। इसलिए अपने को इससे संयुक्त करते हैं।

सर्पों में वासुकि हूं नागों में शेषनाग, जलचरों में वरुण देवता हूं पितरों में पित्रेश्वर तथा शासन करने वालों में यमराज हूं।

यह प्रतीक बहुत कीमती है; वैसा ही, जैसा कामदेव, वैसा ही यमराज। इसे हम थोड़ा समझ लें।

शासन करने वालों में यमराज, मृत्यु का दूत, मृत्यु का शासक! शासन करने वालों में कृष्ण को कोई और न सूझा! बड़े शासक हो गए हैं। पृथ्वी ने बड़े शासक देखे हैं। स्वर्ग भी शासकों को जानता है। लेकिन कृष्ण को यमराज क्यों शासकों में श्रेष्ठ मालूम पड़ा? कुछ कारण हैं।

एक, इस जगत में मृत्यु के सिवाय और कुछ भी निश्चित नहीं है। इस जगत में अगर कोई एक चीज सुनिश्चित है, एकोल्युटली सर्टेन, तो वह मृत्यु है। बाकी सब चीजें अनिश्चित हैं। हो भी सकती हैं, न भी हों। मृत्यु होगी ही। मृत्यु न हो, ऐसा सोचा भी नहीं जा सकता।

जीवन में बाकी सब हेजार्ड है, सब अनिश्चित है। जीवन में सब ऐसा है, जैसे कोई कागज की नाव समुद्र की लहरों पर कहीं भी डोल रही हो। कहीं भी जा सकती है; पूरब भी जा सकती है, पश्चिम भी जा सकती है, बड़ी लहरों पर, छोटी लहरों पर। यह नाव कहीं भी डोल सकती है। तरंगों के हाथ में सब अनिश्चित है। एक बात सुनिश्चित है कि यह नाव कागज की डूबेगी। उतनी बात निश्चित है। और वह निश्चय बदला नहीं जा सकता। मृत्यु सर्वाधिक सुनिश्चित तथ्य है।

इसलिए कृष्ण कहते हैं, शासकों में मैं यमराज हूं। क्योंकि उसके शासन में जरा भी शिथिलता नहीं है, जरा भी अपवाद नहीं है। सब चीजों में अपवाद हो सकता है; उसके शासन में अपवाद नहीं है। उसका शासन निरपवाद है। कानून वहां पूरा है, उसमें रत्तीभर फर्क नहीं है।

दूसरी बात, एक आदमी अमीर हो सकता है, एक गरीब हो सकता है। एक आदमी बुद्धिमान हो सकता है, एक आदमी बुद्धिहीन हो सकता है। एक आदमी सुंदर हो सकता है, एक आदमी असुंदर हो सकता है। हम चेष्टा करके कल सारी संपत्ति बांट दें, सभी आदमियों के पास बराबर संपत्ति हो जाए, तब भी दो बराबर संपत्ति वाले आदमियों का सुख बराबर नहीं होता। हम संपत्ति बांट दें, तो हम संपत्ति को भूल जाएंगे, सौंदर्य पीड़ा देने लगेगा। बुद्धि पीड़ा देगी। कोई ज्यादा बुद्धिमान होगा, कोई कम बुद्धिमान होगा।

जीवन में समानता असत्य है, होती ही नहीं। सोशलिज्म एक सपना है, जो कभी पूरा नहीं होता, और न कभी पूरा हो सकता है। लेकिन एक सुखद सपना है। देखने में मजा आता है। समाजवाद कभी पूरा नहीं हो सकता है जीवन में, क्योंकि जीवन असमानता है। सब तरह से जीवन असमान है। दो व्यक्ति जरा भी समान नहीं हैं। प्रकृतिगत एक—एक व्यक्ति अलग—अलग असमान है। सिर्फ जगत में एक ही सोशलिज्म निश्चित है, वह मृत्यु का समाजवाद है। मृत्यु के समक्ष सब समान है।

जीवन में सब असमान है, मृत्यु के समक्ष सब समान है। गरीब और अमीर, बुद्धिमान और मूढ़, सुंदर और असुंदर, सफल और असफल, स्त्री और पुरुष, बच्चे और बूढ़े, काले और गोरे, नीग्रो और अंग्रेज, कोई भी—मृत्यु इस जगत में अब तक पाई गई एकमात्र सोशलिस्टिक डिक्टेटरशिप है, एकमात्र समाजवादी तंत्र उसी के पास है। वहां सब समान है।

मृत्यु सबको समान कर देती है। उसका शासन पक्षपात नहीं मानता। अमीर यह नहीं कह सकता कि थोड़ी देर रुक, क्योंकि मैं अमीर हूं। अभी थोड़ी देर से आना, क्योंकि इस वक्त मेरी पार्टी हुकूमत में है! अभी फुरसत नहीं मिलने की, क्योंकि अभी मैं मिनिस्टर हूं। नहीं, यह कोई भी उपाय नहीं है। गरीब भिखारी हो कि सम्राट हो, हारा—पराजित आदमी हो कि विजेता हो, मृत्यु के समक्ष पक्षपात नहीं है।

इसलिए कृष्ण कहते हैं, शासकों में मैं यमराज। न कोई पक्षपात है, न कोई अनिश्चितता है; न कोई भेदभाव है, न कोई अपवाद है। मृत्यु अनूठी घटना है।

और मुझे ऐसा लगता है कि अगर हम किसी दिन सच में ही सफल हो जाएं पूर्ण समाजवाद लाने में— हो नहीं सकते— हो जाएं, सब कुछ समान कर दें, तो यह पृथ्वी मरघट के जैसी लगेगी, जिंदगी के जैसी नहीं। क्योंकि अगर हम सब समान करने में सफल हो जाएं, तो जिंदगी मौत जैसी मालूम पड़ेगी। मौत ही समान हो सकती है। जिंदगी के होने का ढंग ही असमानता है, इनइक्वालिटी। चेष्टा करके हम कुछ—कुछ इंतजाम कर सकते हैं, लेकिन वे इंतजाम झूठे होंगे।

वे इंतजाम ऐसे ही होंगे, जैसे यहां बैठे सारे लोगों के चेहरे पर मैं नीला रंग पोत दूं तो एक अर्थ में समानता आ गई कि सभी के पास नीले चेहरे हैं। लेकिन उस नीले रंग के पीछे चेहरों की पृथकता कायम रहेगी। और उस नीले रंग के पीछे भी कोई सुंदर होगा और कोई कुरूप होगा, और कोई का होगा और कोई जवान होगा। बस, नीला रंग भर एक थोपा हुआ ऊपर से समान हो जाएगा।

हम आर्थिक समानता दुनिया पर थोप सकते हैं, लेकिन भीतर सब असमान होगा। असल में समानता एक थोपी हुई चीज है, क्योंकि व्यक्ति न समान पैदा होते, न समान जीते; बस समान मरते हैं।

मृत्यु का शासन इस अर्थ में, शायद किसी भी और शासन से तुलना नहीं किया जा सकता।

कृष्ण ने कहा कि तथा शासन करने वालों में मैं यमराज हूं।

तो मुझसे पक्षपात नहीं चाहा जा सकता, इसका अर्थ हुआ यह। इसका अर्थ हुआ कि जो परमात्मा से पक्षपात मांग रहे हैं, वे पागल हैं। पक्षपात नहीं मिल सकता। जो परमात्मा से प्रार्थनाएं कर रहे हैं कि उनके लिए अपवाद बना दिया जाए, वे गलती पर हैं। कोई अपवाद नहीं हो सकता।

हम सब इसी कोशिश में लगे हैं कि परमात्मा हमारे लिए अपवाद हो। सबके साथ कुछ भी करे, हमें छोड़ दे। सबके पाप माफ करे न करे, हमारे माफ कर दे। हम ऐसे हिसाब में लगे हैं कि सबको तो उनके पापों का दंड ठीक से मिले और हमारे पाप हमें क्षमा कर दिए जाएं, क्योंकि हम गंगास्नान कर आए हैं! या हम रोज पूजा करते हैं, कि हम रोज माला फेरते हैं। हम कुछ रिश्वत दे रहे हैं। हम एक नारियल चढ़ा देते हैं। हम फूल रख आते हैं परमात्मा के चरणों में। हम कुछ रिश्वत दे रहे हैं। हम उसे फुसला रहे हैं कि मेरे साथ कुछ जरा अपनेपन का खयाल करो। मुझ पर कुछ पक्षपात करो। कुछ मेरे साथ अपवाद करो। सबके नियम मुझ पर मत लगाना।

नहीं, यह कुछ भी नहीं हो सकता। कृष्ण कहते हैं, शासन करने वालों में मैं यमराज हूं। नियम पूरा होगा, पूरा किया जाएगा। नियम बिलकुल तटस्थ है।

महावीर ने तो बड़ी मजे की बात की है। महावीर ने इसीलिए कहा कि नियम चूंकि इतना तटस्थ है, परमात्मा की कोई जरूरत नहीं है, नियम काफी है। महावीर ने परमात्मा की जरूरत ही अस्वीकार कर दी। उन्होंने कहा, परमात्मा की कोई जरूरत नहीं।

थोड़ा सोचने जैसा है। महावीर ने कहा कि नियम इतना शाश्वत है, इतना अचल है कि नियम काफी है। परमात्मा की बीच में क्या जरूरत है? नियम अपना काम करता रहेगा। जो बुरा करेगा, वह बुरा पाएगा। जो पहाड़ से कूदेगा, वह नीचे टकराकर मर जाएगा। जो जमीन की कशिश का खयाल नहीं रखेगा, उसके पैर टूट जाएंगे। जो भोजन नहीं करेगा, वह मर जाएगा। जैसे ये नियम शाश्वत हैं, वैसे ही जीवन का अंतरस्थ नियम भी शाश्वत है।

इसलिए महावीर ने कहा, भगवान को, परमात्मा को बीच में क्यों रखना! क्योंकि परमात्मा को बीच में रखने से अड़चन होगी। अड़चन यह होगी कि या तो परमात्मा यह कहेगा कि नियम तो पूरा होगा, मैं कुछ भी नहीं कर सकता हूं। तब वर्चुअली उसका होना न होना बराबर है। और अगर परमात्मा को होना है, तो वह कहेगा, कोई फिक्र नहीं, तू मेरा भक्त है, तो तुझे मैं माफ किए देता हूं दूसरे को माफ नहीं करूंगा; तो अन्याय होगा।

तो महावीर ने कहा, परमात्मा को बीच में रखने से उपद्रव होगा, क्योंकि परमात्मा और नियम, दो के बीच तकलीफ होगी। अगर परमात्मा नियम बदल ही नहीं सकता, तो उसका होना न होना बराबर है। और अगर वह नियम बदल सकता है, तो जिंदगी बिलकुल बेकार है। क्योंकि उसका मतलब यह हुआ कि जो सच बोलता है, वह भी नर्क में पड़ सकता है, अगर परमात्मा उसके पक्ष में न हो। और जो झूठ बोलता है, वह भी स्वर्ग में जा सकता है, अगर परमात्मा उसके पक्ष में हो।

इसलिए महावीर ने तो कहा, नियम काफी है। पर महावीर ने नियम को ही परमात्मा मान लिया।

कृष्ण भी वही कह रहे हैं। कृष्ण कह रहे हैं कि तू खयाल रखना अर्जुन, मैं शासन करने वालों में यमराज हूं। न कोई अपवाद हो सकता है, न कोई भेद हो सकता है, न कोई रियायत हो सकती है, न कोई सुविधा हो सकती है। नियम तो पूरा लाग होगा। और उतनी ही सख्ती से लागू होगा, जैसे मौत लागू होती है। उसमें कोई भेद— भाव नहीं किया जा सकता। नियम का अर्थ ही खो जाता है, जब उसमें भेद— भाव किया जाता है।

तो कृष्ण कहते हैं, यमराज हूं मैं। मृत्यु की तरह सुनिश्चित मेरा शासन है।

और हे अर्जुन, मैं दैत्यों में प्रह्लाद और गिनती करने वालों में समय हूं। पशुओं में मृगराज, पक्षियों में गरुड़ हूं।

ये दो छोटे प्रतीक और समझ लेने जैसे हैं।

मैं दैत्यों में प्रह्लाद हूं! प्रह्लाद जन्मा तो दैत्यों के घर में। लेकिन घर में जन्मने से कुछ भी नहीं होता। घर बंधन नहीं है। प्रह्लाद दैत्य के घर में जन्मता है और परम भक्ति को उपलब्ध हो जाता है। शायद दैत्यों के घर में जो नहीं जन्मे हैं, वे भी इतनी भक्ति को उपलब्ध नहीं हो पाते। प्रह्लाद जैसा भक्त खोजना बिलकुल मुश्किल है।

यह बड़े मजे की बात है। दैत्य के घर में जन्मा हुआ बच्चा परम भक्त हो गया, और सदगृहस्थों, सज्जनों और देवताओं के घर में जन्मे बच्चे भी प्रह्लाद के मुकाबले एक नहीं टिक पाते। इससे कुछ बातें निकलती हैं।

एक, आप कहां पैदा होते हैं, किस परिस्थिति में, यह बेमानी है, इररेलेवेंट है। लेकिन हम सब यही रोना रोते रहते हैं कि परिस्थिति ऐसी है, क्या करें? परिस्थिति ही ऐसी है, मैं कर क्या सकता हूं? और अभी तो इस सदी में यह रोना इतना भयंकर हो गया है कि अब किसी को कुछ करने का सवाल ही नहीं है।

एक आदमी चोर है, तो इसलिए चोर है, क्योंकि परिस्थिति ऐसी है। और एक आदमी हत्या करता है, तो मनोवैज्ञानिक कहते हैं, वह क्या कर सकता है! उसकी बचपन से सारी अपब्रिंगिग, उसका पालन—पोषण जिस ढंग से हुआ है, उसमें वह हत्या ही कर सकता है! सब कुछ परिस्थिति पर निर्भर है।

मार्क्स ने कहा है, आदमी तय नहीं करता समाज को, समाज तय करता है आदमी को। आदमी निर्माण नहीं करता परिस्थितियों का, परिस्थितियां निर्माण करती हैं आदमी का।

ध्यान रखें, धर्म और धर्म के विरोध में जो भी धारणाएं हैं, उनके बीच यही फासला है। धर्म कहता है, आदमी निर्माण करता है सब कुछ, परिस्थिति का और अपना। और धर्म के विपरीत जो धारणाएं हैं, वे कहती हैं, आदमी कुछ निर्माण कर नहीं सकता, परिस्थितियां सब निर्माण करती हैं, अपना भी और आदमी का भी।

इसलिए मार्क्स कहता है, परिस्थिति बदलो, तो आदमी बदल जाएगा। इसलिए सारी दुनिया में कम्युनिज्म परिस्थिति बदलने की कोशिश में लगा है कि आदमी बदल जाए।

धर्म कहता है, परिस्थिति कितनी ही बदलो, आदमी नहीं बदलेगा। आदमी को बदलो, तो परिस्थिति बदल जा सकती है। आदमी ज्यादा कीमती है, चेतना ज्यादा मूल्यवान है। परिस्थिति जड़ है। आदमी मालिक है।

और इसलिए कृष्ण कहते हैं, राक्षस दैत्यों के घर में पैदा हुआ, दैत्यों में प्रह्लाद मैं हूं।

सारी परिस्थिति विपरीत थी। सारी परिस्थिति विपरीत थी। वहां भक्त होने का कोई उपाय न था। उपाय ही न था, और प्रह्लाद इतना गहरा भक्त हो सका।

दूसरी बात आपसे कहता हूं जब विपरीत परिस्थिति हो, तब ऊपर से जो विपरीत दिखता है, उसका अगर उपयोग करना आता हो, तो वह अनुकूल हो जाता है। असल में विपरीत परिस्थिति बन जाती है चुनौती। अगर प्रहाद को कहीं अच्छे आदमी के घर में पैदा कर देते, तो शायद इतना बड़ा भक्त न हो पाता। और कभी—कभी ऐसा भी होता है कि अच्छे आदमियों के बच्चे इसीलिए बिगड़ जाते हैं कि अच्छे आदमी अच्छे होने की चुनौती नहीं देते, बुरे होने की चुनौती देते हैं।

गांधी का बड़ा लड़का मुसलमान हो गया था, गांधी की वजह से। आदमी अच्छे थे, एकदम अच्छे थे। लेकिन अच्छे होने पर इतना आग्रह था कि उनके बड़े लड़के हरिदास के मन में यह आग्रह गुलामी जैसा मालूम होने लगा। यह मत खाओ, वह मत पीयो। इतने वक्त सोओ, इतने वक्त उठो। सारी जिंदगी जकड़ दी।

वह जकड़न इतनी भारी हो गई कि उस पूरे के पूरे को तोड़कर। हरिदास भाग खड़ा हुआ। जैसे प्रह्लाद भाग खड़ा हुआ अपने बाप से, वैसे हरिदास भाग खड़ा हुआ अपने बाप से। हरिदास अब्दुल्ला गांधी हो गया, मुसलमान हो गया। मांस खाने लगा, शराब पीने लगा। कसम खा ली कि ब्रह्ममुहूर्त में उठना ही नहीं, चाहे कुछ भी हो जाए। नींद भी खुल जाए, तो भी नहीं उठना। रात देर से ही सोना है, इसका नियम बना लिया। वह जो—जो गांधी ने थोपा था, उस— उस के विपरीत चला गया।

ध्यान रखना आप, आपका बहुत अच्छा होना कहीं आपके बच्चों के लिए विपरीत चुनौती न हो जाए। इसलिए अच्छे घरों में अच्छे बच्चे पैदा नहीं हो पाते। बुरे घरों में अक्सर अच्छे बच्चे पैदा हो पाते हैं। अच्छे घरों में अच्छे बच्चे पैदा नहीं हो पाते। अच्छे बाप अच्छे बच्चे पैदा करने में बड़े असमर्थ सिद्ध होते हैं।

उसका कुल रहस्य इतना है कि वे इतने जोर से अच्छाई थोपते हैं ?, कि अगर बच्चा बुद्ध हो तो ही मान सकता है, और बुद्ध हो तो बहुत आगे नहीं जाता। थोड़ा बुद्धिमान हो, रिबेलियस हो जाता है, बगावती हो जाता है। उसका भी अपना अहंकार है, अपनी अस्मिता है। अगर बहुत ज्यादा दबाव डाला, तो एक सीमा के बाद या तो आदमी टूट ही जाता है, तो मिट जाता है; और या फिर भाग खड़ा होता है, विपरीत यात्रा पर निकल जाता है।

शायद प्रह्लाद के लिए भी सहयोगी हुआ पिता का होना। इससे जो मैं मतलब निकालना चाहता हूं वह यह कि आप कभी यह मत कहना कि परिस्थिति बुरी है, इसलिए मैं अच्छा नहीं हो पा रहा हूं। सच तो यह है कि परिस्थिति बुरी हो, तो अच्छे होने की संभावना ज्यादा होनी चाहिए, क्योंकि चुनौती है।

हां, अगर कोई आदमी मुझसे कहे कि परिस्थिति इतनी अच्छी है कि मैं अच्छा नहीं हो पा रहा, तो मुझे तर्कयुक्त मालूम पड़ता है। ठीक कह रहा है। बेचारा क्या कर सकता है? परिस्थिति इतनी अच्छी है, अच्छा हो भी कैसे सकता है!

लेकिन जब कोई आदमी कहता है कि परिस्थिति बुरी है, इसलिए अच्छा नहीं हो पा रहा है, तो वह सिर्फ अपनी नपुंसकता, अपनी इंपोटेंस घोषित कर रहा है। उसका मतलब यह है कि वह कुछ भी नहीं हो सकता। जब परिस्थिति इतनी विपरीत है, तब भी अगर तुम अकड़कर खड़े नहीं हो सकते उसके विरोध में, तो तुम कभी भी खड़े नहीं हो सकोगे।

इसका यह मतलब हुआ कि जिसके पास समझ हो, वह विपरीत परिस्थिति को भी अनुकूल बना लेता है। और जिसके पास नासमझी हो, वह अनुकूल परिस्थिति को भी खो देता है।

कृष्ण कहते हैं, मैं प्रह्लाद हूं दैत्यों में।

प्रह्लाद से ज्यादा खिला हुआ, शांत और मौन और निर्दोष फूल कहां है? लेकिन दैत्यों के बीच में! पर ऐसे यह उचित ही है। कमल भी खिलता है, तो कीचड़ में! और कमल यह नहीं चिल्लाता फिरता कि कीचड़ में मैं कैसे खिलूं बहुत गंदी कीचड़ नीचे भरी पड़ी है! कमल खिल जाता है। उसी कीचड़ से रस खींच लेता है, उसी कीचड़ से सुगंध खींच लेता है। उसी कीचड़ से रंग खींच लेता है। और उस कीचड़ के पार हो जाता है। न केवल उस कीचड़ के पार हो जाता है, बल्कि उस पानी के भी पार हो जाता है जिससे प्राण पाता है। खिलता है खुले आकाश में।

हम सोच भी नहीं सकते कि कमल और कीचड़ में कोई बाप— बेटे का संबंध है, कमल और कीचड़ में कोई उत्पत्ति और जन्म का संबंध है। कमल और कीचड़ को एक साथ रखिए, समझ में भी नहीं आएगा कि इन दोनों के बीच कोई सेतु, कोई श्रृंखला है।

लेकिन कीचड़ ही कमल है। और हर कीचड़ से कमल हो सकता है। कीचड़ के लिए बैठकर जो रोता रहता है, वह नाहक ही अपने आलस्य के लिए कारण खोज रहा है। कीचड़ से कमल हो जाते हैं। और जिंदगी में जहां भी कीचड़ हो, समझ लेना कि यहां भी कोई न कोई कमल खिल सकता है। कोई भी कीचड़ हो, समझ लेना, कमल खिल सकता है। यह कमल के खिलने का अवसर है।

लेकिन हम सब ऐसे लोग हैं, हम खिलना ही नहीं चाहते। खिलने में शायद श्रम मालूम पड़ता है, मेहनत मालूम पड़ती है। हम जो हैं, वही रहना चाहते हैं। इसलिए हम इस तरह के तर्क खोज लेते हैं, जिन तर्कों के आधार से हम जो हैं, वही बने रहने में सुविधा मिलती है।

हम कहते हैं, क्या कर सकते हैं, परिस्थिति अनुकूल नहीं है! सब तरफ विरोध है, सब तरफ प्रतिकूलता है, बढ़ने का कोई उपाय नहीं है। इसलिए हम नहीं बढ़ पा रहे हैं। ऐसे तो हम शिखर पर पहुंच सकते थे, सुमेरु पर्वत के शिखर पर बैठ सकते थे, लेकिन परिस्थिति ही नहीं है।

परिस्थिति कभी भी नहीं होगी। परिस्थिति कभी भी नहीं थी। जो परिस्थिति के पार नहीं उठ सकता, वह किसी भी परिस्थिति में इसी रोने को लेकर बैठा रहेगा।

कृष्ण कहते हैं, मैं प्रह्लाद हूं दैत्यों में।

जहां ईश्वर का नाम लेने की भी मनाही थी, वहां प्रहाद केवल नाम के ही सहारे ईश्वर को पा लिया। इसे थोड़ा समझें, क्योंकि हमें तो कोई मनाही नहीं है। जितनी मौज हो लें, रोज अपनी कुर्सी पर बैठ जाएं और ईश्वर का नाम लेते रहें।

बड़े मजे की बात है! प्रह्लाद ईश्वर के नाम से पा लिया। और आप काफी लेते रहते हैं। लोग अपने बच्चों का नाम ईश्वर पर इसीलिए रख लेते हैं—किसी का नाम राम, किसी का नारायण—कि दिनभर बुलाते रहें। लेकिन बुलाने का परिणाम यह होता है कि नारायण को चांटा भी लगाना पड़ता है, गाली भी देनी पड़ती है। ये सब परिणाम होते हैं, और कुछ नहीं होता।

नाम तो लोग रखते थे भगवान पर बच्चों का इसलिए कि दिन में अकारण ही, अनायास ही, बिना वजह के भगवान का नाम आ जाए। लेकिन जो फल होता है, वह कुल इतना ही होता है कि नारायण नाहक पिटते हैं, नाहक गाली खाते हैं! और धीरे— धीरे जब नारायण को गाली देने की भी क्षमता आ जाती है, तो फिर असली नारायण भी मिल जाएं, तो गाली ही निकलेगी। आदतें हैं।

लेकिन प्रह्लाद को तो कोई अवसर भी न था, भगवान के नाम के लेने की मनाही थी। उस बीच वह आदमी भगवान के नाम के ही सहारे जीवन को इतनी उत्कृष्टता पर ले जा सका, इसका कारण क्या होगा?

इसका कारण यह है कि जीवन की जो डायनेमिक्स, जीवन का जो गत्यात्मक रूप है, वह हम नहीं समझते हैं। अगर आपको भी बंद कर दिया जाए एक कोठरी में और सख्त मनाही कर दी जाए कि राम का नाम मत लेना, तब आपके हृदय की बहुत गहराई से राम का नाम आएगा। क्योंकि यह आपकी स्वतंत्रता की घोषणा होगी। और आपको बिठाया जाए और कहा जाए कि लो राम का नाम! जैसा कि मां—बाप बिठाल रहे हैं बच्चों को ले जा ले जाकर कि लो राम का नाम! बच्चे जबरदस्ती ले रहे हैं, कहीं कोई गहराई पैदा नहीं होती। कहीं कोई गहराई नहीं पैदा होती। जीवन की गत्यात्मकता बड़ी उलटी है।

सुना है मैंने कि मुल्ला नसरुद्दीन को बचपन से ही उसके घर के परिवार के लोग उलटी खोपड़ी मानते थे। अगर उसकी मां को कहना हो कि भोजन कर लो, तो कहना पड़ता था कि आज उपवास करो! अगर उसकी मां को कहना पड़ता हो कि बाहर खेलने मत जाओ, तो कहना पड़ता था कि आज बाहर ही खेलो; भीतर मत आओ! जो भी करवाना हो, उससे उलटी आज्ञा देनी पड़ती थी।

नसरुद्दीन बड़ा हो गया। यह आशा उलटी जारी रही। फिर वह अठारह साल का जिस दिन हुआ, उस दिन उसका बाप और नसरुद्दीन दोनों अपने गधों को लेकर नदी पार हो रहे थे छोटे—से पुल से। नसरुद्दीन —का जो गधा था, उस पर शक्कर लदी थी और शक्कर का झोला बाईं तरफ बुरी तरह झूल रहा था। और ऐसा लगता था कि अब बोरा गिरा, नदी में अब गिरा— बाईं तरफ। बाप को बोरा हटवाना था दाईं तरफ। तो बाप ने कहा, बेटे नसरुद्दीन, बोरा दाईं तरफ गिर रहा है, बाईं तरफ जरा सरका दे। उलटी खोपड़ी था!

लेकिन उस दिन नसरुद्दीन ने बाईं तरफ ही सरका दिया। बोरा तो गिरा, बोरे के साथ गधा भी नदी में गिर गया। बाप ने कहा कि नसरुद्दीन, यह कैसा उलटा चरित्र! आज तूने यह क्या किया! नसरुद्दीन ने कहा, आपको पता नहीं, मैं अठारह साल का हो गया, अडल्ट! अब मैंने बचपन की आदतें बदल दी हैं। अब मैं समझ जाऊंगा कि तुम जो कह रहे हो, उससे उलटा नहीं करूंगा; तुम्हारा जो मतलब है भीतर, उसका उलटा करूंगा। अब मैं अडल्ट हो गया हूं। तुम जो कह रहे हो, उसका उलटा, तुमने बचपन में मुझे काफी धोखा दे लिया। अब मैं समझ गया हूं। अब तुम्हारा जो मतलब है भीतर, उसका उलटा करूंगा। अब तुम जरा सोच—समझकर !? आशाएं देना।

आदमी का डायनेमिक्स, आदमी के जीवन की गति जो है, वह पोलेरिटीज में होती है, ध्रुवीयता में होती है, वैपरीत्य में होती है। हम सब विपरीत की तरफ झुकते चले जाते हैं।

यह प्रहाद की घटना विचारणीय है। इसलिए अपने बच्चों पर अच्छाई जबरदस्ती मत थोपना। नहीं तो बच्चे बुराई की तरफ हट जाएंगे। इसलिए बहुत डेलिकेट है मामला। इतना ही डेलिकेट, जैसी नसरुद्दीन के बाप को मुसीबत हुई। इसका यह मतलब नहीं है कि आप बुराई थोपना बच्चे पर। बहुत डेलिकेट है, नाजुक है। अच्छाई थोपना मत। और अच्छाई को खिलने में सहयोग देना, थोपना मत। बुराई की इतने जोर से निंदा मत करना कि बुराई में रस पैदा हो जाए। निंदा से रस पैदा होता है। बुराई का इतना निषेध मत करना कि निमंत्रण बन जाए।

किसी दरवाजे पर लिख दो कि यहां झांकना मना है, फिर कोई महात्मा भी वहां से बिना झांके नहीं निकल सकता। झांकना ही पड़ेगा। और अगर महात्मा चले गए बिना झांके, तो फिर किसी बहाने उनको लौटना पड़ेगा। और अगर हिम्मत न पड़ी कि कहीं भक्तगण देख न लें कि वहां झांककर देखते हो, जहां झांकना मना है, तो रात सपने में वे जरूर वहां आएंगे। उस पट्टी को झांकना ही पड़ेगा। वह मजबूरी, वह आब्सेशन हो जाता है।

बुराई को ऑब्सेशन मत बना देना। भलाई को इतना मत थोपना कि उसके विपरीत भाव पैदा हो जाए।

इसलिए बच्चे को बड़ा करना एक बहुत डेलिकेट बात है, बहुत नाजुक बात है। और अब तक आदमी सफल नहीं हो पाया है। बच्चे को ठीक से बड़ा करने में आदमी अभी भी असफल है। अभी भी शिक्षा की सारी व्यवस्थाएं गलत हैं। क्योंकि बहुत नाजुक मामला है। और उस नाजुकपन को समझने में बड़ी कठिनाई है। बड़ी से बड़ी कठिनाई तो यह है कि हमें इस बात का खयाल ही नहीं है कि आदमी के भीतर गति कैसे पैदा होती है?

यह प्रह्लाद के भीतर जो गति पैदा हुई, यह प्रह्लाद के पिता की वजह से पैदा हुई। और चूंकि वह दैत्यों के घर में पैदा हुआ था, इसलिए जब विपरीत चला, तो ठीक दैत्यों से उलटा सारे भक्तों को पार कर गया।

कृष्ण कहते हैं, मैं प्रह्लाद हूं दैत्यों में।

और गिनती करने वालों में समय हूं टाइम।

यह आखिरी बात हम खयाल में ले लें।

समय के कुछ लक्षण हैं। एक, कि आपको एक क्षण से ज्यादा कभी नहीं मिलता; कभी नहीं। आपके हाथ में एक क्षण ही होता है, बस। जब एक क्षण निकल जाता है, तब दूसरा मिलता है। जब दूसरा निकल जाता है, तब तीसरा मिलता है। आपके हाथ में दो क्षण एक साथ कभी नहीं होते।

समय भी बड़ा कैलकुलेटर है। समय से ज्यादा ठीक गिनती करने वाला कोई भी नहीं दिखाई पड़ता। एक—एक व्यक्ति को एक—एक क्षण से ज्यादा कभी नहीं मिलता, कोई इसमें धोखा नहीं दे सकता। कोई कितना ही बड़ा महायोगी हो, और कोई कितना ही बड़ा धनी हो, और कोई कितना ही बड़ा ज्ञानी हो, कितना ही बड़ा वैज्ञानिक हो, वह समय को डिसीव नहीं कर सकता कि उससे दो क्षण एक साथ ले ले। बस, एक ही क्षण हाथ में आता है।

कभी आपने रेत की घड़ी देखी है? रेत की घड़ी में से रेत का एक—एक दाना नीचे गिरता रहता है। उसमें तो कभी भूल हो सकती है, क्योंकि आदमी की बनाई हुई घड़ी है और रेत के दाने छोटे—बड़े भी होते हैं। तो कभी कोई दो दाने भी गिर सकते हैं। लेकिन समय की घड़ी में से कभी भी दो दाने नहीं गिरते। एक ही क्षण आपके हाथ में होता है, नपा—तुला। और पूरी जिंदगी!

तो कृष्ण कहते हैं कि मैं समय हूं गिनती करने वालों में।

इससे ज्यादा सूक्ष्म गिनती किसी की भी नहीं है। और हिंदू दृष्टि से एक—एक व्यक्ति के क्षण गिने हुए हैं। कोई भी व्यक्ति अपने हुए क्षण से ज्यादा नहीं जी सकता। हिंदू हिसाब से जिंदगी की स पिछली जिंदगी के कर्मों से नियत होती है। मैंने जो पिछले किया है, वह मेरी इस जिंदगी के समय को तय करता है। मैं समय तो तय कर चुका हूं।

इसलिए ऐसा भी होता है, जैसे बुद्ध को शान हुआ, तब वे स्थिति को पहुंच गए कि उसके बाद जीने का कोई भी कारण न था। कोई भी कारण नहीं था। बुद्ध को जीने का क्या कारण! वासना न रही, तो जीने का कोई कारण न रहा। लेकिन चलीस साल जीना पडा।

बुद्ध से किसी ने पूछा कि आप अब क्यों जी रहे हैं? क्योंकि कुछ आपको करना है, न कुछ पाना है। जो पाना था पा लिया, करना था कर लिया। अब कुछ भी बचा नहीं शेष। आप पूर्ण गए, तो अब आप क्या कर रहे हैं?

तो बुद्ध ने कहा कि वह पिछले जन्म में जो उम्र पा ली है, पूरा करना पड़ेगा। वह चालीस साल मुझे जीना पड़ेगा। क्यो समय न तो एक क्षण कम करता है, और न एक क्षण ज्यादा, मुझे पूरा करना पड़ेगा। तो चालीस साल अब मैं जीऊं—गा।

यह जीना वैसे ही है जैसे कि आपने साइकिल पर पैडिल मारा, फिर आप पैडिल रोक दिए, लेकिन साइकिल थोड़ी दूर आगे च जाएगी। मोमेंटम! इतनी देर जो आपने साइकिल को पैडिल ' साइकिल ने थोड़ी शक्ति अर्जित कर ली। अब आप पैडिल न मारे, तो साइकिल एकदम से नहीं रुकेगी, थोड़ी दूर चली जाएगी।

बुद्ध कहते हैं कि अब मैं जो अर्जित कर लिया हूं जन्मों—जन्मों वह चालीस साल की गति अभी काम करेगी, यह शरीर का चलता रहेगा। उसमें क्षणभर कम—ज्यादा नहीं किया जा सकता इसलिए कृष्य कहते हैं, गिनती करने वालों में मैं समय हूं क्षण ज्यादा हो सकता है, न कम हो सकता है। न एक क्षण से ज्यादा किसी को मिल सकता है, न एक खोए हुए क्षण को वापस पाया सकता है। समय का गणित बिलकुल पक्का है।

यह कुछ कारण से कृष्ण कह रहे हैं अर्जुन से। ये प्रतीक ऐसे ही नहीं चुन लिए हैं। अर्जुन को यही खयाल है कि इनको मैं —मार डालूंगा, ये जो दुश्मन इकट्ठे हैं। कृष्ण कह रहे हैं, मैं समय हूं गिनती करने वालों में। एक क्षण पहले तू किसी को मार नहीं सकता और एक क्षण ज्यादा जिलाने का कोई उपाय नहीं है। जो मरेंगे, उनका समय चुक गया था। जो बचेंगे, उनका समय बचा था। तू केवल निमित्त है। इससे ज्यादा तू नहीं है।

गीता दर्शन—भाग—5
शस्त्रधारियों में राम—(प्रवचन—बारहवां)
अध्याय—10

सूत्र:

पवनः पवतामस्मि रामः शस्त्रभृतामहम्।
झषाणां मकरश्चास्मि स्रोतसामस्थि जाह्नवी।।31।।
सर्गाणामादिरन्तश्च मध्यं चैवाहमर्जुन।
अध्यात्मविद्या विद्यानां वादः प्रवदतामहम्।।32।।
और मैं पवित्र करने वालों में वायु और शस्त्रधारियों में राम हूं तथा मछलियों में मगरमच्छ हूं और नदियों में श्री भागीरथी गंगा जाह्नवी हूं।

और हे अर्जुन सृष्टियों का आदि अंत और मध्य भी मैं ही हूं। तथा मैं विद्याओं में अध्यात्म— विद्या अर्थात ब्रह्म— विद्या एवं परस्पर में विवाद करने वालों में तत्व— निर्णय के लिए किया जाने वाला वाद हूं।

मैं पवित्र करने वालों में वायु और शस्त्रधारियों में राम हूं। इन प्रतीकों को थोड़ा हम समझें।

वायु इस जगत में सर्वाधिक स्वतंत्र है। और स्वतंत्रता ही पवित्रता है। वायु कहीं बंधी नहीं है, कहीं ठहरी नहीं है, कहीं उसका लगाव नहीं है, कहीं उसकी आसक्ति नहीं है। वायु एक सतत गति है।

तो पहली बात, जहां भी लगाव होगा, वहीं अपवित्रता शुरू हो जाएगी। जहां भी आसक्ति होगी, जहां भी ठहरने का मन होगा, जहां पड़ाव मंजिल बन जाएगा, वही अपवित्रता शुरू हो जाएगी।

जीवन की सारी दुर्गंध, जीवन की सारी कुरूपता, जहां—जहां हम ठहर जाते हैं और जकड़ जाते हैं, वहीं से पैदा होती है। जीवन जहां भी प्रवाह को खो देता है, गति को खो देता है, और जहां ठहर जाता है, जड़ हो जाता है..।

जैसे नदी बहती है, तो नदी पवित्र होती है। और डबरा बहता नहीं, अपवित्र हो जाता है। डबरे में भी वही जल है, जो नदी में है। लेकिन नदी में प्रवाह है, बहाव है, जीवन है। डबरा मृत है, मुर्दा है, कोई गति नहीं है। डबरा सड़ता है, दुर्गंधित होता है और नष्ट होता है। स्वभावतः, अपवित्र हो जाता है।

कृष्ण कहते हैं, पवित्र करने वालों में मैं वायु हूं।

पहली बात, पवित्रता वहीं ठहरती है, जहां प्रवाह सतत हो। पवित्रता वहीं ठहरती है, जहां कोई लगाव, जहां कोई रुकाव, जहां कोई ठहराव न आ जाए। पवित्रता वहीं ठहरती है, जहां कोई फिक्सेशन, प्राणों का अवरुद्ध होना न हो। जिसके प्राण भी वायु की तरह हैं— कहीं ठहरे हुए नहीं, कहीं रुकते नहीं, कहीं बंधते नहीं, कहीं कोई आसक्ति निर्मित नहीं करते— वही केवल पवित्रता को उपलब्ध हो पाएगा।

पुराने अति प्राचीन समय से संन्यासी को प्रवाहवत जीवन व्यतीत करने को कहा गया है। नदी की तरह बहता रहे। महावीर ने अपने संन्यासियों को कहा है कि वे तीन दिन से ज्यादा कहीं रुके नहीं। तीन दिन के पहले हट जाएं। थोड़ा सोचने जैसा है। क्योंकि तीन दिन का यह राज महावीर को कैसे पता चला होगा, कहना मुश्किल है।

लेकिन आधुनिक मनोविज्ञान कहता है कि आदमी को किसी भी जगह मन के लगने में कम से कम तीन दिन से ज्यादा का समय चाहिए। आप अगर एक नये कमरे में सोने जाएंगे, तो तीन रातें आपको थोड़ी—सी बेचैनी रहेगी, चौथी रात आप ठीक से सो पाएंगे। कहीं भी किसी नई स्थिति को पुराना बना लेने के लिए कम से कम तीन दिनों की जरूरत है। कम से कम। थोड़ा ज्यादा समय भी लग सकता है।

महावीर ने अपने संन्यासी को कहा है कि वह तीन दिन से ज्यादा एक जगह न रुके। इसके पहले कि कोई अपना मालूम पड़ने लगे, उसे हट जाना चाहिए। क्योंकि जहां लगा कि कोई अपना है, वहीं जंजीर निर्मित हो जाती है। और जिसके प्रायों पर जंजीर पड़ जाती है, उन प्राणों में कुरूपता और दुर्गंध और सड़ांध शुरू हो जाती है। डबरा बनना शुरू हो गया प्रायों का।

संन्यासी का अर्थ है, जो अपने को डबरा नहीं बनने देता। गृहस्थ का इतना ही अर्थ है कि जो अपने को डबरा बनाने का पूरा आयोजन कर लेता है। चाहे तो गृहस्थ भी प्रवाहित रह सकता है, लेकिन उसे थोड़ी कठिनाइयां होंगी। उसे बहुत होश रखना पड़े, तो ही वह डबरा बनने से रुक सकता है। अन्यथा सब चीजें धीरे— धीरे जम जाएंगी, फ्रोजन हो जाएंगी और उनके बीच वह भी जम जाएगा।

लेकिन हम सब तो यही कोशिश करते हैं कि जितने जल्दी जम जाएं, उतना अच्छा। जमने में सुविधा है, सुरक्षा है, कनवीनियंस है। गैर—जमे होने में असुविधा है, असुरक्षा है। रोज नये के सामने पड़ना पड़ता है, तो रोज नई बुद्धि की जरूरत पड़ती है। हम सब जम जाना चाहते हैं। जमे हुए आदमी का पुरानी बुद्धि से काम चल जाता है, नये की कोई आवश्यकता नहीं होती।

हम सब नये से भयभीत होते हैं। कुछ भी नया हो, तो चिंता पैदा होती है। क्योंकि पुराने के साथ कैसा व्यवहार करना, वह तो हम जानते हैं; नए के साथ फिर से व्यवहार सीखना पड़ता है। पुराना तो मृत, यंत्रवत हो जाता है। पुराने को तो हम ऐसे करते हैं जैसे कोई रोबोट, कोई मशीन का आदमी कर रहा हो। उसमें हमें फिर बुद्धिमत्ता की, चेतना की, होश की, कोई भी जरूरत नहीं रह जाती। हम करते चले जाते हैं।

आप अपने घर जब आते हैं, तो आपको सोचना नहीं पड़ता, बाएं मुडूं, दाएं मुडूं। आप मुड़ते चले जाते हैं। यह काम शरीर ही कर लेता है। इसके लिए आपको कुछ, किसी तरह के होश की जरूरत नहीं होती। शराबी भी शराब पीकर अपने घर पहुंच जाता है। कितने ही हाथ—पैर डोलते हों, वह भी अपने घर का जाकर द्वार—दरवाजा खटखटाने लगता है। यह यंत्रवत है। इसके लिए कोई सोच—विचार की जरूरत नहीं है।

इसलिए जितने हम जम जाते हैं, उतना ही सोच—विचार से छुटकारा हो जाता है। विचार बड़ा कष्टपूर्ण है। इसलिए दुनिया में कोई भी आदमी विचार नहीं करना चाहता, विचार से बचना चाहता है। इसी वजह हमारा प्रवाह समाप्त हो जाता है।

कृष्ण कहते हैं, पवित्र करने वालों में मैं वायु हूं।

तो वायु का पहला लक्षण तो यह है कि वह कहीं ठहरती नहीं। आई भी नहीं, कि गई। आ भी नहीं पाई, कि जा चुकी। आना भी नहीं हो पाया, कि जाना हो गया। वायु कहीं भी मेहमान नहीं बनती; स्पर्श करती है और हट जाती है।

संन्यासी वायु की तरह होना चाहिए। रुके न। जरूरी नहीं है कि वह मकान बदलता रहे, क्योंकि मकान बदलने से कुछ भी नहीं होता। मकान बदलकर भी रुकना हो सकता है। मकान बदलकर भी रुकना हो सकता है, क्योंकि रुकने के बड़े इंतजाम हैं। अब एक आदमी रोज मकान बदल लेता है, लेकिन रोज अपने को तो नहीं बदलेगा, तो वहीं जड़ हो जाएगा।

एक संन्यासी घर छोड़ देता है, लेकिन उस घर में जो भी सीखा था, वह तो साथ ही लेकर चलता है। मजे की घटना घटती है दुनिया में कि संन्यासी भी हिंदू होता है, मुसलमान होता है, जैन होता है, ईसाई होता है। ये रुके होने के लक्षण हैं। संन्यासी को तो सिर्फ संन्यासी होना चाहिए।

हिंदू होने का मतलब है, उस घर से अभी बंधन है, जहां बड़ा हुआ था, जहां पाला गया था, जहां शिक्षा दी गई थी। जैन होने का मतलब है, उस घर से अभी बंधन है, जहां यह धर्म दिमाग में डाला गया था। जहां ये विचार डाले गए थे, वहां से अभी लगाव है। घर छोड़ दिया, लेकिन घर की जो आत्मा थी, वह अभी पीछा कर रही है, घर का जो प्रेत है, वह अभी पीछा कर रहा है। वह पीछा करेगा। संन्यासी तो वह है, जिसका न कोई घर है, न कोई धर्म है। संन्यासी तो वह है, जिसका कोई भी नहीं। जो यह नहीं कहता कि ईसा मेरे हैं, कि बुद्ध मेरे हैं, कि महावीर मेरे हैं, कि कृष्ण मेरे हैं। या तो सभी कुछ उसका है, या कुछ भी उसका नहीं है। इन दो के अलावा उसके लिए कोई उपाय नहीं है। तो फिर वह वायु की तरह हो जाएगा।

तो वायु का पहला लक्षण है कि कहीं रुकती नहीं।

दूसरा लक्षण है वायु का कि दिखाई नहीं पड़ती, और है। वह और भी गहरी बात है। वायु है, अनुभव होती है, दिखाई नहीं पड़ती। स्पर्श होता है, प्रतीति होती है, पकड़ में नहीं आती। पकड़ में नहीं आती, इसलिए बांधना मुश्किल है, रोकना मुश्किल है, परतंत्र करना मुश्किल है।

कृष्ण कहते हैं, पवित्र करने वालों में मैं वायु की भांति हूं।

जितनी पवित्रता होगी, उतनी ही ट्रासपैरेंसी हो जाएगी। जितनी पवित्रता होगी, उतना ही आर—पार दिखाई पड़ने लगेगा। अगर आपने कोई पवित्र कांच देखा हो, बिलकुल शुद्ध, तो कांच भी दिखाई नहीं पड़ेगा। आर—पार सब दिखाई पड़ेगा, बीच में कोई भी बाधा न होगी। वायु की पवित्रता उसकी पारदर्शिता भी है।

एक बहुत पुरानी इजिप्त में लोकोक्ति है कि जब कोई व्यक्ति परम पवित्र हो जाता है, तो उसकी छाया नहीं बनती। जब वह चलता है धूप में, तो उसकी छाया नहीं बनती।

यह सिर्फ इसी बात के लिए इशारा है। छाया तो बनती है महावीर की भी और कृष्ण की भी और बुद्ध की भी। लेकिन इजिप्त की यह बड़ी प्राचीन कहावत कहती है कि जो पावन, परम पवित्र हो जाता है, उसकी छाया नहीं बनती। यह सिर्फ इस बात की सूचना देता है कि जो इतना पवित्र हो जाता है कि जिसके भीतर कोई अशुद्धि न रह गई हो, तो उसके आर—पार दिखाई पड़ने लगता है। और जिसके आर—पार दिखाई पड़ने लगे, उसकी छाया नहीं बनेगी। छाया नहीं बनेगी, यह केवल प्रतीक है।

महावीर के आर—पार दिखाई पड़ता है। महावीर एक दरवाजे की भांति हैं, खुले हुए। और हम एक दीवाल की भांति हैं, हमारे आर—पार कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता। हमें खुद नहीं दिखाई पड़ता, दूसरे को दिखाई पड़ना तो बहुत मुश्किल है। हम खुद एक ठोस दीवाल हैं पत्थरों की, जिसमें अपने को ही खोजना हो, तो भी बहुत मुश्किल है। कुछ दिखाई नहीं पड़ता।

यह उसी मात्रा में दीवाल बिखरती चली जाती है, जिस मात्रा में मन पवित्र होता है। और जिस दिन मन वायु की तरह हो जाता है, कोई भी अपवित्रता नहीं रह जाती, ट्रांसपैरेंट हो जाता है, आर—पार दिखाई पड़ने लगता है। वायु का होना और दिखाई न पड़ना, संतत्व भी ऐसा ही है। होता है, लेकिन दिखाई नहीं पड़ता।

सुना है मैंने, एक मुसलमान फकीर के जीवन में कहा गया है। फकीर परमज्ञान को उपलब्ध हो गया, तो फरिश्ते उतरे, और उन्होंने उस फकीर को कहा कि परमात्मा ने हमें भेजा है कि तुम कोई वरदान मांग लो। तुम जो चाहो! तुम पर प्रभु प्रसन्न हैं। तो उस फकीर ने कहा, लेकिन अब! अब तो कोई चाह न रही। देर करके तुम आए। जब चाह थी बहुत, कोई आया नहीं पूछने। और अब जब चाह न रही, तब तुम आए हो?

उन देवताओं ने कहा, हम आए ही इसीलिए हैं। जब चाह नहीं रह जाती, तभी तुम इतने पवित्र होते हो कि तुमसे पूछा जा सके कि कुछ चाहते हो? चाह के कारण ही तो हमारे और तुम्हारे बीच दरवाजा बंद था। चाह गिर गई, इसलिए दरवाजा खुला। अब हम तुमसे पूछने आए हैं कि तुम कुछ मांग लो।

उस फकीर ने कहा, लेकिन अब मैं क्या मांग सकता हूं! लेकिन जितनी फकीर जिद्द करने लगा कि मैं कुछ भी नहीं मांग सकता, उतने ही फरिश्ते जिद्द करने लगे कि कुछ मांग लो।

जिंदगी ऐसी ही उलटी है। जो लोग जितनी जिद्द करते हैं कि यह चाहिए, उतना ही चूकते चले जाते हैं। जो दौड़ते हैं पाने को, खो देते हैं। और जो पाने का खयाल ही छोड़ देते हैं, उनके पीछे सब कुछ दौड़ने लगता है।

उन देवताओं ने चरण पकड़ लिए और कहा कि परमात्मा हमसे कहेगा कि तुम इतना भी न समझा पाए! वापस जाओ। तुम कुछ मांग लो। तो उस फकीर ने कहा कि तुम्हीं कुछ दे दो, जो तुम्हें लगता हो। तो उन देवताओं ने कहा कि हम तुम्हें वरदान देते हैं कि तुम जिसे भी छू दोगे, वह बीमार होगा तो स्वस्थ हो जाएगा, मुर्दा होगा तो जीवित हो जाएगा। अगर सूखे पौधे को तुम छू दोगे, तो अंकुर निकल आएंगे।

उस फकीर ने कहा, इतनी तुमने कृपा की, थोड़ी कृपा और करो। और वह कृपा यह कि मेरे छूने से यह न हो, मेरी छाया के छूने से हो। मैं जहां से निकल जाऊं, मेरी छाया पड़ जाए सूखे वृक्ष पर, वह हरा हो जाए, लेकिन मुझे उसका पता न चले। अगर मेरे छूने से होगा, तो मेरा अहंकार पुन: निर्मित हो सकता है। मुझे पता न चले।

नहीं तो यह तुम्हारा वरदान, मेरे लिए अभिशाप हो जाएगा। मुझे पता न चले। मेरी शक्ति का मुझे पता न चले। मेरे संतत्व का मुझे पता न चले। मेरे रहस्य का मुझे पता न चले। यह जो चमत्कार प्रभु मुझे दे रहा है, यह मुझे पता न चले।

वह फकीर चलता गांव में, सूखे वृक्षों पर छाया पड़ जाती, वे हरे हो जाते। कभी किसी बीमार पर उसकी छाया पड़ जाती, वह स्वस्थ। हो जाता। लेकिन न तो उस फकीर को पता चलता और न उस बीमार को पता चलता, क्योंकि छाया के पड़ने से यह घटना होती।

यह तो कहानी है, लेकिन सूफी फकीर कहते हैं कि जब भी कभी कोई संत पैदा होता है, तो न उसे खुद पता होता है कि मैं संत हूं न किसी और को पता चलता है।

पता चलना, ठोस हो जाना है। पता न चलना, तरल होना है, विरल होना है, हवा की तरह होना है। जिन्हें हमने भगवान भी कहा है, बुद्ध या महावीर को, उन्हें खुद कुछ भी पता नहीं है। वे निर्दोष बच्चों की भांति हैं।

हवा की तरह पवित्रता भी है, अनसेल्फकांशस; अनकांशस नहीं, अनसेल्फकांशस। अचेतन नहीं; अहंकार का जरा भी बोध नहीं है। अहंकार की चेतनता जरा भी नहीं है। और दिखाई नहीं पड़ना। जो भी चीज दिखाई पड़ने लगती है, वह पदार्थ बन जाती है। दिखाई पड़ना पदार्थ का गुण है, मैटर का गुण है। चैतन्य का गुण होना है, दिखाई पड़ना नहीं।

इसलिए हमें शरीर दिखाई पड़ते हैं, आत्मा दिखाई नहीं पड़ती। हमें पत्थर दिखाई पड़ते हैं, प्रेम दिखाई नहीं पड़ता। जो भी हमें दिखाई पड़ता है, वह पदार्थ है। जो नहीं दिखाई पड़ता, वही परमात्मा है।

वायु हमें दिखाई नहीं पड़ती, पर है। और अगर हमें किसी को सिद्ध करना हो कि वायु है, तो हम उसकी आंखों का उपयोग न कर सकेंगे। और अगर कोई जिद्द ही करे कि मेरे सामने प्रत्यक्ष करो, तो हम कठिनाई में पड़ जाएंगे। यद्यपि जो हमसे कह रहा है कि वायु को प्रत्यक्ष करो, वह भी वायु के बिना एक क्षण जी नहीं सकता है। एक श्वास आनी बंद होगी, तो प्राण निकल जाएंगे। वायु ही उसका प्राण है, जीवन है। लेकिन फिर भी वायु को सामने रखा नहीं जा सकता, प्रत्यक्ष नहीं किया जा सकता। हम अनुभव कर सकते हैं। लेकिन किसी के शरीर में लकवा लग गया हो और उसे स्पर्श का कोई बोध न होता हो, तो हवाएं बहती रहें, उसे कोई पता नहीं चलेगा। वह श्वास भी लेगा, उसी से जीएगा और पता नहीं चलेगा।

कहते हैं कि मछलियों को सागर का पता नहीं चलता। नहीं चलता होगा। क्योंकि सागर में ही पैदा होती हैं, सागर में ही बड़ी होती हैं, सागर में ही समाप्त हो जाती हैं। उन्हें पता नहीं चलता होगा, क्योंकि जो इतना निकट है और सदा निकट है, उसका पता चलना बंद हो जाता है।

वायु सदा निकट है, चारों तरफ घेरे हुए है। वही हमारा सागर है, जिसमें हम जीते हैं, लेकिन दिखाई नहीं पड़ता। परमात्मा भी ठीक ऐसा ही है, चारों तरफ घेरे हुए है। उसके बिना भी हम क्षणभर नहीं जी सकते। वायु के बिना तो हम जी भी सकते हैं, उसके बिना हम क्षणभर नहीं जी सकते। वह हमसे वायु से भी ज्यादा निकट है। वह हमारे प्राणों का प्राण है। लेकिन उसका भी हमें कोई पता नहीं चलता।

कृष्ण कहते हैं, पवित्र करने वालों में मैं वायु हूं। और शस्त्रधारियों में राम हूं।

यह बहुत प्यारा प्रतीक है।

राम के हाथ में शस्त्र बहुत कट्राडिक्टरी है। राम जैसे आदमी के हाथ में शस्त्र होने नहीं चाहिए। राम का चित्र आप थोड़ा खयाल करें। राम के शरीर का थोड़ा खयाल करें। राम की आंखों का थोड़ा खयाल करें। राम के व्यक्तित्व का थोड़ा खयाल करें। शस्त्रों से कोई संबंध नहीं जुड़ता।

राम, शस्त्रों के साथ, बड़ी उलटी बात मालूम पड़ती है। न तो राम के मन में हिंसा है, न राम के मन में प्रतिस्पर्धा है, न राम के मन में ईर्ष्या है। न राम किसी को दुख पहुंचाना चाहते हैं, न किसी को पीड़ा देना चाहते हैं। फिर उनके हाथ में शस्त्र हैं। उनके हाथ में एक कमल का फूल होता, तो समझ में आता। उनके हाथ में शस्त्र, बिलकुल समझ में नहीं आते।

जब भी मैं राम का चित्र देखता हूं और उनके कंधे में लटका हुआ धनुष देखता हूं और उनके कंधे पर बंधे हुए तीर देखता हूं तो राम के शरीर से उनका कोई भी संबंध नहीं मालूम पड़ता। राम का शरीर एक कवि का, एक काव्य का, एक काव्य की प्रतिमा मालूम होती है। राम की आंखें प्रेम की आंखें मालूम होती हैं। राम पैर भी रखते हैं, तो ऐसा रखते हैं कि किसी को चोट न लग जाए। राम का सारा व्यक्तित्व फूल जैसा है। और कंधे पर बंधे हुए ये तीर, और हाथ में लिए हुए ये धनुष—बाण, ये कुछ समझ में नहीं आते! इनका कोई मेल नहीं है, इनकी कोई संगति नहीं है।

राक्षस के हाथ में, रावण के हाथ में शस्त्र सार्थक मालूम होते हैं, संगत मालूम होते हैं। वहां गणित ठीक बैठता है। महावीर के हाथ में तीर का न होना, तलवार का न होना संगत मालूम होता है। गणित वहां भी ठीक है। महावीर हैं या बुद्ध हैं, उनके हाथ में कुछ भी नहीं है, कोई शस्त्र नहीं है। रावण के हाथ में शस्त्र हैं, सारा शरीर शस्त्रों से ढंका है, यह भी ठीक है।

राम कुछ अनूठे हैं। ये आदमी बुद्ध जैसे और इनके हाथ में शस्त्र रावण जैसे, यह बड़ा विरोधाभासी है। और कृष्ण को यही प्रतीक मिलता है कि शस्त्रधारियों में मैं राम हूं! बहुत शस्त्रधारी हुए हैं। शस्त्रधारियों की कोई कमी नहीं है। राम को क्यों चुना होगा? जानकर चुना है, बहुत विचार से चुना है, बहुत हिसाब से चुना है। शस्त्र खतरनाक है रावण के हाथ में। इसे थोड़ा समझेंगे। थोड़ी बारीक है और बात थोड़ी कठिन मालूम पड़ेगी।

शस्त्र खतरनाक है रावण के हाथ में, क्योंकि रावण के भीतर सिवाय हिंसा के और कुछ भी नहीं है। और हिंसा के हाथ में शस्त्र का होना, जैसे कोई आग में पेट्रोल डालता हो। यह हम समझ जाएंगे। यह हमारी समझ में आ जाएगा। इस दुनिया की पीड़ा ही यही है कि गलत लोगों के हाथ में ताकत है। गलत आदमी उत्सुक भी होता है शक्ति पाने के लिए बहुत।

बेकन ने कहा है, पावर करप्ट्स एंड करप्ट्स एकोज्यूटली। शक्ति लोगों को व्यभिचारी बना देती है और पूर्ण रूप से व्यभिचारी बना देती है। बेकन की यह बात ठीक है। लेकिन बेकन ने इसका जो कारण दिया है, वह ठीक नहीं है। बेकन सोचता है कि जिनके हाथ में भी शक्ति आ जाती है, शक्ति के कारण वे करप्ट हो जाते हैं। यह बात गलत है। वे करप्ट हो जाते हैं, यह तथ्य है; लेकिन शक्ति के कारण करप्ट हो जाते हैं, यह गलत है। क्योंकि हमने राम के हाथ में भी शक्ति देखी है और करप्शन नहीं देखा, व्यभिचार नहीं देखा, शक्ति का कोई व्यभिचार नहीं देखा।

तब बात कुछ और है। तथ्य तो ठीक है कि हम देखते हैं कि जिनके हाथ में शक्ति आती है, वे व्यभिचारी हो जाते हैं। लेकिन इसका कारण शक्ति नहीं है। इसका बुनियादी कारण यह है कि व्यभिचारी ही शक्ति के प्रति आकर्षित होते हैं। लेकिन कमजोर आदमी अपने व्यभिचार को प्रकट नहीं कर पाता, जब शक्ति हाथ में आती है, तब वह प्रकट कर पाता है। शक्ति के कारण व्यभिचार पैदा नहीं होता, प्रकट होता है।

आप कमजोर हैं, आपके भीतर हिंसा है, दूसरा आदमी मजबूत है, आप हिंसा नहीं कर पाते। फिर एक बंदूक आपके हाथ में दे दी जाए, अब दूसरा आदमी कमजोर' हो गया, अब आप ताकतवर हैं, अब हिंसा होगी।

चरित्र की असली परीक्षा तभी है, जब शक्ति पास में हो। जिनके पास शक्ति नहीं है, उनके चरित्र का कोई भरोसा नहीं है। उनका चरित्र केवल कमजोरी हो सकती है।

इसलिए इस दुनिया में जितने चरित्रवान लोग दिखाई पड़ते हैं, निन्यानबे प्रतिशत तो कमजोरी की वजह से चरित्रवान होते हैं। इसलिए इतने चरित्रवान भी दिखाई पड़ते हैं, इतनी चरित्र की बात भी होती है और दुनिया रोज चरित्रहीनता में उतरती जाती है।

कमजोर आदमी को ताकत दो और उसका चरित्र बह जाएगा। सबसे पहली जो दुर्घटना होगी, वह चरित्र की हत्या हो जाएगी। कमजोर आदमी को किसी तरह की ताकत दो— धन दो, पद दो, राजनीति की कोई सत्ता दो— सारा चरित्र बह जाएगा।

हम इस मुल्क में भलीभांति जानते हैं। जिनको आजादी के पहले हमने चरित्रवान समझा था, ठीक आजादी के बाद एक रात में उनके चरित्र बह गए। जो सेवक की तरह बिलकुल भोले— भाले मालूम पड़ते थे, वे सत्ताधिकारी की तरह ठीक चंगेज और तैमूर के वंशज सिद्ध होते हैं। क्या हो जाता है रातभर में? क्या शक्ति लोगों को नष्ट कर देती है?

नहीं, लोग कमजोरी की वजह से केवल चरित्रवान थे। हाथ में ताकत आती है और सब चरित्र खो जाता है। परीक्षा शक्ति के बाद ही पता चलती है।

निश्चित ही, शक्ति पाने के लिए कमजोर लोग उत्सुक होते हैं। होते ही वे हैं। मनसविद कहते हैं कि जिनके भीतर इनफीरिआरिटी कांप्लेक्स है, जिनके भीतर हीनता का भाव है, वे ही लोग पदों की तरफ आकर्षित होते हैं। इसलिए अगर इनफीरिआरिटी कांप्लेक्स से पीड़ित लोगों को देखना है, तो किसी भी देश की राजधानी में वे मिल जाएंगे। सब वहां मिल जाएंगे इकट्ठे।

जिनके भी मन में यह भय है कि मैं क्षुद्र हूं मैं कुछ भी नहीं हूं वे किसी पद पर बैठकर अपने और दूसरों के सामने सिद्ध करना चाहते हैं कि मैं कुछ हूं। नोबडी वांट्स टु बी नोबडी। कोई नहीं पसंद करता कि मैं कोई भी नहीं हूं। हर एक के भीतर खयाल है कि मैं कुछ हूं। कुछ हूं लेकिन यह किसको कहूं कैसे कहूं जब तक कि हाथ में ताकत न हो। हाथ में ताकत हो, तो कहूं कि मैं कुछ हूं। सिर्फ वे ही लोग ताकत की दौड़ से बच सकते हैं, जो बिना कहे भीतर हीनता की ग्रंथि से मुक्त हो जाते हैं। जिनके भीतर हीन होने का भाव ही तिरोहित हो जाता है, वे ही लोग दूसरे से श्रेष्ठ होने की कोशिश बंद कर देते हैं!

यह बड़े मजे की बात है। इस जगत में श्रेष्ठ लोग ही श्रेष्ठ बनने की कोशिश नहीं करते। हीन लोग श्रेष्ठ बनने की कोशिश करते हैं।

राम के हाथ में शस्त्र गलत आदमी के हाथ में शस्त्र हैं। गलत इसलिए कह रहा हूं कि रावण के हाथ में तो ठीक आदमी के हाथ में हैं। रावण की आत्मा और शस्त्रों के बीच सेतु है, संबंध है, एक हार्मनी है, एक संगीत है। राम और शस्त्र के बीच कोई सेतु नहीं है। एक खाई है, अलंध्य खाई है, अनब्रिजेबल गैप है। वही राम की खूबी भी है। शस्त्र हैं और राम हैं, और उन दोनों के बीच कोई सेतु नहीं है। रावण के हाथ में ठीक मालूम पड़ते हैं शस्त्र, लेकिन खतरनाक हैं। क्योंकि जब भीतर हिंसा हो और शस्त्र हाथ में हों, तो हिंसा गुणित होती चली जाएगी, मल्टीप्लाइड हो जाएगी।

पिछले महायुद्ध में फ्रांस पर जब हमला हुआ, तो फ्रांस की एक पहाड़ी पूरी तरह ध्वस्त हो गई। और युद्ध के बाद जब उस पहाड़ी में खुदाई की जा रही थी, तो एक बहुत हैरानी की घटना घटी। उस पहाड़ी में खुदाई करते वक्त आधुनिक युग के बमों के पड़े हुए शेल एक गुफा में उपलब्ध हुए हैं, जो पत्थरों में छिद गए थे। और वहीं पच्चीस हजार वर्ष पुराने पत्थर के औजार भी उस गुफा में पड़े थे। वे दोनों एक साथ उपलब्ध हुए। पच्चीस हजार साल पुराना पत्थर का औजार और आधुनिक युग के बम की खोल, वे दोनों एक साथ एक ही गुफा में उपलब्ध हुईं।

पच्चीस हजार साल पहले आदमी पत्थर से मार रहा था, आदमी यही था। पच्चीस हजार साल बाद यह बमों से मार रहा है, आदमी वही है। विकास आदमी का जरा नहीं हुआ, लेकिन पत्थर के औजार से एटम बम तक विकास हो गया! आदमी वही है।

इसलिए लोग कहते हैं कि मनुष्यता विकसित हो रही है, वह जरा संदिग्ध बात है। अस्त्र—शस्त्र विकसित हो रहे हैं, यह निस्संदिग्ध बात है। मनुष्यता विकसित होती नहीं दिखाई पड़ती। एवोल्यूशन, विकास, वस्तुओं का हो रहा है।

पच्चीस हजार साल पहले जिस आदमी ने पत्थर के औजार से किसी की हत्या की होगी और पच्चीस हजार साल बाद जिसने बम से हत्या की, इनके हत्या करने का पैमाना बड़ा हो गया। पत्थर के औजार से आप एकाध को मार सकते थे, एटम से आप लाखों को एक साथ मार सकते हैं। एक हाइड्रोजन बम कोई एक करोड़ आदमियों को एक साथ मार सकता है। और अभी जमीन पर पचास हजार हाइड्रोजन बम तैयार हैं।

वैज्ञानिक कहते हैं कि तैयारी जरूरत से ज्यादा हो गई। वे कहते हैं कि हमारे पास इतने बम हैं अब, जितने आदमी नहीं हैं मारने को! एक—एक आदमी को सात—सात बार मारना पड़े, तो हमारे पास इंतजाम है। हालांकि एक आदमी एक ही दफे में मर जाता है! लेकिन राजनीतिज्ञ बहुत हिसाब लगाते हैं! कोई बच जाए एक दफा, दुबारा, तिबारा, तो हम सात बार मार सकते हैं एक आदमी को। इक्कीस अरब आदमियों को मारने का इंतजाम है अभी, आबादी कोई तीन, साढ़े तीन अरब है। इक्कीस अरब आदमियों को मारने का इंतजाम है। और यह इंतजाम रोज बढ़ता जाता है। आदमी विकसित हुआ नहीं मालूम पड़ता, लेकिन ताकत विकसित हुई मालूम पड़ती है।

हिंसा हो भीतर, वैमनस्य हो भीतर, प्रतिस्पर्धा हो भीतर, शत्रुता हो भीतर, तो अस्त्र—शस्त्र घातक हैं। यह तो हमारी समझ में आ जाएगा। एक तरफ रावण है, जिससे शस्त्रों का मेल है, यह खतरनाक है। दूसरी तरफ बुद्ध और महावीर हैं। ये भी बिलकुल गणित के फार्मूले की तरह साफ हैं। जैसे ये आदमी हैं, इनके पास वैसा ही सब कुछ है; इनके पास कोई अस्त्र—शस्त्र नहीं है। भीतर प्रेम है, हाथ में तलवार नहीं है।

ये आदमी अपने लिए खतरनाक नहीं हैं, किसी के लिए खतरनाक नहीं हैं। लेकिन नकारात्मक रूप से समाज के लिए ये भी खतरनाक हो सकते हैं। नकारात्मक रूप से! क्योंकि इसका मतलब यह हुआ कि बुरे आदमी के हाथ में ताकत रहेगी और अच्छा आदमी ताकत को छोड़ता चला जाएगा। जाने—अनजाने यह बुरे आदमी को मजबूत करना है। महावीर की कोई इच्छा नहीं है, बुद्ध की कोई इच्छा नहीं है कि बुरा आदमी मजबूत हो जाए। लेकिन बुद्ध और महावीर का शस्त्र छोड़ देना, बुरे आदमी को मजबूत करने का कारण तो बनेगा ही। अच्छा आदमी मैदान छोड़ देगा, बुरा आदमी ताकतवर हो जाएगा।

दुनिया में जितनी बुराई है, उसमें सिर्फ बुरे लोगों का हाथ होता, तो भी ठीक था, उसमें अच्छे लोगों का हाथ भी है। यह बात मैं कह रहा हूं थोड़ी समझनी कठिन मालूम पड़ेगी। क्योंकि अच्छे आदमी का सीधा हाथ नहीं है, अच्छे आदमी का हाथ परोक्ष है, इनडायरेक्ट है। अच्छा आदमी छोड़कर चल देता है। अच्छा आदमी लड़ाई के मैदान से हट जाता है। अच्छा आदमी, जहां भी संघर्ष है, वहां से दूर हो जाता है। बुरे आदमी ही शेष रह जाते हैं। और बुरे आदमी ताकत पर पहुंच जाते हैं, तो पूरे समाज को बुरा करने का कारण होते हैं।

इसलिए कृष्ण राम को चुन रहे हैं, यह बहुत सोचकर कही गई बात है। राम दोहरे हैं, आदमी बुद्ध जैसे और शक्ति रावण जैसी।

और शायद दुनिया अच्छी न हो सकेगी, जब तक अच्छे आदमी और बुरे आदमी की ताकत के बीच ऐसा कोई संबंध स्थापित न हो। तब तक शायद दुनिया अच्छी नहीं हो सकेगी। अच्छे आदमी सदा पैसिफिस्ट होंगे, शांतिवादी होंगे, हट जाएंगे। बुरे आदमी हमेशा हमलावर होंगे, लड़ने को तैयार रहेंगे। अच्छे आदमी प्रार्थना—पूजा करते रहेंगे, बुरे आदमी ताकत को बढ़ाए चले जाएंगे। अच्छे आदमी एक कोने में पड़े रहेंगे, बुरे आदमी सारी दुनिया को रौंद डालेंगे।

थोड़ा हम सोचें, राम जैसा आदमी सारी पृथ्वी पर खोजना मुश्किल है। एक अनूठा आयाम है राम का। एक अलग ही डायमेंशन है। क्राइस्ट, बुद्ध, महावीर खोजे जा सकते हैं। रावण, या हिटलर, या नेपोलियन, या सिकंदर खोजे जा सकते हैं। राम बहुत अनूठा जोड़ हैं। आदमी बुद्ध जैसे, हाथ में ताकत रावण जैसी।

कृष्ण कहते हैं, शस्त्रधारियों में मैं राम हूं।

बुराई में भी सब बुराई नहीं है, और भलाई में भी सब भलाई नहीं है। बुराई में भी ताकत तो भली है, और भलाई में भी ताकत की कमी बुरी है। भले को भी शक्तिशाली होना चाहिए। इस जगत में बुराई कम होगी तभी, जब भला भी शक्तिशाली हो। तभी होगी कम, जब भला भी शक्ति को निर्मित करे। भला शक्ति से भाग जाए, तो वह बुरे आदमी को बुरा होने की सुविधा दे रहा है, मार्ग दे रहा है। वह साथी और संगी बन रहा है— बिना जाने, बिना इच्छा के।

इसलिए राम को, कृष्ण कहते हैं कि मैं शस्त्रधारियों में राम हूं।

मैं भला हूं बुद्ध जैसा, लेकिन मैं बुरा भी हो सकता हूं रावण जैसा। बुरा हो सकता हूं का मतलब यह कि मैं बुरे के साथ ठीक उसके ही तल पर युद्ध ले सकता हूं। ठीक उसके ही स्थान पर उससे जूझ सकता हूं। ठीक उसके ही उपकरणों का उपयोग कर सकता हूं।

लेकिन एक बात ध्यान देने जैसी है कि राम जैसा व्यक्ति ही रावण के शस्त्रों का उपयोग कर सकता है। कोई दूसरा व्यक्ति उपयोग करेगा, तो चाहे जीते, चाहे हारे, रावण ही जीतेगा। अगर कोई दूसरा व्यक्ति रावण से लड़ने जाए और रावण के ही शस्त्रों का उपयोग करे, तो चाहे रावण जीते और चाहे वह दूसरा व्यक्ति जीते, कोई जीते, कोई हारे, रावण ही जीतेगा। क्योंकि इस युद्ध में वह दूसरा आदमी धीरे— धीरे रावण जैसा ही हो जाएगा।

रावण की असली पराजय यही है कि रावण राम को अपने जैसा नहीं बना पाया। असली पराजय यही है। राम राम ही बने रहे। उनके व्यक्तित्व में जरा—सी एक कली भी नहीं सूखी। उनका फूल फूल जैसा ही खिला रहा। उनकी तलवार, उनके हाथ के शस्त्र, उनके भीतर की मनुष्यता में जरा—सा भी फर्क न ला पाए। वही रावण की हार है, वहीं रावण पराजित हो गया है। अगर राम भी रावण जैसे हो जाएं, तो जीत भी लें, तो कोई फर्क नहीं पड़ता। कोई फर्क नहीं पड़ता।

हमने दूसरे महायुद्ध में देखा। दूसरे महायुद्ध में हमने देखा कि हिटलर से जो लोग लड़े थे, वे युद्ध के दौरान ठीक हिटलर जैसे, बल्कि उससे भी एक कदम आगे चले गए। हिटलर तो झिझकता रहा अणु शस्त्रों का निर्माण करने, बनाने और उनका उपयोग करने में। लेकिन अमेरिका कर सका।

और इसलिए सोचा था कि हिटलर की हार के बाद, फासिज्म की हार के बाद दुनिया में बड़ी शांति आ जाएगी। वह बिलकुल नहीं आई। दुनिया में युद्ध का सिलसिला वैसा ही जारी रहा। और जो कल के मित्र थे, जो युद्ध में हिटलर को हराने को दोस्त की तरह लड़े थे, वे हिटलर के हारते ही दुश्मन की तरह खड़े हो गए।

हिटलर हारा जरूर, लेकिन सारी दुनिया को हिटलर की छाया से भर गया। उसकी हार वास्तविक नहीं है। हिटलर हारा जरूर, लेकिन सारी दुनिया को फासिस्ट कर गया। एक—एक आदमी के प्राण में फासिज्म का जहर डाल गया। इसलिए हिटलर किसी भी दिन रिवाइव हो सकता है, उसमें कोई अड़चन नहीं है। एक—एक प्राण में उसका बीज है। वह कहीं से भी प्रकट हो सकता है। हिटलर की हार हो नहीं सकी। क्योंकि जो लोग उससे लड़े, वे लोग भी व्यक्तित्व की दृष्टि से उससे भिन्न नहीं थे।

रावण हारा, क्योंकि जिसके हाथों हारा, वह आदमी रावण के तल का न था। इसलिए रावण प्रसन्न है कि राम के हाथ से उसकी मृत्यु घटित हुई। यह अनूठी बात है। रावण प्रसन्न है कि राम के हाथों उसकी मृत्यु हुई। रावण प्रसन्न है कि अब मुक्ति में क्या बाधा रही होगी! अगर खुद राम मुझे मारने को आए हों, इस शरीर से मुझे विदा करते हों, तो मेरे मोक्ष में बाधा ही क्या है!

राम से शत्रुता नहीं है, विरोध है, संघर्ष है। लेकिन राम की ऊंचाई का रावण को बोध है। राम की भिन्नता का भी पता है।

कृष्ण कहते हैं, मैं शस्त्रधारियों में राम हूं।

मैं शस्त्र भी ले सकता हूं लेकिन उससे मैं नहीं बदलता। शस्त्र मुझे नहीं बदल सकता है, यह उनका प्रयोजन है। मैं कुछ भी करूं, मेरा करना मेरी आत्मा को नहीं बदल सकता है, यह उनका अभिप्राय है।

ध्यान रखें, हम जो भी करते हैं, उसका जोड़ ही हमारी आत्मा है। राम जो भी करते हैं, उसका जोड़ उनकी आत्मा नहीं है। राम जो भी करते हैं, वह एक तल पर है और उनकी आत्मा बिलकुल दूसरे तल पर है। राम के कृत्यों से हम राम की आत्मा का पता नहीं लगा सकते। राम की आत्मा का पता हो, तो हम राम के कृत्यों को समझ सकते हैं।

कृत्यों से हमारी आत्मा का पता चल जाता है। और हमारे पास दूसरी कोई आत्मा नहीं है। आपने जो—जो किया है, वह अगर अलग कर लिया जाए, तो आप बिलकुल शून्य हो जाएंगे। राम ने जो भी किया है, उसे अलग कर लिया जाए, राम में कोई कमी नहीं पड़ेगी। राम का

करना, हम समझें ठीक से, तो बिलकुल बाहरी घटना है। भीतर कुछ भी नहीं घटता है। भीतर कुछ भी नहीं घटता है। इसलिए एक अनूठी घटना राम के जीवन में है, जिसे समझना लोगों को मुश्किल पड़ा है।

राम सीता के चोरी जाने से रावण से लड़ने गए। स्वभावत:, हमें लगेगा कि सीता से भारी आसक्ति रही होगी! अन्यथा राम को और सीताएं भी मिल सकती थीं। राम को क्या कमी हो सकती थी सुंदर स्त्रियों की, वे उपलब्ध हो सकती थीं। राम को भारी आसक्ति रही होगी, लगाव रहा होगा, तब तो इतने बड़े युद्ध में इतनी झंझट में उतरे। और जब तक सीता को वापस न ले आए, तब तक हमें लगता होगा, कि दिन—रात सो न सके होंगे; बेचैन रहे होंगे; परेशान रहे होंगे।

लेकिन फिर दूसरी घटना बहुत मुश्किल में डाल देती है। एक धोबी की जरा—सी चर्चा, वह भी किसी के द्वारा सुनी गई! एक धोबी का अपनी पत्नी से यह कह देना कि मैं कोई राम नहीं हूं कि तू महीनों और सालों घर से नदारद रहे और मैं तुझे वापस घर में रख लूं! उसकी पत्नी एक रात घर से नदारद रह गई होगी। तो मैं कोई राम नहीं हूं! यह खबर राम को लगना और सीता का जंगल में छुड़वा देना।

यह जरा असंगत मालूम पड़ता है। यह आदमी सीता के लिए इतना बड़ा युद्ध लेने गया। इस आदमी ने अपने प्राण सीता के लिए युद्ध में लगा दिए। यह आदमी लडा, वर्षों शक्ति और श्रम व्यय किया, और एक धोबी के कहने से इस आदमी ने सीता को जंगल में छुड़वा दिया!

इस आदमी के कृत्यों से हम इस आदमी को नहीं समझ सकते। यह आदमी क्या करता है, इससे इसकी आत्मा का पता नहीं चलेगा। नहीं तो इन दोनों बातों में मेल बिठाना मुश्किल है। यह आदमी क्या है, उसे हम समझ लें, तो इसके कृत्यों की व्याख्या हो सकती है।

सीता का चोरी जाना युद्ध का कारण नहीं है, केवल युद्ध का बहाना है। सीता के लिए युद्ध नहीं किया गया है। ज्यादा समझ की बात तो यह है कि शायद युद्ध के लिए सीता को चोरी करवाने की व्यवस्था की गई हो। समझ में भी ऐसा ही आता है। क्योंकि राम एक सोने के युग के पीछे भागते हैं शिकार करने। आप भी धोखे में न आते। हालांकि सोना बहुत आकर्षित करता है, लेकिन सोने का मृग आपको भी दिखाई पड़ता, तो आप समझते, कोई धोखा है। राम को तो सोने का मृग क्या धोखा दे सकता था!

यह जाना आयोजित है। यह जाना जानकर है। यह जाना समझ— बूझकर है। सीता चुराई जा सके, इसके लिए सुविधा देनी जरूरी है। वह जो गलत है, वह गलत कर सके, तभी उसकी गलती प्रकट होती है। वह जो बुरा है, उसे बुरे होने का पूरा मौका दिया जाए, तो ही उसकी बुराई प्रकट होती है। रावण सीता को चुराकर ही झंझट में पड़ गया। उसकी बुराई शिखर पर पहुंच गई, उसका पाप का घड़ा पूरा भर गया। और तब उसे विनष्ट किया जा सकता है।

एक खयाल आपको शायद न हो। भारतीय मन बहुत अनूठा है और कई बार पश्चिम में उसको समझना मुश्किल हो जाता है। कथा यह है कि वाल्मीकि ने रामायण पहले लिखी, राम बाद में हुए। यह बात निश्चित ही असंगत मालूम पड़ती है। लेकिन भारतीय मन में बड़े और खयाल हैं।

राम का व्यक्तित्व एक विराट योजना का हिस्सा मात्र है। वह योजना पहले से नियोजित है, वह योजना पहले से तैयार है। राम सिर्फ एक अभिनेता हैं उस योजना में। इसलिए सीता चोरी जाती है, तो युद्ध को चले जाते हैं। और एक धोबी एतराज उठाता है, तो सीता को जंगल भेज देते हैं। राम जैसे इन किन्हीं कृत्यों के बीच में नहीं हैं। बाहर खड़े हैं। जैसे ये सारे कृत्य एक अभिनय के मंच पर किए जा रहे हैं, जिनसे राम का कुछ लेना—देना नहीं है। जो करना जरूरी है, वे कर रहे हैं। जो होना चाहिए, वह हो रहा है। लेकिन वे बाहर खड़े हैं। उनकी आत्मा इनमें से किसी से भी छू नहीं जाती। कोई चीज उनको स्पर्श नहीं कर रही है।

कृष्ण का यह कहना कि मैं धनुर्धारियों में, शस्त्रधारियों में राम हूं इस बात की खबर देना है कि मैं जो करता हूं उससे तू मेरा पता नहीं लगा सकेगा। मेरा होना, मेरे करने के पार है। वह जो अस्तित्व है मेरा, वह मेरे कृत्य से बहुत ऊपर है।

हमारी हालत उलटी है। हमारा अस्तित्व हमारे कृत्य से भी नीचे होता है। उसे हम समझ लें, तो राम की बात हमारे खयाल में आ जाए। रास्ते पर आप जाते हैं और एक भिखारी आपसे पैसा मांगता है। अगर आस—पास कोई न हो, तो आप भिखारी की बिना फिक्र किए आगे बढ़ जाते हैं। लेकिन अगर चार लोग देखने वाले हों और प्रतिष्ठा का सवाल आ जाए, तो आप भिखारी को दो पैसे दे देते हैं। वह आप भिखारी को नहीं देते, अपनी प्रतिष्ठा को देते हैं।

इसलिए भिखारी भी अकेले आदमी को नहीं घेरते। दो—चार मित्र साथ में हों, तो पैर पकड़ लेते हैं। क्योंकि वह तीन की आंखों से ही पैसा मिलने वाला है, क्योंकि उन तीन के सामने यह भी तो जरा अपमानजनक है कि दो पैसे न दे सके। आपका कृत्य तो मालूम होता है कि आपने दया की, लेकिन आपका अस्तित्व आपके कृत्य से नीचे होता है। आपकी आत्मा आपके कृत्य से भी नीची होती है। दान वह नहीं है।

जहां अहंकार तृप्त हो रहा हो, वहां दान नहीं है, वह चाहे छोटा हो, चाहे बड़ा। जब तक अहंकार ही न दिया जाए, तब तक दान नहीं है। अहंकार के लिए कुछ दिया जाए, तो दान नहीं है। उसका संबंध दूसरे से नहीं है। आप जब भिखारी को देते हैं, तो उसका संबंध भिखारी से नहीं है, अपने से है। आप अपने अहंकार में दो पैसे डाल रहे हैं, ताकि अहंकार और मजबूत हो जाए। भिखारी का पात्र तो केवल आपके लिए एक निमित्त है।

लेकिन भिखारी को दो पैसे मिल जाते हैं। उसे प्रयोजन नहीं कि आपने किसलिए दिए। भिखारी को यह भी लग सकता है कि आपने दया की। हालांकि किसी भिखारी को ऐसा नहीं लगता। और जब आप देकर चले जाते हैं, तो भिखारी हंसता है कि ठीक बेवकूफ बनाया। उसका भी अपना अहंकार है, आपका ही नहीं है। वह भी भलीभांति जानता है कि किस तरह के लोग बुद्ध बन जाते हैं, किस हालत में बन जाते हैं। वह भी पीछे से हंसता है। सामने तो दुआ देता दिखाई मालूम पड़ता है। मानता तो वह उसी आदमी को है, जो बिना दिए अकड़कर चला जाता है। मानता तो वह भी उसी को है। समझता है कि इसको मैं बना नहीं पाया।

हमारा कृत्य भी हमारी आत्मा से ऊपर मालूम पड़ता है। आप किसी को नमस्कार करते हैं और कहते हैं, मिलकर बड़ी खुशी सड़ जाएगा, गंगा भर का नहीं सडेगा। केमिकली गंगा बहुत विशिष्ट है। उसका पानी डिटेरिओरेट नहीं होता, सडता नहीं, वर्षों रखा रहे। बंद बोतल में भी वह अपनी पवित्रता, अपनी स्वच्छता कायम रखता है।

ऐसा किसी नदी का पानी पूरी पृथ्वी पर नहीं है। सभी नदियों के पानी इस अर्थों में कमजोर हैं। गंगा का पानी इस अर्थों में विशेष मालूम पडता है, उसका विशेष केमिकल गुण मालूम पड़ता है। गंगा में इतनी लाशें हम फेंकते हैं। गंगा में हमने हजारों—हजारों वर्षों से लाशें बहाई हैं। अकेले गंगा के पानी में, सब कुछ लीन हो जाता है, हड्डी भी। दुनिया की किसी नदी में वैसी क्षमता नहीं है। हड्डी भी पिघलकर लीन हो जाती है और बह जाती है और गंगा को अपवित्र नहीं कर पाती। गंगा सभी को आत्मसात कर लेती है, हड्डी को भी। कोई भी दूसरे पानी में लाश को हम डालेंगे, पानी सडेगा। पानी कमजोर और लाश मजबूत पड़ती है। गंगा में लाश को हम डालते हैं, लाश ही बिखर जाती है, मिल जाती है अपने तत्वों में। गंगा अछूती बहती रहती है। उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

गंगा के पानी की बड़ी केमिकल परीक्षाएं हुई हैं, वैज्ञानिक। और अब तो यह वैज्ञानिक रूप से सिद्ध हो गया है कि उसका पानी हुई। और भीतर आपको कोई खुशी नहीं हो रही होती। बल्कि दुख भी हो रहा होता है कि इस दुष्ट की शक्ल सुबह से कहां से दिखाई पड़ गई!

आपका कृत्य आपकी आत्मा से बड़ा मालूम पड़ता है। आप जो कहते हैं, जो करते हैं, वही काफी ऊंचा है। आप जो हैं, और भी नीचा है।

राम ठीक इसके विपरीत हैं। वे जो कर रहे हैं वह बहुत नीचा है। वे जो हैं, वह बहुत ऊपर है। कृष्ण कहते हैं, मैं जो कर रहा हूं उससे मुझे मत तौलना। मैं शस्त्रधारियों में राम जैसा हूं।

मछलियों में मगरमच्छ, नदियों में गंगा हूं। और हे अर्जुन, सृष्टियों का आदि, अंत और मध्य भी मैं ही हूं।

गंगा के प्रतीक को भी समझने जैसा है। गंगा के साथ हिंदू मन बड़े गहरे में जुड़ा है। गंगा को हम भारत से हटा लें, तो भारत को भारत कहना मुश्किल हो जाए। सब बचा रहे, गंगा हट जाए, भारत को भारत कहना मुश्किल हो जाए। गंगा को हम हटा लें, तो भारत का सारा साहित्य अधूरा पड़ जाए। गंगा को हम हटा लें, तो भारत के न मालूम कितने ऋषियों के नाम खो जाएं। गंगा को हम हटा लें, तो हमारा तीर्थ ही खो जाए, हमारे सारे तीर्थ की भावना खो जाए।

गंगा के साथ भारत के प्राण बड़े पुराने दिनों से कमिटेड हैं, बड़े गहरे में जुड़े हैं। गंगा जैसे हमारी आत्मा का प्रतीक हो गई है। मुल्क की भी अगर कोई आत्मा होती हो और उसके प्रतीक होते हों, तो गंगा ही हमारा प्रतीक है। पर क्या कारण होगा गंगा के इस गहरे प्रतीक बन जाने का कि हजारों—हजारों वर्ष पहले कृष्ण भी कहते हैं कि नदियों में मैं गंगा हूं?

गंगा कोई नदियों में विशेष उस अर्थ में नहीं है। गंगा से बड़ी नदियां हैं, गंगा से लंबी नदियां हैं। गंगा से बड़ी विशाल नदियां पृथ्वी पर हैं। गंगा कोई लंबाई में, विशालता में, चौड़ाई में, किसी दृष्टि से कोई बहुत बड़ी गंगा नहीं है। कोई बहुत बड़ी नदी नहीं है। ब्रह्मपुत्र है, और अमेजान है, और ह्वांगहो है, और सैकड़ों नदियां हैं, जिनके सामने गंगा फीकी पड़ जाए।

पर गंगा के पास कुछ और है, जो पृथ्वी पर किसी भी नदी के पास नहीं है। और उस कुछ और के कारण भारतीय मन ने गंगा के साथ एक तालमेल बना लिया। एक तो बहुत मजे की बात है कि पूरी पृथ्वी पर गंगा सबसे ज्यादा जीवंत नदी है, अलाइव। सारी नदियों का पानी आप बोतल में भरकर रख दें, सभी नदियों का पानी सड़ जायेगा, गंगा भा का नहीं सड़ेगा। केमिकली गंगा बहुत विशिष्ट है। उसका पानी डिटेरिओरेट नहीं होता, सड़ता नहीं। वर्षों रखा रहे, बंद बोतल में भी वह अपनी पवित्रता, अपनी स्वच्छता कायम रखता है।

ऐसा किसी नदी का पानी पूरी पृथ्वी पर नहीं है। सभी नदियों के पानी इस अर्थों में कमजोर है। गंगा का पानी इस अर्थों में विशेष मालूम पड़ता है। उसका विशेष केमिकल गुण मालूम पड़ता है।

गंगा में इतनी लाशों को हम फेंकते है, गंगा में हमने हजारों—हजारों वर्षों से लाशों बहाई है। अकेले गंगा के पानी में सब कुछ लीन हो जाता हे। हड्डी भी। दूनियां की किसी भी नदी में यह शमता नहीं है। हड्डी भी पिधलकार लीन हो जाती है। बह जाती है और गंगा को अपवित्र नहीं कर पाती। गंगा सभी को आत्म सात कर लेती है। हड्डी भी। दूनियां कि किसी भी नदी में लाश को डाल दो वह पानी सड़ने लग जायेगा। पानी कमजोर है और लाश मजबूत है। गंगा में लाश कमजारे पड़ जाती है। बिखर जाती है। मिल जाती है। अपने तत्वों में विलिन हो जाती है। गंगा अछूति बहती रहती है। इस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

गंगा के पानी की बड़ी केमिकल परीक्षाए हुई है। वैज्ञानिक। और अब तो यह वैज्ञानिक रूप से सिद्ध हो गया है कि उसका पानी असाधारण है।

यह क्यों है असाधारण, यह भी थोड़ी हैरानी की बात है। क्योंकि गंगा जहां से निकलती है, वहां से बहुत नदियां निकलती हैं। गंगा जिन पहाड़ों से गुजरती है, वहां से कई नदियां गुजरती हैं। तो गंगा में जो खनिज और जो तत्व मिलते हैं, वे और नदियों में भी मिलते हैं। फिर गंगा में कोई गंगा का ही पानी तो नहीं होता, गंगोत्री से तो बहुत छोटी—सी धारा निकलती है। फिर और तो सब दूसरी नदियों का पानी ही गंगा में आता है। विराट धारा तो दूसरी नदियों के पानी की ही होती है।

लेकिन यह बड़े मजे की बात है कि जो नदी गंगा में नहीं मिली, उस वक्त उसके पानी का गुणधर्म और होता है और गंगा में मिल जाने के बाद उसी पानी का गुणधर्म और हो जाता है! क्या होगा कारण? केमिकली तो कुछ पता नहीं चल पाता। वैज्ञानिक रूप से इतना तो पता चलता है कि विशेषता है और उसके पानी में खनिज और केमिकल्स का भेद है। विज्ञान इतना ही कह भी सकता है। लेकिन एक और भेद है, वह भेद विज्ञान के खयाल में आज नहीं तो कल आना शुरू हो जाएगा। और वह भेद है, गंगा के पास लाखों—लाखों लोगों का जीवन की परम अवस्था को पाना।

यह मैं आपसे कहना चाहूंगा कि पानी, जब भी कोई व्यक्ति, अपवित्र व्यक्ति पानी के पास बैठता है— अंदर जाने की तो बात अलग— पानी के पास भी बैठता है, तो पानी प्रभावित होता है। और पानी उस व्यक्ति की तरंगों से आच्छादित हो जाता है। और पानी उस व्यक्ति की तरंगों को अपने में ले लेता है।

इसलिए दुनिया के बहुत धर्मों ने पानी का उपयोग किया है। ईसाइयत ने बप्तिस्मा, बेप्टिज्म के लिए पानी का उपयोग किया है।

जीसस को जिस व्यक्ति ने बप्तिस्मा दिया, जान दि बेप्टिस्ट ने, उस आदमी का नाम ही पड़ गया था जान बप्तिस्मा वाला। वह जोर्डन नदी में— और जोर्डन यहूदियों के लिए वैसी ही नदी रही, जैसी गंगा हिंदुओं के लिए—वह जोर्डन नदी में गले तक आदमी को। डुबा देता, खुद भी पानी में डूबकर खड़ा हो जाता, फिर उसके सिर पर हाथ रखता और प्रभु से प्रार्थना करता उसके इनीशिएशन की, उसकी दीक्षा की।

पानी में क्यों खड़ा होता था जान? और पानी में दूसरे व्यक्ति को खड़ा करके क्या कुछ एक व्यक्ति की तरंगें और एक व्यक्ति के प्रभाव और एक व्यक्ति की आंतरिक दशा का आंदोलन दूसरे तक पहुंचना आसान है?

आसान है। पानी बहुत शीघ्रता से चार्ज्ड हो जाता है। पानी बहुत शीघ्रता से व्यक्तित्व से अनुप्राणित हो जाता है। पानी पर छाप बन जाती है।

लाखों—लाखों वर्ष से भारत के मनीषी गंगा के किनारे बैठकर प्रभु को पाने की चेष्टा करते रहे हैं। और जब भी कोई एक व्यक्ति ने गंगा के किनारे प्रभु को पाया है, तो गंगा उस उपलब्धि से वंचित नहीं रही, गंगा भी आच्छादित हो गई है। गंगा का किनारा, गंगा की रेत के कण—कण, गंगा का पानी, सब, इन लाखों वर्षों में एक विशेष रूप से स्प्रिचुअली चार्ब्द, आध्यात्मिक रूप से तरंगायित हो गया है।

इसलिए हमने गंगा के किनारे तीर्थ बनाए। इसलिए लोग गंगा की यात्रा करते रहे। इसलिए लोग सोचते थे कि गंगा में जाकर पाप धुल जाएंगे। वह पाप गंगा की वजह से नहीं धुल सकते, लेकिन गंगा के पास जो मिल्यु है, गंगा के पास जो वातावरण है, वह जो लाखों—लाखों वर्षों की छाया है, उस छाया में जरूर आप अगर अपने हृदय के द्वार खोलें, तो आप दूसरे आदमी होकर वापस लौट सकते हैं। गंगा एक आध्यात्मिक यात्रा भी है, एक नदी ही नहीं। और इस तरह के बहुत—से प्रयोग हुए हैं।

जैनों के बाईस तीर्थंकर पार्श्वनाथ हिल्स पर निर्वाण को उपलब्ध हुए है। एक ही पर्वत पर बाईस तीर्थंकर निर्वाण को उपलब्ध हुए हैं, चौबीस तीर्थंकर में से। यह आकस्मिक नहीं मालूम होता, क्योंकि बाईस तीर्थंकर चौबीस में! हजारों साल का फासला है। इन हजारों साल में ये बाईस व्यक्ति अपने मरने के क्षण में एक छोटी—सी पहाड़ी पर पहुंच गए!

यह पूर्व नियोजित है, आयोजित है। उस पूरे पहाड़ को चार्ज करने की चेष्टा जैन तीर्थंकरों ने की है। वह पूरा पहाड—जब एक तीर्थंकर अपने शरीर को छोड़ता है, तो यह घटना उस घटना से बड़ी है, जब एक अणु का विस्फोट होता है। लेकिन वह हमें पता चल गई है; अभी दूसरी घटना हमें पता नहीं चली है।

वैज्ञानिक अब कहते हैं कि एक अणु के विस्फोट से इतनी ऊर्जा पैदा होती है कि सारी पृथ्वी आग से भर जाए। हिरोशिमा में जो अणु का विस्फोट हुआ, उसमें एक लाख बीस हजार आदमी पांच सेकेंड में राख हो गए। अणु आंख से दिखाई नहीं पड़ता, इतनी छोटी चीज है। और अणु के विस्फोट का मतलब क्या है? अणु के विस्फोट का मतलब है कि अणु तीन, इलेक्ट्रान, प्रोटान, न्द्रान से मिलकर बनता है। उन तीनों को अलग कर दिया जाए, तो जिस शक्ति के द्वारा वे तीनों जुड़े थे, वह शक्ति रिलीज हो जाती है, मुक्त हो जाती है। वही शक्ति एक लाख बीस हजार आदमियों को पांच सेकेंड में राख कर देती है।

एक छोटा—सा अणु जो आंख से दिखाई नहीं पड़ता! अगर हम अणु को समझना चाहें, तो अगर एक लाख अणुओं को एक के ऊपर एक रखें, तो आपके बाल की मोटाई के बराबर होंगे। एक इतना छोटा—सा अणु एक लाख बीस हजार आदमियों को राख कर देता है विस्फोट से।

और जब एक तीर्थंकर की आत्मा उसके शरीर से छूटती है, तो जो शक्ति आत्मा को और शरीर को बांधे हुए थी, वह रिलीज होती है, पहली दफा। करोड़ों—करोड़ों वर्षों से यह आदमी शरीर से बंधा रहा है। अब इसकी आत्मा सदा के लिए शरीर को छोड़ रही है। शरीर और इसको बांधने वाली जो शक्ति थी, वह छूटेगी। वही शक्ति इस पहाड़ पर बिखर जाएगी।

बाईस तीर्थंकर जाकर उस पहाड़ को इलेक्ट्रिफाइड कर दिए, वह पहाड़ मैग्नेटिक हो गया। फिर इसके बाद लाखों वर्षों तक लोग उस पहाड़ की तीर्थयात्रा करते रहे हैं, इस आशा में कि वह मैग्नेटिज्म, वह चुंबक, उनके प्राणों को भी छू ले और स्पर्श कर ले।

जैसा जैनों ने प्रयोग किया है पार्श्वनाथ हिल्स पर, ठीक वैसा ही प्रयोग हिंदुओं ने गंगा के किनारे किया है।

अरब में एक गांव है, कुफा। उस गांव में अब तक मुसलमान के अतिरिक्त कोई भी प्रवेश नहीं पा सका, सिर्फ एक आदमी को छोड्कर, पूरे इतिहास में चौदह सौ साल के। मुसलमान के अतिरिक्त उस गांव में प्रवेश नहीं हो सकता, और साधारण मुसलमान भी प्रवेश नहीं पा सकता है। असाधारण रूप से, वस्तुत: जो मुसलमान हो, सच में जिसका हृदय रूपांतरित हुआ हो और परमात्मा के लिए समर्पित हो गया हो, और जिसने जाना हो कि एक ही अल्लाह है, वही प्रवेश पा सकता है।

सिर्फ एक आदमी, एक अंग्रेज खोजी बर्टन उसमें प्रवेश पा सका है गैर—मुसलमान। लेकिन उसको भी गैर—मुसलमान कहना ठीक नहीं है। क्योंकि बीस साल उसने मुसलमान साधना की, सिर्फ उस गांव में प्रवेश पाने के लिए। और जब वह बिलकुल मुसलमान हो गया, नाममात्र को ही बर्टन रह गया, चमड़ी भर अंग्रेज की रह गई और सब तरह से वह मुसलमान हो गया, तब उसे प्रवेश मिला।

मुसलमानों ने इस गांव को प्रयोग किया है चार्ज करने का। इन चौदह सौ वर्षों में उन्होंने एक अनूठी छोटी—सी जगह निर्मित की है। उसमें प्रवेश पाते ही कोई आदमी रूपांतरित हो जाए, ऐसी व्यवस्था की है। उसमें वे ही लोग प्रवेश पा सकते हैं, जो बहुत गहन प्रार्थना में उतर गए हैं। वह सारा वातावरण उससे प्रभावित हो जाता है। कण—कण उनके प्रभाव को पी लेता है, आत्मसात कर लेता है।

कृष्ण कहते हैं, मैं नदियों में गंगा हूं।

गंगा साधारण नदी नहीं है, एक आध्यात्मिक यात्रा है, और एक आध्यात्मिक प्रयोग। लाखों वर्षों तक लाखों लोगों का उसके निकट मुक्ति को पाना, परमात्मा के दर्शन को उपलब्ध होना, आत्म— साक्षात्कार को पाना! लाखों लोगों का उसके किनारे आकर अंतिम घटना को उपलब्ध होना! वे सारे लोग अपनी जीवन—ऊर्जा को गंगा के पानी पर उसके किनारों पर छोड़ गए हैं।

इसलिए कृष्ण कहते हैं कि मैं नदियों में गंगा हूं।

और हे अर्जुन, सृष्टियों का आदि, अंत और मध्य मैं ही हूं। तथा विद्याओं में अध्यात्म—विद्या अर्थात ब्रह्म—विद्या, और परस्पर विवाद करने वालों में तत्व—निर्णय के लिए किया जाने वाला वाद, तर्क मैं ही हूं न्याय मैं ही हूं।

ये दो बातें बहुत बहुमूल्य हैं। विद्याओं में अध्यात्म—विद्या। अनंत विद्याएं हैं, लेकिन अध्यात्म—विद्या गुणात्मक रूप से भिन्न है।

अगर कोई फिजिक्स का जानकार हो जाए, कोई केमिस्ट्री का जानकार हो जाए, कोई गणित को जान ले, कोई ज्योतिष को जान ले, कोई संगीत को जाने— हजार विद्याएं हैं—कोई किसी भी विद्या में कितना ही पारंगत हो जाए, स्वयं तो अंधेरे में ही खड़ा रहता है। कितना ही बड़ा संगीतज्ञ हो और कितना ही संगीत जान ले, लेकिन खुद के स्वरों से अपरिचित होता है। सब स्वरों को साध ले, खुद की आत्मा अनसधी रह जाती है। सब वाद्यों को बजा ले, एक भीतर की वीणा सूनी ही पड़ी रह जाती है। कोई कितना ही बड़ा गणितज्ञ हो, और कितनी ही संख्याओं को जान ले, अनंत संख्याओं का हिसाब उसके मन में सरलता से हल होने लगे, लेकिन एक संख्या स्वयं की, वह अनगिनी रह जाती है।

सुना होगा आपने कि दस अंधों ने एक बार नदी पार की थी। बाढ़ आई नदी थी बरसा की। पार तो वे कर गए, फिर उन्हें खयाल आया कि कोई अंधा रास्ते में बह न गया हो! तो उन्होंने गिनती की थी। लेकिन कठिनाई वही हुई, जो सभी आदमियों के साथ होती है। गिनती नौ होती थी, क्योंकि हर गिनने वाला अपने को छोड़ जाता था। गिनता था एक से नौ तक। और जब सभी ने गिनकर देख लिया और सभी ने पाया कि संख्या नौ होती है, तो निर्णय हो गया कि एक आदमी खो गया है।

हम सब निर्णय इसी तरह तो लेते हैं! डेमोक्रेटिक निर्णय इसी तरह तो होते हैं! जब दस आदमी सभी के सब कह रहे हों कि नौ हैं, तो अब कोई उपाय न रहा। वे छाती पीटकर रोने लगे थे कि उनका साथी कोई खो गया।

पास से कोई गुजरा है और उसने पूछा कि क्या कारण है तुम्हारे इस तरह जार—जार रोने का? तो उन अंधों ने कहा, हम दस निकले थे उस पार से, एक साथी खो गया। हम नौ हैं! उस आदमी ने आंख डाली। देखा, वे दस थे। उसने कहा, जरा देखूं तुम्हारी गिनती करने में कोई भूल तो नहीं? उन्होंने गिनती करके बताई, तो वह समझ गया भूल। भूल वही है, जो सब आदमियों की भूल है। हर एक अपने को गिनना छोड़ जाता है।

तो उस आदमी ने कहा कि एक तरकीब का मैं उपयोग करता हूं इससे चमत्कार घटित होगा और दसवां आदमी मौजूद हो जाएगा। मैं हर एक को चांटा मारूंगा जोर से। जिसको मैं चांटा मारूं, वह बोले एक। जब मैं दूसरे को चांटा मारूं दो, तो वह बोले दो। जब मैं तीसरे को चांटा मारूं तीन, तो वह बोले तीन। और ऐसे मैं दसवें को मौजूद कर दूंगा।

उसने दसों को चांटे मारे। उनकी व्यर्थ पिटाई भी हुई, लेकिन वे आनंदित भी बहुत हुए। और दसों नाचने लगे और उस आदमी को धन्यवाद देने लगे कि तुम्हारी बड़ी कृपा है कि तुमने दसवां मौजूद कर दिया।

समस्त साधनाएं आपको चांटा मारने से ज्यादा नहीं हैं। जिसमें आपको एक का...। और कुछ नहीं है। और समस्त गुरु आपको सिवाय चांटा मारने के और कुछ भी नहीं करते हैं, कि किसी तरह आपका वह जो खो गया आदमी है, वह आपके खयाल में आ जाए। वह अभी भी मौजूद है, वह कहीं खो नहीं गया है। वे दस ही थे, लेकिन हर एक अपने को गिनना भूल जाता था।

सारी विद्याएं दूसरों को गिनती हैं, स्वयं को छोड्कर। सब विद्याएं दूसरे को जानती हैं, स्वयं को छोड्कर। इसलिए सभी विद्याओं के भीतर गहन अविद्या छिपी रहती है। इसलिए एक आदमी गणित का बहुत बड़ा पारंगत विद्वान हो जाता है, लेकिन जिंदगी के मामले में ऐसा ही मूढ़ होता है, जैसे कोई और छू है। एक आदमी बडा वैज्ञानिक हो जाता है। वैज्ञानिक तो ठीक है, यहां तक हालत होती है कि एक आदमी बड़ा मनोवैज्ञानिक हो जाता है, बड़ा साइकोलाजिस्ट हो जाता है, मन के संबंध में सब जान लेता है, लेकिन खुद के मन के संबंध में वैसा ही दीन और कमजोर होता है, जैसा कोई और।

खुद फ्रायड, जिसने पूरे जीवन यौन और यौन से संबंधित सारी बीमारियों का अध्ययन किया और यौन की सारी विकृतियों का अध्ययन किया, उसने भी लिखा है कि पचास साल की उम्र में भी एक दिन अचानक रास्ते से गुजरती हुई एक स्त्री को देखकर धक्का देने का मन हो गया। यह आदमी ईमानदार है। हमारे मुल्क का कोई आदमी होता तो ऐसा कभी बताता नहीं। पर उसने लिखा है कि हैरानी की बात है कि अब पचास साल की उस में भी रास्ते पर एक स्त्री को देखकर धक्का लगाने का मन मेरा हुआ है।

अगर आप फ्रायड से पूछें, तो क्रोध के संबंध में वह सब जानता। है। लेकिन अगर उसको गाली दे दें, तो वह इतना क्रोधित हो जाता था कि बिलकुल पागल हो जाए।

यह मजे की बात है। मनोविज्ञान भी आप जान ले सकते हैं, वह भी दूसरे के बाबत है। अपने संबंध में उसका कुछ लेना—देना नहीं है। स्वयं आदमी अपरिचित ही रह जाता है।

अध्यात्म—विद्या उसकी विद्या है, जिससे हम स्वयं को जानते हैं। और तब यह भी हो सकता है कि एक अध्यात्म ज्ञानी कुछ भी और न जानता हो।

रामकृष्ण दूसरी क्लास तक पढ़े हैं। शास्त्र ठीक से पढ़ नहीं सकते। बातें भी जो करते हैं, वे ग्रामीण की हैं। लेकिन वे उस विद्या को जानते हैं, कृष्ण जिसके साथ अपना तादात्म्य कर रहे हैं। कबीर जुलाहे हैं। नानक पढे—लिखे नहीं हैं। मोहम्मद को क ख ग भी नहीं आता। दस्तखत भी मोहम्मद नहीं कर सकते हैं। लेकिन कृष्ण कह रहे हैं कि मैं विद्याओं में अध्यात्म—विद्या हूं।

क्योंकि मान्यता यह है कि जिसने सब जान लिया और स्वयं को न जाना, उसके जानने का उपयोग क्या? और जिसने कुछ भी न जाना और स्वयं को जान लिया, उसने सब जान लिया। क्योंकि अंततः जीवन का जो परम आनंद है, वह स्वयं को जानने से घटित होगा। और अंतत: मृत्यु के भी पार जाने वाला जो अमृत सूत्र है, वह स्वयं को जानने से घटित होगा। और अंतत: सब जाना हुआ जो हमारा पराया है, वह पड़ा रह जाएगा; जो मेरे साथ जा सकेगा, वह मेरा स्वयं का बोध है।

मृत्यु के पार जिसे न ले जाया जा सके, उसे हम ज्ञान नहीं मानते। हम तो ज्ञान उसे मानते हैं कि लपटों में जब शरीर भी जल जाए, तब भी मेरा शान न जले। आग भी मेरे ज्ञान को न जला सके, मृत्यु भी मेरे ज्ञान को नष्ट न कर सके, तो ही वह ज्ञान है। अन्यथा उस ज्ञान का कोई मूल्य नहीं है।

तो हम सब जान लें, वह जानना ऊपरी है। उपयोगी हो सकता है, लेकिन आत्यंतिक उसका मूल्य नहीं है। अंततः वह व्यर्थ हो जाएगा। इसलिए हम बड़े से बड़े पंडित को भी, जो बहुत जानता हो, मरते वक्त वैसा ही दीन हो जाते देखते हैं, जैसा कोई भी मर रहा हो। मृत्यु बता देती है कि आपने कुछ जाना कि नहीं जाना। मृत्यु खबर दे देती है।

हिंदुस्तान से सिकंदर जब वापस लौटता था। तो उसके गुरु ने, अरस्तू ने उसे कहा था कि हिंदुस्तान से एक संन्यासी को लेते आना आते वक्त।

अरस्तू महाज्ञानी था। ज्ञानी, पंडित के अर्थ में। बहुत जानता था। सच तो यह है कि पश्चिम में जितने विज्ञान विकसित हुए, सबका पिता अरस्तू है। सबका! जितने विज्ञान विकसित हुए, सबकी आधारशिलाए अरस्तू रख गया। एक अकेले आदमी ने इतने विज्ञानों को क भी जन्म नहीं दिया। इसलिए अरस्तू अदभुत है।

लेकिन उसने भी सिकंदर को कहा था कि जब तुम आओ हिंदुस्तान से, तो बहुत कुछ लूटकर लाओगे, एक संन्यासी को भी साथ ले आना। एक संन्यासी को मैं देखना चाहता हूं। मैं उस आदमी

को देखना चाहता हूं जिसने स्वयं को जान लिया है।

यह अरस्तु इतना बड़ा ज्ञानी था, तर्क का पिता था। पश्चिम का जो लाजिक है, वह अरस्तु से पैदा हुआ। अब भी वही काम में आता है, दो हजार साल हो गए। इतना शानी था, लेकिन स्वयं का तो कोई ज्ञान न था। तो हालत उसकी यह थी कि सिकंदर की गुलामी की वजह से, क्योंकि सिकंदर तो सम्राट था। हालांकि अरस्तु गुरु था! लेकिन इस तरह की कहानियां हैं कि सिकंदर शिष्य था, वह कभी—कभी अरस्तु को कहता कि अच्छा तुम घोड़ा बनो, मैं तुम्हारे ऊपर सवार होकर जरा चलूं र तो अरस्तु घोड़ा बनकर सिकंदर को चलाता था।

सिकंदर ने सोचा कि जब अरस्तु जैसे आदमी को मैं घोड़ा बनाकर चलता हूं तो संन्यासी एक क्या, दस—पचास पकड़वा लाऊंगा।

जब वह हिंदुस्तान से लौटने लगा, तब उसे खयाल आया। जिस गांव में वह ठहरा था, उसने आदमी भेजे कि कोई संन्यासी हो तो पकड़ लाओ। गांव के लोगों से सिपाहियों ने पूछा, तो गांव के लोगों ने कहा, जो तुम्हारी पकड़ में आ जाए, समझ लेना, वह ले जाने योग्य नहीं है! तो वे बड़ी मुश्किल में पड़े। उन्होंने कहा, फिर कौन है ले जाने योग्य? तो गांव के लोगों ने कहा, एक आदमी है, लेकिन सिकंदर एक क्या, हजार सिकंदर भी उसको ले जा सकें, यह बहुत मुश्किल है! उन्होंने कहा, उसी का पता बता दो। तो उन्होंने कहा, नदी के किनारे एक नग्न संन्यासी है, उसे तुम ले जाओ।

सिपाही गए, उन्होंने कहा कि महान सिकंदर की आज्ञा है कि आप हमारे साथ चलें। शाही सम्मान के साथ हम आपको यूनान ले जाएंगे। जो भी आपकी सुविधा, हम सब करेंगे। आप शाही अतिथि होंगे। महल में ही आप ठहरेंगे। सिकंदर के विशेष मेहमान होंगे। वह फकीर हंसने लगा और उसने कहा कि आज्ञा! आशा तो हमने किसी की भी माननी बंद कर दी। जिस दिन हमने आज्ञा माननी बंद की, उसी दिन तो हम संन्यासी हुए। जब तक हम किसी न किसी की आशा मानते थे, तब तक हम गृहस्थ थे। सिकंदर को कह दो कि तुम गलत आदमी के पास आ गए। उन्होंने कहा, आपको पता नहीं, सिकंदर खतरनाक है। वह क्रोधी है। वह गर्दन काट दे सकता है। तो उसने कहा, तुम सिकंदर को ही बुला लाओ— उस संन्यासी ने कहा— क्योंकि बड़ा मजा आएगा!

सिकंदर ने सुना, तो सिकंदर नंगी तलवार लेकर गया। भारत में सिकंदर की यात्रा में यह सबसे कीमती घटना है। वह तलवार लेकर गया और उसने संन्यासी से कहा कि मैं आदमी कठोर हूं। हां और न में जवाब चाहता हूं। साथ चलते हो, ठीक। अन्यथा यह गर्दन को काट देता हूं।

उस फकीर ने कहा, तुम काट दो। जहां तक मेरा सवाल है, इस गर्दन को तो मैं उसी दिन छोड़ चुका, जिस दिन मैंने संन्यास लिया। मेरी तरफ से यह कटी हुई है। और तुमसे मैं कहता हूं कि जब गर्दन कटकर गिरेगी, तो तुम भी देखोगे कि गिर रही है और मैं भी देखूंगा कि गिर रही है। क्योंकि मैं इस गर्दन से अलग हूं। तुम देर मत करो। बेकार समय मत गवाओ। क्योंकि मैं भी आदमी साफ—सुथरा हूं। तलवार बाहर निकालो और गर्दन काटो। तुम अपने काम पर जाओ। तुम अपनी यात्रा पर, मैं अपनी यात्रा पर!

सिकंदर ने तलवार वापस रख ली और उसने अपने सिपाहियों से कहा कि इस आदमी को मारने का कोई अर्थ नहीं है। हम केवल उसी को मार सकते हैं, जो मृत्यु से डरता हो। मारा ही उसको जा सकता है। मरता ही वही है, जो मृत्यु से डरता है। इस आदमी को मारने का

कोई अर्थ नहीं। नाहक हमें ही पछतावा होगा। और पीछे हम ही चिंता में पड़ेंगे। यह आदमी चिंता में पड़ने वाला नहीं दिखाई पड़ता है। यह मेरी ही नींद हराम कर देगा। इसकी गर्दन मुझे ही बार—बार याद आती रहेगी, और मेरी ही रास्ते की यात्रा खराब हो जाएगी।

ब्रह्म—विद्या, अध्यात्म—विद्या का अर्थ है, वह विद्या, वह सुप्रीम साइंस, जिससे हम उसे जान लेते हैं, जो हम हैं। जिससे हम उसे जान लेते हैं, जो सब जान रहा है। जिससे हम उसे जान लेते हैं, जिसकी कोई मृत्यु नहीं, जिसका कोई जन्म नहीं।

श्वेतकेतु लौटा वापस, अध्ययन करके समस्त शास्त्रों का। जो भी जानने योग्य था, जान आया। निश्चित ही, जानने की अकड़ आ गई। जब वह गांव के भीतर प्रविष्ट हुआ, उसके पिता ने देखा अपने मकान से, श्वेतकेतु अकड़ा हुआ चला आ रहा है। पंडित की अकड़! आया, तो पिता ने कहा कि मालूम होता है, तू सब जानकर आ गया! श्वेतकेतु ने कहा, सब जानकर आ गया जो भी जानने के लिए था। जितनी विद्याएं थीं, सब सीख आया हूं।

उसके पिता ने कहा, बस, एक सवाल तुझसे मुझे पूछना है। तूने उसे भी जाना या नहीं, जिससे सब जाना जाता है? उसने कहा, यह तो कोई विद्या मैंने सुनी नहीं! मेरे गुरु ने इसके बाबत कोई बात नहीं की!

तो उसके पिता ने कहा, तू वापस लौट जा। तू उसको जानकर लौट, जिसे बिना जाने सब जानना बेकार है। और जिसे जान लेने से सब जान लिया जाता है। श्वेतकेतु वापस लौट गया।

ब्रह्म—विद्या का अर्थ वह विद्या है, जिससे हम उसे जानते हैं, जो सब जानता है। गणित आप जिससे जानते हैं, फिजिक्स आप जिससे जानते हैं, केमिस्ट्री आप जिससे जानते हैं, उस तत्व को ही जान लेना ब्रह्म—विद्या है। जानने वाले को जान लेना ब्रह्म—विद्या है। शान के स्रोत को ही जान लेना ब्रह्म—विद्या है। भीतर जहां चेतना का केंद्र है, जहां से मैं जानता हूं आपको, जहां से मैं देखता हूं आपको; जिससे मैं देखता हूं उसे भी देख लेना, उसे भी जान लेना, उसे भी पहचान लेना, उसकी प्रत्यभिज्ञा, उसका पुनर्स्मरण ब्रह्म—विद्या है। कृष्ण कहते हैं, विद्याओं में मैं ब्रह्म—विद्या हूं।

इसलिए भारत ने फिर बाकी विद्याओं की बहुत फिक्र नहीं की। भारत के और विद्याओं में पिछड़े जाने का बुनियादी कारण यही है। भारत ने फिर और विद्याओं की फिक्र नहीं की, ब्रह्म—विद्या की फिक्र की।

लेकिन उसमें अड़चन है, क्योंकि ब्रह्म—विद्या जानने को कभी लाखों—करोड़ों में एक आदमी उत्सुक होता है। पूरा देश ब्रह्म—विद्या जानने को उत्सुक नहीं होता। और भारत के जो श्रेष्ठतम मनीषी थे, वे ब्रह्म—विद्या में उत्सुक थे। और भारत का जो सामान्यजन था, उसकी कोई उत्सुकता ब्रह्म—विद्या में नहीं थी। उसकी उत्सुकता तो और विद्याओं में थी। लेकिन सामान्यजन और विद्याओं को विकसित नहीं कर सकता। विकसित तो परम मनीषी करते हैं, और परम मनीषी उन विद्याओं में उत्सुक ही न थे।

इसलिए भारत ने बुद्ध को जाना, महावीर को, कृष्ण को, पतंजलि को, कपिल को, नागार्जुन को, वसुबंधु को, शंकर को जाना भारत ने। ये सारे के सारे, इनमें से कोई भी आइंस्टीन हो सकता है। इनमें से कोई भी प्लांक हो सकता है। इनमें से कोई भी किसी भी विद्या में प्रवेश कर सकता है। लेकिन भारत का जो श्रेष्ठतम मनीषी था, वह परम विद्या में उत्सुक था। और भारत का जो सामान्यजन था, उसकी तो परम विद्या में क्या उत्सुकता हो सकती है! उसकी उत्सुकता दूसरी विद्याओं में है। लेकिन वह विकसित नहीं कर सकता। विकसित तो परम मनीषी करते हैं।

पश्चिम में दूसरी विद्याएं विकसित हो सकी, क्योंकि पश्चिम के जो बड़े मनीषी हैं, वे और विद्याओं में उत्सुक हैं। इसलिए एक अदभुत घटना घटी। पश्चिम ने सब विद्याएं विकसित कर लीं और आज पश्चिम को लग रहा है कि वह आत्म— अज्ञान से भरा हुआ है।

और पूरब ने आत्म—ज्ञान विकसित कर लिया और आज पूरब को लग रहा है कि हमसे ज्यादा दीन और दरिद्र और भुखमरा दुनिया में कोई भी नहीं है।

हमने एक अति कर ली, परम विद्या पर हमने सब लगा दिया दांव। उन्होंने दूसरी अति कर ली। उन्होंने आत्म—विद्या को छोड़कर बाकी सब विद्याओं पर दांव लगा दिया। बड़ी उलटी बात है। वे आत्म—अज्ञान से पीड़ित हैं और हम शारीरिक दीनता और दरिद्रता से पीड़ित हैं।

यह जो परम विद्या है, इस परम विद्या और सारी विद्याओं का जब संतुलन हो, तो पूर्ण संस्कृति विकसित होती है। इसलिए न तो पूरब और न पश्चिम ही पूर्ण संस्कृतियां विकसित कर पाए। फिर भी अगर चुनाव करना हो, अगर फिर भी चुनाव करना हो, तो परम विद्या ही चुनने जैसी है, सारी विद्याएं छोड़ी जा सकती हैं। क्योंकि और सब पाकर कुछ भी पाने जैसा नहीं है।

कृष्ण कहते हैं, मैं परम विद्या हूं सब विद्याओं में।

लेकिन यह बात आप ध्यान रखना, और विद्याओं का वे निषेध नहीं करते हैं, और विद्याओं में जो श्रेष्ठ है, उसकी सूचना भर दे रहे हैं। वे यह नहीं कह रहे हैं कि सिर्फ अध्यात्म—विद्या को खोजना है, बाकी सब छोड़ देना है।

यह भी सोचने जैसा है कि अध्यात्म—विद्या परम विद्या तभी हो सकती है, जब दूसरी विद्याएं भी हों। नहीं तो वह परम विद्या नहीं रह जाएगी। आप कोई मंदिर का अकेला सोने का शिखर बना लें और दीवालें न हों, तो समझ लेना कि शिखर जमीन में पड़ा हुआ लोगों के पैरों की ठोकर खाएगा। मंदिर का स्वर्ण—शिखर आकाश में उठता ही इसलिए है कि पत्थर की दीवाले उसे सम्हालती हैं। अध्यात्म—विद्या का शिखर भी तभी सम्हलता है, जब और सारी विद्याएं दीवालें बन जाती हैं और उसे सम्हालती हैं।

अब तक हम कहीं भी मंदिर नहीं बना पाए। हमने शिखर बना लिया, पश्चिम ने मंदिर बना लिया। जब तक हमारा शिखर पश्चिम के मंदिर पर न चढ़े, तब तक दुनिया में पूर्ण संस्कृति पैदा नहीं हो सकती।

और अंतिम बात।

कृष्ण ने कहा, एवं परस्पर विवाद करने वालों में तत्व—निर्णय के लिए किया जाने वाला वाद, तर्क, न्याय मैं हूं।

तर्क दो तरह के हैं। एक तो तर्क है, जिसमें हम दूसरे को गलत सिद्ध करना चाहते हैं। वह क्या कह रहा है, उससे कोई संबंध नहीं है। दूसरे को गलत करना चाहते हैं, वह क्या कह रहा है, उससे कोई संबंध नहीं है। एक तो तर्क है, जिसमें हम अपने अहंकार को सिद्ध करना चाहते हैं, दूसरे को गलत करना चाहते हैं।

इसलिए कई दफा ऐसा होता है कि आपकी ही बात भी अगर दूसरा कह रहा हो, तो भी आप उसको गलत सिद्ध किए बिना नहीं मान सकते। दूसरा सदा गलत होता है! होना चाहिए। आप सदा सही हैं। अपने लिए आप कुछ भी तर्क का उपयोग करते हैं। लेकिन यह सत्य की जिज्ञासा से नहीं, यह केवल अहंकार की तृप्ति के लिए है। ऐसा तर्क भ्रष्ट तर्क है। इसको भारत कुतर्क कहता है। यह कितना ही विकसित हो जाए, इससे कोई मनुष्य के जीवन में रूपांतरण नहीं होता।

एक और तर्क भी है, जो हम सत्य की खोज के लिए करते हैं। तब यह सवाल नहीं है कि दूसरा गलत कह रहा है। तब सवाल यह है कि सही क्या है? कौन कह रहा है, यह मूल्यवान नहीं है। क्या है सही, यही मूल्यवान है। कोई भी सही कह रहा हो, तो हम तर्क की कोशिश करते हैं, उस सही की जांच के लिए। तर्क तो एक कसौटी है। जैसे कोई सोने को कसता है कसौटी पर, ऐसे ही तर्क विचार की क्षमता, निर्णय और निर्णय का शास्त्र एक कला है। उस पर कसना है, कि जो भी कहा जा रहा है, वह कितने दूर तक सही है।

लेकिन हम नहीं कस पाते, क्योंकि हम सही को तो पहले से ही जानते हैं! हम सब मानते हैं कि सत्य तो हमें पता ही है। इसलिए अगर दूसरा हमसे मेल खा रहा है, तो सही है। और अगर हमसे मेल नहीं खा रहा है, तो गलत है। हम कसौटी हैं।

हम कसौटी नहीं हो सकते। तर्क कसौटी है। और तर्क तो बिलकुल निष्पक्ष कसौटी है, अपने को भी उसी पर कसो और दूसरे को भी उसी पर कसो। और डबल बाइंड, दोहरा चित्त न हो, दूसरे के लिए कुछ और, हमारे लिए कुछ और।

सुना है मैंने, एक दिन मुल्ला नसरुद्दीन अपने घर के बाहर बैठा है। और गांव का जो मौलवी है, वह मस्जिद से नमाज पढ़कर लौट रहा है। अचानक बरसा आ गई, तो वह तेजी से भागा। मुल्ला ने कहा कि ठहरो! शर्म नहीं आती, धार्मिक आदमी होकर और भागते हो? वह मौलवी भी थोड़ा घबड़ाया कि धार्मिक आदमी होने से। भागने का क्या लेना—देना! उसने कहा, क्या मतलब? मुल्ला ने कहा, परमात्मा पानी बरसा रहा है और तुम भागकर परमात्मा का अपमान कर रहे हो? किसका पानी है यह? यह जल किसका है?

मौलवी भी डर गया, और अपनी इज्जत की रक्षा के लिए और पड़ोसियों को पता न चल जाए कि परमात्मा के पानी का अपमान हुआ; वह आहिस्ता—आहिस्ता घर पहुंचा, तरबतर पानी में। सर्दी पकड़ गई, बुखार आ गया, निमोनिया हो गया।

तीन दिन बाद वह अपनी खिड़की में बैठा है अपनी दुलाई ओढ़े हुए। देखा कि नसरुद्दीन बाजार से लौट रहा है। पानी की थोड़ी—सी बूंदें आईं। नसरुद्दीन भागा। उस मौलवी ने चिल्लाकर कहा कि ठहर नसरुद्दीन! भगवान का अपमान कर रहा है? नसरुद्दीन ने कहा कि नहीं; भगवान का पानी गिर रहा है, कहीं मेरा पैर उस पर न पड़ जाए और अपमान न हो जाए, इसलिए घर जा रहा हूं!

यह डबल बाइंड माइंड है। इसमें तर्क सदा अपने लिए है। इसमें सचाई से कोई प्रयोजन नहीं है। सदा तर्क अपने लिए है।

कृष्ण कहते हैं, वैसा मैं तर्क नहीं हूं। सत्य के निर्णय के लिए जो आतुर हैं, सत्यनिष्ठ, जिन्हें इससे प्रयोजन नहीं है कि पक्ष में पड़ेगा कि विपक्ष में, मैं हारूंगा कि जीतूंगा; जिन्हें प्रयोजन इतना है कि सत्य क्या है, उसकी परख हो जाए, उसका पता चल जाए; ऐसे सत्य के लिए किया गया वाद, ऐसे सत्य की जिज्ञासा के लिए किया गया तर्क मैं हूं।

इसलिए भारत में तर्क को हमने एक बहुत ही और ढंग से लिया। यूनान ने तर्क को विकसित किया, लेकिन सोफिस्ट्री की तरह। यूनान में स्कूल थे सोफिस्टों के, जो लोगों को तर्क करना सिखाते थे पैसे लेकर। कोई भी फीस दे दे, वह छह महीने, साल भर, दो साल में तर्क की शिक्षा दे देंगे। तर्क की शिक्षा का मतलब यह था कि तुम किसी को भी हराना चाहो, तो हरा सकते हो। किसी को भी। यह सवाल नहीं है कि किसको हराना है। तुम्हें हम तरकीबें सिखा देते हैं, इनमें तुम किसी को भी फंसा ले सकते हो, कोई भी हार जाएगा।

एक बहुत बड़ा सोफिस्ट था, जीनो। जीनो ने घोषणा कर रखी थी कि किसी को भी हराना हो, तो मैं तर्क की शिक्षा देता हूं। और वह इतना आश्वस्त था कि जब भी वह किसी विद्यार्थी को लेता था अपनी तर्क की शिक्षा के लिए, तो उससे आधी फीस लेता था। और कहता था, आधी तब देना, जब तुम किसी से तर्क में जीत जाओ।

एक विद्यार्थी आया, अरिस्तोफेनीज, और उसने आधी फीस दी, और गुरु से शिक्षा ली दो साल। और दो साल के बाद गुरु राह देखने लगा कि वह किसी से तर्क में जीते, तो आधी फीस ले ले।

लेकिन अरिस्तोफेनीज ने उस दिन से किसी से विवाद ही नहीं किया। यहां तक कि अगर उससे कोई कहे दिन में भी कि रात है, तो वह कहे, हां। क्योंकि अगर वह जीत जाए, तो वह आधी फीस चुकानी पड़े।

जीनो बड़ी मुश्किल में पड़ गया। उसने कहा, यह तो लड़का कुछ ज्यादा चालबाज है! जीनो के शिष्य ने, अरिस्तोफेनीज ने कहा कि मैं फीस देने वाला नहीं हूं, जब तक मैं जीतू न। और जीतने का कोई कारण नहीं, क्योंकि मैं हर हालत में सरेंडर कर देता हूं। कोई कुछ भी कहे, हां! मैं न कहता ही नहीं, विवाद होगा ही नहीं, जीत का सवाल नहीं है।

लेकिन गुरु भी ऐसे हार नहीं मान सकता था। उसने अदालत में मुकदमा चलाया। उसने अदालत में मुकदमा चलाया, और अपील की अदालत से कि यह मेरी आधी फीस नहीं चुकाया है, वह मुझे मिलनी चाहिए। इसकी शिक्षा पूरी हो गई।

और उसकी तरकीब यह थी कि अदालत तो कहेगी कि यह अभी पैसा नहीं चुकाएगा, क्योंकि अभी शर्त पूरी नहीं हुई। यह अभी पहला विवाद नहीं जीता है। तो जीनो का खयाल था कि मैं अरिस्तोफेनीज से कहूंगा कि अदालत ने तुझे जिता दिया, तू पहला विवाद जीत गया। आधी फीस मुझे दे दे। अगर अदालत निर्णय देगी अरिस्तोफेनीज के पक्ष में कि अभी फीस नहीं दी जा सकती, तो भी मैं फीस ले लूंगा, क्योंकि वह जीत गया, पहला विवाद जीत गया। लेकिन अरिस्तोफेनीज भी उसी का शिष्य था। उसने कहा, अगर अदालत कहेगी कि तुम जीत गए, तब तो मैं पैसा देने वाला नहीं हूं क्योंकि मैं अदालत से प्रार्थना करूंगा कि इसमें अदालत का अपमान है। और अगर मैं हार गया, तब तो देने का सवाल ही नहीं है। क्योंकि पहला ही विवाद हार गया।

अदालत ने फैसला भी दे दिया कि अरिस्तोफेनीज को पैसा देने की जरूरत नहीं है, क्योंकि अभी उसने कोई विवाद ही नहीं किया, जीत का कोई सवाल नहीं है।

बाहर आते ही जीनो ने कहा, अरिस्तोफेनीज, अब पैसा दे दो, क्योंकि तुम पहला विवाद अदालत में मुझसे जीत गए। अरिस्तोफेनीज ने कहा कि गुरु, मैं आपका ही शिष्य हूं। आप भूल जाते हैं। मैं अदालत का अपमान कभी भी नहीं कर सकता, चाहे मेरे प्राण चले जाएं!

यह सोफिस्ट्री है। सोफिस्ट्री का मतलब होता है, वितंडा। उसमें आप कुछ भी कर सकते हैं। और दोनों तरफ तर्क चल सकते हैं।

कृष्ण कहते हैं, ऐसे तर्क नहीं, लेकिन वह तर्क जो सत्य की खोज के लिए किया जाता है। तो मैं वाद, सत्य के खोजियो के लिए किया जाने वाला वाद हूं।

गीता दर्शन—भाग—5
मैं शाश्वत समय हूं—(प्रवचन—तेरहवां)
अध्याय—10

सूत्र—

अक्षराणामकारोउस्थि द्वन्द्वः सामासिकस्य च।
अहमेवाक्षयः कालो धाताहं विश्वतोमुखः ।।33।।
मृत्युः सर्वहरश्चाहमुद्रभवश्च भविष्यताम्।
कीर्तिः श्रीर्वाक्य नारीणा क्ष्मृतिर्मेधा धृतिः क्षमा।।34।।

बृहत्साम तथा सामा गायत्री छन्दसामहम्।
मासानां मार्गशीर्षोउहमृतूनां कुसुमाकरः ।।35।।
तथा मैं अक्षरों में अकार और समासों में द्वंद्व नामक समास हूं, तथा अक्षय काल और विराट स्वरूप सबका धारण— पोषण करने वाला भी मैं ही हूं।

और हे अर्जुन मैं सबका नाश करने वाला गुण और आगे होने वालों की उत्पत्ति का कारण हूं, तथा स्त्रियों में कीर्ति, श्री, वाक्, स्मृति, मेधा, धृति और क्षमा हूं।

तथा मैं गायन करने योग्य श्रुतियों में बृहत्साम और छंदों में गायत्री छंद तथा महीनों में मार्गशीर्ष महीना और ऋतुओं में वसंत ऋतु मैं हूं।

मैं अक्षरों में अकार और समासों में द्वंद्व नामक समास हूं तथा अक्षय काल और विराट स्वरूप सब का धारण—पोषण करने वाला भी मैं ही हूं। हे अर्जुन, मैं सबका नाश करने वाला मृत्यु और आगे होने वालों की उत्पत्ति का कारण हूं।

कुछ नये प्रतीक, कुछ नई दिशाओं से, वही अर्जुन को फिर—फिर कहने की कोशिश कृष्ण की है। सत्य तो एक है, समझाया बहुत प्रकार से जा सकता है। और जो समझ सकते हैं, वे बिना प्रकार के भी समझ ले सकते हैं। और जो नहीं समझ पाते, अनंत—अनंत प्रकारों से भी समझाने से कुछ हल नहीं होता है। फिर भी कृष्ण जैसे व्यक्ति सतत चेष्टा करते हैं—एक द्वार से न दिखाई पड़े, दूसरे द्वार से; दूसरे द्वार से न दिखाई पड़े, तीसरे द्वार से। कृष्ण जैसे व्यक्तियों का श्रम अथक है, और धैर्य अनंत है।

इस सूत्र में कृष्ण कहते हैं, मैं अक्षय काल।

अस्तित्व में सभी कुछ क्षणिक है और सभी कुछ क्षीण हो जाता है। सभी कुछ परिवर्तित होता है। कुछ भी शाश्वत नहीं मालूम होता, सिवाय परिवर्तन के। सब कुछ परिवर्तित होता है, सिवाय परिवर्तन के। सब कुछ बदल जाता है, एक बदलाहट ही स्थिर बात है। जो भी है, वह दूसरे क्षण भी वही नहीं रह जाता है। इसे थोड़ाहम समझ लें, तो काल की अक्षरता और उसका अक्षय स्वरूप हमारे खयाल में आ जाए।

जो भी है, दूसरे क्षण वही नहीं रह जाता है।

यूनान में विचारक हुआ है, हेराक्लतु। हेराक्लतु ने कहा है, एक ही नदी में दो बार उतरना असंभव है। यू कैन नाट स्टेप ट्राइस इन :, दि सेम रिवर। कैसे उतरिएगा एक ही नदी में दो बार? जब दुबारा। आप उतरने जाएंगे, नदी बह चुकी है। जिस जल को आपने पहली बार स्पर्श किया था, अब आप उसे दुबारा स्पर्श न कर पाएंगे।

लेकिन हेराक्लतु ने कोई अतिशयोक्ति नहीं की। यह ओवर स्टेटमेंट नहीं है, अंडर स्टेटमेंट है। उसने कुछ कहा, वह कहा जाना चाहिए उससे कम है। सचाई तो यह है कि यू कैन नाट स्टेप ईवेन वंस इन दि सेम रिवर। एक बार भी एक ही नदी में उतरना असंभव है। क्योंकि जब आपका पैर नदी की ऊपर की सतह को छूता है, तब तक नीचे का पानी बह चुका; और जब आपका पैर एक कदम। नीचे जाता है, तब तक ऊपर का पानी बह चुका। नदी बह रही है, बहने का नाम नदी है। बहाव सतत है।

जीवन की नदी भी वैसी ही सतत है, वैसा ही बहाव है। जीवन में भी दुबारा उसी जगह खड़े होना असंभव है। और दुबारा वही देखना भी असंभव है, जो देखा। हमें भ्रांति लेकिन होती है। हम सोचते हैं, रोज वही सूरज निकलता है।

वही सूरज रोज नहीं निकल सकता है। सूरज रूपांतरित हो रहा है प्रतिपल। सूरज जलती हुई आग है। और जैसे लपटें प्रतिपल बदल रही हैं, जैसे दीये की लौ प्रतिपल बदल रही है, ऐसा ही सूरज भी प्रतिपल बदल रहा है।

सांझ आप एक दीया जलाते हैं, सुबह सोचते हैं, उसी दीये को बुझा रहे हैं; तो आप गलती में हैं। सांझ जो दीया जलाया था, वह तो न मालूम कितनी बार बुझ चुका। लौ प्रतिपल खो रही है आकाश में, नई लौ उसकी जगह स्थापित होती चली जा रही है। लेकिन यह इतनी तीव्रता से हो रहा है, यह लौ का प्रवाह इतना त्वरित है कि दो लौ के बीच में आप खाली जगह नहीं देख पाते। इसलिए सोचते हैं, एक ही लौ रातभर जलती रही; सुबह हम उसी दीये को बुझा रहे हैं।

अगर उसी दीये को सुबह बुझा रहे हैं, तो रातभर जो तेल जला, वह कहां गया? रातभर तेल जलता रहा और दीये की लौ बदलती रही। सुबह आप दूसरी ही लौ बुझा रहे हैं। वही लौ नहीं, जो आपने सांझ जलाई थी। निश्चित ही, उसी श्रृंखला की लौ है, उसी लौ की संतान है, लेकिन वही लौ नहीं है।

सूरज भी ऐसा ही बदल रहा है। छोटा—सा दीया बदल रहा है इतनी तेजी से। उतना बड़ा सूरज और भी बड़ी तेजी से बदल रहा है। सुबह रोज वही सूरज नहीं उगता। और आप सोचते हों, सुबह रोज वही पृथ्वी दिखाई पड़ती है, तो भी गलती में हैं। और आप सोचते हों कि रोज उन्हीं वृक्षों के पास से आप गुजरते हैं, तो भी आप भूल में हैं। सब बदल रहा है। बदलाहट इतनी तीव्र है कि आपको दिखाई नहीं पड़ती।

जैसे बहुत तेजी से बिजली का पंखा चल रहा हो, तो उसकी पंखुड़ियां दिखाई नहीं पड़ती। वैज्ञानिक कहते हैं कि इतनी तेजी से बिजली का पंखा चलाया जा सकता है कि आप अगर गोली भी मारें, तो बीच की जगह से नहीं निकले, पंखड़ी में ही लगे। वैज्ञानिक कहते हैं, इतनी तेजी से भी बिजली का पंखा चलाया जा सकता है कि आप उस पर बैठ जाएं और आपको पता न चले कि पंखा चल रहा है।

सब कुछ इतनी ही तेजी से चल रहा है। आप जिस जमीन पर बैठे हैं, वह भी तेजी से, जमीन का एक—एक टुकड़ा भाग रहा है। आपके मकान की दीवाल की ईंट का एक—एक अणु तीव्रता से गतिमान है। कोई भी चीज ठहरी हुई नहीं है। सब चीजें चल रही हैं। तेजी इतनी ज्यादा है कि आपको दिखाई नहीं पड़ती।

और अगर यही सब बदल रहा होता, तब भी ठीक था। सुबह सूरज तो दूसरा होता ही है, जमीन दूसरी होती है, वृक्ष दूसरे होते हैं, आकाश दूसरा होता है, आप भी दूसरे होते हैं। रात जो सोया था, वही आदमी सुबह नहीं जगत।। आपकी जीवन धारा भी बह रही है। प्रतिपल बह रही है। आपमें भी सब बदल जाता है।

आप कभी खयाल किए हैं कि अगर मां के पेट में जो आपकी तस्वीर थी, पहले दिन मां के पेट में जो अणु निर्मित हुआ था, जो कि आप आज हो गए हैं, अगर वह आपके सामने रख दिया जाए, तो आप इन आंखों से उसे देख भी न सकेंगे। बड़ी खुर्दबीन की जरूरत पड़ेगी। और फिर भी कोई उपाय नहीं है कि आप पहचान लें कि कभी मैं यह रहा होऊंगा। लेकिन कभी आप वही थे।

और फिर एक दिन आप जल जाएंगे और राख का एक ढेर रह जाएगा। अगर आज वह ढेर आपके सामने रख दिया जाए, तो भी आप मानने को राजी न होंगे कि यही मैं हो जाऊंगा। आपको भरोसा न होगा कि यह और मैं! लेकिन वही आप हो जाएंगे। और हो जाएंगे जब मैं कह रहा हूं, तो आप ऐसा मत सोचना कि यह कल होने वाली बात है, वही आप हो रहे हैं।

हमारी भाषा हमें बहुत—सी भूलों में ले जाती है, क्योंकि भाषा एक तरह का फिक्सेशन का खयाल देती है कि चीजें ठहरी हुई हैं। हम कहते हैं, वृक्ष है। कहना चाहिए, वृक्ष हो रहा है। हम कहते हैं, नदी है। कहना चाहिए, नदी हो रही है। हम कहते हैं, बच्चा है। कहना चाहिए, बच्चा हो रहा है। हम कहते हैं, मृत्यु आएगी। कहना चाहिए, मृत्यु आ रही है।

सब कुछ हो रहा है। प्रत्येक वस्तु एक घटना है, वस्तु नहीं। कोई वस्तु वस्तु नहीं है, घटना है। घटना का अर्थ है, प्रक्रिया है। इस जगत में प्रक्रियाएं हैं, वस्तुएं नहीं। घटनाएं हैं, वस्तुएं नहीं। सब कुछ हो रहा है। प्रवाह है। इस प्रवाह के बीच में अगर कोई एक चीज अक्षय है, तो वह समय है, काल है।

यह बहुत मजे की बात है। अगर इस परिवर्तन के बीच में कोई चीज थिर है, तो वह परिवर्तन है। यह उलटा मालूम पड़ेगा। लेकिन जीवन के गहरे सत्य सभी पैराडाक्सिकल हैं, उलटे होते हैं। ऐसा हम कहें तो समझ में आ जाएगा, इस जगत में अगर कोई चीज नहीं मरती है, तो वह मृत्यु है। बाकी सब चीजें मरती हैं। और इस जगत में एक ही चीज अक्षय है, जो क्षीण नहीं होती, वह समय है। सब बदलता रहता है।

लेकिन ध्यान रहे, बदलने की प्रक्रिया समय में घटती है। समय न हो, तो बदलाहट नहीं हो सकती। आप अपने घर से यहां तक आए, आने में घंटाभर लगा। अगर समय न हो, तो आप यहां नहीं पहुंच सकते। एक घंटा चाहिए, तब आप यहां पहुंच सकते हैं। समझ लें कि समय समाप्त हो गया, तो फिर आप यहां से हिल भी न सकेंगे। क्योंकि हिलने में भी समय लगेगा। फिर आप श्वास भी न ले सकेंगे, क्योंकि श्वास लेने में भी समय की जरूरत।

इस जगत में जो कुछ हो रहा है, उस सबके लिए समय अनिवार्य है। सब चीजें समय के भीतर हो रही हैं। सभी के होने में समय छिपा। हुआ है। अस्तित्व समय के साथ एक है। सब चीजें बदल रही हैं, बदलाहट समय के भीतर हो रही है। समय भर नहीं बदलता, क्योंकि समय किसके भीतर बदलेगा! समय को बदलने के लिए फिर एक और समय चाहिए।

गणितज्ञ उस पर विचार करते हैं, तो वे कहते हैं, टाइम ए को अगर बदलना हो, तो फिर टाइम बी चाहिए। अगर टाइम बी को बदलना हो, तो फिर टाइम सी चाहिए। समय एक को बदलना हो, तो समय दो चाहिए। समय दो को बदलना हो, तो समय तीन चाहिए। यह तो

फिजूल की बात हो जाएगी। और समय को हम अंत तक खींचते चले जाएं, तो भी एक समय हमें मानना पड़ेगा, जो नहीं बदलता है। जैसे, इसे हम और तरह से समझें, तो आसान हो जाए।

आप बैठे हे जमीन पर। आपके बैठने के लिए जगह चाहिए। बिना जगह के आप नहीं बैठ सकते। आपके होने के लिए आकाश चाहिए, जगह चाहिए, स्थान, स्पेस चाहिए। तब एक सवाल उठता है, जो दर्शनशास्त्री पूछते रहे हैं कि आकाश को होने के लिए भी तो फिर कोई और स्थान चाहिए पड़ेगा। आकाश को होने के लिए कोई महाआकाश चाहिए। लेकिन फिर यह इनफिनिट रिग्रेस होगी, इसका कोई अंत न होगा। फिर उस महाआकाश के लिए कोई और महाआकाश चाहिए।

इसलिए त्रज्ञा(त्रक कहते हैं कि आकाश सब चीजों के लिए चाहिए, सिर्फ आकाश को छोड्कर। आकाश के लिए कोई स्थान की जरूरत नहीं। आकाश स्वयं स्थान है। सब चीजों के लिए आकाश जरूरी है। आकाश के लिए कुछ और जरूरी नहीं है।

ठीक वैसे ही, सब परिवर्तन के लिए समय जरूरी है, सिर्फ समय के परिवर्तन के लिए समय जरूरी नहीं है। कहना चाहिए कि जैसे स्थान आकाश है, ऐसे ही परिवर्तन समय है। और समय के लिए कोई और चीज की आवश्यकता नहीं है।

वैज्ञानिक, विशेषकर अल्वर्ट आइंस्टीन, समय और आकाश दोनों को जोड़कर एक नई धारणा निर्मित किए हैं, जो आधुनिक फिजिक्स की धारणा है। आइंस्टीन ने एक नया प्रस्ताव रखा। वह प्रस्ताव भारत के लिए बहुत पुराना है। और वह प्रस्ताव पश्चिम में बहुत कीमती सिद्ध हुआ। आधुनिक विज्ञान उसी प्रस्ताव के आस— पास निर्मित हुआ है। वह प्रस्ताव यह है कि समय और आकाश भी दो नहीं हैं, एक ही चीज हैं। तो आइंस्टीन ने कहा कि समय भी आकाश का एक आयाम है।

यह थोड़ी कठिन गणित की धारणा है।

आकाश के तीन आयाम आइंस्टीन ने कहे हैं। तीन आयाम। कोई भी चीज हो, तो लंबाई होगी, चौड़ाई होगी, गहराई होगी। किसी भी चीज के होने के लिए ये तीन आयाम जरूरी हैं, लंबाई, चौड़ाई, गहराई। ये थी डायमेंशन आकाश के हैं। आइंस्टीन ने कहा कि चौथा आयाम, चौथा डायमेंशन समय है। किसी भी चीज के होने के लिए एक चौथी दिशा भी है, परिवर्तन। लंबाई चाहिए, चौड़ाई चाहिए, गहराई चाहिए और अगर वह चीज है, तो एक परिवर्तन की प्रक्रिया चाहिए। वह चौथा आयाम है टाइम।

तो आइंस्टीन ने कहा, टाइम इज दि फोर्थ डायमेंशन आफ स्पेस, वह आकाश का ही चौथा आयाम है। और तब उसने एक ही शब्द निर्मित किया स्पेसियोटाइम। एक ही अस्तित्व है, समय और आकाश का, क्योंकि किसी भी चीज के होने के लिए परिवर्तन जरूरी है। अस्तित्व मात्र परिवर्तन का प्रवाह है।

कृष्ण कहते हैं, मैं अक्षय काल हूं। मैं वह समय हूं जो कभी चुकता नहीं।

सब चीजें चुक जाती हैं, समय भर नहीं चुकता। सूरज चुक जाते हैं, बुझ जाते हैं। पृथ्वियां चुक जाती हैं, की हो जाती हैं, मर जाती हैं। बड़े—बड़े तारे होते हैं, बिखर जाते हैं। अगर हम इस विराट अस्तित्व में खोजने चलें, तो सभी चीजें बनती हैं, बिखरती हैं। सिर्फ एक समय बनने में भी मौजूद रहता है, बिखरने में भी मौजूद रहता है। जन्म में भी मौजूद रहता है, मृत्यु में भी मौजूद रहता है। सिर्फ एक समय अक्षय रूप से मौजूद रहता है। उसकी मौजूदगी सदा है। इसलिए महावीर ने तो आत्मा का नाम ही समय रख दिया। महावीर ने तो आत्मा का नाम ही समय रख दिया। महावीर ने कहा, आत्मा यानी समय, अस्तित्व यानी समय।

इसलिए अगर आपने कभी जैनियों का शब्द सुना हो, तो वे ध्यान को कहते हैं सामायिक। प्रार्थना को वे कहते हैं सामायिक। सामायिक का अर्थ है, समय में प्रवेश कर जाना, आत्मा में डूब जाना। टु बी इन दि इटरनल टाइम, वह जो अनंत समय है, उसके साथ एक हो जाना। यह सामायिक शब्द ध्यान से भी ज्यादा मूल्यवान है। क्योंकि जो व्यक्ति उस शाश्वत समय में एक हो गया, वह परमात्मा से एक हो गया।

कृष्ण कहते हैं, मैं अक्षय काल हूं।

हम सब समय से अपने को भिन्न समझते हैं। हम सब समय से अपने को अलग समझते हैं। हम सब ऐसा समझते हैं कि समय कोई चीज है, जिसमें से हम गुजर रहे हैं। या समय कोई चीज है, जो हमारे पास से गुजर रहा है। हमारी जो धारणा है वह यही है।

एक आदमी बैठकर कहता है कि समय पास कर रहा हूं समय काट रहा हूं। उसे पता नहीं कि वह समय को नहीं काट रहा है, अपने को काट रहा है। समय को आप कैसे काटिका! कोई छुरी—तलवार नहीं जो समय को काट सके। समय आपको काट सकता है, आप समय

को नहीं काट सकते। लेकिन लोग कहते हैं! बैठकर ताश खेल रहे हैं। वे कहते हैं, समय काट रहे हैं! उनको पता नहीं कि ताश खेलकर समय उनको काट रहा है।

आप समय को छू भी नहीं सकते, काटना तो बहुत दूर है। समय का आपको कोई अनुभव भी नहीं होता, काटना तो बहुत दूर है। आप सिर्फ अपने को काट सकते हैं। समय तो अक्षय है, कटेगा भी नहीं। आपके काटे नहीं कटेगा। अब तक किसी के काटे नहीं कटा है। और सब काटने वाले विलीन हो जाते हैं। सब काटने वाले आते हैं और खो जाते हैं। और समय शाश्वत अपनी जगह बना रहता है।

समय की यह शाश्वतता, यह इटरनिटी, कृष्ण कहते हैं, मैं ही हूं। इस जगत में अगर किसी चीज को अक्षय का प्रतीक मानें हम, तो वह समय है। बाकी सब चीजें क्षय हो जाती हैं। समय में जितनी चीजें हैं, वे सभी क्षय हो जाती हैं, सिर्फ समय को छोड़कर। समय पर मृत्यु का कोई प्रभाव नहीं है।

इसलिए हमने, विशेषकर भारत ने, समय को और मृत्यु को भी एक मान लिया है। इसलिए मृत्यु को भी हम काल कहते हैं और समय को भी काल कहते हैं।

सिर्फ समय की कोई मृत्यु नहीं है। इसका अर्थ यह हुआ कि अगर समय मृत्यु से अलग होता, तो समय की भी मृत्यु घटित होती। समय मृत्यु के साथ एक है। इसलिए मृत्यु की तो क्या मृत्यु होगी! मृत्यु तो कैसे मरेगी? इसलिए हमने मृत्यु को भी काल का नाम दिया।

महावीर ने आत्मा को काल का नाम दिया, हमने समय को भी काल कहा, हमने मृत्यु को भी काल कहा। इनके पीछे कारण हैं। मृत्यु भी एक शाश्वतता है। और अगर हम गौर से देखें, तो मृत्यु सिर्फ एक शब्द है। समय के द्वारा हम काट दिए जाते हैं। जब हम पूरे काट दिए जाते हैं, तो उस घटना को हम मृत्यु कहते हैं। और तो मृत्यु कुछ भी नहीं है। मृत्यु और कुछ भी नहीं है।

जैसे नदी की धार बहती हो और जमीन कट जाती है, और धीरे— धीरे जमीन बह जाती है, सॉइल इरोजन हो जाता है। ऐसा ही हमारा अस्तित्व समय की धार में कटता जाता है, कटता जाता है, इरोजन हो जाता है। एक दिन हम पाते हैं कि हम बह गए, कण—कण होकर बह गए। जिस दिन हम पूरे बह जाते हैं, उन दिन हम कहते हैं, मृत्यु हो गई। लेकिन समय हमें प्रतिपल बहाए ले जा रहा है। हम प्रतिपल बह रहे हैं।

हम रुक भी नहीं सकते। रुकने का कोई उपाय नहीं है। यह होने का ढंग है, यह नियति है। इसमें रुकने का कोई उपाय नहीं है। बहना ही होगा। जो इस बहने से लड़ने लगेगा, वह और जल्दी टूट जाएगा। जो इस बहने को रोकने की कोशिश करेगा, वह और भी जल्दी नष्ट हो जाएगा। उसकी कोशिश ऐसी ही होगी, जैसे कोई नदी की तीव्र धार के विपरीत बहने की कोशिश करता हो। वह और जल्दी थक जाएगा और धार उसे जल्दी बहा ले जाएगी।

समय के साथ एकता साध लेनी, परमात्मा के साथ एकता साध लेनी है। लेकिन समय के साथ एकता साधने का अर्थ है, परिवर्तन को स्वीकार करने की क्षमता। जो भी हो जाए, उससे राजी हो जाने का गुण। जो भी घटित हो, उसके साथ पूरा आत्मैक्य। कहीं कोई विरोध न हो, समय जो भी ले आए, उसके साथ पूरा तालमेल। बीमारी आ जाए, तो बीमारी। बुढ़ापा आ जाए, तो बुढ़ापा। मृत्यु आने लगे, तो मृत्यु। कहीं कोई विरोध नहीं। भीतर कहीं कोई विरोध नहीं। जो भी हो, उसके साथ पूरा आत्मैक्य। तो आप समय को जान पाएंगे कि समय क्या है।

लेकिन हम सब लड़ रहे हैं। हम सब समय से हटने की कोशिश कर रहे हैं। हट नहीं सकते, वह आकांक्षा संभव नहीं होगी, लेकिन हमारी चेष्टा वही है।

सुना है मैंने, मुल्ला नसरुद्दीन को उसके घर के बाहर लोगों ने पकड़ा और कहा कि तुम यहां क्या कर रहे हो! वह वृक्ष के नीचे बैठकर कुछ सोच—विचार में लीन था। कहा कि तुम्हारी पत्नी नदी की बहती धार में गिर गई है। और धार तेज है और वर्षा के दिन हैं, और ज्यादा देर नहीं लगेगी कि समुद्र में तुम्हारी पत्नी पहुंच जाएगी। भागो! मुल्ला भागा। कपड़े फेंककर नदी में कूदा और नदी की उलटी धार में जोर से हाथ मारने लगा। लोगों ने चिल्लाकर कहा कि यह तुम क्या कर रहे हो? अगर पत्नी बहेगी, तो बहने का एक ही ढंग है कि वह नीचे की तरफ जाएगी, जहां धार जा रही है। और तुम उलटे जा रहे हो?

मुल्ला ने कहा, मैं अपनी पत्नी को तुमसे ज्यादा अच्छी तरह जानता हूं। उलटा जाना उसकी आदत है। उसके साथ तीस साल रह चुका हूं। सारी दुनिया गिरकर नदी में अगर सागर की तरफ जाती होगी, तो मेरी पत्नी नहीं जा सकती, वह उलटी जा रही होगी!

हम सारे लोग ही लेकिन वैसे हैं। अगर हम जीवन की धार को देखें, तो हम सब उलटे तैरने की कोशिश करते हैं। उलटे तैरने में एक मजा जरूर है, उसी कारण हम तैरते हैं। उलटे तैरने में अहंकार निर्मित होता है। अगर मैं दो हाथ उलटे मार लेता हूं तो लगता है, मैं कुछ हूं। धार के विपरीत, प्रवाह के विपरीत, मैं कुछ हूं। और अगर प्रवाह में बहता हूं तो फिर मैं कुछ भी नहीं हूं!

अगर कोई आदमी उलटी धार में तैरकर गंगोत्री पहुंच जाए, तो सारे दुनिया के अखबार उसकी फोटो छापेंगे। और कोई आदमी गंगोत्री से बहकर सागर में पहुंच जाए, कोई अखबार छापने वाला नहीं मिलेगा। उलटा अगर हम दो हाथ जीत पाते हैं, तो विजय मालूम पड़ती है।

लेकिन ध्यान रहे, समय की धार में कोई भी उलटा नहीं तैर सकता। नदी की धार में दो हाथ कोई मार भी ले। समय की धार में उलटा नहीं तैर सकता। क्योंकि समय पीछे बचता ही नहीं कि आप उसमें तैर सकें। नदी तो पीछे भी होती है। समय तो विलीन हो जाता है। एक ही क्षण आपको मिलता है, पिछला क्षण तो विलीन हो जाता है। अतीत तो बचता नहीं कि आप पीछे जा सकें। सिर्फ भविष्य ही बचता है। आगे ही जा सकते हैं, पीछे जाने का कोई उपाय नहीं।

लेकिन मन पीछे जाने की कोशिश करता रहता है। उस विपरीत दौड़ में अहंकार निर्मित जरूर होता है, लेकिन हम समय के साथ एक होने का जो गहन अनुभव है, उससे वंचित हो जाते हैं।

धार के साथ बह जाएं, कोई बाधा न डालें। नदी की धार के साथ एक हो जाएं। और जीवन जो भी ले आए, उसे परम आनंद से स्वीकार कर लें। उसमें रंचमात्र भी नकार न हो। उसमें रंचमात्र भी अस्वीकार न हो। उसमें शिकायत न हो। ऐसे ही आदमी का नाम धार्मिक आदमी है, जिसके मन में जीवन के प्रति शिकायत नहीं है। मंदिर जाने वाला आदमी धार्मिक नहीं है। क्योंकि हो सकता है, मंदिर वह सिर्फ शिकायत के लिए जा रहे हों। अधिक लोग तो मंदिर शिकायत के लिए जाते हैं। अधिक लोगों की प्रार्थनाएं यह बताती हैं कि भगवान, तुझसे ज्यादा तो हम समझते हैं! तू जो कर रहा है, वह गलत है। हम जो चाहते हैं, वह कर! हमारी प्रार्थनाएं, हमारे मंदिर, हमारी पूजाएं, हमारी मस्जिदें, हमारी शिकायतों के घर हैं।

लेकिन जो आदमी शिकायत लेकर मंदिर गया है, वह मंदिर जा ही नहीं सकता। मंदिर में प्रवेश का तो एक ही मार्ग है कि कोई शिकायत न हो। जीवन ने जो दिया है, जीवन ने जो किया है, जीवन जैसा है, उसमें परम हर्ष हो, उसके स्वीकार में परम उत्सव हो, तब आप बहेंगे। और आपके और समय के बीच जो दुविधा मालूम पड़ती है, वह विलीन हो जाएगी। आप समय के साथ एक हो जाएंगे। इस समय के साथ जो एक होने की घटना है, उस घटना में ही आपको काल के अक्षय स्वरूप का बोध होगा। यह इटरनल टाइम क्या है!

अभी आप जिस समय को जानते हैं, वह घड़ी का समय है, उसका अक्षय काल से कोई संबंध नहीं है। घड़ी का समय, आपका निर्मित समय है। घड़ी का समय, आपका बनाया हुआ समय है। वह समय नहीं है। हमने दिन को चौबीस घंटों में बांट लिया है। हमने घंटे को साठ मिनटों में बांट लिया है। हमने मिनट को साठ सेकेंडों में बांट लिया है। यह हमारी व्यवस्था है। इससे मूल समय का कोई संबंध नहीं है। इससे हम कामचलाऊ समय को निर्मित कर लिए हैं। इसी को अगर आप समय समझते हैं, तो आप भूल में हैं, आप गलती में हैं।

समय तो उसी दिन आपको पता चलेगा, जिस दिन आप तथाता को, टोटल एक्सेप्टेंस को उपलब्ध हो जाएंगे। उस दिन, यह कृष्ण जो काल का अक्षय स्वरूप कह रहे हैं, यह आपके अनुभव में आएगा। कभी चौबीस घंटे ही ऐसा करें कि बहकर देखें, तैरें मत। धार्मिक आदमी तैरता नहीं है, अधार्मिक आदमी तैरता है। धार्मिक आदमी बहता है। बहता है, कहना भी शायद ठीक नहीं। क्योंकि बहता है, इसमें भी ऐसा लगता है कि कुछ करता है। नहीं, धार्मिक आदमी धार के साथ एक हो जाता है। धार जहां ले जाती है, वहीं चला जाता है।

लाओत्से ने कहा है कि मैंने एक सूखे पत्ते को देखा। वर्षों तक मैंने ध्यान किया। वर्षों तक मैंने पूजा की, प्रार्थना की। वर्षों तक मैंने उसको खोजा। लेकिन उसका मुझे कोई पता नहीं मिला। फिर एक दिन मैं बैठा था। पतझड़ के दिन थे, सूखे पत्ते वृक्षों से गिरकर उड़ रहे थे। और तब मैंने उस मौन शांत दोपहरी में देखा सूखे पत्तों को। और उसी दिन मुझे राज मिल गया।

हवा सूखे पत्ते को बाएं ले जाए, तो सूखा पत्ता बायां चला जाता था। दाएं ले जाए, तो दाएं चला जाता था। ऊपर ले जाए, तो आकाश में उठ जाता था। जमीन पर पटक दे, तो नीचे विश्राम करने लगता था। सूखे पत्ते की अपनी कोई मर्जी ही न थी। सूखे पत्ते की अपनी कोई आकांक्षा न थी। सूखे पत्ते के हृदय में कोई भाव ही न था कि मैं कहां जाऊं। हवाएं जहां ले जाएं, वहीं जाने को राजी था। सूखे पत्ते ने अपना अस्तित्व ही खो दिया था।

हमारी वासनाएं ही हमारा अस्तित्व हैं। हमारी आकांक्षाओं का जोड़ ही हमारा तथाकथित होना है। सूखा पत्ता हवाओं के साथ एक हो गया था। हवाएं आकाश में उठातीं, तो सिंहासन पर विराजमान होकर आनंदित होता। हवाएं नीचे गिरा देतीं, तो धूल में विश्राम करता, आनंदित होता।

लाओत्से ने कहा, बस उस दिन से मैं भी सूखा पत्ता हो गया। और जिस दिन से मैं सूखा पत्ता हो गया हूं उस दिन से मैंने दुख नहीं जाना, अशांति नहीं जानी। और जिस दिन से मैं सूखा पत्ता हो गया हूं उस दिन से मुझे सत्य खोजना नहीं पड़ा; सत्य मौजूद ही था, वह मेरे अनुभव में आ गया है।

काल की यह अक्षयता अनुभव में आए, तो परमात्मा का गहनतम रूप स्मरण में आना शुरू होता है।

हे अर्जुन, मैं सबका नाश करने वाला मृत्यु और आगे होने वालों की उत्पत्ति का कारण भी हूं। मृत्यु भी मैं हूं जन्म भी मैं हूं।

इसे थोड़ा हम समझें।

मजे की बात है कि हम कभी खयाल में नहीं लाते, जन्म आपका होता है, कभी आपने सोचा? जन्म एक घटना है, जिसके संबंध में आप कुछ भी नहीं कर सकते। करेंगे भी कैसे, क्योंकि जन्म के बाद ही आप हो सकते हैं। जन्म के पहले कोई आपसे पूछता भी नहीं कि आप जन्म लेना चाहते हैं! जन्म के पहले आपका कोई भी चुनाव नहीं हो सकता। होगा भी कैसे? जब जन्म ही नहीं हुआ, तो आपका चुनाव क्या है? जन्म आपको मिलता है। इट इज ए गिफ्ट, वह एक दान है, एक भेंट है। अस्तित्व आपको जन्म देता है। जन्म आपके हाथ की बात नहीं है। जन्म के संबंध में आप कुछ भी नहीं कर सकते। आपके निर्णय की कोई संगति ही नहीं है। आप जब भी हैं, जन्म के बाद हैं। जन्म के पहले आप नहीं हैं। निश्चित ही, जन्म आपका नहीं हो सकता।

मृत्यु भी आपकी नहीं है। जैसे जन्म आपके हाथ से घटित नहीं होता, वैसे ही मृत्यु भी आपके हाथ से घटित नहीं होती। मृत्यु भी विराट का ही हाथ है, और जन्म भी विराट का ही हाथ है। जो आपको जन्म देता है, वही आपको मृत्यु में खींच लेता है।

इसलिए अगर समस्त जगत के धर्मों ने आत्महत्या का विरोध किया है, तो उसका कारण है। आत्महत्या को अगर बड़े से बड़ा पाप कहा है, तो उसका कारण है। जन्म तो आप नहीं ले सकते, लेकिन आत्महत्या कर सकते हैं। और जो काम परमात्मा को ही करना चाहिए, जब आप करते हैं, तब महापाप घटित होता है। जन्म तो आप नहीं ले सकते, उसका कोई उपाय नहीं है, लेकिन मृत्यु आप चुन सकते हैं। लेकिन जब आप जन्म नहीं चुन सकते, तो आपको मृत्यु चुनने का कोई हक नहीं रह जाता।

बुद्ध ने कहा है किसी दूसरे संदर्भ में, एक दूसरे पहलू से, यही बात। बुद्ध को एक गांव के पास से गुजरते वक्त लोगों ने कहा कि उस रास्ते पर मत जाएं। वहां एक आदमी बिलकुल पागल हो गया है। और उस आदमी ने कसम खा ली है कि जो भी आदमी इस रास्ते से निकलेगा, उसकी गर्दन काटकर उसकी अंगुलियों का हार पहन लूंगा। उसने नौ सौ निन्यानबे आदमी मार डाले हैं। और वह कहता है, जब तक हजार पूरे न हो जाएंगे, तब तक मेरा व्रत पूरा नहीं होगा! उस डाकू का नाम अंगुलिमाल था। अंगुलियों की मालाएं पहन रखी थीं उसने। आप उस रास्ते मत जाएं, वह रास्ता निर्जन हो गया है, अब वहां कोई नहीं जाता है। महीनों से उस तरफ कोई नहीं गया है।

बुद्ध ने कहा, उतर मुझे पता न होता, तो शायद मैं दूसरे रास्ते से भी चला जाता। लेकिन अब जब कि मुझे पता है, तो मुझे जाना ही पड़ेगा। वह अंगुलिमाल बड़ी मुश्किल में होगा। उसको हजार पूरे करने हैं, और कोई आदमी जाता भी नहीं! कुछ उसका भी तो सोचो। और अगर मैं न जाऊंगा, तो फिर कौन जाएगा?

तो बुद्ध उस रास्ते पर चल पड़े। संगी थे, साथी थे, जो कहते थे कि जन्म—मरण का साथ है, वे भी थोड़े पीछे होने लगे। यह उपद्रव का मामला था। यह कविता में ठीक है कि जन्म—मरण का साथ है। वस्तुत: स्थिति आ जाए, तो जन्म—मरण के साथी सबसे पहले पीछे हट जाते हैं।

अंगुलिमाल ने दूर से देखा बुद्ध को आते हुए। उसे भी दया आई। वह आदमी न था दया करने वाला। उसे भी दया आई कि यह भिक्षु भूल से आ गया मालूम होता है। पर गांव के लोगों ने जरूर रोका होगा, यह फिर भी पागल है। यह मुझसे भी ज्यादा पागल मालूम पड़ता है!

वह अपने फरसे पर धार रख रहा है। और बुद्ध उसके रास्ते के करीब—करीब पगडंडी चढ़ने लगे। और बुद्ध की वैसी निर्दोष आंखें, बुद्ध का वैसा बच्चों जैसा व्यक्तित्व, बुद्ध की वह सरलता, अंगुलिमाल ने फरसे पर धार रखते नीचे देखा। उसको भी लगा कि यह आदमी निश्चित ही गलत आ गया।

उसने भी चिल्लाकर कहा कि ऐ भिक्षु, रुक जा वहीं। आगे मत बढ़। शायद तुझे पता नहीं कि मैं अंगुलिमाल हूं! बुद्ध ने कहा, मुझे पता है। शायद तुझे पता नहीं कि मैं कौन हू! और बुद्ध बढ़ते ही गए। अंगुलिमाल ने फरसे को सूरज की धूप में चमत्काकर कहा कि नासमझ भिक्षु, तुझे पता नहीं है कि मैंने कसम ली है आदमियों। को काटने की, और तू आखिरी आदमी है। तुझको काटकर मेरा व्रत पूरा हो जाएगा। मैं तुझे छोडूंगा नहीं। अगर मेरी मां भी आती हो, तो भी मैं हजार वाला व्रत पूरा करने वाला हूं। इसलिए तू लौट जा, आगे मत बढ़। एक कदम भी आगे मत बढ़। रुक जा वहीं! बुद्ध ने कहा कि मुझे तो बहुत समय हो चुका, जब मैं रुक गया। अंगुलिमाल, मैं तुझसे कहता हूं कि तू रुक जा। और बुद्ध चलते ही रहे।

अंगुलिमाल ने जाना कि निश्चित ही यह आदमी पागल है और मुझसे ज्यादा पागल है। बैठे हुए आदमी को कहता है कि तू रुक जा! खुद चलता है और कहता है, लंबा समय हुआ तब से मैं रुक गया हूं! बुद्ध करीब आ गए, अंगुलिमाल का भी मन हुआ कि जरा इससे बात कर ली जाए। इस आदमी का मतलब क्या है! उसने पूछा, तुम्हारा मतलब क्या है रुक जाने का! तुम चलते हुए कहते हो कि मैं रुक गया!

बुद्ध ने कहा, जब मन ही रुक गया, तो शरीर के चलने, न चलने से क्या होगा! तू बैठा हुआ दिखाई पड़ता है, लेकिन जितने जोर से तेरा फरसा चल रहा है, उससे भी ज्यादा जोर से तेरा मन चल रहा है। इसलिए मैं कहता हूं अंगुलिमाल, तू ही रुक जा। मैं तो रुक गया हूं।

अंगुलिमाल का भी हाथ जरा ढीला हो गया। लेकिन फिर .उसे याद आई कि पता नहीं वह हजार का व्रत पूरा हो, न हो। आदमी कोई आए, न आए! उसने कहा, कुछ भी हो, दया मेरे मन भी आती है, लेकिन फिर भी मैं अपने व्रत से बंधा हूं। और मैं तुम्हें काटूंगा। बुद्ध ने कहा, काटने के पहले मेरी एक छोटी—सी आकांक्षा है मरते आदमी की, वह तू पूरी कर दे। यह जो सामने वृक्ष लगा है, इसका एक पत्ता तोड़कर मुझे दे दे।

अंगुलिमाल ने जाना कि आदमी बिलकुल ही पागल है। यह भी कोई इच्छा है मरते वक्त! उसने वहीं से फरसा ऊपर मारा। एक पता क्या, हजार पत्ते टूटकर नीचे गिर गए। बुद्ध ने कहा, यह आधी आकांक्षा पूरी हो गई, आधी और पूरी कर दे। इनको वापस जोड़ दे! अंगुलिमाल ने कहा, मैं पहले ही समझ गया था कि तू पागल है। टूटे हुए पत्ते जोड़े नहीं जा सकते!

तो बुद्ध ने कहा, जितनी अकड़ से तूने काटा था, उससे तो ऐसा लगता था कि तू जोड़ भी सकेगा। इतनी अकड़ से तूने काटा था कि कोई बड़ा काम कर रहा है! यह तो बच्चे भी कर देते। यह तो बच्चे भी कर देते, जो तूने किया है इतनी अकड़ से। इसमें अकड़ क्या थी! जोड़ दे, तो समझूं। और अगर न जोड सकता हो, तो फिर मैं तुझसे कहता हूं तू मेरी गर्दन काट। लेकिन थोड़ा सोच लेना, एक पता भी जो नहीं जोड़ सकता है, वह गर्दन काटने का हकदार है? अब तू अपना फरसा उठा ले और तू गर्दन काट डाल। लेकिन जिसे तू बना नहीं सकता था, उसे मिटाने का तुझे कोई हक न था।

अंगुलिमाल का फरसा नीचे गिर गया और उसका सिर बुद्ध के पैरों पर गिर गया।

जीवन में हिंसा, हत्या अगर बुरी कही गई है, तो उसका कुल कारण इतना है कि तुम जन्म अपने को नहीं दे सकते। आत्महत्या का अगर सारे धर्मों ने विरोध किया है, तो कुल कारण इतना है कि तुम जब अपने को जन्म नहीं दे सकते, अपने जन्म के मालिक नहीं हो, तो तुम अपनी मृत्यु के मालिक कैसे हो सकते हो! वह मालकियत छीननी, परमात्मा के खिलाफ बड़े से बड़ा पाप है।

इस संदर्भ में आपको मैं कहना चाहूंगा, पश्चिम के एक बहुत बड़े विचारक आल्वेयर कामू ने अपनी एक किताब की शुरुआत इस वाक्य से ही की है कि मनुष्य के समक्ष आत्महत्या ही सबसे बड़ी दार्शनिक समस्या है, दि ओनली मेटाफिजिकल प्राब्लम बिफोर मैन इज स्युसाइड।

अब आल्वेयर कामू सार्त्र, काफ्का और हाइडेगर, पश्चिम के आधुनिकतम, श्रेष्ठतम विचारक ऐसा मानते हैं कि एक ही तो स्वतंत्रता है आदमी को कि वह आत्महत्या कर ले। और तो कोई स्वतंत्रता नहीं मालूम पड़ती। इसलिए वे कहते हैं कि आत्महत्या का हक होना चाहिए। हम और कुछ तो कर ही नहीं सकते। जीवन पा नहीं सकते, जन्म पा नहीं सकते। एक काम ही हम कर सकते हैं, आत्महत्या का। वही तो हमारी स्वतंत्रता है। उसका हक होना चाहिए। कोई आदमी अपनी आत्महत्या करना चाहे, तो उसे हक होना चाहिए।

उनकी बात तर्कयुक्त मालूम होती है। लेकिन उनकी बात जीवन के विराट तर्क के साथ मेल नहीं खाती। क्योंकि जिस चीज का हम प्रारंभ नहीं कर सकते, उसका अंत भी उसी के हाथों में छोड़ देना उचित है, जिसने प्रारंभ किया है।

कृष्ण कहते हैं, मृत्यु भी मैं हूं जन्म भी मैं हूं। जन्म का कारण भी मैं, मृत्यु का कारण भी मैं।

थोड़ी कठिनाई होगी यह जानकर कि अर्जुन पूछ सकता है कृष्ण से, तो फिर मैं इन लोगों को कैसे मारूं? इनकी हत्या मैं क्यों करूं? यह तत्क्षण खयाल में उठेगा। जब बुद्ध अंगुलिमाल को कहते हैं कि जिसे तू जोड़ नहीं सकता, उसे तू काट नहीं सकता। मत काट, क्योंकि जोड्ने का तू हकदार नहीं है। अर्जुन के मन में भी यह सवाल तो उठ ही सकता है कि जिनको मैं जिला नहीं सकता, जन्म नहीं दे सकता, उनको मैं मारूं कैसे? यही अर्जुन कह ही रहा है, यही उसकी समस्या है।

कृष्ण इस समस्या को जिस पर्सपेक्टिव, कृष्ण जिस परिप्रेक्ष्य से इस सारी स्थिति को देखते हैं, वे अर्जुन से यह कह रहे हैं कि तेरा यह मानना कि तू इन्हें मार रहा है, वह भी भ्रांति है, क्योंकि मारने वाला मैं हूं। वह भ्रांति भी तू मत पाल। वह सिर्फ तेरी भ्रांति है। तू मार भी नहीं सकता।

इसका मतलब यह हुआ कि जो आदमी आत्महत्या कर रहा है, वह भी सिर्फ भ्रांति में है कि मैं अपने को मार रहा हूं। वस्तुत: कोई अपने को मार नहीं सकता, जब तक कि मौत हो मारने को न आ गई हो, जब कि परमात्मा का ही हाथ न आ गया हो। जब आपको मरने का खयाल आता है, वह खयाल भी आपका नहीं होता। वह भी उसी स्रोत से आता है, जिस स्रोत से जन्म आता है। सिर्फ आपको भ्रांति हो सकती है। और वह भ्रांति आपको लंबे चक्कर में डाल सकती है।

इस जगत में भ्रांतियों के अतिरिक्त हमारे हाथ में कुछ भी नहीं है। सत्य हमारे हाथ में नहीं है, हम सत्य के हाथ में हैं। हमारे हाथ में सिर्फ भ्रांतियां हो सकती हैं। सत्य हमारे हाथ में नहीं है, हम सत्य के हाथ में हैं। हमारे हाथ में सिर्फ भ्रांतियां हो सकती हैं, झूठ हो सकते हैं। एक आदमी सोचता है, मैंने अपने को मार लिया या मार रहा हूं। उसका सोचना भ्रांत है। लेकिन भ्रांतियां बढ़ सकती हैं, और आदमी समझ सकता है कि उसने यह कर लिया। हम जिंदगी भर इसी तरह की भ्रांतियां रखते हैं।

मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन सुबह बैठकर बहुत चिंतन में लीन है। और उसकी पत्नी ने पूछा कि इतना क्या सोच— विचार में पड़े हो? तो मुल्ला ने कहा, मैं यह सोच रहा हूं कि आदमी जब मरता होगा, तो उसके भीतर क्या होता होगा? कैसे पक्का होता होगा कि मैं मर गया? समझो कि मैं मर जाऊं, तो मैं कैसे जानूंगा कि मैं मर गया? उसकी पत्नी ने कहा कि छोड़ो मूढ़ता की बातें। जब मरोगे, तो एकदम पता चल जाएगा, हाथ—पैर ठंडे हो जाएंगे बर्फ जैसे!

पंद्रह दिन बाद मुल्ला जंगल में लकड़ियां काट रहा है। अपने गधे को उसने एक झाड़ू से बांध दिया है और लकड़ियां काट रहा है। सर्द सुबह है और बर्फ पड़ रही है। उसके हाथ—पैर ठंडे होने लगे। उसने सोचा, निश्चित, मौत करीब है। कहा था पत्नी ने कि अपने आप पता चल जाएगा। जब हाथ—पैर ठंडे होंगे, अपने आप जान जाओगे कि मरने लगे। फिर उसने सोचा कि मरे हुए आदमी लकड़ियां तो कभी काटते देखे नहीं गए, तो लकड़ी काटना इस वक्त उचित नहीं है। कुल्हाड़ी छोड्कर वह जमीन पर लेट गया। लेटते ही से और ठंडा होने लगा। बर्फ पड़ रही है जोर की। उसने कहा कि निश्चित ही मौत आ गई!

उसे लेटा हुआ और मरा हुआ देखकर दो भेड़ियों ने उसके गधे पर हमला कर दिया, जो उसके पीछे ही झाड़ू से बंधा है। मुल्ला ने अपने मन में कहा, कोई हर्ज नहीं, अगर आज मैं जिंदा होता, तो मेरे गधे के साथ ऐसी स्वतंत्रता तुम नहीं ले सकते थे! काश, मैं जिंदा होता। यू कुडंट हैव अेकेन सच लिबर्टी विद माई ऐस। लेकिन अब कोई बात ही नहीं है, मैं मर ही गया हूं!

आदमी अगर अपनी आत्महत्या भी कर रहा है, तो वह ऐसी ही भ्रांति में है कि मैं कर रहा हूं। लेकिन जिंदगीभर करने का हम भ्रम पालते हैं, इसलिए मौत में भी हम पाल सकते हैं। हम जिंदगीभर सोचते हैं, यह मैं कर रहा हूं। यह मैं कर रहा हूं। यह मैं कर रहा हूं! हम तो यहां तक सोचते हैं कि सांस भी मैं ले रहा हूं। जी भी मैं रहा हूं!

नहीं, आप सांस भी नहीं ले रहे हैं, जी भी आप नहीं रहे हैं। अगर आप ही सांस लेते होते, तो मौत तो कभी आ ही नहीं सकती। मौत दरवाजे पर आ जाती, आप कहते, अभी मैं सांस लेना बंद नहीं करता, मैं लेता ही रहूंगा। लेकिन सांस बाहर जाएगी, नहीं लौटेगी, आप भीतर नहीं ले सकेंगे। जीवन आपसे नहीं चल रहा है, आपकी बहुत गहराई से चल रहा है। जहां से जीवन चल रहा है, वही परमात्मा है; जहां से मौत आती है, वही परमात्मा है। आप सिर्फ बीच की एक लहर हैं।

तो कृष्ण अर्जुन से यह कह रहे हैं कि न तू जन्म दे सकता है, न तू मृत्यु दे सकता है। अगर तू इस सत्य को समझ ले, तो फिर तू निमित्त मात्र है। मौत भी हो तेरे द्वारा, तो वह मेरे से ही होगी। और जन्म भी हो तेरे द्वारा, तो भी मेरे से ही होगा। अंततः मैं हूं। तू बीच में एक निमित्त मात्र है।

इसलिए बहुत हैरानी की बात है कि गीता ऐसे तो दिखाई पड़ती है कि हिंसा में ले जाती है, लेकिन गीता से परम अहिंसक दृष्टि खोजनी बहुत मुश्किल है। लेकिन वह अहिंसा महावीर की अहिंसा से मेल नहीं खाएगी। वह अहिंसा बुद्ध की अहिंसा से भी मेल नहीं खाएगी। मेरे देखे कृष्ण की अहिंसा, बुद्ध और महावीर की अहिंसा से ज्यादा गहरी जाती है। क्योंकि वह मौलिक हिंसा का जो आधार है अहंकार, उसी को तोड़ डालती है। जब एक आदमी यह सोचता है कि मैं अहिंसा कर रहा हूं तब भी हिंसा होती है; क्योंकि मैं अहिंसा कर रहा हूं तो भी अहंकार मजबूत होता है। मैं मार रहा हूं तो भी, मैं बचा रहा हूं तो भी। अगर मुझे यह खयाल हो जाए कि मैंने बचाया, तो भी अहंकार वही है। भाषा वही है। कभी—कभी भाषा एक—सी हो, तो भी हमें खयाल नहीं आता। कभी—कभी भाषा अलग हो, तो भी दोनों के भीतर एक ही तत्व हो सकता है।

मुल्ला नसरुद्दीन भारत आया था और एक योगी के द्वार पर रुका। थका—मादा था, सोचा उसने, विश्राम मिल जाए। बड़ा भवन था, विश्रामकक्ष था, योगी के बड़े शिष्य थे। मुल्ला आकर पास बैठा; एक मुसलमान फकीर पास आकर बैठा, प्रभावशाली व्यक्ति। योगी भी बहुत आनंदित हुआ कि चलो, अब मुसलमान भी मेरे पास आने लगे। थोड़ी देर योगी की बातचीत सुनी, जो शिष्यों से चल रही थी।

योगी समझा रहा था जीव—दया। जीव—दया की बात समझा रहा! था। कह रहा था कि समस्त जीव एक ही परिवार के हैं। समस्त जीवन जुड़ा हुआ है। इसलिए दया ही धर्म है। जब योगी बोल चुका,! तो मुल्ला ने भी खड़े होकर कहा कि आप बिलकुल ठीक कहते हैं। एक बार मेरी जाती हुई जान एक मछली ने बचाई थी।

योगी तो एकदम हाथ जोड़कर उसके चरणों में बैठ गया। उसने कहा कि धन्य! मैं बीस साल से साधना कर रहा हूं लेकिन अभी तक मुझे ऐसा प्रत्युत्तर नहीं मिला कि किसी पशु ने मेरी जान बचाई हो। मैंने कई पशुओं की जान बचाई है, लेकिन किसी पशु ने मेरी जान बचाई हो, अब तक ऐसा मेरा भाग्य नहीं है। तुम धन्यभागी हो! तुम्हारी बात से मेरा सिद्धांत पूरी तरह सिद्ध हो जाता है। तुम रुको यहां, विश्राम करो यहां।

तीन दिन मुल्ला नसरुद्दीन की बड़ी सेवा हुई। और तीन दिन योगी की बहुत—सी बातें नसरुद्दीन ने सुनीं। चौथे दिन योगी ने कहा कि अब तुम पूरी घटना बताओ, वह रहस्य, जिसमें एक मछली ने तुम्हारी जान बचा दी थी! नसरुद्दीन ने कहा कि आपकी इतनी बातें सुनने के बाद मैं सोचता हूं कि अब बताने की कोई जरूरत नहीं है। योगी नीचे बैठ गया, नसरुद्दीन के पैर पकड़ लिए और कहा, गुरुदेव, आप बचकर नहीं जा सकते। बताना ही पड़ेगा वह रहस्य, जिसमें एक मछली ने आपकी जान बचाई! नसरुद्दीन ने कहा, अच्छा यह हो कि वह चर्चा अब न छेड़ी जाए। वह विषय छेड़ना ठीक नहीं है। योगी तो बिलकुल सिर रखकर जमीन पर लेट गया। उसने कहा कि मैं छोड़ूंगा नहीं गुरुदेव! वह रहस्य तो मैं जानना ही चाहूंगा। क्या आप मुझे इस योग्य नहीं समझते?

नसरुद्दीन ने कहा, नहीं मानते, तो मैं कहे देता हूं। मैं बहुत भूखा था और एक मछली को खाकर मेरी जान बची! एक मछली ने मेरी जान बचाई!

शब्द एक से हों, इससे भ्रांति में पड़ने की जरूरत नहीं है। एक से शब्दों के भीतर भी बड़े विभिन्न सत्य हो सकते हैं। और कई बार विभिन्न शब्दों के भीतर भी एक ही सत्य होता है; उससे भी भ्रांति में पड़ने की जरूरत नहीं है। शब्दों की खोल को हटाकर सदा सत्य को खोजना जरूरी है।

महावीर और बुद्ध जिस अहिंसा की बात कहते हैं, वह इतने पर रुक जाती है कि दूसरे को मत मारो। अच्छी है बात। गहरी है बात। धार्मिक है। साधक के लिए बड़ी उपयोगी है। लेकिन कृष्ण एक कदम और आगे जाते हैं। वे कहते हैं, यह मान्यता ही कि तुम मार सकते हो, यह भी हिंसा है। यह मान्यता ही कि तुम मार सकते हो या बचा सकते हो, यह भी हिंसा है। परम अहिंसा तो तब है, जब तुम जानते हो कि मारे तो, बचाए तो, परमात्मा है; मैं बीच में निमित्त से ज्यादा नहीं हूं। तब परम अहिंसा है।

हे अर्जुन, मैं सबका नाश करने वाला मृत्यु और आगे होने वालों की उत्पत्ति का कारण हूं। तथा स्त्रियों में कीर्ति, श्री, वाक्, स्मृति, मेधा, धृति और क्षमा हूं।

पहली दफा, इन प्रतीकों में कृष्ण ने स्त्रियों का प्रतीक भी पहली दफा उल्लिखित किया है। स्त्रियों में भी अगर परमात्मा खोजना हो, तो कहां खोजा जा सकेगा? अगर स्त्रियों में भी परमात्मा की झलक पानी हो, तो वह कहां पाई जा सकेगी? कीर्ति में! और कीर्ति का स्त्री से क्या संबंध है? और कीर्ति क्या है?

स्त्री को जब भी हम देखते हैं, खासकर आज के युग में जब भी स्त्री को हम देखते हैं, तो स्त्री दिखाई नहीं पड़ती, सिर्फ वासना दिखाई पड़ती है। स्त्री को हम देखते ही हैं एक वासना के विषय की तरह, एक आब्जेक्ट की तरह। स्त्री को हम देखते ही ऐसे हैं, जैसे बस भोग्य है, उसका कोई अपना अर्थ, अपना कोई अस्तित्व नहीं है।

और स्त्री को भी निरंतर एक ही खयाल बना रहता है, वह भोग्य होने का। उसका चलना, उसका उठना, उसका बैठना, उसके वस्त्र, सब जैसे पुरुष की वासना को उद्दीपित करने के लिए चुने जाते हैं। चाहे स्त्री को इस बात की सचेतनता भी न हो, इसकी कांशसनेस भी न हो कि वह जिन कपड़ों को पहनकर रास्ते पर निकली है, वे भी हो, शायद वह चीख—पुकार भी मचाए, शायद रोष भी जाहिर करे, लेकिन उसे खयाल न आए कि उस धक्के में उसका भी उतना ही हाथ है, जितना मारने वाले का है। उसके वस्त्र, उसका ढंग, उसके शरीर को सजाने और श्रृंगार की व्यवस्था अपने लिए नहीं मालूम पड़ती, किसी और के लिए मालूम पड़ती है।

इसलिए उसी स्त्री को घर में देखें, उसके पति के सामने, तब उसे देखकर विराग पैदा हो। उसी स्त्री को बीच पर देखें, भीड़ में, तब उसे देखकर राग पैदा हो। पति इसीलिए तो विरक्त हो जाते हैं। स्त्रियां जिस रूप में उनको दिखाई पड़ती हैं, कम से कम उनकी स्त्रियां, पड़ोसियों की स्त्रियों में आकर्षण बना रहता है। लेकिन उनकी स्त्रियां जिस रूप में दिखाई पड़ती हैं..। क्योंकि स्त्री भी धीरे— धीरे, टेकन फार ग्रांटेड दोनों हो जाते हैं कि ठीक है। लेकिन जब स्त्री भीड़ में निकलती है, तब उसकी सारी की सारी दृष्टि अपने को एक कामवासना का विषय मानकर चलती है। और दूसरे पुरुष भी उसको यही मानकर चलते हैं।

कीर्ति का अर्थ है, जिस स्त्री में ऐसी दृष्टि न हो। ऑनर जिसको अंग्रेजी में कहते हैं, इज्जत जिसे उर्दू में कहते हैं। कीर्ति का अर्थ है, ऐसी स्त्री, जो अपने को वासना का विषय मानकर नहीं जीती; जिसके व्यक्तित्व से वासना की झंकार नहीं निकलती। तब स्त्री को एक अनूठा सौंदर्य उपलब्ध होता है। और वह सौंदर्य उसकी कीर्ति है, उसका यश है। आज वैसी स्त्री को खोजना बहुत मुश्किल पड़ेगा। बहुत मुश्किल पड़ेगा।

कीर्ति एक आंतरिक गुण है, एक भीतरी सौंदर्य है। उस सौंदर्य का नाम कीर्ति है, जिसे देखकर वासना शांत हो, उभरे नहीं।

यह थोड़ा कठिन मामला है। यह थोड़ा कठिन मामला है। लेकिन एक बात हम समझ सकते हैं कि अगर स्त्री वासना को उभाड़ सकती है, तो शांत क्यों नहीं कर सकती? जो भी उभाड़ बन सकता है, वह शांत करने वाला शामक भी बन सकता है। अगर स्त्री अपने ढंगों से वासना को उत्तेजित करती है, प्रज्वलित करती है, तो अपने ढंगों से उसे शांत भी कर दे सकती है।

वह जो शांत करने वाला सौंदर्य है, कि दूसरा व्यक्ति वासनातुर होकर भी आ रहा हो, विक्षिप्त होकर भी आ रहा हो, तो स्त्री की आंखों से, उस सौंदर्य का जो दर्शन है, उसके व्यक्तित्व से, उसकी जो छाया और झलक है, जो उसकी वासना पर पानी डाल दे और आग बुझ जाए। उसका नाम कीर्ति है।

लेकिन हम जो कीर्ति से मतलब लेते हैं, कहते हैं कि फलां स्त्री की इज्जत चली गई, उसमें सब लोग यही सोचते हैं कि इज्जत लेने वाला ही जिम्मेवार होगा। पचास परसेंट तो होगा ही। लेकिन सिर्फ पचास परसेंट ही होगा। उसमें इज्जत खोने की तैयारी भी है। और सच तो यह है कि जिस स्त्री की इज्जत को खोने के लिए कोई उत्सुक नहीं है, वह बड़ी बेचैन हो जाती है। वह परेशान हो जाती है। उसको लगेगा कि वह है ही नहीं, उसका कोई अस्तित्व ही नहीं है।

यह बड़े मजे की बात है। आदमी का माइंड इस तरह डबल बाइंड है, दोहरा बंधा हुआ है। हम खींचते भी हैं, और हटाते भी हैं। हम पुकारते भी हैं, और दुत्कारते भी हैं। एक तरफ हम चाहते हैं, लोग आकर्षित भी हों। और दूसरी तरफ हम चाहते हैं कि लोग हमें वासना का बिंदु भी न मानें!

अभी अमेरिका में स्त्रियों के नये आंदोलन हैं, लिब मूवमेंट्स हैं, जिनमें स्त्रियां कोशिश कर रही हैं कि हमें वासना की वस्तु न समझा जाए। उनका यह आंदोलन भी चलेगा कि उन्हें वासना की वस्तु न समझा जाए, और उनका व्यक्तित्व और उनके रहने का ढंग और जीवन, सब वासना की वस्तु ही बनने की चेष्टा होगी।

कीर्ति स्त्री के भीतर उस गुणवत्ता का नाम है, जहां वासना पर पानी गिर जाता है। कीर्ति का अर्थ हुआ कि जिस स्त्री के पास बैठकर आपकी वासना तिरोहित हो जाए। इसलिए हमने मां को इतना मूल्य दिया। कीर्ति के कारण मां को हमने इतना मूल्य दिया, मातृत्व को इतना मूल्य दिया।

पुराने ऋषियों ने आशीर्वाद दिए हैं, बड़े अजीब आशीर्वाद! नववधू को आशीर्वाद दिया है, पुराने ऋषियों के उल्लेख हैं कि आशीर्वाद दिए हैं, कि दस तेरे पुत्र हों और अंत में तेरा पति तेरा ग्यारहवां पुत्र हो जाए। और जब तक पति भी तेरा पुत्र न हो जाए, तब तक तू जानना कि तूने स्त्री की परम गरिमा उपलब्ध नहीं की। पति पुत्र हो जाए! अदालतों में ऐसे मुकदमे हैं, जहां पुत्र पति हो गया है। हर वर्ष दुनिया की अदालतों में ऐसे सैकड़ों मुकदमे होते हैं। यह जो पति भी पुत्र हो जाए जिस गुण से, जिस आंतरिक धर्म से, उसका नाम कीर्ति है।

कृष्ण कहते हैं, स्त्रियों में मैं कीर्ति।

निश्चित ही, बहुत दुर्लभ गुण है, खोजना बहुत मुश्किल है।

अभिनेताओं और अभिनेत्रियों के जगत में कीर्ति को खोजना बिलकुल मुश्किल है। और मंच पर जो अभिनय कर रहे हैं, वे तो कम अभिनेता हैं; उनकी नकल करने वाला जो बड़ा समाज है इमीटेशन का, वे सड़क पर, चौराहों पर भी अभिनय कर रहे हैं। इस सदी में अगर सर्वाधिक किसी के गुणों को चोट पहुंची हो, तो वह स्त्री है। क्योंकि उसके किन गुणों का मूल्य है, उनकी धारणा ही खो गई है। उन गुणों की धारणा ही खो गई है। कीर्ति का हम कभी सोचते भी नहीं होंगे। आप बाप होंगे, आपके घर में लड़की होगी। आपने कभी सोचा भी नहीं होगा कि इस लड़की के जीवन में कभी कीर्ति का जन्म हो। आपने लड़की को जन्म दे दिया और आप अगर उसमें कीर्ति का जन्म नहीं दे पाए, तो आप बाप नहीं हैं, सिर्फ एक मशीन हैं उत्पादन की।

लेकिन कीर्ति बड़ी कठिन बात है। और गहरी साधना से ही उपलब्ध हो सकती है। जब किसी पुरुष में वासना तिरोहित होती है, तो ब्रह्मचर्य फलित होता है। और जब किसी स्त्री में वासना तिरोहित होती है, तो कीर्ति फलित होती है। कीर्ति काउंटर पार्ट है। स्त्री में कीर्ति का फल लगता है, फूल लगता है, जैसे पुरुष में ब्रह्मचर्य का फूल लगता है।

स्त्री में ठीक पुरुष जैसा ब्रह्मचर्य फलित नहीं हो सकता। कारण हैं उसके। अगर पुरुष ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हो, तो उसकी सारी वीर्य— ऊर्जा आत्मसात होने लगती है। लेकिन स्त्री की जो काम— ऊर्जा है, वह अनिवार्य रूप से उसके मासिक धर्म में स्थलित होती रहेगी। वह यंत्रवत है। इसलिए स्त्री की काम—ऊर्जा उस तरह से अंतस में तिरोहित नहीं हो सकती, जैसे पुरुष की काम—ऊर्जा तिरोहित हो सकती है।

पुरुष की काम—ऊर्जा जब अंतस में तिरोहित हो जाती है, तो तेज पैदा होता है। वही तेज ब्रह्मचर्य है। स्त्री की व्यवस्था अन्यथा है शरीर की। बायोलाजिकली उसकी शरीर की व्यवस्था अलग है। मासिक धर्म उसकी स्वेच्छा का हिस्सा नहीं है।

इसे थोड़ा समझ लें।

पुरुष की वीर्यशक्ति उसकी स्वेच्छा पर निर्भर है। स्त्री की कामशक्ति उसकी स्वेच्छा पर निर्भर नहीं है। वह स्वेच्छा से उसमें कुछ भी नहीं कर सकती। वह उसके शरीर का हिस्सा है। इसलिए स्त्री को जब ब्रह्मचर्य में उतरना हो, तो उसकी ब्रह्मचर्य की साधना पुरुष की ब्रह्मचर्य की साधना से भिन्न होगी। पुरुष के ब्रह्मचर्य की पाजिटिव है, एग्रेसिव है, आक्रामक है, लेकिन स्वेच्छा पर निर्भर है। उसका ऊर्ध्वीकरण हो सकता है। लेकिन स्त्री की काम—ऊर्जा का ऊर्ध्वीकरण नहीं होता, क्योंकि उसकी स्वेच्छा पर निर्भर नहीं है।

इसीलिए महावीर ने तो कहा कि स्त्रियां मोक्ष न जा सकेंगी, क्योंकि महावीर का जोर पूरा ब्रह्मचर्य की साधना पर था। इसलिए महावीर ने स्त्रियों को मोक्ष जाने के लिए नहीं कहा। उन्होंने कहा कि स्त्री को एक बार पुरुष का जन्म लेना पड़ेगा, पुरुष की पर्याय में आना पड़ेगा, फिर वह मुक्त हो सकती है। सीधी स्त्री के शरीर से स्त्री मुक्त नहीं हो सकती है। उसका कुल कारण इतना था कि महावीर की जो पूरी प्रक्रिया थी, वह पुरुष के ब्रह्मचर्य की थी।

लेकिन कीर्ति की साधना अलग है, वह ठीक ब्रह्मचर्य के जैसी है। अगर कोई स्त्री कीर्ति को उपलब्ध हो जाए, तो पुरुष के शरीर की कोई भी जरूरत नहीं है। स्त्री के शरीर से ही मोक्ष उपलब्ध हो जाएगा। लेकिन कीर्ति की प्रक्रिया बिलकुल और होगी।

कीर्ति की प्रक्रिया का अर्थ है कि स्त्री के मन में जितनी तीव्रता से मातृत्व का भाव गहन हो जाए। उसकी साधना मां की साधना होगी। वह पूरे जगत की मां हो जाए। उसके मन में एक ही भाव तरंगित होता रहे, मां होने का। स्त्री होने का भाव छूट जाए, पत्नी होने का भाव छूट जाए, सिर्फ मां होने का भाव गहन होता चला जाए। जिस दिन स्त्री के भीतर मां होने की धारणा इतनी गहन हो जाए कि अगर कोई कामातुर पुरुष भी उसके पास आकर उसके हृदय से लग जाए, तो भी उसे अपने बेटे का ही स्मरण हो। वह उसके सिर पर वैसा ही साधना में वीर्य का ऊर्ध्वीकरण होगा। पुरुष की जो ऊर्जा है, वह हाथ रख उम्र, जैसे बैटा उसके पास आ गया हो। उसके भीतर न कोई भय पैदा हो, न कोई चिंता पैदा हो, न कोई घबड़ाहट पैदा हो, वह उसको बेटे की तरह छाती से लगा ले।

और यह अदभुत बात है कि अगर कोई भी स्त्री किसी पुरुष को बेटे की तरह छाती से लगा ले, पुरुष की वासना तत्क्षण वहीं क्षीण हो जाएगी। वहीं, उसी वक्त क्षीण हो जाएगी। क्योंकि स्त्री का जो आमंत्रक रूप है, वह अगर खो जाए, तो पुरुष तत्काल पाएगा कि वह शांत हो गया है।

इस गुण का नाम कीर्ति है। और जब यह गुण विकसित होता है, तो स्त्री पर भी एक तेज आता है। उस पर भी एक अनूठा सौंदर्य आता है। उस सौंदर्य का कोई संबंध शरीर के सौंदर्य से नहीं है। कुरूप से कुरूप स्त्री में भी अगर कीर्ति फलित हो जाए, तो उसकी सारी शारीरिक कुरूपता के भीतर से सौंदर्य की आभा फूटने लगती है। उसकी कुरूपता को लोग देख ही न पाएंगे, उसके भीतर का सौंदर्य इतना हावी हो जाएगा। और सुंदरतम स्त्री को भी, अगर कीर्ति न हो, तो उसकी सुंदरता ऊपर चमड़ी पर होती है। और थोड़ी ही देर में भीतर की कुरूपता दिखाई पड़नी शुरू हो जाती है।

इसलिए आज अगर पश्चिम में स्त्री—पुरुष के बीच के सारे संबंध टूट गए हैं, दिन दो दिन से ज्यादा नहीं टिक सकते। महीने दो महीने टिक जाएं, तो काफी लंबे हैं। साल दो साल टिक जाएं, तो मानना चाहिए कि महान घटना है। उसका कारण सिर्फ इतना ही है कि सौंदर्य एकदम छिछला है।

और पश्चिम में आज सुंदरतम स्त्रियां हैं, संभवतः पृथ्वी पर सर्वाधिक सुंदर स्त्रियां हैं। लेकिन सौंदर्य छिछला है। स्किनडीप! जितनी चमड़ी की गहराई है, उतनी ही सौंदर्य की गहराई है। और जैसे ही कोई व्यक्ति करीब आता है, थोडे दिन में ही चमड़ी के सौंदर्य के पार जो विराट कुरूपता छिपी है, वह दिखाई पड़नी शुरू हो जाती है। वही सारे संबंधों को क्षीण कर जाती है और तोड़ जाती है।

कृष्ण कहते हैं, स्त्रियों में मैं कीर्ति, श्री, वाक्, स्मृति..।

श्री भी स्त्रैण गुण है, जैसे कीर्ति। कीर्ति एक साधना है। और जब कीर्ति फलित होती है, और जब कीर्ति में फूल लगते हैं, और जब कीर्ति घनी होती है, और जब कीर्ति केवल मातृत्व नहीं रह जाती, बल्कि जब स्त्री को यह बोध भी मिट जाता है कि मैं स्त्री हूं. क्योंकि मां का बोध भी स्त्री का ही बोध है। और कितना ही ऊंचा हो, मां होकर भी स्त्री स्त्री तो बनी ही रहती है। लेकिन जब कभी ऐसी घटना घटती है, कीर्ति के आगे के कदम पर जब कि स्त्री को यह बोध भी नहीं रह जाता कि वह स्त्री है, तब उसमें श्री का फूल खिलता है। तब उसमें एक सौंदर्य आता है। उस सौंदर्य को हम अपार्थिव कह सकते हैं। वह कभी किसी मीरा में दिखाई पड़ता है। कभी किसी मरियम में वह दिखाई पड़ता है। बहुत मुश्किल से!

श्री, कृष्ण कहते हैं, स्त्रियों में श्री मैं हूं।

लेकिन जब कभी वह फूल खिलता है—मुश्किल से खिलता है—लेकिन जब कभी वह फूल खिलता है, तो स्त्री स्त्री नहीं होती। पुरुष के प्रति पुरुष होने का जो खयाल है, वह भी खो जाता है। और जिन मुल्कों ने इस श्री को उपलब्ध करने की क्षमता पा ली थी, उन मुल्कों ने

अपने ईश्वर की धारणा स्त्री के रूप में की, मां के रूप में की। जिन मुल्कों में स्त्रियों की साधना इस जगह तक पहुंची कि इस आंतरिक, आत्मिक श्री को उपलब्ध हो गई, उन मुल्कों ने अपने परमात्मा की जो धारणा है, वह पुरुष के रूप में नहीं की है।

इसे हम समझें थोड़ा। जर्मनी अपने मुल्क को फादरलैंड कहता है, पितृभूमि! हम अपने मुल्क को मातृभुमि कहते हैं, मदरलैंड कहते हैं। जर्मनी ने कभी भी श्री जैसी घटना नहीं देखी। उसने पुरुषों का बड़ा विकास देखा है। पुरुष के जो गुण हैं, जर्मनी में अपने चरम शिखर को पहुंचे हैं।

इसलिए जर्मनी का अपने मुल्क को फादरलैंड कहना ठीक है। पितृभूमि! स्त्री गौण है, उसने कभी वैसी चरम स्थिति नहीं पाई। पश्चिम में पुरुष के गुणों ने बड़ी गहनता से विकास किया। लेकिन पूरब ने स्त्री के गुणों को बड़ी गहनता से विकसित किया। और मजे की बात यह है कि पुरुष के गुण विकसित हो जाएं, तो अंतिम परिणाम युद्ध होगा, क्योंकि पुरुष के सारे गुण योद्धा के गुण हैं। और पुरुष का जो परम ऐश्वर्य है, वह उसके योद्धा होने में प्रकट होता है।

फ्रेडरिक नीत्शे ने कहा है कि जब मैं रास्ते पर सैनिकों को चलते देखता हूं पंक्तिबद्ध, उनके जूतों की एक स्वर से गिरती आवाज, एक लय में बंधी, उनकी संगीनों पर चमकती हुई सूरज की किरणें, उनकी पंक्तिबद्ध संगीनों पर पड़ती सूरज की झलक, तब जैसे सौंदर्य का मैं अनुभव करता हूं ऐसा सौंदर्य मैंने कोई और दूसरा नहीं देखा। पुरूष के गुण अगर विकसित होंगे, तो वे ऐसे ही होंगे।

अभी पश्चिम के मनोवैज्ञानिकों ने कहना शुरू किया है कि हमें पुरुष के गुणों के साथ स्त्री के गुणों को भी विकसित करना जरूरी है। नहीं तो संतुलन टूट गया है।

पूरब ने स्त्री के गुणों को बड़ी गहराई से परखा और विकसित किया। और मैं मानता हूं कि अगर दोनों में चुनाव करना हो, तो स्त्री के गुण ही विकसित करने चाहिए, क्योंकि सब पुरुषों को स्त्री से ही पैदा होना पड़ता है। और अगर स्त्री अविकसित हो, तो पुरुष कभी विकसित नहीं हो पाते। और सब पुरुषों को स्त्री के पास ही बड़ा होना पड़ता है। पुरुष की जिंदगी स्त्री के आस—पास ही व्यतीत होती है—चाहे वह मां हो, चाहे वह पत्नी हो, चाहे वह बहन हो, चाहे बेटी हो—स्त्री के इर्द—गिर्द घूमती है। स्त्री केंद्र है, पुरुष परिधि है; वह आस—पास वर्तुलाकार घूमता है। अगर स्त्री के गुण विकसित न हों, तो समाज बहुत दीन हो जाता है।

श्री जो है, स्त्री का चरम उत्कर्ष है। वह उसकी आत्मा है। जब उसमें स्त्रैणता का भाव भी चला जाता है, तब वह दिव्य हो जाती है। कृष्ण कहते हैं, वह मैं हूं।

वाक्, वाणी! स्त्रियों को हम बहुत बातचीत करते देखते ही हैं। शायद बातचीत ही उनका धंधा है। लेकिन वाक् से इस बातचीत का मतलब नहीं है। यह विकृति है स्त्री के गुण की, जो दिखाई पड़ती है। स्त्रियां चुप बैठी दिखाई पड़े, यह मिरेकल है, चमत्कार है।

मैंने सुना है कि लंदन में एक बार एक प्रतियोगिता हुई कि कोई सबसे बड़ी झूठ बोले। उस आदमी को प्रथम पुरस्कार मिला, जिसने कहा, मैंने एक बगीचे की बेंच पर दो स्त्रियों को घंटेभर तक चुप। बैठे देखा! कहते हैं, उसे पहला पुरस्कार मिल गया झूठ बोलने का। यह हो ही नहीं सकता। इसके होने का कोई उपाय ही नहीं है। स्त्रियां बातचीत में लगी हैं!

लेकिन वाक् बातचीत नहीं है। वाक् तो तब प्रकट होता है, जब स्त्री अपने अस्तित्व में परम मौन को उपलब्ध होती है। जब वह बिलकुल मौन हो जाती है, तब उसकी जो वाणी है, वह बहुमूल्य हो जाती है। तब उसकी वाणी ऋचाएं बन जाती हैं। लेकिन जो स्त्री मौन नहीं हो सकती, वह कभी वाक् को उपलब्ध नहीं होगी।

इसलिए स्त्री का गुण उसका चुप होना, उसका मौन होना है।

उसका इतना मौन होना है कि पता चले कि जैसे उसके पास वाणी ही नहीं है। स्त्री में सब अच्छा लगता है, लेकिन उसकी बातचीत

बिलकुल बकवास और उबाने वाली होती है। सुंदर से सुंदर स्त्री थोड़ी देर में बहुत घबड़ाने वाली हो जाती है, अगर वह बातचीत। करती चली जाए।

मौन की एक गरिमा है। असल में शब्द भी आक्रमण है। शब्द भी दूसरे पर हमला है। मौन अनाक्रमण है।

सुना है मैंने, वाचस्पति विवाह करके आए। पर वे तो धुनी आदमी थे और बारह वर्षों तक वे तो भूल ही गए कि पत्नी घर में है। कथा बड़ी मीठी है। वाचस्पति लिख रहे थे ब्रह्मसूत्र पर अपनी टीका। वे सुबह से सांझ और रात, आधी रात तक टीका लिखने में लगे रहते। पत्नी को घर ले आए। पिता ने कहा, शादी करनी है।

पिता बूढ़े थे। सुखी होते थे। शादी करके घर आ गए। पत्नी घर में चली गई। वाचस्पति अपनी टीका लिखने में लग गए। बारह वर्ष!

उन्हें खयाल ही न रहा, वह जो शादी हो गई, और पत्नी घर में आ गई। वह सब बात समाप्त हो गई।

लेकिन उन्होंने एक निर्णय किया था कि जिस दिन यह ब्रह्मसूत्र की टीका पूरी हो जाएगी, उस दिन मैं संन्यास ले लूंगा। बारह वर्ष बाद आधी रात टीका पूरी हो गई। अचानक वाचस्पति की आंखें पहली दफा टीका को छोड़कर इधर—उधर गईं। देखा कि एक सुंदर सा हाथ पीछे से आकर दीये की ज्योति को ऊंचा कर रहा है। सोने की चूड़ियां हैं हाथ पर।

लौटकर उन्होंने देखा, और कहा, कोई स्त्री इस आधी रात में मेरे पीछे! पूछा, तू कौन है? स्त्री ने कहा कि धन्य मेरे भाग्य कि आपने पूछा। बारह वर्ष पहले मुझे आप विवाह करके ले आए थे, तब से मैं प्रतीक्षा कर रही हूं कि कभी आप जरूर पूछेंगे कि तू कौन है! पर इतनी देर तू कहां थी? उसने कहा कि मैं रोज आती थी। जब दीये की लौ कम होती, तब बढ़ा जाती थी। दीया सांझ जला जाती थी, सुबह हटा लेती थी। आपके काम में बाधा न पड़े, इसलिए आपके सामने कभी नहीं आई। आपके काम में रंचमात्र बाधा न पड़े, इसलिए कभी मैंने कोशिश नहीं की कि बताऊं मैं भी हूं। मैं थी, और आप अपने काम में थे।

वाचस्पति की आंखों में आंसू आ गए। उन्होंने कहा, अब तो बहुत देर हो गई। क्योंकि मैंने तो निर्णय किया है कि जिस दिन जिस क्षण टीका पूरी हो जाएगी, उसी क्षण घर छोड़कर संन्यासी हो जाऊंगा। अब मैं तेरे लिए क्या कर सकता हूं! तूने बारह वर्ष प्रतीक्षा की और आज की रात मेरे जाने का वक्त है! अब मैं उठकर बस घर के बाहर होने को हूं। अब मैं तेरे लिए क्या कर सकता हूं? वाचस्पति की आंख में आंसू..।

उनकी स्त्री का नाम भामती था। इसलिए उन्होंने अपनी ब्रह्मसूत्र की टीका का नाम भामती रखा है। भामती से कोई संबंध नहीं है। उनकी ब्रह्मसूत्र की टीका का नाम भामती से कोई लेना—देना नहीं है। लेकिन अपनी टीका का नाम उन्होंने भामती रखा है। बड़ी अदभुत टीका है।

वाचस्पति अदभुत आदमी थे। कहा कि बस, तेरी स्मृति में भामती इसका नाम रख देता हूं और घर से चला जाता हूं। लेकिन तू दुखी होगी। उनकी पत्नी ने कहा, दुखी नहीं, मुझसे ज्यादा धन्यभागी और कोई भी नहीं। इतना क्या कम है कि आपकी आंखों में मेरे लिए आंसू आ गए! मेरा जीवन कृतार्थ हो गया।

इतनी ही बात वाचस्पति की अपनी स्त्री से हुई है। लेकिन यह बारह साल के मौन के बाद ये जो थोड़े से शब्द हैं, इनको हम वाणी कह सकते हैं, वाक् कह सकते हैं। स्त्री के परम मौन से जब कुछ निकलता है! लेकिन उसका परम मौन होना बड़ा मुश्किल है।

कृष्ण कहते हैं, मैं वाक् हूं स्मृति हूं मेधा हूं धृति हूं क्षमा हूं। स्मृति। पुरुष के पास एक तरह की स्मृति होती है, स्त्री के पास दूसरे तरह की। शायद मनोवैज्ञानिक राजी भी न हों। क्योंकि वे कहें, एक ही तरह की स्मृति होती है।

नहीं होती है। स्त्री—पुरुष के पास एक तरह का कुछ भी नहीं होता। पुरुष की स्मृति बौद्धिक होती है, स्त्री की स्मृति अस्तित्वगत होती है, टोटल होती है।

अगर पुरुष किसी स्त्री को प्रेम करता है, तो उसके स्मरण में इतना ही रह जाता है कि मैंने प्रेम किया था। यह एक स्मृति होती है, मेंटल, मन में। लेकिन स्त्री ने अगर किसी को प्रेम किया है, तो उसके रोएं— रोएं और कण—कण में यह स्मृति समा जाती है। उसके पूरे व्यक्तित्व में रम जाती है, भर जाती है। और जब स्त्री याद करती है कि किसी ने मुझे प्रेम किया, किसी को उसने प्रेम किया, तो यह बौद्धिक बात नहीं होती, इसमें पूरा अस्तित्व समाहित होता है! वह पूरी की पूरी इसमें मौजूद होती है।

इसलिए पुरुष चाहें, तो बहुत स्त्रियों को भी प्रेम कर सकते हैं, स्त्रियों के लिए बहुत पुरुषों को प्रेम करना स्वभावत: कठिन और असंभव है।

पुरुष के लिए सभी घटनाएं बुद्धि में हैं। बुद्धि एक हिस्सा है। स्त्री के लिए सारी घटनाएं उसके पूरे व्यक्तित्व में हैं। उसका रोआं—रोआं इकट्ठा है।

मनस्विद इतना तो मानते हैं कि पुरुष की कामवासना उसके काम—केंद्र में निहित होती है, लेकिन स्त्री की कामवासना उसके पूरे शरीर में फैली होती है। स्त्री का पूरा शरीर इरोटिक है, पूरा शरीर। और उसकी सारी स्मृति पूरी है। उसकी स्मृति में बौद्धिक स्मरण, ऐसा नहीं है।

और जो स्मृति पूरी हो इतनी, उसका गुण ही दूसरा हो जाता है। उसका आयाम, उसका अर्थ, अभिप्राय दूसरा हो जाता है।

कृष्ण कहते हैं, मैं स्त्रियों में स्मृति हूं। समग्रता की, इंटिग्रेटेड, पूरी, पूर्ण। स्त्री याद करती है, बुद्धि से नहीं, विचार से नहीं, अपने पूरे होने से, टोटल बीइंग।

इसलिए एक पिता है और एक मां है। पिता एक बिलकुल औपचारिक संस्था मालूम होती है। न भी हो, चल सकता है। पशुओं में नहीं भी होती है, तो भी चलता है। लेकिन मां एक औपचारिक संस्था नहीं है। मां और बेटे का संबंध एक स्मृति मात्र नहीं है बुद्धि की; एक सारे अस्तित्व का लेन—देन है। मां के लिए उसका बेटा, उसका ही टुकड़ा है, उसका ही फैला हुआ हाथ है।

अगर एक बेटे की हत्या कर दी जाए और मां को पता भी न हो, तो भी मां के प्राण आंदोलित हो जाते हैं। अब तो इस पर बड़े वैज्ञानिक परीक्षण हुए हैं। एक सैनिक मरता है युद्ध में और उसकी मां बेचैन हो जाती है हजारों मील दूर। पिता पर कोई असर नहीं पड़ता। पिता का अस्तित्वगत संबंध नहीं है। मेरा बेटा है, यह एक बौद्धिक स्मृति है। और कल अगर एक चिट्ठी मिल जाए, जिससे पता चले कि नहीं, किसी और का बेटा है, तो पिता का सारा संबंध टूट जाएगा, विलीन हो जाएगा। वह संबंध गणित का है, हिसाब का है। बहुत गहरा और आंतरिक नहीं है।

इसलिए कोई पुरुष अगर पिता न भी बने, तो कोई भेद नहीं पड़ता। कोई भेद नहीं पड़ता; व्यक्तित्व में कोई कमी नहीं आती। इसलिए पुरुष की उत्सुकता पिता बनने की कम और पति बनने की ज्यादा होती है। स्त्री की उत्सुकता भी अगर पत्नी बनने की हो, तो उसे स्त्री होने का रहस्य पता नहीं है।

स्त्री की उत्सुकता मौलिक रूप से मां बनने की है। अगर वह पति को भी स्वीकार करती है, तो मां बनने के मार्ग पर। और अगर कोई पुरुष पिता बनना भी स्वीकार करता है, तो पति की मजबूरी में। कोई उत्सुकता पुरुष को पिता बनने की वैसी नहीं है। और अगर कभी रही भी है, तो उसके कारण अवांतर रहे हैं। जैसे धन है, संपत्ति है, जायदाद किसकी होगी! क्या नहीं होगा! बेटा चाहिए, तो यह सब सम्हालेगा। या क्रियाकांड और धर्म के कारण, कि अगर पिता मर जाएगा और बेटा नहीं होगा, तो अंतिम क्रिया कौन करेगा? और फिर पानी कौन चढ़ाका? लेकिन ये सब गणित के संबंध हैं। इन

सबमें हिसाब है। ये परपजिव हैं।

मां का संबंध उसके बेटे से नान—परपजिव है, निष्प्रयोजन है। वह उसके ही अस्तित्व का फैलाव है। अगर बेटा मरता हो, तो मां का हृदय पीड़ित हो जाता है, दुखी हो जाता है, चिंतित हो जाता है। और मनुष्यों में ही नहीं, अभी पशुओं पर भी प्रयोग किए हैं रूस में उन्होंने। खरगोश को काटते हैं और उसकी मां मीलों दूर है और उसके हृदय में असर पड़ते हैं। उसकी हृदय—गति बढ़ जाती है। वह कंपने लगती है। उसकी आंख में आंसू आ जाते हैं। यंत्रों से अब तो इसकी परीक्षा हो चुकी है कि पशुओं की मां भी किसी अशांत मार्ग से प्रभावित होती है। कोई इतनी गहरी स्मृति है, जिसको हम बायोलाजिकल कहें, साइकोलाजिकल नहीं, जिसको हम मानसिक न कहें, बल्कि कहें कि जैविक, उसके रोएं—रोएं में भरी हुई है। कृष्ण कहते हैं, स्त्रियों में मैं स्मृति हूं।

कारण से कहते हैं। अगर कोई व्यक्ति ऐसी ही स्मृति से परमात्मा की तरफ भर जाए, तो ही उसे उपलब्ध होता है, ऐसी अस्तित्वगत स्मृति से। ऐसा खोपड़ी में राम—राम कहने से कुछ भी नहीं होता। जब रोआं—रोआं कहने लगे, धड़कन— धड़कन कहने लगे। कहना ही न पड़े और सबमें गंजने लगे भीतर, कहने की जरूरत ही न रह जाए, होना ही उसका स्मरण बन जाए, तब, तब परमात्मा उपलब्ध होता है।

मेधा, धृति, क्षमा।

धृति का अर्थ है, धीरज, धैर्य, स्थिरता। पुरुष बहुत अधीर है। बहुत अधीर है। शायद बायोलाजिकल कारण भी है। शायद उसकी जो वीर्य—ऊर्जा है, वह भी अधीर है। इसलिए उसका पूरा व्यक्तित्व अधीर है। स्त्री शांत है, घिर है, धैर्य से भरी है।

अभी तक हम सोचते रहे थे ऐसा कि पुरुष शक्तिशाली है। एक हिसाब से है। मस्कुलर, पेशीगत उसकी सामर्थ्य ज्यादा है। अगर लड़ने जाए, तो स्त्री से ज्यादा शक्तिशाली है। लेकिन यह तो मापदंड की बात हुई, एक क्राइटेरियन की बात हुई। किसी और हिसाब से स्त्री पुरुष से ज्यादा शक्तिशाली है।

जहां तक थिरता का सवाल है, जहां तक सहने का सवाल है, सहनशीलता का सवाल है, धैर्य का सवाल है...। आपको पता नहीं होगा, आपको खयाल नहीं होगा कि नौ महीने एक मां अपने बेटे को अपने पेट में ढोती है। एक पुरुष को नौ दिन भी ढोना पड़े, तो उसे पता चले! अगर पुरुष को गर्भ ढोना पड़े, तो गर्भपात नियम हो जाए। फिर बच्चे को मां बड़ा करती है। एक रात जरा छोटे बच्चे को अपने बिस्तर पर सुलाकर देखें, तब आपको पता चलेगा कि वह !? आपको पागल कर देगा।

सुना है मैंने, मुल्ला नसरुद्दीन अपने बेटे को लेकर एक दिन बच्चों को घुमाने की गाड़ी में लेकर निकला है। बच्चा रो रहा है। और नसरुद्दीन बार—बार कहता है, नसरुद्दीन, शांत हो जा! नसरुद्दीन, शांत हो जा! नसरुद्दीन, शांत हो जा! एक की औरत नसरुद्दीन की तकलीफ देखती है। सोचती है कि उसका बेटा, जिसका नाम नसरुद्दीन होगा, रो रहा है, इसलिए उसको शांत कर रहा है!

वह की आकर कहती है कि बेटा तो बड़ा प्यारा है। इसका नाम नसरुद्दीन है? नसरुद्दीन ने कहा, इसका नाम नहीं है नसरुद्दीन। नसरुद्दीन मेरा नाम है। और मैं अपने से कह रहा हूं शांत हो जा, शांत हो जा। मन तो इसकी गर्दन दबाने का हो रहा है! नसरुद्दीन, शांत हो जा। यह मेरी खोपड़ी खाए जा रहा है!

स्त्री का धैर्य एक अर्थ में अनंत है। उसकी सहने की क्षमता भी बहुत है। आप जिस तकलीफ में टिक न सकेंगे, उसमें स्त्री टिकती है।

इसलिए आपको पता है कि स्त्रियों की उम्र पुरुषों से पांच साल ज्यादा है! औसत उम्र। स्त्रियां कम बीमार पड़ती हैं, पुरुषों की बजाय। और अगर बीमार भी पड़ती हैं, तो उसका कारण शारीरिक कम और मानसिक ज्यादा होता है। स्त्रियों की बीमारी को रेसिस्ट करने की क्षमता मेडिकली सिद्ध हो गई है कि बहुत ज्यादा है। स्त्रियां कई बीमारियों को बिना तकलीफ के पार हो जाती हैं, बीमारियां प्रवेश नहीं कर सकती हैं। पुरुष बहुत जल्दी से बीमार हो जाता है। उसकी मस्कुलर ताकत ज्यादा है।

लेकिन मस्कुलर ताकत का तो वक्त भी गया। इसलिए आने वाली दुनिया में स्त्री रोज ताकतवर होती जाएगी। सौ साल के भीतर...। क्योंकि मस्कुलर ताकत का वक्त गया। न तो अब शेर से लड़ने जाना पड़ता है, न लकड़ी काटने जाना पड़ता है। वह सब काम तो मशीन करने लगी। पुरुष के जितने काम थे, मशीन करने लगी। और स्त्री का कोई भी काम अभी तक मशीन करने में समर्थ नहीं है।

आने वाले सौ साल में स्त्री आपके ऊपर उठती जाएगी। उसकी ताकत बड़ी होती जाएगी। होती ही जाएगी। क्योंकि आपका काम तो, आप एक अर्थ में अब बेकार हैं। अगर आटोमेटिक पूरा जगत हो जाता है सौ वर्षों में, तो पुरुष बेकार है। उसके बिना काम चल सकेगा। स्त्री बेकार अभी नहीं हो सकती। उसके कुछ और ही गुण हैं, जो अनिवार्य हैं।

कृष्ण कहते हैं, धृति मैं हूं क्षमा मैं हूं।

स्त्री के व्यक्तित्व में जिस मात्रा में प्रेम है, उसी मात्रा में क्षमा है। जितना ज्यादा प्रेम होगा, उतनी क्षमा होगी। जितना ज्यादा धैर्य होगा, उतनी क्षमा होगी। और जितना ज्यादा मातृत्व होगा, उतनी क्षमा होनी ही चाहिए। पुरुष को क्षमा अभ्यास करनी पड़ती है। स्त्री की क्षमा सहज घटित होती है। वह उसका स्वभाव है।

लेकिन अब तक ऐसा हुआ कि मनुष्य—जाति ने पुरुषों को केंद्र मानकर काम चलाया। इसलिए हम कहते हैं मनुष्य—जाति, इसलिए हम कहते हैं मैनकाइंड, सब पुरुष के नाम हैं। सब पुरुष के नाम हैं! स्त्री को हम पुरुष में सम्मिलित कर लेते हैं।

लेकिन वह भूल हो गई। स्त्री का अपना व्यक्तित्व है, पुरुष से बिलकुल अलग। और जब तक इस पृथ्वी पर स्त्री के व्यक्तित्व के जिन गुणों की कृष्ण ने यहां बात की है, वे भी सारे विकसित नहीं हो जाते, तब तक दुनिया एक इम्बैलेंस, एक असंतुलन में रहेगी। पुरुष का पलड़ा बहुत भारी होकर नीचे बैठ गया है। और स्त्री के गुण विकसित नहीं हो पाए हैं।

और अब एक दुर्घटना घट रही है दुनिया में कि स्त्रियां इस लंबी परेशानी से पीड़ित होकर एक प्रतिक्रिया में उतर रही हैं और वे कोशिश कर रही हैं पुरुषों जैसा हो जाने की। वह बड़ी से बड़ी दुर्घटना है, जो मनुष्य—जाति के ऊपर घट सकती है। स्त्रियां कोशिश कर रही हैं पुरुष जैसा हो जाने की—कपड़े—लत्तों से, व्यक्तित्व से, ढंग से, बात से। जो—जो व्यवस्था पुरुष को है, वही—वही उनको भी होनी चाहिए।

भूल है उसमें, क्योंकि स्त्री का व्यक्तित्व बुनियादी रूप से अलग है। उसे भी हक होना चाहिए खुद के विकसित करने का, उतना ही जितना पुरुष को है। लेकिन पुरुष जैसा विकसित होने का हक बहुत महंगा सौदा है। और अगर स्त्रियां पुरुष जैसी होती हैं, तो हम इस दुनिया को बिलकुल बेरौनक कर देंगे। कुछ गुण एकदम खो जाएंगे, जो स्त्रियों के ही हो सकते थे।

आज पश्चिम में कीर्ति नहीं हो सकती स्त्रियों में। श्री नहीं हो सकती। क्षमा नहीं हो सकती। धृति नहीं हो सकती। जिस स्मृति की मैंने बात कही, वैसी समग्र स्मृति नहीं हो सकती। क्योंकि वह हर मामले में पुरुष के साथ, जैसा पुरुष है, वैसा करने की कोशिश में लगी है।

इसमें नुकसान पुरुष को होने वाला नहीं है। इसमें नुकसान स्त्री को ही हो जाएगा। क्योंकि वह नंबर दो की ही पुरुष हो सकती है। पुरुष तो हो नहीं सकती, सेकेंडरी, नंबर दो की पुरुष हो सकती है। और नंबर दो की पुरुष होकर वह एकदम कुरूप और विकृत हो जाएगी।

सुना है मैंने, मुल्ला नसरुद्दीन एक भीड़ में खड़ा है। टिकट खरीदने लोग खड़े हैं एक क्यू में सिनेमागृह के पास। सामने के व्यक्ति से, बड़ी देर हो गई है, वह कुछ बात करना चाहता है। उसने कहा कि देखते हैं, कैसा जमाना बिगड़ गया! सामने देखते हैं उस लड़के को, जो खिड़की के करीब पहुंच गया। लड़कियों जैसे कपड़े पहन रखे हैं! मुल्ला नसरुद्दीन के पड़ोसी व्यक्ति ने कहा, क्षमा करें, आप भूल में हैं। वह लड़का नहीं है, लड़की ही है। नसरुद्दीन ने कहा कि तुम्हारे पास क्या मापदंड है इतनी दूर से! मुझे बिलकुल लड़का मालूम होता है! उसने कहा, क्षमा करिए। वह मेरी ही लड़की है। लड़की है, लड़का नहीं; मेरी ही लडकी है। तब तो नसरुद्दीन ने कहा कि क्षमा करिए। मुझसे बड़ी भूल हो गई! कपड़े की वजह से यह भूल हो गई। तो आप उसके पिता हैं! उस व्यक्ति ने कहा, माफ करिए। आप फिर भूल कर रहे हैं, मैं उसकी मां हूं!

स्त्रियां कपड़े पुरुषों जैसा पहनें, चलें पुरुषों जैसा, उठें पुरुषों जैसा, पुरुष का व्यवसाय करें, पुरुष के ढंग से जीएं, पुरुष सिगरेट पीए तो वे सिगरेट पीए, पुरुष गालियां बके तो वे गालियां बके! अमेरिका में स्त्रियां उन अपशब्दों का प्रयोग कर रही हैं, जिनका कभी भी स्त्रियों ने नहीं किया था। लेकिन अगर पुरुष के बराबर समानता चाहिए, तो करना ही पड़ेगा। जो पुरुष कर रहा है, वही करना पडेगा।

तो जो पुरुष के अत्याचार से भी नहीं मिटा था, वह उनकी नासमझी से बिलकुल मिट जाएगा। स्त्रियों के गुण अलग हैं।

इसलिए कृष्ण ने उचित ही किया कि स्त्रियों के गुण अलग से गिनाए और कहा कि अगर मुझे तुझे स्त्रियों में खोजना हो तो तू कीर्ति में, श्री में, वाक् में, स्मृति में, मेधा में, धृति में और क्षमा में मुझे देख लेना।

अर्जुन ने पूछा है कि किन भावों में मैं आपको देखूं? कहां आपको खोजूं? कहां आपके दर्शन होंगे? तो स्त्रियों में अगर देखना हो, तो इनमें खोज लेना।

तथा मैं गायन करने योग्य श्रुतियों में बृहत्साम, छंदों में गायत्री छंद तथा महीनों में मार्गशीर्ष का महीना, ऋतुओं में वसंत ऋतु हूं। अंतिम, वसंत ऋतु पर दो शब्द हम खयाल में ले लें।

ऋतुओं में खिला हुआ, फूलों से लदा हुआ, उत्सव का क्षण वसंत है। परमात्मा को रूखे—सूखे, मृत, मुर्दा घरों में मत खोजना। जहां जीवन उत्सव मनाता हो, जहां जीवन खिलता हो वसंत जैसा, जहां सब बीज अंकुरित होकर फूल बन जाते हों, उत्सव में, वसंत में मैं हूं।

ईश्वर सिर्फ उन्हीं को उपलब्ध होता है, जो जीवन के उत्सव में, जीवन के रस में, जीवन के छंद में, उसके संगीत में, उसे देखने की क्षमता जुटा पाते हैं। उदास, रोते हुए, भागे हुए लोग, मुर्दा हो गए लोग, उसे नहीं देख पाते। पतझड़ में उसे देखना बहुत मुश्किल है। मौजूद तो वह वहां भी है। लेकिन जो वसंत में भी उसे नहीं देख पाते, वे पतझड़ में उसे कैसे देख पाएंगे? वसंत में जो देख पाते हैं, वे तो उसे पतझड़ में भी देख लेंगे। फिर तो पतझड़ पतझड़ नहीं मालूम पड़ेगी, वसंत का ही विश्राम होगा। फिर तो पतझड़ वसंत के विपरीत भी नहीं मालूम पड़ेगी; वसंत का आगमन या वसंत का जाना होगा। लेकिन देखना हो पहले, तो वसंत में ही देखना उचित है।

शायद पृथ्वी पर हिंदुओं ने, अकेला ही एक ऐसा धर्म है, जिसने उत्सव में प्रभु को देखने की चेष्टा की है। एक उत्सवपूर्ण, एक, फेस्टिव, नाचता हुआ; छंद में, और गीत में, और संगीत में, और

फूल में!

गीता दर्शन—भाग—5
परम गोपनीय—मौन—(प्रवचन—चौदहवा)
अध्याय—10

सूत्र—

द्यूतं छलयतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम्।
जयोऽस्थि व्यवसायोऽस्मि सत्त्वं सत्ववतामहम्।।36।।
वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि पाण्डवानां धनंजयः।
मुनीनामध्यहं व्यासः कवीनामुशना कविः।।37।।

दण्डो दमयतामस्मि नीतिरस्मि जिगीषताम।
मौनं चैवास्मि गुह्यानां ज्ञानं ज्ञानवतामहम्।।38।।

हे अर्जुन मैं छल करने वालों में जुआ और प्रभावशाली पुरुषों का प्रभाव हूं तथा मैं जीतने वालों का विजय हूं और निश्चय करने वालों का निश्चय एवं सात्विक पुरुषों का सात्विक भाव हूं।

और वृष्णिवंशियों में वासुदेव अर्थात मैं स्वयं तुम्हारा सखा और पांडवों में धनंजय अर्थात तू एवं मुनियों में वेदव्यास और कवियों में शुक्राचार्य कवि भी मैं ही हूं।

और दमन करने वालों का दंड अर्थात दमन करने की शक्ति हूं जीतने की ड़च्छा वालों की नीति हूं और गोपनीयों में अर्थात गुप्त रखने योग्य भावों में मौन हूं तथा ज्ञानवानों का तत्व— ज्ञान मैं ही हूं।

है अर्जुन, मैं छल करने वालों में जुआ, प्रभावशाली पुरुषों का प्रभाव, जीतने वालों का विजय, निश्चय करने वालों का निश्चय, सत्पुरुषों का सात्विक भाव हूं। हैरानी होगी यह सोचकर कि कृष्ण कहते हैं कि मैं छल करने वालों में जुआ हूं।

शायद जीवन में सभी कुछ छल है। और जीवन की जो छल— स्थिति है, वह जैसी जुए में प्रकट होती है, वैसी और कहीं नहीं। जीवन जुआ है और जुए में जीवन का जो मायिक रूप है, जो छल है, वह अपनी श्रेष्ठतम अभिव्यक्ति को उपलब्ध होता है। इसे थोड़ा हम समझें, तो आसानी हो। और यह कीमती है।

जीवनभर हम कोशिश करते हैं जो भी पाने की, उसे कभी पा नहीं पाते हैं। लगता है कि मिलेगा। लगता है कि अब मिला। लगता है कि बस, अब मिलने में कोई देर नहीं। और हर बार निशाना चूक जाता है। और मृत्यु के क्षण में आदमी पाता है कि जो भी चाहा था, वह कुछ भी नहीं मिला। सिर्फ अपनी वासनाओं की राख ही हाथ में रह जाती है।

मरते क्षण में जो पीड़ा है, वह मृत्यु की नहीं, वह व्यर्थ गए जीवन की होती है। जो लोग जीवन को, जीवन की सार्थकता को, जीवन के आनंद को पा लेते हैं, वे मृत्यु से पीड़ित होते हुए नहीं देखे जाते। उन्हें तो मृत्यु एक विश्राम मालूम होती है। लेकिन अधिकतम लोग तो मृत्यु से पीड़ित होते देखे जाते हैं।

हम सबको यही लगता है कि वे मृत्यु से दुखी हो रहे हैं। वह गलत है। वे दुखी हो रहे हैं इसलिए कि वह जीवन चला गया, जिसमें पाने के बहुत मन्यूबे थे, बडी आकांक्षाएं थीं, बड़े दूर के सपने थे। बड़े तारे थे, जिन तक पहुंचना था और कहीं भी पहुंचना नहीं हो पाया। और आदमी इस पूरी दौड़ में बिना कहीं पहुंचे रास्ते पर ही मर जाता है। पड़ाव भी उपलब्ध नहीं होता, मंजिल तो बहुत दूर है। मृत्यु का जो दंश है, जो पीड़ा है, वह जीवन की व्यर्थता के कारण है।

इसलिए बुद्ध को हम दुखी नहीं देखते मरते क्षण में। सुकरात को हम दुखी नहीं देखते। महावीर को हम पीड़ित नहीं देखते। मृत्यु उन्हें मित्र की तरह आती हुई मालूम पड़ती है। लेकिन हमें शत्रु की तरह आती मालूम पड़ती है। क्यों? क्योंकि हमारी वासनाएं तो पूरी नहीं हुईं; हमें अभी और समय चाहिए। हमारी इच्छाएं तो अभी अधूरी हैं। अभी हमें और भविष्य चाहिए।

ध्यान रहे, भविष्य न हो तो हमारी इच्छाओं को फैलने की जगह नहीं रह जाती। भविष्य तो चाहिए ही, तभी हम अपनी इच्छाओं की शाखाओं को फैला सकते हैं। वर्तमान में इच्छा नहीं होती, इच्छा सदा भविष्य में होती है। वासनाओं का जाल तो सदा भविष्य में होता है, वर्तमान में कोई वासना का जाल नहीं होता। अगर कोई व्यक्ति शुद्ध वर्तमान में हो, अभी, यहीं हो, तो उसके चित्त में कोई वासना नहीं रह जाएगी।

वासना हो ही नहीं सकती वर्तमान में। वासना तो होती ही कल है, आने वाले कल में, आने वाले क्षण में। वासना का संबंध ही भविष्य से है। जो लोग गहरे में खोजते हैं, वे तो कहते हैं कि भविष्य ही इसीलिए मन पैदा करता है, क्योंकि बिना भविष्य के वासनाओं को फैलाएगा कहां। भविष्य कैनवस का काम करता है, जिसमें वासनाओं के सपने फैल जाते हैं।

इसलिए जो लोग वासनाओं से मुक्त होना चाहते हैं, उनके लिए एक ही प्रक्रिया है और वह यह है कि भविष्य को छोड़ दो और वर्तमान में जीयो। वर्तमान से आगे मत बढ़ो। जो क्षण हाथ में है, उसको ही जी लो; आने वाले क्षण का विचार ही मत करो। जब वह आ जाएगा, तब जी लेंगे। जो आदमी मोमेंट टु मोमेंट, क्षण— क्षण जीने लगता है, उसके चित्त में वासना का उपाय नहीं रह जाता। वासना के लिए भविष्य का विस्तार चाहिए।

मौत दुख देती है, क्योंकि मौत के साथ पहली दफा हमें पता चलता है, अब कोई भविष्य नहीं है। मौत दरवाजा बंद कर देती है भविष्य का, वर्तमान ही रह जाता है। और वर्तमान में तो सिर्फ टूटे हुए वासनाओं के खंडहर होते हैं, राख होती है, असफलताओं का ढेर होता है, विषाद होता है, संताप होता है। कोई वासना की पूर्ति का तो उपाय नहीं दिखता, और थोड़ा भविष्य चाहिए।

महाभारत में कथा है ययाति की। ययाति सौ वर्ष का हुआ। बड़ा सम्राट था, उसके सौ बेटे थे। अनेक उसकी पत्नियां थीं, बड़ा साम्राज्य था। सौ वर्ष का हुआ, मौत उसके द्वार पर आई, तो ययाति ने कहा कि एक क्षण रुक। अभी तो मेरा कुछ भी काम पूरा नहीं हुआ। अभी तो मैं वहीं खड़ा हूं जहां जन्म के दिन खड़ा था। यह भी कोई आने का वक्त है! अभी तो कोई भी सपना सत्य नहीं हुआ। अभी तो सभी बीज बीज ही हैं। अभी कोई बीज अंकुरित नहीं हुआ। मुझे समय चाहिए।

मृत्यु ने मजाक में ही ययाति से कहा, अगर तेरा कोई पुत्र तुझे अपना जीवन दे दे, तो मैं उसे ले जाऊं और तुझे छोड़ जाऊं! ययाति ने अपने सौ पुत्रों को कहा कि जीवन तुम मुझे दे दो, मेरा जीवन अधूरा रह गया है। तुम मेरे बेटे हो, मैंने तुम्हें पैदा किया। तुम्हें ही पैदा करने और बड़े करने में तो मैंने जीवन गंवाया। तुम्हारे लिए ही तो मैं नष्ट हुआ। तुम मुझे अपना जीवन दे दो; मौत मुझे छोड़ने को राजी है।

लेकिन बेटों की अपनी वासनाएं थीं, जो और भी अधूरी थीं। बेटों को तो और भी समय चाहिए था। लेकिन एक छोटा बेटा राजी हो गया। बड़े बेटे समझदार थे, अनुभवी थे, वे कोई भी राजी नहीं हुए। और उन्होंने कहा कि आपको ऐसा कहते संकोच भी नहीं होता! आप भी मरने को राजी नहीं हैं! और आप तो सौ वर्ष भी जी लिए, हम तो अभी इतना भी नहीं जीए हैं। और हमसे आप मरने के लिए कहते हैं!

लेकिन एक छोटा बेटा राजी हो गया। ययाति ने उससे पूछा भी कि तू क्यों राजी हो रहा है? उसने कहा कि मैं इसलिए राजी हो रहा हूं कि अगर सौ वर्ष जीकर भी आपकी वासना तृप्त नहीं हुई, तो मैं भी इस मेहनत में नहीं पडूगा। सौ वर्ष बाद मरना ही है, तो मेरी जिंदगी बेकार चली जाएगी, अभी कम से कम इतने तो काम आ रही है कि आप कुछ दिन और जी लेंगे।

फिर भी ययाति को न सूझा! अपनी जिंदगी कठिनाई में हो, तो फिर हम किसी की भी जिंदगी ले सकते हैं। हम कितना ही कहते हों कि बाप बेटे के लिए जीता है। हम कितना ही कहते हों, भाई भाई के लिए, मित्र मित्र के लिए; लेकिन ये बातें हैं। मौत सामने खड़ी हो जाए, तो सब बदल जाता है।

बेटा राजी हो गया। बेटा मर गया, ययाति और सौ साल जीया। ये सौ साल कब निकल गए, पता न चले। मौत फिर द्वार पर आ गई, तभी ययाति को खयाल आया। और उसने मौत से कहा, इतनी जल्दी! क्या सौ वर्ष पूरे हो गए? मेरी वासनाएं तो उतनी की उतनी ही अधूरी हैं; रंचमात्र भी फर्क नहीं पड़ा।

इस बीच ययाति के और पुत्र हो गए थे। मौत ने कहा कि फिर किसी पुत्र को पूछ लो, अगर कोई राजी हो।

और कथा बड़ी अदभुत है कि ऐसा दस बार हुआ और ययाति हजार साल जीया। और हजार साल बाद जब मौत आई, तब भी ययाति ने वही कहा कि इतनी जल्दी! अभी मुझे समय चाहिए।

मौत ने उसे कहा, ययाति, कितना ही समय तुम्हें मिले, वासनाएं पूरी नहीं होंगी। समय छोटा पड़ जाता है। समय जो कि अनंत है, वासनाओं से छोटा पड़ जाता है। मौत जब भी द्वार पर आई, ययाति कंपने लगा।

हम सब की भी वही दशा है। और ययाति की कथा हमें लगेगी कि काल्पनिक है, लेकिन समझने जाएं, तो हम भी इस तरह बहुत— से जन्म ले चुके हैं और बहुत हजारों वर्ष जी चुके हैं। हमारी भी यह कोई पहली जिंदगी नहीं है। हर जिंदगी में हमने यही किया है। फिर समय मांगा है, हमें फिर जन्म मिल गया है। हर बार वासना अधूरी रही है। हम पुनर्जन्म पा गए हैं। और हर बार जब मौत आती है, तो हम फिर उतने के उतने अधूरे हैं। कहीं कुछ भरता नहीं है।

मृत्यु घबड़ा देती है, क्योंकि भविष्य समाप्त हो जाता है। और तब जिंदगी की व्यर्थता दिखाई पड़ती है, लेकिन तब कोई प्रयोजन नहीं। तब कोई अर्थ नहीं। तब जिंदगी लगती है एक जुआ थी, जिसमें हम हारे।

जुए की एक खूबी है, वह इसलिए मैंने इतनी बात कही। जुए में कोई कभी जीतता नहीं; यही उसका छल है। और हरेक जीतता हुआ मालूम पड़ता है, यही उसका छल है। हरेक जीतने की आकांक्षा से जुए के पासे फेंकता है और हर एक को लगता है कि जीत निश्चित है। लेकिन जुए में कोई कभी जीतता नहीं। और जो जीतते हुए मालूम भी पड़ते हैं, वे केवल और बड़ी हारों की तैयारी कर रहे होते हैं।

जुए में जो हारता है, वह सोचता है, इस बार हार गया, भाग्य ने साथ न दिया, अगली बार जीत निश्चित है। और हारता चला जाता है। कभी—कभी जीत की झलक भी मिलती है। वह जीत की झलक और बड़ी हारों का आयोजन करवा देती है। उस झलक से लगता है कि जीत भी हो सकती है।

जो जीत जाता है, वह सोचता है कि एक बार जीत जाऊं, तो फिर रुक जाऊं। लेकिन जो एक बार जीत जाता है, रुकना असंभव है। क्योंकि जीत का जो स्वाद मन को लग जाता है, और जीतने की आकांक्षा प्रबल हो जाती है। वही आकांक्षा हार में ले जाती है। जो हारता

है, वह सोचता है, अगली बार जीत जाऊंगा। जो इस बार जीतता है, वह सोचता है, जीत मेरे भाग्य में है; हर बार जीत जाऊंगा। और अंततः जुआ ही चलता रहता है। सभी उसमें हारने वाले ही सिद्ध होते हैं।

इसलिए कृष्ण कहते हैं, छलों में मैं जुआ हूं।

वह शुद्धतम छल है। कभी कोई जीतता नहीं, अंततः कोई जीतता नहीं। आखिर में हाथ खाली रह जाते हैं। खेल बहुत चलता है लेकिन, हार—जीत बहुत होती है। कोई हारता, कोई जीतता; कोई बनता, और कोई मिटता! बहुत खेल होता है। रुपये—पैसे इससे उसके पास जाते हैं। उससे इसके पास जाते हैं, बड़ा लेन—देन होता है। और आखिर में कोई जीतता नहीं। सिर्फ जीतने की और हारने की इस दौड़ में लगे हुए सभी लोग टूट जाते हैं, बिखर जाते हैं, हार जाते हैं, नष्ट हो जाते हैं।

इसलिए जुआ जिंदगी का प्रतीक है। सारी जिंदगी जुआ है।

इसलिए आप यह मत सोचना कि जो जुआ खेल रहे हैं, वही जुआ खेल रहे हैं। ढंग हैं बहुत तरह के जुआ खेलने के! कुछ जरा हिम्मत का जुआ खेलते हैं, कुछ जरा कम हिम्मत का जुआ खेलते हैं। कुछ इकट्ठे दांव लगाते हैं, कुछ दांव छोटे—छोटे लगाते हैं। कोई बड़े दांव लगाते हैं, कोई टुकड़ों में दांव लगाते हैं। किन्हीं की जीत और हार प्रतिपल होती रहती है, किन्हीं की जीत और हार का इकट्ठा हिसाब मौत के क्षण में होता है। लेकिन हम सब जुआ खेल रहे हैं। और जब तक कोई व्यक्ति अपनी तरफ नहीं जाता, तब तक जुए में ही होता है।

इसे ऐसा समझें कि जो व्यक्ति भी दूसरे में उत्सुक है, वह जुए में ही होता है। दूसरे में उत्सुकता जुआ है, चाहे वह प्रेम की हो, चाहे धन की, चाहे यश की, पद की, प्रतिष्ठा की, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। जब तक आप दूसरे पर निर्भर हैं, तब तक आप एक गहरा जुआ खेल रहे हैं। अगर आपको दूसरे भी अपने में उत्सुक मालूम पड़ते हैं, तो आप पक्का समझ लेना कि आप दोनों एक गहरे जुए में भागीदार हैं।

जब तक कोई व्यक्ति दूसरे की उत्सुकता से मुक्त नहीं होता और उस उत्सुकता में लीन नहीं होता, जो स्वयं की है, तब तक जुए के बाहर नहीं होता।

जुआ अकेले नहीं खेला जा सकता, उसमें दूसरे की जरूरत है। इसलिए जो व्यक्ति ध्यान की एकांतता को, अकेलेपन को उपलब्ध हो जाता है, वही जीवन के जुए के बाहर होता है।

जिस काम में भी दूसरे की जरूरत हो, समझ लेना कि जुआ होगा। जो काम भी दूसरे के बिना पूरा न हो सके, समझ लेना कि जुआ होगा। जिसमें दूसरा अनिवार्य हो, समझना कि वहां दांव है। जिस क्षण आप बिलकुल अकेले होने को राजी हों, दूसरा बिलकुल ही अर्थपूर्ण न रह जाए, उस दिन आप समझना कि आप जुए के बाहर हो रहे हैं।

ध्यान के अतिरिक्त जुए के बाहर होने का कोई उपाय नहीं है। बाकी सब उपाय जुआ ही खेलने के हैं। यह दूसरी बात है कि कोई एक जुआ पसंद करता है, कोई दूसरा जुआ पसंद करता है। यह अपनी पसंद की बात है। लेकिन जिंदगी के आखिर में अगर कोई एक चीज आप मरते वक्त जान सकते हैं कि मैंने पा ली, तो वह आपकी ही आत्मा है। उसके अतिरिक्त आप जो भी पा लेंगे, मृत्यु आपसे छीन लेगी।

सुना है मैंने कि सिकंदर जब मरा, तो उस गांव में बड़ी हैरानी हो गई थी। सिकंदर की अर्थी निकली, तो उसके दोनों हाथ अर्थी के बाहर लटके हुए थे! लाखों लोग देखने इकट्ठे हुए थे। सभी एक— दूसरे से पूछने लगे कि ऐसी अर्थी हमने कभी नहीं देखी कि हाथ और अर्थी के बाहर लटके हों। यह क्या ढंग हुआ!

सांझ होते—होते लोगों को पता चला कि यह भूल से नहीं हुआ। भूल हो भी नहीं सकती थी। कोई साधारण आदमी की अरथी न थी। सिकंदर की अरथी थी। पता चला सांझ कि सिकंदर ने कहा था कि मरने के बाद मेरे दोनों हाथ अरथी के बाहर लटके रहने देना, ताकि लोग देख लें कि मैं भी खाली हाथ जा रहा हूं। मेरे हाथ में भी कुछ है नहीं। वह दौड़ बेकार गई। वह जुआ सिद्ध हुआ।

और यह वही आदमी है कि मरने के दस साल पहले एक यूनानी फकीर डायोजनीज से मिला था, तो डायोजनीज ने सिकंदर से पूछा था कि कभी तुमने सोचा सिकंदर, कि अगर तुम पूरी दुनिया जीत लोगे, तो फिर क्या करोगे? तो डायोजनीज की यह बात सुनकर सिकंदर उदास हो गया था। और उसने कहा कि इससे मुझे बड़ी चिंता होती है, क्योंकि दूसरी तो कोई दुनिया नहीं है। अगर मैं यह जीत लंगू, तो सच ही फिर मैं क्या करूंगा? अभी जीती नहीं थी उसने दुनिया। लेकिन यह पूरी दुनिया भी जीत लेगा, तो भी वासना उदास हो गई। अभी जीती भी नहीं है, अभी सिर्फ सोचकर कि पूरी दुनिया जीत लूंगा तो—सच डायोजनीज, तुम मुझे उदास करते हो—फिर मैं क्या करूंगा? दूसरी तो कोई दुनिया नहीं है, जिसको मैं जीतने निकल जाऊं!

यह आदमी मरते वक्त.. बहुत कुछ जीतकर मरा था। बड़ा जुआरी था, सब कुछ दांव पर लगाया था। और बड़े ढेर लगा लिए थे जीत के। लेकिन मरते वक्त उसका यह कहना कि देख लें लोग कि मेरे हाथ खाली हैं, विचारणीय है।

सम्राट यहां भिखारी की तरह मर जाते हैं। कभी—कभी कोई भिखारी यहां सम्राटों की तरह मरता है। बुद्ध के हाथ भरे हुए हैं, सिकंदर के हाथ खाली हैं। क्या मामला है! किस चीज से सिकंदर के हाथ खाली हैं? और किस चीज से बुद्ध के हाथ भरे हुए हैं? बुद्ध ने अपने को पाने की कोशिश की है, तो हाथ भरे हुए हैं। सिकंदर ने कुछ और पाने की कोशिश की है, स्वयं को छोड्कर, तो हाथ खाली हैं।

इससे कोई संबंध नहीं है कि आप क्या पाने की कोशिश कर रहे हैं, आपकी जिंदगी एक जुआ है, अगर आप अपने को छोड्कर कुछ भी पाने की कोशिश कर रहे हैं। और आखिर में आपके हाथ खाली होंगे, आखिर में आप हारे हुए विदा होंगे।

कृष्ण कहते हैं, छल करने वालों में मैं जुआ हूं।

शुद्धतम रूप जुआ है छल का। जुआरी की हम निंदा करते रहते हैं। लेकिन हम सब जुआरी हैं। जुआरी की निंदा शायद हमारे मन में इतनी ज्यादा इसीलिए है कि हम छोटे जुआरी हैं। और जुआरी को देखकर हमारा सारा जुआ उघडता है और नग्न हो जाता है। जब एक जुआरी दांव लगाता है, तो हम कहते हैं, पागल हो। और हम सब पूरी जिंदगी दांव लगाकर जीते हैं, और कभी भी नहीं सोचते कि हम पागल हैं! अपना—अपना जुआ सभी को ठीक मालूम पड़ता है। दूसरे के जुए सभी को गलत मालूम पड़ते हैं।

इस जमीन पर बड़े मजे की घटना है, हर आदमी अपने को ठीक और शेष को पागल जानता है। लेकिन तब तक जीवन में धार्मिक क्रांति घटित नहीं होती, जब तक कोई आदमी अपने को पागल

जानना शुरू नहीं करता। और जब कोई आदमी यह जान लेता है कि मेरी पूरी जिंदगी, जिसको मैंने अब तक जिंदगी कहा, एक लंबा पागलपन है, उसी दिन उसकी जिंदगी में क्रांति होनी शुरू हो जाती है। जब तक आप दूसरों पर हंसते हैं, तब तक समझना, आप व्यर्थ हंसते हैं। जिस दिन आपको अपने पर हंसी आ जाए, समझना कि रास्ता बदला। अब यात्रा आपकी कुछ और हुई।

क्या है? आप क्या कर रहे हैं? लोग आपको अच्छा कहें, इसके लिए जिंदगी गंवा रहे हैं। कोई आपके मकान को बड़ा कहे, इसलिए जिंदगी गंवा रहे हैं। कोई आपकी तिजोड़ी को देख ले और उसकी आंखों में चकाचौंध पैदा हो जाए, इसलिए जिंदगी गंवा रहे हैं। कोई दूसरे की आंखों के साथ आप जुआ खेल रहे हैं।

वे दूसरे की आंखें उतनी ही पानी की बनी हैं, जितनी आपकी हैं। कल पानी की तरह बह जाएंगी और इस जगत की रेत में उनका कोई भी पता नहीं चलेगा। और दूसरों के शब्द वैसे ही हवा के बबूले हैं, जैसे आपके, और हवा में खो जाएंगे। उनकी प्रशंसाएं, उनकी निदाएं, सब हवा में फूट जाएंगी बबूलों की तरह और खो जाएंगी। उनका कोई मूल्य नहीं रह जाएगा। और आपकी जिंदगी आप गंवा चुके होंगे।

कृष्ण की इस बात को खयाल में ले लेने जैसा है, छल करने वालों में मैं जुआ हूं। अगर छल को ही देखना है, तो जुए में उसकी शुद्धता है। सौ फीसदी शुद्ध! फिर जिंदगी में उसकी अशुद्धता दिखाई पड़ती है। लेकिन शुद्ध वह जुए में है।

सुना है मैंने कि कनफ्यूशियस ने अपने एक शिष्य को कहा था कि ध्यान करने के पहले तू दो जगह हो आ। एक तो तू जुआघर में बैठकर देख कि लोग वहां क्या कर रहे हैं, आज्जर्व। वहां बैठ जा और देख कि लोग रातभर वहां क्या करते रहते हैं। तुझे कुछ करना नहीं है। सिर्फ निरीक्षण करना। तीन महीने तक तू जुआघर में ही बैठा रह और निरीक्षण कर। और फिर तू मुझे आकर कहना।

वह शिष्य तीन महीने बाद आया और उसने कहा कि लोग पागल हैं। कनक्यूशियस ने कहा कि तब मैं तुझे दूसरी साधना का सूत्र देता हूं। अब तू मरघट पर तीन महीने बैठ जा और लोगों को जलते हुए देख।

तीन महीने बाद वह शिष्य आया और उसने कहा कि मैं देखकर आया हूं। सारी जिंदगी एक जुआ है। और सारी जिंदगी का अंत मरघट पर हो रहा है। कनक्यूशियस ने कहा कि अब तू उस गहरी यात्रा में जा सकता है।

जुए को और मौत को जो समझ ले, वह अंतर्यात्रा पर निकल सकता है।

प्रभावशाली पुरुषों का प्रभाव, जीतने वालों की विजय, निश्चय करने वालों का निश्चय, सात्विक पुरुषों का सात्विक भाव हूं। और वृष्णिवशियों में वासुदेव अर्थात स्वयं मैं, पांडवों में धनंजय अर्थात तू एवं मुनियों में वेदव्यास, कवियों में शुक्राचार्य मैं ही हूं।

कृष्ण कहते हैं— अपने को भी एक प्रतीक बना लेते हैं और अर्जुन को भी— वे कहते हैं, वृष्णिवंशियों में अगर तुझे देखना हो मुझे, अगर तुझे देखना हो प्रभु को, तो मैं तेरे सामने खड़ा हूं।

निश्चित ही, उस वंश में कृष्ण से ऊंचाई पाने वाला कोई व्यक्ति हुआ नहीं। असल में उस वंश को ही हम कृष्ण की वजह से जानते हैं। कृष्ण न हों, तो उनके पूरे वंश में किसी को भी जानने का कोई कारण नहीं रह जाता। वह जो कृष्ण का फूल खिला है उस वंश के वृक्ष पर, उस फूल की वजह से ही उस वृक्ष का भी हमें स्मरण है। वह उस वंश की श्रेष्ठतम उपलब्धि, जो नवनीत है, वह कृष्ण है। कृष्ण अर्जुन को समझा रहे हैं कि जहां भी श्रेष्ठता का फूल खिलता है, वहां तू मुझे देख पाएगा। तो अगर मेरे वंश में तुझे देखना है, तो मैं तेरे सामने मौजूद हूं।

और अक्सर ऐसा होता है कि जब अंतिम फूल खिल जाता है, तो वंश नष्ट हो जाता है। क्योंकि फिर वंश के होने का कोई प्रयोजन नहीं रह जाता। उसका प्रयोजन पूरा हो गया। इसलिए कृष्ण के साथ कृष्ण का वंश तिरोहित हो जाता है। और इतनी श्रेष्ठता को फिर पार करना भी संभव नहीं है। इसलिए श्रेष्ठतम जो है, वह एक वंश का अंत भी होता है। आखिरी फूल खिल जाने का अर्थ है, वृक्ष की मौत भी आ गई। पूर्णता समाप्ति भी है।

कृष्ण के साथ कृष्ण का वंश समाप्त हो जाता है। उस वंश का जो निहित प्रयोजन था, पूरा हो गया। जो नियति थी, जहां तक पहुंचना था, जो आखिरी छलांग थी, लहर जहां तक आकाश में उठ सकती थी, उठ गई।

तो वे कहते हैं, अगर मेरे वंश में तुझे देखना हो, तो मैं मौजूद हूं जहां तुझे परमात्मा दिखाई पड़ सकता है।

साथ ही एक और भी मजे की बात कहते हैं, और पांडवों में धनंजय अर्थात तू!

वह जो पांडवों का वंश है, उसमें अर्जुन भी नवनीत है, उसमें अर्जुन सार है। यह सारा महाभारत अर्जुन के इर्द—गिर्द है। यह सारा महाभारत, यह सारी कथा अर्जुन के आस—पास घूमती है।

धनंजय, अगर तुझे पांडवों में भी परमात्मा को देखना हो, तो तू खुद अपने में देख।

ये सारे प्रतीक कृष्ण ने कहे, ये दूर थे, पराए थे। कृष्ण धीरे— धीरे उस प्रतीक के पास अर्जुन को ले आए हैं, जहां वह खुद अपने में भी देख सके। ये इतने स्मरण दिलाए कि ऋतुओं में मैं वसंत हूं कि देवताओं में कामदेव हूं। इतनी—इतनी यात्रा, अगर ठीक से समझें, तो इस गहरे प्रतीक के लिए थी कि वह जगह आ जाए कि कृष्ण अर्जुन से कह सकें कि धनंजय, पांडवों में मैं तुझमें हूं।

आपको अपनी श्रेष्ठता के स्मरण के लिए भी दूसरों की श्रेष्ठता तक जाना होता है। और कभी—कभी अपने द्वार पर आने के पहले बहुत दूसरों के द्वार भी खटखटाने होते हैं। असल में हमारा आत्म— अज्ञान इतना गहन है कि हम अपने तक भी आएं, तो हमें दूसरे के द्वारा आना पड़ता है। अगर हमें अपना भी पता पूछना हो, तो हमें दूसरे से ही पूछना पड़ता है। बेहोशी अपनी ऐसी है, ऐसी गहरी है बेहोशी हमारी, कि हमें अपना तो कोई पता ही नहीं है, बस दूसरों का ही पता है!

गुरु भी क्या करेगा शिष्य के लिए! जब कोई शिष्य गुरु के चरणों में सिर रखकर पूछता है, तो क्या पूछता है? और गुरु क्या बताएगा अंतत:? गुरु इतना ही बता सकता है कि जिसे तू खोज रहा है, वह तू ही है। जिसकी तलाश है, वह तुझ तलाश करने वाले में ही छिपा है। और जिसकी तरफ तू दौड़ रहा है, वह कहीं बाहर नहीं, दौड़ने वाले के भीतर है। और जो सुवास, जो कस्तूरी तुझे खींच रही है और आकर्षित कर रही है, वह तेरी ही नाभि में छिपी है और दबी है।

लेकिन यह बात कृष्ण सीधी भी कह सकते थे, तब व्यर्थ होती। कृष्ण यह सीधा भी कह सकते थे कि अर्जुन मैं तुझमें हूं तब यह बात बहुत सार्थक न होती। यह इतनी यात्रा करनी जरूरी थी। अर्जुन बहुत—बहुत जगह थोड़ी—सी झलक पा ले, तो शायद अपने भीतर भी झलक पा सकता है।

धर्मों ने जितनी विधियां खोजी हैं, वे सभी विधियां आवश्यक हैं, अनिवार्य नहीं। उनसे पहुंचा जाता है, लेकिन उनके बिना भी पहुंचा जा सकता है। उनसे पहुंचा जाता है, लेकिन उनके द्वारा ही पहुंचा जा सकता है, ऐसा नहीं है। सारी विधियां एक ही प्रयोजन से निर्मित हुई हैं कि किसी दिन आपको पता चल जाए कि जिसे आप खोज रहे हैं, वह आप ही हैं।

बड़ी अजीब खोज है! क्योंकि जब कोई खुद को खोजने लगे, तो खोज असंभव है। बिलकुल असंभव है। खुद को कैसे खोज सकिएगा? और जहां भी खोजने जाइएगा, वहीं दूसरे पर नजर रहेगी। सुना है मैंने कि मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन अपने गधे पर बहुत तेजी से बाजार से निकला है। लोगों ने चिल्लाकर भी पूछा कि मुल्ला इतनी जल्दी कहां जा रहे हो? नसरुद्दीन ने कहा, बीच में मत रोको। मेरा गधा खो

गया है। पर वह इतनी तेजी में था अपने गधे पर कि गांव के लोग चिल्लाते भी रहे कि नसरुद्दीन, तुम अपने गधे पर सवार हो! लेकिन वह उसे सुनाई नहीं पड़ा।

सांझ जब वह थका—मादा वापस लौटा। और दौड़ने की ताकत चली गई। और भागने की हिम्मत टूट गई। जब गधा भी थक गया और खड़ा हो गया, तब नसरुद्दीन को खयाल आया कि मैं भी कैसा पागल हूं! मैं जिसे खोज रहा हूं उस पर सवार हूं।

गांव लौटकर उसने बाजार के लोगों से कहा कि नासमझो, तुमने कहा क्यों नहीं? मैं तो खैर जल्दी में था, इसलिए नीचे ध्यान न दे पाया। लेकिन तुम तो जल्दी में न थे! गांव के लोगों ने कहा, हम तो चिल्लाए थे, लेकिन तुम इतनी जल्दी में थे कि तुम्हें अपना गधा दिखाई नहीं पड़ता था, तो हमारी आवाज क्या सुनाई पड़ सकती थी! नसरुद्दीन पर हमें हंसी आ सकती है। लेकिन नसरुद्दीन का मजाक गहरा है।

हम सब किसकी तलाश में हैं? किसे हम खोज रहे हैं? क्या हम पाना चाहते हैं? हम अपने को ही खोज रहे हैं। हम खुद को ही पाना चाहते हैं। हमें यही पता नहीं कि मैं कौन हूं? मैं क्या हूं? क्यों हूं? यही हमारी खोज है। लेकिन हम दौड़ रहे हैं तेजी से। और जिस पर सवार होकर हम दौड़ रहे हैं, उसी को हम खोज रहे हैं। जो दौड़ रहा है, उसी को हम खोज रहे हैं। जब तक यह दौड़ बंद न हो जाए, हम थक न जाएं, दौड़ समाप्त न हो जाए, तब तक हमें खयाल नहीं आएगा। हमें पता नहीं चलेगा।

ये सारे साधन जो धर्मों ने ईजाद किए हैं, आपको थकाने के हैं। ये सारी प्रक्रियाएं जो धर्मों ने विकसित की हैं, ये आपको खूब दौड़ाकर इतना थका देने की हैं कि एक दिन आप खड़े हो जाएं थककर। जिस दिन आप खड़े हो जाएं, उसी दिन आपका अपने से मिलना हो जाए, अपने से पहचान हो जाए। ठहरते ही हम जान सकते हैं, कौन हैं। दौड़ते हम नहीं जान सकते कि कौन हैं।

तेज है इतनी रफ्तार हमारी, और तेजी हमारी रोज बढ़ती जाती है। कभी हम पैदल चलते थे। फिर बैलगाड़ी पर चलते थे। फिर मोटरगाड़ी पर चलते थे। फिर हवाई जहाज पर चलते थे। अब हमारे पास अंतरिक्ष यान हैं। हमारी दौड़ की गति रोज बढ़ती जाती है। कभी आपने खयाल किया कि आदमी की गति जितनी बढ़ती जाती है, आदमी का आत्मज्ञान उतना ही कम होता जाता है!

नहीं, खयाल नहीं किया होगा। इसमें कोई संबंध भी नहीं दिखाई पड़ा होगा। आदमी की जितनी स्पीड बढ़ती जाती है, गति बढ़ती जाती है, उससे उसका अपना संबंध छूटता जाता है। वह दूसरे तक पहुंचने में कुशल होता जाता है और खुद तक पहुंचने में अकुशल होता जाता है। किसी दिन यह हो सकता है कि हमारी रफ्तार इतनी हो जाए कि हम दूर के तारों तक पहुंचने लगें, लेकिन तब खुद तक पहुंचना बहुत मुश्किल हो जाएगा।

नसरुद्दीन तो गधे पर सवार था, सांझ तक थक गया। हमारे अंतरिक्ष यान कब थकेंगे? और अगर हमने सूरज की किरण की गति पा ली किसी दिन, तो शायद अनंत—अनंत काल लग जाए, उस गति में हमें आत्मज्ञान का पता ही न चल सके।

इसलिए बहुत मजे की बात है, जितने गति वाले समाज होते हैं, उतने अधार्मिक हो जाते हैं। और जितने कम गति वाले समाज होते हैं, उतने धार्मिक होते हैं। जितने कम गति वाले समाज होते हैं, उतना भीतर पहुंचने की संभावना बनी रहती है। जितने गति वाले समाज हो जाते हैं, उतना बाहर जाने की संभावना तो बढ़ जाती है, खुद तक आने की संभावना घट जाती है।

आज सारी दुनिया पर घूमते हुए लोग हैं। बहुत पुरानी कहानी मुझे याद आती है।

सुना है मैंने कि ईश्वर ने सारी सृष्टि बना डाली, फिर उसने आदमी बनाया। वह बड़ा खुश था। सारी दुनिया उसने बना डाली। बहुत खुश था। सब कुछ सुंदर था। फिर उसने आदमी बनाया। और उस दिन से वह बेचैन और परेशान हो गया। आदमी ने उपद्रव शुरू कर दिए। आदमी के साथ उपद्रव का जन्म हो गया।

तो उसने अपने सारे देवताओं को बुलाया और उनसे पूछा कि एक बड़ी मुश्किल हो गई है। यह आदमी को बनाकर तो गलती हो गई मालूम होती है। और आदमी रोज—रोज उसके दरवाजे पर खड़े रहने लगे। यह शिकायत है, वह शिकायत है। यह कमी है, वह कमी है। ईश्वर ने कहा, अब एक उपाय करो कुछ। मैं किसी तरह आदमी से बचना चाहता हूं। मैं कहां छिप जाऊं?

किसी देवता ने कहा, हिमालय पर बैठ जाएं, गौरीशंकर पर। ईश्वर ने कहा कि तुम्हें पता नहीं, कुछ ही समय बाद हिलेरी और तेनसिंग एवरेस्ट पर चढ़ जाएंगे, फिर मेरी मुसीबत फिर शुरू हो जाएगी। किसी ने कहा, तो चलें चांद पर बैठ जाएं। तो ईश्वर ने कहा, चांद पर पहुंचने में कितनी देर लगेगी! जल्दी ही आदमी चांद पर उतर जाएगा। मुझे कोई ऐसी जगह बताओ, जहां आदमी पहुंच ही न पाए।

तब एक के देवता ने ईश्वर के कान में कहा। ईश्वर ने कहा, बिलकुल ठीक। यह बात जंच गई। और देवताओं ने पूछा कि कौन— सी है वह बात? ईश्वर ने कहा, अब तुम उसको पूछो ही मत। क्योंकि लीक आउट हो जाए, आदमी तक पहुंच जाए, तो खतरा हो सकता है।

उस के ने ईश्वर के कान में कहा कि आप आदमी के ही भीतर छिप जाइए। यह वहां कभी नहीं पहुंच पाएगा। एवरेस्ट चढ़ लेगा, चांद पर उतर जाएगा, भीतर खुद के...। ईश्वर ने कहा, यह बात जंच गई।

और कथा है कि तब से ईश्वर आदमी के भीतर छिप गया है। और तब से आदमी ईश्वर से शिकायत करने में असफल हो गया है। खोजता है बहुत, लेकिन मिल नहीं पाता कि उससे शिकायत कर दे, कि कोई प्रार्थना कर दे, कि कोई स्तुति कर दे।

भीतर जाना— उस भीतर जाने के लिए कृष्ण धीरे— धीरे अर्जुन को एक—एक कदम अनेक—अनेक इशारों को देकर आखिरी जगह ले आए हैं, जहां वे कहते हैं, अर्जुन, हे धनंजय, पांडवों में मैं तुझमें हूं। तू अपने में ही देख ले। मत पूछ कि क्या मैं भाव करूं। मत पूछ कि कहां मैं खोजूं। सच ही खोजना चाहता है, तो मैं तेरे भीतर मौजूद हूं तू वहीं देख ले, वहीं खोज ले।

हम सबको भी भरोसा नहीं आता इस बात का कि परमात्मा हमारे भीतर मौजूद है। आएगा भी नहीं। अगर कोई हमसे कहे कि शैतान आपके भीतर मौजूद है, तो हम थोड़ा मान भी लें। क्योंकि हमारा अपने से जो परिचय है, उससे शैतान का तो तालमेल बैठ जाता है। लेकिन कोई हमसे कहे कि परमात्मा आपके भीतर है, तो हम सोचते हैं, कोई मेटाफिजिकल, कोई ऊंचे दर्शन की बात चल रही है! इसमें कुछ है नहीं सार।

परमात्मा, मेरे भीतर! हम किसी के भी भीतर मानने को राजी हो जाएं, खुद के भीतर मानने में बड़ी तकलीफ होगी। क्योंकि हम भीतर अपने जानते हैं कि क्या है। भीतर के चोर को हम जानते हैं। भीतर के बेईमान को हम जानते हैं। भीतर के व्यभिचारी को हम जानते हैं। कैसे हम मान लें कि परमात्मा हमारे भीतर है।

लेकिन इसका सिर्फ एक ही मतलब है कि आप भीतर को जानते ही नहीं। जिसको आप जानते हैं भीतर, वह आपका मन है, वह वस्तुत: भीतर नहीं है, वह वास्तविक इनरनेस नहीं है। जिसको आप जानते हैं मन, वह आपका आंतरिक अंतस्तल नहीं है। वह केवल बाहर की परछाईं है, जो आपके भीतर इकट्ठी हो गई है। वे केवल बाहर से बनी हुई प्रतिक्रियाएं हैं, जो आपके भीतर इकट्ठी हो गई हैं।

ऐसा समझें कि आप जिसको मन कहते हैं, वह बाहर से ही आए हुए प्रभावों का जोड़ है। वह भीतर नहीं है। मन के भी भीतर आप हैं। अगर मैं आपको देखता हूं तो बाहर एक दुनिया है। एक दुनिया मेरे बाहर है। फिर मैं भीतर आंख बंद करता हूं तो भीतर विचारों की एक दुनिया है। वह भी मुझसे बाहर है। क्योंकि उसको भी मैं देखता हूं भीतर। तो विचार मुझे दिखाई पड़ते हैं; क्रोध, कामवासना मुझे दिखाई पड़ती है। जैसे आप मुझे दिखाई पड़ते हैं, ऐसे ही विचारों की भीड़ भीतर दिखाई पड़ती है। वह भी मुझसे बाहर है। मेरे शरीर के भीतर है, लेकिन मुझसे बाहर है।

आप मुझसे बाहर हैं। आंख बंद करता हूं आपकी तस्वीर मुझे भीतर दिखाई पड़ती है, वह भी मुझसे बाहर है। और वह तस्वीर आपकी है। आपने अपने भीतर कभी कोई एकाध तस्वीर देखी है, जो बाहर से न आई हो? आपने अपने भीतर कभी कोई एकाध विचार देखा, जो बाहर से न आया हो? आपने भीतर ऐसा कुछ भी देखा है, जो बाहर का ही प्रतिफलन न हो?

तो फिर से खोज करें। आप अपने भीतर की जांच करें, तो आप पाएंगे, वह तो सब बाहर की ही कतरन, बाहर का ही कचरा, बाहर का ही जोड़ है। तो यह फिर भीतर नहीं है। यह बाहर का ही हाथ है, जो आपके भीतर प्रवेश कर गया है। अगर आपको अंतस्तल को जानना है, तो थोड़ा और पीछे चलना पड़े।

कृष्ण उसी की बात कर रहे हैं, कि धनंजय, पांडवों में मैं तेरे भीतर इसी समय मौजूद हूं।

लेकिन भीतर का अनुभव मन से नहीं होता, भीतर का अनुभव तो साक्षी से होता है। भीतर का अनुभव तो ज्ञाता से होता है। भीतर का अनुभव तो द्रष्टा से होता है। जो अपने मन को भी देखने में समर्थ हो जाता है, वह भीतर के अनुभव को उपलब्ध होता है। और जिसे भीतर का अनुभव हो जाए, उसे फिर वसंत में देखने जाने की जरूरत नहीं, उसे फिर कामधेनु में देखने की जरूरत नहीं। फिर उसे गायत्री छंद में खोजने की जरूरत नहीं। फिर तो सभी जगह उसी का छंद है। फिर तो सभी जगह उसी का वसंत है।

एक बात खयाल में ले लें। जब तक हमें भीतर परमात्मा नहीं दिखता, तब तक हमें उसे बाहर कहीं देखने की कोशिश करनी पड़ती है। और ध्यान रखें कि वह कोशिश कितनी ही प्रामाणिक हो, अधूरी होगी, पूरी नहीं हो सकती। वह कोशिश कितनी ही निष्ठा से भरी हो, अधूरी होगी, पूर्ण नहीं हो सकती। क्योंकि जिसने उसे अभी भीतर नहीं जाना— भीतर का अर्थ है निकटतम—जिसने उसे इतने निकटतम नहीं जाना, वह दूर उसे नहीं जान सकेगा। जो इतने पास है मेरे कि मेरे हृदय की धड़कन भी मुझसे दूर है उसके हिसाब से, मोहम्मद ने कहा है कि तुम्हारे गले में जो नस फड़कती है जीवन की, वह भी दूर है। वह परमात्मा उससे भी ज्यादा निकट है। जो इतने निकट उसको नहीं जान पाया, वह उसे दूर कैसे जान पाएगा?

और हम सब आकाश में आंखें उठाकर उसे खोजने की कोशिश करते हैं। हम अंधी आंखों से उसे खोज रहे हैं। अपने भीतर आंख बंद करके जो उसे नहीं देख पाता, वह इस विराट आकाश में आंखें खोलकर ईश्वर को देखने की कोशिश करता है! कभी भी वह कोशिश सफल न हो पाएगी।

ही, एक बात हो सकती है कि वह मानने लगे कि दिखाई पड़ रहा है। निष्ठापूर्वक मानने लगे, तो जिंदगी उसकी भली हो जाएगी, लेकिन धार्मिक नहीं। जिंदगी उसकी सदवृत्तियो से भर जाएगी, लेकिन सत्य से नहीं। जिंदगी उसकी शुभ हो जाएगी, लेकिन शुभ भी एक सपना होगा। क्योंकि जिस परमात्मा को वह देख रहा है, वह उसकी कल्पना है, उसका प्रक्षेपण है, उसका प्रोजेक्यान है। जिसने अभी अपने भीतर नहीं देखा, वह उसे कहीं भी देख नहीं सकता। लेकिन हमारी तकलीफ यह है कि हमारी नजरें बाहर घूमती हैं!

इसलिए कृष्ण ने बाहर से शुरू किया कि यहां देख, यहां देख, यहां देख। फिर वे धीरे— धीरे पास ला रहे हैं। आखिर में बहुत पास ले आए। उन्होंने कहा कि इधर मेरी तरफ देख। मेरे वंश में, मैं यहां मौजूद हूं। यह कृष्ण मौजूद है, यहां देख। वे बहुत करीब ले आए। कृष्ण और अर्जुन के बीच फासला बहुत कम है, फिर भी फासला है। फिर वे और भीतर ले गए, और अर्जुन से कहा कि अपने भीतर देख। तू भी, तू भी मेरा ही घर है। तेरे भीतर भी मैं निवास कर रहा हूं।

और एक बार कोई व्यक्ति भीतर उसकी झलक पा ले, तो सभी जगह उसकी झलक फैल जाती है। फिर ऐसा नहीं कि वसंत में ही दिखाई पड़ेगा। वसंत में तो अंधे को दिखाई पड़े, इसकी कोशिश करनी पड़ती है। फिर तो पतझड़ में भी वही दिखाई पड़ेगा। फिर श्रेष्ठ में ही दिखाई पड़े, ऐसा नहीं, निकृष्ट में भी वही दिखाई पडेगा। फिर तो उसके अतिरिक्त कुछ दिखाई ही नहीं पड़ेगा। फिर तो जो भी दिखाई पड़ेगा, वही होगा। क्यों?

क्योंकि जिसे भीतर दिखाई पड़ गया, उसकी सारी आंखें उससे भर जाती हैं। जिसे भीतर दिखाई पड़ गया, उसकी श्वास—श्वास उससे भर जाती है। जिसे भीतर दिखाई पड़ गया, उसका रोआं— रोआं उसी से स्पंदित होने लगता है। फिर तो वह आदमी जहां भी देखे, यही रंग फैल जाएगा। जहां भी देखे, यही ज्योति फैल जाएगी। फिर तो ऐसा हो गया, जैसे आप एक दीया लेकर चलें, तो जहां भी दीया लेकर जाएं, वहीं रोशनी पड़ने लगे। अंधेरे में चले जाएं, तो अंधेरा भी रोशन हो जाए।

ठीक जिस दिन आपके भीतर वह दिखाई पड़ने लगा, आपके भीतर दीया जल गया। अब आप कहीं भी चले जाएं, जहां भी यह रोशनी पड़ेगी आपके दीये की, वहीं वह दिखाई पड़ेगा। अब आप अंधेरे में जाएं, तो भी वही होगा। उजाले में जाएं, तो भी वही होगा। सुबह भी वही, सांझ भी वही। जन्म में भी वही, मृत्यु में भी वही। लेकिन एक बार यह भीतर दिखाई पड़ जाए तब। और भीतर जाने के लिए कृष्ण को इतने प्रतीक चुनने पड़े।

एवं मुनियों में वेदव्यास, कवियों में शुक्राचार्य, दमन करने वाले का दंड, जीतने की इच्छा वालों की नीति, गोपनीयों में अर्थात गुप्त रखने योग्य भावों में मौन, ज्ञानवानों का तत्व—ज्ञान मैं ही हूं।

ये दो प्रतीक बहुत बहुमूल्य हैं, इन्हें हम समझें।

गोपनीयों में, गुप्त रखने योग्य भावों में मौन।

यह बड़ा उलटा मालूम पड़ेगा, क्योंकि गोपनीय तो हम किसी बात को रखते हैं। मौन को भी कोई गोपनीय रखता है? गोपनीय तो हम किसी विचार को रखते हैं। निर्विचार को भी कोई गोपनीय रखता है? कोई बात छिपानी हो तो हम छिपाते हैं। मौन का तो अर्थ हुआ कि छिपाने को ही कुछ नहीं है। जब छिपाने को ही कुछ नहीं है, तो उसे हम क्या छिपाएंगे! यह सूत्र बहुत कठिन है और उन गहरे सूत्रों में से एक है, जिन पर धर्म की बुनियाद निर्मित होती है।

गोपनीयों में, गुप्त रखने योग्य में मैं मौन हूं।

कुछ मत छिपाना, लेकिन अपने मौन को छिपाना, इसका अर्थ होता है। किसी को पता न चले कि तुम्हारे भीतर मौन निर्मित हो रहा है। किसी को पता न चले कि तुम ध्यान में उतर रहे हो। किसी को पता न चले कि तुम शांत हो रहे हो। किसी को पता न चले कि तुम भीतर शून्य हो रहे हो। क्योंकि दूसरे को बताने की इच्छा भी उसे भीतर नष्ट कर देती है।

अगर एक आदमी कहता है कि मैं मौन से रहता हूं यह कहने का जो रस है, दूसरे को बताने का जो रस है, यह जो दूसरे में रस है, इसकी वजह से मौन तो हो ही नहीं पाएगा।

एक आदमी कहता है कि मुझे तो ध्यान उपलब्ध होने लगा। लेकिन जब दूसरे से यह कहता है...। दूसरे से कहते ही हम इसलिए हैं कि दूसरा प्रभावित हो। इसलिए वही कहते हैं, जिससे दूसरा प्रभावित हो। उस सबको तो हम छिपाते हैं, जिससे दूसरा गलत प्रभावित न हो जाए। वही सब बताते हैं, जिससे दूसरा प्रभावित हो। हमारा अच्छा चेहरा हम दूसरों को दिखाते हैं, ताकि दूसरे प्रभावित हों।

लेकिन दूसरे को प्रभावित करने में जो उत्सुक है, वह ध्यान में जा ही न सकेगा। क्योंकि दूसरे को प्रभावित करने में जो रस है, उसका अर्थ है, अभी अपने से ज्यादा मूल्यवान दूसरा है। अगर मैं सोचता हूं कि फलां आदमी अगर मुझसे प्रभावित हो जाए, तो जिसको भी मैं प्रभावित करना चाहता हूं उसे मैं अपने से ज्यादा मूल्यवान मानता हूं इसीलिए प्रभावित करना चाहता हूं। वह प्रभावित हो जाए, तो मैं भी अपनी नजरों में ऊंचा उठ जाऊं। वह ज्यादा कीमती है मुझसे। अगर मुझे मान ले, तो मैं अपनी नजरों में भी ऊंचा उठ जाऊं। मेरी अपनी नजरों में उठने के लिए भी मुझे दूसरों को प्रभावित करना जरूरी है।

ध्यान की भी जब कोई बात करता है, या कोई कहता है, मैंने ईश्वर को जान लिया, जब इसकी भी कोई चर्चा करता है किसी दूसरे से और उसे प्रभावित करना चाहता है, तो उसका अर्थ हुआ कि उसने अभी ईश्वर को पाया नहीं। अभी ईश्वर को पाने के रास्ते पर भी वह नहीं है। क्योंकि उस रास्ते पर तो वे ही जाते हैं, जो दूसरे की बिलकुल चिंता ही छोड़ देते हैं, जिन्हें दूसरों का पता ही नहीं रह जाता।

सूफी फकीर हुआ बायजीद। जब वह अपने गुरु के पास गया, तो बहुत हैरान हुआ। जब वह अपने गुरु के पास था, तो उसने एक दिन देखा कि गांव का सम्राट आया और उसने आकर बायजीद के गुरु को कहा कि मुझे भी दीक्षा दे दें इस परम मौन में, जिसमें आप विराजमान हो गए हैं। तो बायजीद का गुरु अनाप—शनाप बातें बकने लगा। वह सदा चुप रहता था। वह मुश्किल से, कभी कोई पूछता, तो बहुत मुश्किल से महीनों में जवाब देता था। अनाप—शनाप बातें बोलने लगा!

वह सम्राट वापस चला गया। बायजीद ने अपने गुरु से पूछा कि ऐसा हमने कभी नहीं देखा। उसने आपको आकर कहा था, आप परम मौन में प्रतिष्ठित हो गए हैं, मुझे भी उसी तरफ ले चलें! बायजीद के गुरु ने कहा कि उसको पता न चल जाए कि मैं मौन में प्रतिष्ठित हो गया हूं इसीलिए तो अनाप—शनाप बककर उसे मैंने विदा कर दिया।

बायजीद ने पूछा, अपने मौन को आप छिपाना क्यों चाहते हैं? उसके गुरु ने कहा, इस जगत में अगर कुछ भी छिपाने योग्य है, तो मौन है। क्योंकि वह अंतरतम संपदा है। और वह इतनी नाजुक संपदा है कि जरा बाहर प्रभावित करने की इच्छा से टूट जाती है और खो जाती है।

एक और सूफी फकीर हुआ है, इब्राहीम। वह बल्ख का राजा था। और जब संन्यासी हुआ और अपने गुरु के पास गया, तो उसके गुरु ने कहा कि तू पहले एक काम कर। नग्न हो जा। तो इब्राहीम अपने कपड़े छोड़कर नग्न हो गया। इब्राहीम के साथी उसे छोड़ने आए थे, वे बड़े हैरान हुए। एक ने इब्राहीम के कान में भी कहा कि जरा पूछ भी लो कि किस लिए? इब्राहीम ने कहा कि जब समर्पण करने आ गया, तो अब प्रश्न की गुंजाइश नहीं है। फिर इब्राहीम के गुरु ने कहा कि यह चप्पल जो पड़ी है मेरी, एक उठा लो अपने हाथ में। उसने चप्पल उठा ली। और इब्राहीम से कहा कि जाओ बाजार में— उसी की राजधानी थी वह कल तक—जाओ बाजार में नग्न और अपने सिर पर चप्पल मारते जाना और एक चक्कर पूरे बाजार का लगा आना।

इब्राहीम निकल पड़ा! वह अपने को चप्पल मारता जाता। भीड़ इकट्ठी हो गई। लोग हंसी—मजाक करने लगे। लोग समझे कि पागल हो गया इब्राहीम। वह पूरा चक्कर लगाकर वापस लौट आया। इब्राहीम के गुरु ने कहा कि तेरी परीक्षा पूरी हो गई।

उसके साथियों ने इब्राहीम के गुरु से पूछा कि क्या हम पूछ सकते हैं—क्योंकि इब्राहीम तो कहता है कि पूछने का सवाल ही न रहा—क्या हम पूछ सकते हैं कि इसका प्रयोजन क्या है? तो इब्राहीम के गुरु ने कहा, इसका प्रयोजन है यह देखना कि अभी भी दूसरे क्या कहते हैं, इसकी चिंता तो भीतर नहीं रह गई! क्योंकि जो, दूसरे क्या कहते हैं, इसकी चिंता करता है, विचार करता है, योजना करता है, वह मौन में प्रवेश नहीं कर सकता।

मौन में सबसे बड़ी कठिनाई है दूसरे की मौजूदगी, जो आपके मन में सदा बनी रहती है। जब आप मौन बैठते हैं, तब भी आप मौन कहां बैठते हैं, किन्हीं दूसरों से कल्पना में बात करते रहते हैं। आदमी दो तरह की बातें करता है, वास्तविक लोगों से और काल्पनिक लोगों से। बातचीत जारी रहती है। जिनसे आप मौन में भी बात करते हैं, अगर वे कल्पना के जीव भी आपसे प्रभावित न हों, तो भी दुख हो जाता है। असली लोगों की तो हम बात छोड़ दें। आप कल्पना में किसी से बात कर रहे हों, और वह प्रभावित न हो, और कहे कि छोड़ो भी, क्या बकवास लगा रखी है! तो भी मन दुखी और खिन्न हो जाता है। सपने में भी जीतने की इच्छा बनी रहती है दूसरे को।

एक दिन आधी रात मुल्ला नसरुद्दीन नींद से उठ आया। उसकी आंखों में आंसू हैं। और उसने बड़ा हड़कंप मचा दिया। उसकी पत्नी ने पूछा कि बात क्या है? उसने कहा कि तू चुप सो। बड़ा नुकसान हो गया। सपना मैंने देखा कि एक देवता मेरे हाथ में रुपये दे रहा है। गिनती मैंने की। एक दो तीन चार पांच छह सात आठ नौ। मैंने उससे कहा कि दस तो पूरा कर दे! बस, इसी में मेरी नींद टूट गई। और अब मैं बड़ी देर से आंख बंद कर—कर के कह रहा हूं कि अच्छा, चलो जी, नौ में ही राजी हैं लेकिन उसका कोई पता ही नहीं चलता। छोड़ा एक, छोड़ो भी, इतना क्या! नौ में ही राजी हैं। अभी पीछे— पीछे तो मैं और भी नीचे उतर आया, कि चलो, आठ में भी राजी हैं, सात में भी राजी हैं। करवट बदल रहा हूं लेकिन उसका कोई पता नहीं चल रहा!

सपने में भी जिन्हें हम देख लेते हैं, वे भी हमारे लिए वास्तविकताएं हैं। उनसे भी हम संबंध जोड़ना शुरू कर देते हैं। अगर आप अपने मन की खोज करें, तो आपकी जिंदगी का अधिक हिस्सा तो सपनों में और कल्पनाओं में ही बीतता है। बहुत कम हिस्सा बाहर बीतता है। बहुत हिस्सा तो भीतर ही बीतता है।

और कभी—कभी बाहर भी जो आप बोलते हैं, वह आप भूल से बोल जाते हैं। आपको पीछे पता चलता है कि आप यह भीतर बोल रहे थे, उसी का हिस्सा जुड़ गया। किसी से भीतर बात चल रही थी, वही बाहर निकल गई। कई बार जो आप नहीं कहना चाहते बाहर, वह कह जाते हैं, क्योंकि भीतर चल रहा था। कई बार आप कहते हैं, भूल से ऐसा हो गया। लेकिन भूल से हो नहीं सकता। वे भीतर चल रही थीं पंक्तियां, तो ही आपकी जीभ से सरककर बाहर गिर सकती हैं।

भीतर एक सतत डायलाग चल रहा है, एक सतत चर्चा चल रही है अपनी ही कल्पनाओं से। मौन में जब आप बैठेंगे, तो यही आपके मौन का खंडन होगा। यही आपके मौन को तोड़ देगा।

मौन का अर्थ है, भीतर कोई विचार न रह जाए, भीतर कोई विचार का कंपन न हो, जैसे झील शांत हो गई हो, कोई लहर न उठती हो।

लेकिन कृष्ण कहते हैं, गोपनीयों में मैं मौन हूं।

और यह सबसे गुप्त बात है, जिसे किसी को बताना ही मत। बताते ही यह नष्ट हो जाती है। इसलिए बहुत बार ऐसा होता है, आपका मन बताने का एकदम होता है। और जब भी भीतर कुछ होता है, तो आप चाहते हैं, किसी को बता दें। मन बड़ी तीव्रता से करता है कि जाओ और बोल दो और किसी को कह दो।

यह मन की सहज वृत्ति है। क्योंकि जो आपको हुआ है, जब तक आप दूसरे से न कह दें, तब तक वह वास्तविक है, इसका भी आपको भरोसा नहीं आता। जब दूसरा मान ले, तब आपको भरोसा आता है कि ठीक है।

सुना है मैंने, एक दिन मुल्ला नसरुद्दीन जा रहा है रास्ते से और गांव के कुछ आवारा लड़के उसे कंकड़—पत्थर फेंककर मारने लगे। अंधेरा रास्ता है और मुल्ला को कोई उपाय नहीं सूझता, तो उसने उन लड़कों को पास बुलाया और कहा कि यहां क्या कर रहे हो? तुम्हें पता है, आज गांव के राजा ने सारे गांव को निमंत्रण दिया है। जो भी आए उसको भोजन मिलेगा। और भोजन भी क्या—क्या बना है! और वह भोजन की चर्चा करने लगा।

वे लड़के उत्सुक हो गए। लड़कों को उत्सुक देखा, तो वह खुद भी उत्सुक हो गया। और जब वह मिष्ठानों की बात करने लगा, तो लड़कों के मुंह से तो लार टपकने लगी। उसके मुंह में भी लार आ गई! फिर तो जैसे—जैसे गर्मी बढ़ती गई चर्चा की, लड़कों ने भागना शुरू कर दिया। उन्होंने कहा, छोड़ो भी इसको, मुल्ला को, महल चलें! जब लड़कों को उसने दूर भागते देखा अंधेरे में, तब उसे खयाल आया कि कहीं सच ही तो नहीं है यह बात! मुल्ला भी भागा। हो भी सकता है, कौन जाने! कौन जाने यह सच ही हो! दूसरा जब प्रभावित होता है हमारी किसी बात से, तो हम भी प्रभावित होते हैं। म्युचुअल, एक पारस्परिक लेन—देन हो जाता है। और ये प्रभाव हमें कहां ले जाते हैं, इनका हिसाब लगाना बहुत मुश्किल है। बहुत मुश्किल है।

दो व्यक्ति एक—दूसरे के प्रेम में पड़ जाते हैं। तो कोई भी पुरुष किसी स्त्री के प्रेम में पड़ता है, तो कहता है कि तुझसे ज्यादा सुंदर इस पृथ्वी पर कोई स्त्री नहीं है। और सभी स्त्रियां इसको मान लेती हैं। मानना चाहती हैं गहरे में। और इसको सुनते से ही स्त्री सुंदर हो जाती है। भरोसा आ जाता है! और जब कोई इतना सुंदर मान रहा हो, तो वह भी सुंदर दिखाई पड़ने लगता है। और तब हम कहते हैं कि तुझसे सुंदर पुरुष, तुझसे श्रेष्ठ पुरुष, खोजना असंभव है। और तब म्युचुअल कल्पना की दौड़ शुरू होती है। और तब वे दोनों एक— दूसरे को शिखर पर उठाए चले जाते हैं। और यह शिखर जितना ऊंचा होगा, उतनी ही खाई में कल गिरेंगे। क्योंकि यह शिखर कल्पना का है।

इसलिए ध्यान रखें, प्रेम—विवाह जिस खतरे में ले जाता है, कोई विवाह नहीं ले जा सकता। और प्रेम—विवाह जिस बुरी तरह असफल होता है, कोई विवाह असफल नहीं हो सकता। उसका कारण यह नहीं है कि प्रेम—विवाह बुरा है; उसका कुल कारण इतना है कि प्रेम—विवाह एक म्युचुअल कल्पना पर निर्मित होता है।

भारत में विवाह एक सफल संस्था है, क्योंकि हमने प्रेम को बिलकुल ही काट दिया है उसमें से। कल्पना का सवाल ही नहीं, जमीन पर ही चलाते हैं आदमी को। यहां पति—पत्नी होते हैं, प्रेमी— प्रेयसी होते ही नहीं। कभी आकाश में चढ़ते ही नहीं, तो गड्ढे में गिरने का सवाल ही नहीं आता। समतल भूमि पर चलते रहते हैं।

अमेरिका में बुरी तरह विवाह अस्तव्यस्त हुआ जा रहा है। और उसका कारण है कि विवाह की बुनियाद दो आदमी एक—दूसरे को

नशे में डालकर रखते हैं। वह नशा कितनी देर चलेगा? कितनी देर चल सकता है? वह नशा जल्दी ही उतर जाता है। और इतने बड़े सपनों के बाद जब जमीन पर लौटते हैं, तो लगता है कि बेकार हो गया, धोखा हो गया। गलती हो गई, भूल हो गई। वे सब कविताएं धुआ हो जाती हैं।

हम सब ऐसे ही जीते हैं लेकिन, इसलिए हमें खुशामद प्रीतिकर लगती है। क्योंकि कोई हमें भरोसा दिलाता है। बिलकुल झूठ भी कोई आपसे कह दे, कोई आपसे कह दे कि आप जैसा बुद्धिमान आदमी नहीं है। आपके भीतर कोई आपसे कहे भी कि झंझट में मत पड़ो, यह झूठ ही मालूम पड़ता है; क्योंकि आपको अपनी बुद्धि का अच्छी तरह पता है! फिर भी इनकार करने का मन नहीं होता, मानने का मन होता है। और दस आदमी अगर इकट्ठे होकर कहने लगें, तो फिर तो इनकार करने का सवाल ही नहीं। हजार दो हजार की भीड़ इकट्ठी हो जाए, फिर तो कोई सवाल ही नहीं। और आपको आसमान में उठाया जा सकता है।

दूसरों की आंखों में जो देख रहा है, वह भूलों में पड़ सकता है, पड़ेगा ही। साधक के लिए अनिवार्य है कि यह जो पारस्परिक लेन— देन है कल्पनाओं का, इससे हट जाए। इससे बिलकुल हट जाए। वह सिर्फ अपने पर राजी हो जाए। वह दूसरे में तलाश करने न जाए। दूसरे से कहे भी न, क्या उसके भीतर हो रहा है।

और न कहने का एक कारण और भी है, कि जैसे ही आप कहते हैं, आपकी गति अवरुद्ध हो जाती है। क्योंकि कहने का अर्थ ही यह हुआ कि आप बड़े तृप्त हो गए। जब मैं किसी से कहता हूं कि बड़ी शांति हो गई भीतर, तो उसका अर्थ है कि मैं तृप्त हो गया। गति अवरुद्ध हो जाएगी।

अगर बढ़ाए जाना है भीतर की गति को और रुक नहीं जाना है, तो मत कहें। मत कहें। इसे किसी से कहें ही मत। यह आपका ही रहस्य हो। यह आपकी निजी संपदा हो। इसका किसी को भी पता न चले। यह ऐसी कुछ बात हो कि आप और आपके परमात्मा के बीच ही रह जाए।

इसलिए इतनी सीक्रेसी, इतनी गुप्तता धर्मों ने निर्मित की है। उस सीक्रेसी के पीछे और कोई कारण नहीं है। उस गुप्तता के पीछे, गोपनीयता के पीछे और कोई कारण नहीं है। वह सहयोगी है अंतर्विकास में, इनर ग्रोथ में।

कृष्ण कहते हैं, गोपनीयों में अर्थात गुप्त रखने योग्य भावों में मैं मौन हूं। अगर तुझे मुझे खोजना हो भावों में, तो तू मुझे मौन में खोजना। अर्जुन ने पूछा भी है कि किस भाव में मैं खोजूं? तो कृष्ण कहते हैं, तू मुझे मौन में खोजना। अगर तू बिलकुल मौन हो जाए, तो तू मुझे पा लेगा।

हमारे और सत्य के बीच दीवाल शब्दों की है। एक फूल के पास से आप गुजरते हैं। एक गुलाब का फूल खिला है। फूल दिखाई नहीं पड़ता है, उसके पहले गुलाब का फूल बीच में आ जाता है, शब्द बीच में आ जाता है। फूल देख भी नहीं पाते और आप कहते हैं, सुंदर है। यह सुंदर है, आपकी पुरानी आदत का हिस्सा है। आपको पता है, गुलाब का फूल सुंदर होता है, सुंदर कहा जाता है। सुना है, पढ़ा है, वह आपके मन में रम गया है। फूल को आप देख भी नहीं पाते। यह फूल जो अभी मौजूद है, इसकी पंखुड़ियां आपके हृदय को छू भी नहीं पातीं। इसकी सुगंध आपके प्राणों में उतर भी नहीं पाती। और आप कहते हैं, गुलाब का फूल है, सुंदर है। बात समाप्त हो गई। आपका संबंध टूट गया।

अगर इस गुलाब के फूल से संबंधित होना हो, तो एक छोटा—सा प्रयोग करें। इस गुलाब के फूल को देखें, लेकिन भीतर शब्द को न आने दें। यह ध्यान का एक प्रयोग है। बैठें इसके पास, लेकिन शब्द को न आने दें। मत कहने दें अपने मन को कि गुलाब का फूल है। मत कहने दें कि सुंदर है। मत कहने दें कि बड़ी सुगंध आ रही है। मत कहने दें कि अच्छा है। कोई निर्णय नहीं। कोई वक्तव्य नहीं। शब्द को कहें कि तू चुप रह, मेरी आंखें हैं। मैं मौजूद हूं। मुझे देखने दे।

लाओत्सु एक दिन सुबह घूमने गया है। लाओत्सु रोज सुबह घूमने जाता है, एक मित्र उसके साथ जाता था। मित्र को तो पता था कि लाओत्सु से एक भी शब्द बीच में बोलना खतरनाक है। लेकिन मित्र के घर एक मेहमान था, वह उसको लेकर चला गया। लाओत्सु चुप था, मित्र चुप था, तो मेहमान भी बेचारा चुप रहा। दो घंटे की लंबी यात्रा में, जब सुबह सूर्य निकलने लगा आकाश में, और पक्षी गीत गाने लगे, और फूल खिलने लगे, तो उसने सिर्फ इतना ही कहा, कितनी सुंदर सुबह है—मेहमान ने!

लाओत्सु ने लौटकर अपने मित्र को कहा कि इस बकवासी आदमी को साथ क्यों ले आए! उस मित्र ने कहा, हद हो गई! सिर्फ इतना ही उस बेचारे ने कहा कि कितनी सुंदर सुबह है! लाओत्सु ने कहा, लेकिन इतनी दीवाल भी बाधा बन जाती है। सूरज था। सुबह थी। हम भी थे। वह भी था। कहने की क्या जरूरत थी? कोई हम अंधे थे? कि हमको पता नहीं था कि सुबह नहीं है, कि सुंदर नहीं है? कहने की क्या जरूरत थी? उन शब्दों ने सुबह की शांति को बुरी तरह भंग कर दिया। दुबारा इसे साथ मत लाना।

यह जो लाओत्सु कह रहा है, निश्चित ही, जब सूरज उगता है और आप कह देते हैं, सुंदर है, तो आपको पता नहीं होगा कि आपके और सूरज के बीच शब्द की एक दीवाल आ गई। हटा दें शब्दों को बीच से। आप खाली हो जाएं। उधर सूरज को उगने दें, इधर आप रह जाएं, बीच में कुछ भी न हो। तब आपको पहली दफा सूरज का संस्पर्श मिलेगा। तब पहली दफा सूरज के साथ आप आत्मसात हो जाएंगे। तब पहली दफा सूरज और आपके बीच में कोई भी नहीं होगा। सूरज और आपके बीच पहली दफा सेतु निर्मित होगा। या गुलाब के फूल और आपके हृदय के बीच पहली दफा एक संगीत निर्मित होगा।

अगर ऐसा ही मौन समस्त अस्तित्व के प्रति आ जाए, तो परमात्मा और हमारे बीच संबंध निर्मित होता है। जिस दिन शब्द न रह जाएं, समाप्त हो जाएं, अलग गिर जाएं, हम और अस्तित्व ही रह जाएं..। अस्तित्व है चारों ओर, हम हैं यहां, बीच में एक शब्दों की दीवाल है।

भाषा बड़ी उपयोगी है संसार में, बड़ी बाधा है परमात्मा में। जहां दूसरे से संबंधित होना है, भाषा जरूरी है। जहां अपने से संबंधित होना है, भाषा खतरनाक है। जहां दूसरे से मिलना है, वहां भाषा के बिना कैसे मिलिएगा? लेकिन जहां अपने से ही मिलना है, वहां भाषा की क्या जरूरत है?

लेकिन हम दूसरे से मिल—मिलकर इतने आदी हो गए हैं भाषा के, कि जब अपने से मिलने जाते हैं, तब भी भाषा का बोझ लेकर पहुंच जाते हैं। अगर परमात्मा से मिलना है, तो भाषा की कोई भी जरूरत नहीं है। वहां मौन ही भाषा है। वहां चुप हो जाना ही बोलना है। वहां मौन हो जाना ही संवाद है।

कृष्ण कहते हैं, भावों में अगर मुझे खोजना हो, तो मैं मौन हूं। और ज्ञानवानों का तत्व—ज्ञान मैं ही हूं।

यह आखिरी प्रतीक इस आयाम में।

ज्ञानवानों का तत्व—ज्ञान मैं ही हूं।

तत्व—ज्ञान के संबंध में थोड़ी बात मैंने आपसे कही। तत्व—ज्ञान से अर्थ शास्त्रीय ज्ञान नहीं है। तत्व—ज्ञान से अर्थ है, सत्य का निजी अनुभव, अपना अनुभव।

आस्पेंस्की रूस का एक बहुत बड़ा विचारक, गणितज्ञ, एक फकीर गुरजिएफ के पास गया। उसने गुरजिएफ से कहा कि मैं आपसे कुछ पूछने आया हूं। गुरजिएफ ने उसे एक कागज दे दिया उठाकर और कहा कि इस कागज पर पहले तुम लिख दो, जो—जो तुम जानते हो, वह तुम लिख दो। फिर तुम जो नहीं जानते, वह मुझसे पूछना। अगर तुम पहले से ही जानते हो, तो पूछने की झंझट की कोई जरूरत नहीं है। तो पहले तुम लिख दो, जो—जो तुम जानते हो। उसकी हम चर्चा ही नहीं करेंगे; उसे हम उठाएंगे ही नहीं।

आस्पेंस्की बड़ा लेखक था। और गुरजिएफ से मिलने के पहले उसने एक बहुत अदभुत किताब लिखी थी, जो दुनिया की तीन बड़ी किताबों में एक है। पश्चिम में तो उस किताब का जोड़ खोजना बहुत मुश्किल है।

उसने एक किताब लिखी थी, टर्शियम आर्गानम। और निष्ठापूर्वक, किसी अहंकार से नहीं, उसने अपनी किताब में वक्तव्य दिया था कि इसके पहले दो किताबें और लिखी गई हैं। एक किताब लिखी है अरस्तु ने, आर्गानम। आर्गानम का अर्थ होता है, पहला सिद्धांत। दूसरी किताब लिखी है बेकन ने, नोवम आर्गानम, नया सिद्धात। और तीसरी किताब मैं लिखता हूं टर्शियम आर्गानम, तीसरा सिद्धांत। और उसने बड़ी विनम्रता से, बिना किसी अहंकार के कहा था कि पहला सिद्धात भी जब जगत में नहीं था, तब भी यह तीसरा सिद्धांत मौजूद था, जो मैं लिख रहा हूं।

किताब बड़ी कीमती है, बड़ी अदभुत है। और कभी—कभी हैरानी होती है कि बिना जाने भी आदमी का मस्तिष्क कितनी बड़ी चीजें लिख सकता है। उसे कोई आत्मज्ञान नहीं था। पर यह किताब ऐसी है कि पढ़कर ऐसा लगे कि यह आदमी परम ज्ञानी है।

गुरजिएफ ने कहा कि मुझे पता है कि तू कौन है आस्पेंस्की। तेरी टर्शियम आर्गानम मैंने देखी है। तेरे संबंध में मुझे खबर है। पहले तू लिख दे कि जो—जो तू जानता है, उसकी हम बात ही नहीं करेंगे। या अगर तू कहता है कि टर्शियम आर्गानम में जो—जो तूने लिखा है, वह तू जानता है, तब तो बात की कोई जरूरत नहीं है। नमस्कार!

आस्पेंस्की को ऐसा आदमी कभी मिला ही नहीं था। यह भी कोई बात हुई! गुरजिएफ ने कहा कि पास के कमरे में चला जा। मेरे सामने तुझे संकोच होगा। यह कागज ले जा और लिख ला।

आस्पेंस्की ने लिखा है कि मैं कागज—कलम लेकर बैठ गया। जब मैं लिखने बैठता हूं तो मेरा हाथ रुकता ही नहीं। उस दिन मेरा हाथ एकदम जाम हो गया। क्या लिखूं जो मैं जानता हूं! जो भी लिखने की कोशिश करता हूं भीतर से खबर आती है, यह मैं जानता कहां हूं? पढ़ा है, सुना है, समझा है। बुद्धि को पता है, मुझे कहां पता है! मेरा अनुभव, ईश्वर? कोई मेरा अनुभव नहीं। आत्मा? कोई मेरा अनुभव नहीं। ध्यान? कोई मेरा अनुभव नहीं। वह कोरा कागज लाकर उसने गुरजिएफ को दे दिया। उसकी आंख में आंसू टपक रहे थे। उसने कहा, मुझे क्षमा करना। मुझे कुछ भी पता नहीं है। यह कोरा कागज आप ले लें।

गुरजिएफ ने कहा कि तब तू आगे बढ़ सकता है। क्योंकि जिसने तथाकथित ज्ञान को ही ज्ञान समझ लिया, वह फिर आगे नहीं बढ़ सकता। तू तत्व—ज्ञानी भी हो सकता है। अभी तक तू ज्ञानी था, अब तू तत्व—शानी भी हो सकता है। जब जानी को पता चलता है, मैं शानी नहीं हूं तब तत्व—ज्ञान की यात्रा शुरू होती है।

और ध्यान रहे, अज्ञान इतना नहीं भटकाता, जितना तथाकथित उधार ज्ञान भटकाता है। अज्ञानी तो विनम्र होता है। उसे पता होता है, मुझे पता नहीं। लेकिन तथाकथित जो जानी होते हैं, जिनके मस्तिष्क में सिवाय शास्त्र के और कुछ भी नहीं होता। शास्त्र की प्रतिध्वनियां होती हैं। उनको यह भी खयाल नहीं आता कि हम नहीं जानते। उनको तो पक्का मजबूत खयाल होता है कि मैं जानता हूं। यह मैं जानता हूं यही उनकी बाधा बन जाती है।

तत्व—ज्ञान का अर्थ है, जब निजी अनुभव हो।

कृष्ण जानते होंगे; आप गीता कंठस्थ कर लें, इससे कुछ ज्ञान नहीं होगा। बुद्ध जानते होंगे; आप धम्मपद याद कर लें, इससे कुछ होगा नहीं। यह उधार है। और ध्यान रहे, उधार ज्ञान ज्ञान होता ही नहीं। उधार ज्ञान ज्ञान होता ही नहीं। अपना ज्ञान ही सिर्फ ज्ञान है। दूसरा क्या जानता है, वह आपको सब दे दे, आपके पास ज्ञान नहीं आता, सिर्फ शब्द आते हैं। शब्द आप इकट्ठे कर लेते हैं, स्मृति में शब्द बैठ जाते हैं। फिर स्मृति को ही आप समझते हैं कि मैं जानता हूं।

स्मृति ज्ञान नहीं है। ज्ञान का अर्थ है, अनुभव। आपका ही साक्षात्कार हो, आप ही आमने—सामने आ जाएं, आपका ही हृदय जाने, जीए, धड़के, उस अनुभव में, तो ही तत्व—ज्ञान है।

कृष्ण कहते हैं, ज्ञानियों, ज्ञानवानों का तत्व—ज्ञान मैं ही हूं अनुभव मैं ही हूं।

और यह बड़े मजे की बात है कि उस तत्व—ज्ञान में, उस निजी अनुभव में जो जाना जाता है, वही परमात्मा है। निजी अनुभव में जो जाना जाता है, वही परमात्मा है। निजी अनुभव ही परमात्मा है। परमात्मा के संबंध में जानना परमात्मा को जानना नहीं है। टु नो अबाउट गॉड इज नाट टु नो गॉड। अबाउट, संबंध में—झूठी बातें हैं। परमात्मा को ही जानना, संबंध में नहीं। उसके बाबत नहीं, उसको ही जानना तत्व—ज्ञान है। यह कब घटित होता है? अज्ञान हमारी सहज स्थिति है। फिर अज्ञान को हम ज्ञान से ढांक लेते हैं, तो भ्रांति पैदा होती है। लगता है, जान लिया।

उपनिषदों ने कहा है बड़ा बहुमूल्य सूत्र, संभवत: इससे क्रांतिकारी वचन जगत में खोजना कठिन है। और उपनिषद को लोग पढ़ते रहते हैं और उसी उपनिषद को कंठस्थ कर लेते हैं! ऐसा आदमी मजेदार है और विचित्र है।

उपनिषद ने कहा है कि अज्ञानी तो भटकते ही हैं अंधकार में, ज्ञानी महाअंधकार में भटक जाते हैं!

यह किन ज्ञानियों के लिए कहा होगा जो महाअंधकार में भटक जाते हैं! और मजा यह है कि इसी उपनिषद को लोग कंठस्थ कर लेते हैं। और इस सूत्र को भी कंठस्थ कर लेते हैं। और इस सूत्र को रोज कहते रहते हैं कि अज्ञानी तो भटकते ही हैं अंधकार में, शानी महाअंधकार में भटक जाते हैं। इसको भी कंठस्थ कर लेते हैं। सोचते हैं, इसे कंठस्थ करके वे ज्ञानी हो गए। इन्हीं ज्ञानियों के भटकने के लिए यह सूत्र है।

आदमी विचित्र है। और आदमी अपने को धोखा देने में अति कुशल है। और जब वह खुद को धोखा देता है, तो धोखा तोड्ने का उपाय भी नहीं बचता। दूसरे को धोखा दें, तो दूसरा बचने की भी कोशिश करता है। आप खुद ही अपने को धोखा दें, तो फिर बचने का भी कोई उपाय नहीं रह जाता।

अगर कोई आदमी सोया हो, तो उसे जगाया भी जा सकता है। लेकिन कोई जागा हुआ सोया हुआ बना पड़ा हो, तो उसे जगाना बिलकुल मुश्किल है। कैसे जगाइएगा? अगर वह आदमी जाग ही रहा हो और सोने का बहाना कर रहा हो, तब फिर जगाना बहुत मुश्किल है। नींद तोड़ देना आसान है, लेकिन झूठी नींद को तोड़ना बहुत मुश्किल है।

अज्ञानी को तत्व—ज्ञान की तरफ ले जाना इतना कठिन नहीं है, जितना पंडित को, ज्ञानी को ले जाना मुश्किल हो जाता है। क्योंकि वह कहता है, मैं जानता ही हूं।

अभी परसों सुबह एक संन्यासी आए। बीस वर्ष से घूमते हैं, खोजते हैं। कहते हैं, हिंदुस्तान में ऐसा एक महात्मा नहीं, जिसके पास मैं न हो आया हूं। ऐसा एक शास्त्र नहीं, जो उन्होंने न पढ़ा हो। ऐसी एक विधि नहीं, जो वह कहते हैं, मैंने न कर ली हो।

तो मैंने उनसे पूछा, आप सब सत्संग कर लिए, सब शास्त्र पढ़ लिए, सब विधियां कर लीं, अब क्या इरादे हैं? अगर आपको पक्का हो गया है कि आपको अभी तक नहीं मिला, तो ये सब शास्त्र और ये सब सत्संग और सब विधियां बेकार गए। अब इनको छोड़ दें। और अगर मिल गया हो, तो मेरा समय खराब न करें। मुझे साफ—साफ कह दें। अगर मिल गया हो, तो ठीक है, बात समाप्त हो गई। अगर न मिला हो, तो अब इस बोझ को न ढोए। क्योंकि एक घंटा उन्होंने मुझे ब्योरा बताया, कि वे कौन— कौन सी किताब पढ़ चुके हैं, कौन—कौन महात्मा से मिल चुके हैं, कौन—कौन सी विधि कर चुके हैं। मैंने कहा, इनसे अगर मिल गया हो, तो ठीक है। झंझट मिट गई। अगर न मिला हो, तो अब इस बोझ को न ढोए फिरें।

लेकिन यह बात उनको रुचिकर नहीं लगी। यह उनके जीवनभर की संपत्ति है। इससे मिला कुछ नहीं। लेकिन यह अनुभव भी करना कि इससे कुछ नहीं मिला, उसका मतलब होता है कि बीस साल मेरे बेकार गए। वह भी चित्त को भाता नहीं है। बीस साल मैंने व्यर्थ ही गंवाए, वह भी चित्त को भाता नहीं है। मिला भी नहीं है। छोड़ा भी नहीं जाता, जो पकड़ लिया है।

ज्ञानी, तथाकथित शानी की तकलीफ यही है। अपना ज्ञान भी नहीं है और उधार ज्ञान सिर पर इतना भारी है, वह छोड़ा भी नहीं जाता। क्योंकि वह संपत्ति बन गई। उससे अकड़ आ गई। उससे अहंकार निर्मित हो गया है। उससे लगता है कि मैं जानता हूं। बिना जाने लगता है कि मैं जानता हूं।

यह जो स्थिति हो, तो तत्व—ज्ञान फलित नहीं होगा।

कृष्ण कहते हैं, ज्ञानियो का मैं तत्व—ज्ञान हूं। वे यह नहीं कहते कि ज्ञानियों की मैं जानकारी हूं। ज्ञानियों के पास बड़ी जानकारी, बड़ी इनफमेंशन है। वे कहते हैं, ज्ञानियो का मैं तत्व—ज्ञान, निजी अनुभव, उनका खुद का बोध, उनका सेल्फ रियलाइजेशन, उनकी प्रतीति, उनकी अनुभूति मैं हूं। उनकी जानकारी नहीं।

यह जो अनुभूति है, यह एक बहुत अनूठी घटना है। एक छोटी— सी कहानी, और अपनी बात मैं पूरी करूं।

मैंने सुना है, और टाल्सटाय ने उस पर एक कहानी भी लिखी है, कि रूस में एक झील के किनारे तीन फकीरों का नाम बड़ा प्रसिद्ध हो गया था। और लोग लाखों की तादाद में उन फकीरों का दर्शन करने जाने लगे। और वे फकीर महामूढ़ थे, बिलकुल गैर पढ़े—लिखे थे। कुछ धर्म का उन्हें पता ही नहीं था। यह खबर रूस के आर्च प्रीस्ट को, सबसे बड़े ईसाई पुरोहित को लगी। उसे बड़ी हैरानी हुई। क्योंकि ईसाई चर्च तो कानूनन ढंग से लोगों को संत घोषित करता है, तभी वे संत हो पाते हैं।

यह भी बड़े मजे की बात है! ईसाई चर्च तो घोषणा करता है कि फलां आदमी संत हुआ। और जब पोप इसकी गारंटी दे देता है कि फलां आदमी संत हुआ, तभी वह संत माना जाता है। इसलिए ईसाइयत में एक मजेदार घटना घटती है कि दो—दो सौ, तीन—तीन सौ साल हो जाते हैं आदमी को मरे हुए, तब चर्च उनको संत घोषित करता है। जिंदों को तो जला दिया कई दफा चर्च ने। जान आफ आर्क को जलाया, वह जिंदा थी तब। फिर सैकड़ों साल बाद उसको संतत्व की पदवी घोषित की, कि वह भूल हो गई, वह संत थी। अभी संत कैसे हो गए ये! हिंदुस्तान होता तो चलता, यहां कोई भी संत हो सकता है। इसकी कोई तकलीफ नहीं है। लेकिन रूस में तकलीफ हुई कि ये संत हो कैसे गए! तो आर्च प्रीस्ट बड़ा परेशान हुआ। और जब उसे पता चला कि लाखों लोग वहां जाते हैं, तो उसने कहा, यह तो हद हो गई! यह तो चर्च के लिए नुकसान होगा। ये कौन लोग हैं! इनकी परीक्षा लेनी जरूरी है।

तो आर्च प्रीस्ट एक मोटर बोट में बैठकर झील में गया। जाकर वहां पहुंचा, तो वे तीनों झाडू के नीचे बैठे थे। देखकर वह बडा हैरान हुआ। सीधे—सादे ग्रामीण देहाती मालूम पड़ते थे। वह जाकर जब खड़ा हुआ, तो उन तीनों ने झुककर नमस्कार किया, उसके चरण छुए।

उसने कहा कि बिलकुल नासमझ हैं। इनकी क्या हैसियत! उसने बहुत डांटा—डपटा, फटकारा कि तुम यह क्यों भीड़— भाड़ यहां इकट्ठी करते हो? उन्होंने कहा, हम नहीं करते। लोग आ जाते हैं। आप उनको समझा दें। पूछा कि तुमको किसने कहा कि तुम संत हो? लोग कहने लगे। हमको कुछ पता नहीं है। तुम्हारी प्रार्थना क्या है? बाइबिल पढ़ते हो? उन्होंने कहा, हम बिलकुल पढ़े—लिखे नहीं हैं। तुम प्रार्थना क्या करते हो? क्योंकि चर्च की तो निश्चित प्रार्थना है। तो उन्होंने कहा, हमको तो प्रार्थना कुछ पता नहीं। हम तीनों ने मिलकर एक बना ली है। तुम कौन हो बनाने वाले प्रार्थना? प्रार्थना तो तय होती है पोप के द्वारा। बिशप्स की बड़ी एसेंबली इकट्ठी होती है, तब एक—एक शब्द का निर्णय होता है। तुम कौन हो प्रार्थना बनाने वाले? तुमने अपनी निजी प्रार्थना बना ली है! भगवान तक जाना हो, तो बंधे हुए रास्तों से जाना पड़ता है! क्या है तुम्हारी प्रार्थना?

वे तीनों बहुत घबड़ा गए। कंपने लगे। सीधे—सादे लोग थे। तो उन्होंने कहा, हमने तो एक छोटी प्रार्थना बना ली है। आप माफ करें, तो हम बता दें। ज्यादा बड़ी नहीं है, बहुत छोटी—सी है।

ईसाइयत मानती है कि परमात्मा के तीन रूप हैं, ट्रिनिटी। त्रिमूर्ति परमात्मा है। परमात्मा है, उसका बेटा है, होली घोस्ट है। ये तीन रूप हैं परमात्मा के।

तो उन्होंने कहा कि हमने तो एक छोटी—सी प्रार्थना बना ली। यू आर थी, वी आर थ्री, हैव मर्सी आन अस। तुम भी तीन हो, हम भी तीन हैं, हम पर कृपा करो। यही हमारी प्रार्थना है। उस पादरी ने कहा, नासमझो, बंद करो यह बकवास। यह कोई प्रार्थना है? सुनी है कभी? और तुम मजाक करते हो भगवान का कि तुम भी तीन और हम भी तीन हैं?

उन्होंने कहा, नहीं, मजाक नहीं करते। हम भी तीन हैं। और हमने सुना है कि वह भी तीन है। उसका तो हमें पता नहीं। बाकी हम तीन हैं। और हम ज्यादा कुछ जानते नहीं। हमने सोचा, हम तीन हैं, वे भी तीन हैं, तो हम तीनों पर कृपा कर। उसने कहा कि यह प्रार्थना नहीं चलेगी। आइंदा करोगे, तो तुम नरक जाओगे। तो मैं तुम्हें प्रार्थना बताता हूं आथराइज्ड, जो अधिकृत है।

उसने प्रार्थना बताई। उन तीनों को कहलवाई। उन्होंने कहा, एक दफा और कह दें, कहीं हम भूल न जाएं। फिर एक दफा कही। फिर उन्होंने कहा, एक दफा और। कहीं भूल न जाएं। उसने कहा, तुम आदमी कैसे हो? तुम संत हो? तो उन्होंने कहा, नहीं, हम कोशिश तो पूरी याद करने की करेंगे, एक दफा आप और दोहरा दें! उसने दोहरा दी।

फिर पादरी वापस लौटा। जब वह आधी झील में था, तब उसने देखा कि पीछे वे तीनों पानी पर भागते चले आ रहे हैं। तब उसके प्राण घबड़ा गए। उसने अपने माझी से कहा कि यह क्या मामला है? ये तीनों पानी पर कैसे चले आ रहे हैं? उस माझी ने कहा कि मेरे हाथ—पैर खुद ही कैप रहे हैं। यह मामला क्या है! वे तीनों पास आ गए। उन्होंने कहा, जरा रुकना। वह प्रार्थना हम भूल गए; एक बार और बता दो! उस पादरी ने कहा कि तुम अपनी ही प्रार्थना जारी रखो। हमारी प्रार्थना तो कर—करके हम मर गए, पानी पर चल नहीं सकते। तुम्हारी प्रार्थना ही ठीक है। तुम वही जारी रखो। वे तीनों हाथ जोड़कर कहने लगे कि नहीं, वह प्रार्थना ठीक नहीं। मगर आपने जो बताई थी, बड़ी लंबी है और शब्द जरा कठिन हैं। और हम भूल गए। हम बेपढ़े—लिखे लोग हैं।

यह घटना टाल्सटाय ने लिखी है। ये तीन आदमी बिलकुल पंडित नहीं हैं, विनम्र भोले— भाले लोग हैं। लेकिन एक निजी अनुभव घटित हुआ है। और निजी अनुभव के लिए कोई अधिकृत प्रार्थनाओं की जरूरत नहीं है। और निजी अनुभव के लिए कोई लाइसेंस्ट शास्त्रों की जरूरत नहीं है। और निजी अनुभव का किसी ने कोई ठेका नहीं लिया हुआ है। हर आदमी हकदार है पैदा होने के साथ ही परमात्मा को जानने का। वह उसका स्वरूपसिद्ध अधिकार है। वह मैं हूं यही काफी है, मेरे परमात्मा से संबंधित होने के लिए। और कुछ भी जरूरी नहीं है। बाकी सब गैर—अनिवार्य है।

लेकिन जो जानकारी हम इकट्ठी कर लेते हैं, वह जानकारी हमारे सिर पर बोझ हो जाती है। वह जो भीतर की सरलता है, वह भी खो जाती है। पंडित भी उसे पा सकते हैं, लेकिन पांडित्य को उतारकर रख दें तो ही।

और तत्व—ज्ञान मैं हूं। ज्ञान नहीं, जानकारी नहीं, सूचना नहीं, शास्त्रीयता नहीं, आत्मिक अनुभव। और निश्चित ही, उस आत्मिक अनुभव में, जहां एक भी शब्द नहीं होता, व्यक्ति होता है और अस्तित्व होता है और दोनों के बीच की सब दीवालें गिर गई होती हैं, वहां जो होता है, वही परमात्मा है।

इसे हम ऐसा कहें, परमात्मा का अनुभव नहीं होता; एक अनुभव है, जिसका नाम परमात्मा है। परमात्मा का कोई अनुभव नहीं होता।

ऐसा नहीं होता कि आपके सामने परमात्मा खड़ा है, और आप अनुभव कर रहे हैं। इसमें तो दूरी रह जाएगी। एक अनुभव है, जहां व्यक्ति समष्टि में लीन हो जाता है। उस अनुभव का नाम ही परमात्मा है। शायद कठिन मालूम पड़े। परमात्मा का कोई अनुभव नहीं होता, देअर इज नो एक्सपीरिएंस ऑफ गॉड, बट ए सटेंन एक्सपीरिएंस इज नोन एज गॉड। एक खास अनुभव!

वह अनुभव क्या है? वह अनुभव है, जहां बूंद सागर में खोती है। जहां बूंद सागर में खोती है, तो बूंद को जो अनुभव होता होगा! जैसे व्यक्ति जब समष्टि में खोता है, तो व्यक्ति को जो अनुभव होता है, उस अनुभव का नाम परमात्मा है।

परमात्मा एक अनुभव है, वस्तु नहीं। परमात्मा एक अनुभव है, व्यक्ति नहीं। परमात्मा एक अनुभव है, एक घटना है। और जो भी तैयार है उस घटना के लिए, उस एक्सप्लोजन के लिए, उस विस्फोट के लिए, उसमें घट जाती है। और तैयारी के लिए जरूरी है कि अपना अज्ञान तो छोड़े ही, अपना ज्ञान भी छोड़ दें। अज्ञान तो छोड़ना ही पड़ेगा, ज्ञान भी छोड़ देना पड़ेगा। और जिस दिन ज्ञान— अज्ञान दोनों नहीं होते, उसी दिन जो होता है, उसका नाम परमात्मा है।

गीता दर्शन—भाग—5
मंजिल है स्वयं में—(प्रवचन—पंद्रहवां)
अध्याय—10

सूत्र—

यच्चापि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन।
न तदस्ति विना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम्।। 39 ।।
नान्तोउस्ति मम दिव्यानां विभूतीना परंतप।
एक् तूद्देशतः प्रोक्तो विभूतेर्विस्तरो मया।। 40 ।।

यद्यद्विभूतिमत्सत्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ स्वं मम तेजोंउशसंभवम्।। 41 ।।

अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन।
विष्टथ्याहमिदं कृत्नमेकांशेन स्थितो जगत।। 42 ।।
और हे अर्जुन जो सब भूतों की उत्पलि का कारण है वह भी मैं ही हूं क्योंकि ऐसा वह चर और अचर कोई भी भूत नहीं है कि जो मेरे से रहित होवे।

हे परंतप मेरी दिव्य विभूतियों का अंत नहीं है। यह तो मैने अपनी विभूतियों का विस्तार तेरे लिए संक्षेप से कहा है। इसलिए हे अर्जुन जो—जो भी विभूतियुक्त अर्थात

ऐश्वर्ययुक्त एवं कांतियुक्त और शक्तियुक्त वस्तु है, उस— उस को तू मेरे तेज के अंश से ही उत्पन्न हुई जान।

अथवा हे अर्जुन हम बहुत जानने से तेरा क्या प्रयोजन है। मैं हस संपूर्ण जगत को अपनी योग— माया के एक अंशमात्र से धारण करके स्थित हूं। इसलिए मेरे को ही तत्व से जानना चाहिए।

और हे अर्जुन, जो सब भूतों की उत्पत्ति का कारण है, वह मैं ही हूं क्योंकि ऐसा वह चर और अचर कोई भी भूत नहीं है कि जो मेरे से रहित हो।

इस सूत्र पर कृष्ण ने बार—बार जोर दिया है। बहुमूल्य है, और

निरंतर स्मरण रखने योग्य इसलिए भी। जब भी हम ईश्वर के संबंध में विचार करते हैं, तब ऐसा ही विचार में प्रतीत होता है कि ईश्वर अस्तित्व से कुछ और है। यह विचार की भूल के कारण होता है; यह विचार के स्वभाव और विचार की प्रक्रिया के कारण होता है। जब भी विचार का उपयोग किया जाता है, तो चीजें दो में टूट जाती हैं। विचार वस्तुओं को विश्लिष्ट करने का मार्ग है। तो जब भी हम सोचते हैं ईश्वर के संबंध में, तो जगत अलग और ईश्वर अलग हो जाता है। तो हम कहते हैं सृष्टि, तो स्रष्टा अलग हो जाता है।

लेकिन वस्तुतः अनुभूति में सृष्टि और स्रष्टा पृथक—पृथक नहीं हैं, वे एक ही हैं। इसलिए पुराने अनुभव करने वाले लोगों ने कहा है कि यह सृष्टि ठीक वैसे ही है, जैसे मकड़ी अपने ही भीतर से जाले को निकालकर फैलाती है। यह जो इतना विस्तार है, यह परमात्मा से वैसे ही निकलता और फैलता है, जैसे मकड़ी का जाला उसके भीतर से निकलता और फैलता है।

यह विस्तार उसका ही विस्तार है। यह विस्तार उससे पृथक नहीं है। और एक क्षण को भी पृथक होकर इसका कोई अस्तित्व नहीं हो सकता। यह है उसकी ही मौजूदगी के कारण। वह इसमें समाया है, इसीलिए इसका अस्तित्व है। वह मौजूद है, इसीलिए यह मौजूद है। इसका अर्थ यह हुआ कि हम ईश्वर को अस्तित्व का पर्यायवाची मानें। अस्तित्व ही ईश्वर है।

इस बात से तो विज्ञान भी राजी होगा। इस बात से तो नास्तिक भी राजी हो जाएगा। लेकिन नास्तिक या वैज्ञानिक कहेगा, फिर ईश्वर शब्द के प्रयोग की कोई जरूरत नहीं; प्रकृति काफी है, जगत काफी है, अस्तित्व काफी है। और यहां धर्म के जगत के लिए विशेष शब्द के प्रयोग का अर्थ समझ लेना उचित है।

अस्तित्व काफी है कहना, लेकिन अस्तित्व से हमारे हृदय में कोई भी आंदोलन नहीं होता। अस्तित्व से हमारे प्राणों में कोई चीज संचारित नहीं होती। अस्तित्व से हमारे हृदय की वीणा पर कोई चोट नहीं पड़ती। अस्तित्व और हमारे बीच कोई संबंध निर्मित नहीं होता। ईश्वर

कहते ही हमारे हृदय में गति शुरू हो जाती है। ईश्वर शब्द इसलिए प्रयोजित है। क्योंकि ईश्वर है, इतना काफी नहीं है कहना, आदमी ईश्वर तक पहुंचे, यह भी जरूरी है।

धर्म केवल तथ्यों की घोषणा नहीं है, वरन लक्ष्यों की घोषणा भी है। यहीं विज्ञान और धर्म का फर्क है। धर्म केवल तथ्यों की, फैक्ट्स की घोषणा नहीं है। क्या है, इतने से ही धर्म का संबंध नहीं है। क्या होना चाहिए, क्या हो सकता है, उससे भी धर्म का संबंध है।

अगर बीज हमारे सामने पड़ा हो, तो विज्ञान कहेगा, यह बीज है, और धर्म कहेगा, यह फूल है। धर्म उसकी भी घोषणा करेगा जो हो सकता है, जो होना चाहिए। और जो नहीं हो पाएगा, तो बीज के प्राण कुंठित, पीड़ित और परेशान रह जाएंगे। बीज अतृप्त रह जाएगा, अगर फूल न हो पाया तो। और बीज के प्राणों में एक गहरा विषाद, एक संताप रह जाएगा, एक अधूरापन।

विज्ञान इतना कहकर राजी हो जाता है कि अस्तित्व है। धर्म कहता है, ईश्वर और अस्तित्व समानार्थी हैं, फिर भी हम अस्तित्व नहीं कहते, कहते हैं, ईश्वर है। ईश्वर कहते ही बीज और फूल, दोनों की एक साथ घोषणा हो जाती है। जब हम कहते हैं, अस्तित्व ईश्वर है, तो हम मौलिक रूप से यह कहना चाहते हैं कि प्रत्येक ईश्वर है और हो सकता है।

कृष्ण ने कहा है, ऐसा चर और अचर कोई भी नहीं है, जो मेरे से रहित होवे। ऐसी कोई भी सत्ता नहीं है, जहां मैं मौजूद नहीं हूं। लेकिन पत्थर की तो हम बात छोड़ दें, आदमी को भी पता नहीं चलता कि वह मौजूद है। पत्थर में भी वह मौजूद है। पत्थर को हम छोड़ दें, आदमी को भी पता नहीं चलता कि वह मेरे भीतर मौजूद है। हमें भी अनुभव नहीं होता कि वह हमारे भीतर मौजूद है। और द्रम भी उसे खोजने निकलते हैं, तो कहीं और खोजने निकलते हैं—काबा में, काशी में, मक्का में, मदीना में— कहीं उसे खोजने निकलते हैं। यह खयाल ही नहीं आता कि वह यहां भीतर हो सकता है। क्या कारण होगा?

कारण बहुत सहज, बहुत सरल है। जो अति निकट होता है, वह विस्मरण हो जाता है। जो बहुत निकट होता है, उसकी हमें याद ही नहीं आती। और जो भीतर ही होता है, उसका हमें पता ही नहीं चलता। हमें पता ही उन चीजों का चलता है, जो दूर होती हैं, जिनमें और हममें फासला होता है। बोध के लिए बीच—बीच में गैप, अंतराल चाहिए। हमारे और परमात्मा के बीच में कोई अंतराल नहीं है, इसलिए बोध पैदा नहीं हो पाता।

इसे थोड़ा हम समझ लें।

अगर आपको बचपन से ही शोरगुल के बीच बड़ा किया जाए, रेलवे स्टेशन पर बड़ा किया जाए, जहां दिनभर गाड़ियां दौड़ती रहती हों, और यात्री भागते रहते हों, और शोरगुल होता हो, इंजन आवाज करते हों, तो आपको उसी दिन पता चलेगा कि शोरगुल हो रहा है, जिस दिन रेलवे में हड़ताल हो जाए; उसके पहले पता नहीं चलेगा। जिस दिन सब गाड़ियां बंद हों और यात्री कोई न आएं, न जाएं, उस दिन आपको पहली दफा पता चलेगा कि शोरगुल हो रहा था। अन्यथा आप शोरगुल के आदी हो गए होंगे। आपको खयाल में भी नहीं आएगा।

जो बात निरंतर होती रहती है, उसका हमें बोध मिट जाता है। जो बात अचानक होती है, उसका हमें बोध होता है। जो कभी—कभी होती है, उसका हमें बोध होता है। जो सदा होती रहती है, उसका हमें बोध मिट जाता है। और परमात्मा और हमारे बीच कभी भी हड़ताल नहीं होती, यही तकलीफ है। परमात्मा और हमारे बीच कभी ऐसी घटना नहीं घटती कि परमात्मा मौजूद न हो। अगर एक क्षण को भी परमात्मा गैर—मौजूद हो जाए, तो हमें पता चले।

मछली सागर में तैरती रहती है, उसे सागर का पता नहीं चलता। मछली को सागर से निकालकर रेत पर डाल दो, तब उसे पहली दफा पता चलता है कि सागर था। तब उसकी तड़फन, तब उसकी बेचैनी, तब उसके प्राणों का संकट खडा होता है, तब उसे पता चलता है कि जहां मैं थी, वह सागर था, वह मेरे प्राणों का आधार था।

लेकिन आदमी को परमात्मा के बाहर निकालकर किसी भी रेत पर डालने का कोई उपाय नहीं है। इसलिए आदमी को पता नहीं चलता कि वह परमात्मा में जी रहा है! यह अजीब सा लगेगा।

हम तो साधारणत: सोचते हैं कि परमात्मा बहुत दूर होना चाहिए, इसलिए हमें पता नहीं चलता है। वह बिलकुल ही गलत है। दूर होता, तो पता हम चला ही लेते। इतना निकट है, इसीलिए पता नहीं चलता। और निकटता इतनी सघन है कि कभी नहीं टूटी, इसलिए पता नहीं चलता।

दूरी कितनी ही बड़ी हो, पार की जा सकती है। और परमात्मा अगर दूर होता, तो हमने पार कर लिया होता। और एक आदमी पार कर लेता, फिर तो हम पक्का रास्ता बना लेते। फिर कोई कठिनाई न थी। एक कृष्ण पहुंच जाते, एक बुद्ध पहुंच जाते, फिर क्या दिक्कत थी! फिर कोई कठिनाई न थी। चांद पर एक आदमी उतर गया, अब सिद्धांतत: पूरी मनुष्यता उतर सकती है। अब यह कोई कठिनाई की बात नहीं रही, देर—अबेर की बात है। एक बार रास्ते का पता चल गया, तो कोई भी उतर सकता है।

जापान की एक हवाई यात्रा कंपनी उन्नीस सौ पचहत्तर के लिए टिकट बेच रही है चांद के लिए! थ्योरेटिकली पासिबल हो गया, सिद्धांतत: तो संभव हो गया, कोई अड़चन नहीं है। चांद पर आज नहीं कल कोई भी उतरेगा। एक आदमी उतर गया, तो कोई भी उतर जाएगा।

दूरी की यात्रा की एक खूबी है। दूरी की यात्रा में रास्ता बन जाता है। एक आदमी पहुंच जाए, सब पहुंच सकते हैं। लेकिन परमात्मा और हमारे बीच दूरी न होने से रास्ता नहीं बन सकता। रास्ते के लिए दूरी जरूरी है। कुछ तो फासला हो, तो हम रास्ता बना लें।

इसलिए इतने लोग परमात्मा को पा लेते हैं, फिर भी रास्ता नहीं बन पाता बंधा हुआ कि जिस पर से फिर कोई भी धड़ल्ले से चला जाए। और फिर किसी को भी यह चिंता न रहे कि मुझे खोजना है। रास्ता पकड़ लिया, खोज पूरी हो ही जाएगी।

ध्यान रहे, अगर रास्ता मजबूत हो, तो आपको सिर्फ चलना जानना जरूरी है। धर्म के मामले की कठिनाई यह है कि चलना तो सबको आता है, रास्ता नहीं है। और हर एक को रास्ता अपना ही

बनाना पड़ता है। कोई दूसरे का रास्ता काम नहीं पड़ता। दूरी हो तो दूसरे के रास्ते काम पड़ते हैं, दूरी यहां बिलकुल नहीं है। यहां इंचभर का फासला नहीं है।

यह बहुत पैराडाक्सिकल, विरोधाभासी दिखाई पड़ेगा। जब दूरी होती है, तो हम पहुंच सकते हैं चलकर। और जब दूरी बिलकुल न हो, तो हम पहुंच सकते हैं रुककर; चलकर नहीं पहुंच सकते। अगर मुझे आपके पास आना है, तो मैं चलकर आऊंगा। और अगर मुझे मेरे ही पास आना है, तो चलना फिजूल है। और अगर मैं मेरे ही पास पहुंचने के लिए चलता हूं तो उसका मतलब, मैं पागल हूं। कोई आदमी कहे कि मैं मेरे ही पास जाने के लिए दौड़ रहा हूं तो आप कहेंगे, वह पागल है। क्योंकि दौड़ तो और दूर ले जाएगी, पास कैसे लाएगी? पास आना हो तो सब दौड़ छोड़ देनी पड़ती है।

लेकिन यही सबसे बड़ी कठिनाई है, यह सरलता, परमात्मा का निरंतर मौजूद होना। यह भाषा में फिर भी गलत है कहना कि वह हमारे पास है, क्योंकि पास का मतलब भी थोड़ी दूरी तो होती ही है। हम वही हैं! फिर भी भाषा में दो हो जाते हैं, मैं और वह।

इसलिए ज्ञानियों ने या तो कहा कि मैं ही हूं अहं ब्रह्मास्मि! और या कहा कि तू ही है। या तो मैं ही हूं और या तू ही है। क्योंकि दो का उपयोग करने में फिर थोड़ा सा फासला बनता है। उतना फासला भी नहीं है।

कृष्ण का यह कहना कि सारे अस्तित्व में, होने मात्र में, मैं ही समाया हुआ हूं इन बहुत—सी बातों की सूचना है। जिसे भी खोजना हो उसे, उसे खोजने की भूल में नहीं पड़ना चाहिए। क्योंकि उसे हमने कभी खोया नहीं है। जिसे हम खो दें, उसे खोज भी सकते हैं। लेकिन परमात्मा को खोने का कोई उपाय नहीं है। आप परमात्मा को खो नहीं सकते हैं।

अगर परिभाषा की तरह से कहा जाए, तो परमात्मा का अर्थ है, आपका वह हिस्सा, जिसे आप खो नहीं सकते। जो—जो हिस्से आप खो सकते हैं—शरीर आप खो सकते हैं। मन आपका कल बदल सकता है, खो सकते हैं। आंखें कल आपकी फूट सकती हैं; इंद्रियां खो सकते हैं। होश भी, जिसको हम होश कहते हैं, वह भी खो सकता है, कल आप बेहोश हो सकते हैं। लेकिन जिसे आप खो ही नहीं सकते, वही परमात्मा है आपके भीतर। आपका होना, बीइंग, आपका अस्तित्व, वह आप नहीं खो सकते। जो नहीं खोया जा सकता, वही परमात्मा है।

तब तो यह मतलब हुआ कि हम उसे खोज रहे हैं, तो हम गलती कर रहे हैं। निश्चित ही! खोजने से कोई उसे पाता नहीं। खोजने से सिर्फ एक ही बात पता चलती है कि खोज व्यर्थ थी। खोजने से सिर्फ हम थकते हैं और रुकते हैं। लेकिन जिस दिन हम थकते हैं और रुकते हैं, उसी दिन उसे पा लेते हैं।

तो खोज का एक उपयोग है, नकारात्मक। उससे व्यर्थता पता चल जाती है। दौड़ना, जाना, कहीं पाने की कोशिश, वह सब व्यर्थ हो जाती है। जिस दिन हम इस हालत में आ जाते हैं कि न कुछ पाने को है, न कुछ खोजने को है, न कहीं जाने को है, और भीतर सारी गति शून्य हो जाती है, उसी क्षण हम उसे पा लेते हैं, क्योंकि उसे हम पाए ही हुए हैं। वह हमारा अस्तित्व है।

हे परंतप, मेरी दिव्य विभूतियों का अंत नहीं है। यह तो मैंने अपनी विभूतियों का विस्तार तेरे लिए संक्षेप से कहा है।

ये जो इतने—इतने प्रतीक कृष्ण ने लिए और अर्जुन को इतने—इतने मार्गों से इशारा किया, वे कहते हैं, यह तो बहुत संक्षिप्त में मैंने तुझे कुछ इशारे किए हैं। मेरी दिव्य विभूतियों का कोई अंत नहीं है। जिसका अंत हो जाए, वह विभूति नहीं है। जिसका अंत हो जाए, वह दिव्य भी नहीं है। जिन—जिन चीजों का अंत होता है, वे— वे चीजें सांसारिक हैं। और जिन—जिन का प्रारंभ होता है, वे भी चीजें सांसारिक हैं।

दिव्य से अर्थ ही वही है कि जिसका न कोई प्रारंभ है और न कोई अंत है, जिसका हम खोज नहीं सकते कि कब प्रारंभ हुआ और जिसकी हम खोज नहीं कर सकते कि कब समाप्त होगा।

इसका यह अर्थ नहीं है कि हमारी खोज छोटी है। नहीं, हम कितना ही खोजें, जिसका स्वभाव ही अनादि और अनंत होना है, वही दिव्यता है, वही डिवाइननेस है।

इस जगत में जहां—जहां हमें प्रारंभ मिल जाता हो और अंत मिल जाता हो, समझ लेना कि वहां—वहां संसार है। और जहां प्रारंभ न मिलता हो और अंत न मिलता हो किसी बात का, वहीं—वहीं समझना कि परमात्मा की झलक मिलनी शुरू हुई।

लेकिन हम तो परमात्मा को भी वस्तुओं की तरह देखना चाहते हैं। हम तो चाहते हैं, परमात्मा भी सामने खड़ा हो जाए, तभी हम मानें। नास्तिक यही कहता है कि कहां है तुम्हारा ईश्वर? उसे सामने कर दो; हम मान लें। उसका प्रश्न सार्थक मालूम होता है, लेकिन बिलकुल ही व्यर्थ है। क्योंकि वह ईश्वर शब्द की परिभाषा भी नहीं समझ पाया।

ईश्वर से अर्थ ही उसका है कि जिसका कोई प्रारंभ नहीं, अंत नहीं, जिसका कोई रूप नहीं, जिसका कोई गुण नहीं, फिर भी जो है। और जितने भी गुण हैं और जितने भी आकार हैं, और जितने भी रूप हैं, सबके भीतर है।

एक फूल मैं आपको दूं और कहूं कि सुंदर है। फूल तो मैं आपको दे सकता हूं फूल की परिभाषा भी हो सकती है, लेकिन सौंदर्य की परिभाषा में कठिनाई खड़ी हो जाएगी। और आप सब जानते हैं कि सौंदर्य क्या है। लेकिन अगर कोई पूछ लेगा, तो आप मुश्किल में पड़ जाएंगे। आप बता न पाएंगे कि सौंदर्य क्या है।

सबको अनुभव है कि सौंदर्य क्या है। ऐसा आदमी खोजना कठिन है, जिसने कभी सौंदर्य का अनुभव न किया हो। कभी उगते हुए सूरज में, कभी डूबते हुए चांद में, कभी किसी फूल में, कभी किन्हीं आंखों में, कभी किसी चेहरे में, कभी किसी शरीर के अनुपात में, कभी किसी ध्वनि में, कभी किसी गीत की कड़ी में, कहीं न कहीं, ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है, जिसने सौंदर्य का अनुभव न किया हो। लेकिन अब तक, प्लेटो से लेकर बर्ट्रेंड रसेल तक, सौंदर्य के संबंध में निरंतर चिंतन करने वाले लोग एक परिभाषा भी नहीं दे पाए हैं कि सौंदर्य क्या है!

संत अगस्तीन ने कहा है कि कुछ चीजें ऐसी हैं कि जब तक तुम नहीं पूछते, मैं जानता हूं; और तुम पूछते हो कि मुश्किल खड़ी हो जाती है। उसने कहा कि मैं भलीभांति जानता हूं कि प्रेम क्या है, लेकिन तुम पूछो और मैं मुश्किल में पड़ा। मैं भलीभांति जानता हूं कि समय, टाइम क्या है, लेकिन तुमने पूछा कि मैं मुश्किल में पड़ा।

परमात्मा इनमें सबसे गहरी मुश्किल है, सबसे बड़ी मुश्किल है। समय और प्रेम और सौंदर्य और सत्य, शुभ, ये सब अलग— अलग मुश्किलें हैं। इनकी कोई की परिभाषा नहीं हो पाती।

जार्ज ई. मूर ने— इस समय पिछले पचास वर्षों में, पश्चिम में जो सबसे ज्यादा तर्कयुक्त बुद्धि का विचारक था, श्रेष्ठतम, और ?? मनुष्य—जाति के इतिहास में दो—चार आदमी उतनी तीव्र प्रतिभा के खोजे जा सकते हैं—जी.ई.मूर ने एक किताब लिखी है, प्रिंसिपिया इथिका; नीति—शास्त्र। और दो—ढाई सौ पेजों में सिर्फ।1_क ही सवाल पर चिंतन किया है, व्हाट इज गुड? शुभ क्या है? अच्छाई क्या है?

और दो सौ, ढाई सौ पेजी में जी.ई .मूर की हैसियत का बुद्धिमान आदमी इतनी मेहनत किया है, इतनी बारीक मेहनत किया है कि शायद मनुष्यों में कभी किसी मनुष्य ने ऐसी मेहनत शुभ के बाबत नहीं की है। और आखिर में नतीजा यह है, आखिरी जो निष्कर्ष है, वह यह है, मूर कहता है, गुड इज इनडिफाइनेबल, वह जो शुभ है, उसकी कोई परिभाषा नहीं हो सकती! ढाई सौ पेज सिर्फ इस छोटे— से सवाल पर कि शुभ क्या है? और नतीजा— जी. ई.मूर की हैसियत के आदमी का— कि शुभ की व्याख्या नहीं हो सकती! और उसने कहा कि ऐसा ही मामला है, जैसे कोई मुझे एक फूल दे दे और मैं कहूं कि यह पीला फूल है और वह मुझसे पूछे, व्हाट इज यलो? पीला क्या है? तो जैसी मैं मुश्किल में पड़ जाऊं, ऐसी मुश्किल में पड़ गया हूं।

आपसे भी कोई पूछे कि पीला क्या है, तो आप क्या कहेंगे? मूर ने तो कहा है, यलो इज यलो, पीला पीला है। और ज्यादा कुछ कहा नहीं जा सकता। लेकिन यह भी कोई कहना हुआ कि पीला पीला है! यह कोई बात हुई? तर्कशास्त्री कहते हैं, टॉटोलाजी है, यह तो पुनरुक्ति हो गई। आपने कहा, यलो इज यलो। इसमें क्या मतलब हुआ, वह तो हमें पता ही था। आपने कोई नई बात नहीं कही। कहिए कि व्हाट इज यलो?

तो मूर कहता है, कैसे कहें! क्योंकि अगर मैं कहूं लाल, पीला लाल है, तो गलत बात है। क्योंकि लाल लाल है। अगर मैं कहूं, पीला हरा है, तो भी गलत बात है; क्योंकि हरा हरा है! मैं पीले को और क्या कहूं पीले के सिवाय? जो भी मैं कहूंगा, वह गलत होगा। क्योंकि अगर वह पीला ही होगा, तो तुम कहोगे, पुनरुक्ति हो गई। और अगर वह पीला न होगा, तो वह परिभाषा नहीं बनाएगा

इतनी छोटी—छोटी चीजों की भी हम परिभाषा नहीं कर पाते। लेकिन परमात्मा की हम परिभाषा पूछते हैं कि परमात्मा क्या है? पीला रंग क्या है, इसकी परिभाषा नहीं खोजी जा पाती। शुभ क्या है, पता नहीं चलता। सौंदर्य क्या है, पता नहीं चलता। पूछते हैं, परमात्मा क्या है?

ये सब जो इनडिफाइनेबल्स हैं, ये जो सब अपरिभाष्य हैं, दि टोटेलिटी आफ आल इनडिफाइनेबल्स इज गॉड। यह जो सब अपरिभाष्य है, इन सबका जो जोड़ है, वही ईश्वर है।

इसलिए बुद्ध तो किसी गांव में जाते थे, तो उनका एक शिष्य गांव में घंटा बजाकर खबर कर आता था कि बुद्ध ने ग्यारह प्रश्न तय किए हैं, कोई पूछे न। ईश्वर क्या है, यह पूछे न। ग्यारह प्रश्नों में जितने भी अपरिभाष्य हैं, वे सब बुद्ध ने तय कर रखे थे। वे कहते थे, इनको छोड्कर कुछ भी पूछो। ये पूछो ही मत।

अनेक लोग उनसे पूछते कि यही तो पूछने योग्य मालूम पड़ते हैं और आप इन्हीं पर रोक लगा देते हैं! फिर पूछने को कुछ बचता नहीं! ईश्वर मत पूछो, आत्मा मत पूछो, मोक्ष मत पूछो, यह कुछ पूछो ही मत। इन ग्यारह में, आपके सारे दार्शनिक सवालों को बुद्ध अलग कर देते थे। तो हम क्या पूछें?

तो बुद्ध कहते थे, बेहतर हो कि तुम पूछो कि ईश्वर कैसे पाया जा सकता है! पूछो कि ईश्वर कैसे जाना जा सकता है! पूछो कि ईश्वर कैसे हुआ जा सकता है! यह मत पूछो कि ईश्वर क्या है!

इसका मतलब आप समझे? ईश्वर की हम व्याख्या नहीं कर सकते, लेकिन अनुभव कर सकते हैं। सौंदर्य की हम व्याख्या नहीं कर सकते, अनुभव हम रोज करते हैं। फूल खिलता है और हम कहते हैं, सुंदर है। और छोटा—सा बच्चा भी पूछ ले कि सौंदर्य यानि क्या? क्या मतलब सौंदर्य से? कहां है सौंदर्य इस फूल में, मुझे बताओ! हाथ रखकर, अंगुली रख दो कि यह रहा सौंदर्य।

आप पंखुड़ी पर अंगुली रखेंगे, तो लगेगा, यह भी कोई सौंदर्य हुआ! आप पूरे फूल को भी मुट्ठी में ले लेंगे, तो भी क्या आप समझते हैं, आपने सौंदर्य को मुट्ठी में ले लिया! आप कहां से बताएंगे कि सौंदर्य यह रहा! आप उस बच्चे को कहेंगे, सौंदर्य एक अनुभव है। हो तो हो, न हो तो न हो।

और फूल से सौंदर्य का कुछ लेना—देना नहीं है। क्योंकि कल सुबह आप कहेंगे, बड़ा सुंदर सूरज निकल रहा है। बच्चा पूछेगा कि फूल में और सूरज में कोई संबंध तो मालूम नहीं होता! कल फूल को सुंदर कहते थे, आज सूरज को सुंदर कहने लगे! कुछ तो समझ का उपयोग करो! और परसों आप कहेंगे किन्हीं आंखों में देखकर कि आंखें बड़ी सुंदर हैं। तो वह बच्चा कहेगा, अब आप बिलकुल पागल हुए जा रहे हैं। परसों फूल को कहा था सौंदर्य। कल सूरज को कहा था सौंदर्य। आज आंखों को कहने लगे सुंदर हैं! सौंदर्य क्या है?

अगर इन तीनों में है, तो इसका मतलब हुआ कि फूल से वह समाप्त नहीं होता। सूरज पर समाप्त नहीं होता। आंखों में समाप्त नहीं होता। अगर इन तीनों में है, तो तीनों जैसा नहीं है और फिर भी तीनों के भीतर कहीं छिपा है। तीनों में अनुभव होता है और हृदय एक—सा आंदोलित होता है। लेकिन कहां फूल और कहां सूरज और कहां आदमी की आंखें! इनमें कोई संबंध दिखाई नहीं पड़ता। कोई अदृश्य फूल में भी मौजूद है, जिसे आप सौंदर्य कहते हैं। कोई अदृश्य आंख में भी मौजूद है, जिसे आप सौंदर्य कहते हैं। दोनों में कहीं कोई मेल है।

अल्बर्ट आइंस्टीन तो बड़ा गणितज्ञ था, लेकिन उसने विवाह जिससे किया, फ्रा आइंस्टीन से, वह एक कवि स्त्री थी। यह बड़ा कठिन जोड़ है। ऐसे तो पति—पत्नी के सभी जोड़ बड़े कठिन होते हैं! लेकिन यह और भी कठिन जोड़ था। दुर्घटना से ही कभी ऐसा होता है कि पति—पत्नी का जोड़ कठिन न हो, सामान्यतया तो कठिन होता ही है। लेकिन यह आइंस्टीन का जोड़ तो और मुश्किल था। आइंस्टीन तो सिर्फ गणित की भाषा ही समझता था। और कविता और गणित की भाषा में जितना फासला हो सकता है, उतना किस भाषा में होगा?

फ्रा ने, उसकी पत्नी ने, शादी के बाद जो पहला काम चाहा, वह यह कि आइंस्टीन को कुछ अपनी कविता सुनाए। उसने एक गीत लिखा था, उसने उसे सुनाया। आइंस्टीन आंख बंद करके बैठ गया। फ्रा ने समझा कि वह बहुत चिंतन कर रहा है उसके गीत पर। आखिर उसने आंख खोली और उसने कहा कि यह पागलपन है, दुबारा मुझे मत इस तरह की बात बताना। उसकी पत्नी ने कहा, पागलपन! आइंस्टीन ने कहा, मैंने बहुत सोचा..।

क्योंकि फ्रा ने एक प्रेम का गीत लिखा था, जिसमें उसने अपने प्रेमी को, अपने प्रेमी या प्रेयसी के भाव को, चेहरे को, चांद से तुलना की थी। आइंस्टीन ने कहा, मैंने बहुत सोचा। चांद और आदमी के चेहरे में कोई भी संबंध नहीं है। कहां चांद, पागल! अगर आदमी के ऊपर रख दो, तो आदमी का पता ही न चले, अगर उसका सिर बना दो तो। और चांद के सौंदर्य का मैं सोचता हूं तो वहां तो सिवाय खाई—खड्ड के और कुछ है नहीं। आदमी के चेहरे से चांद का क्या संबंध है?

फ्रा ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि मैंने समझ लिया कि हम दो अलग जातियों के प्राणी हैं और यह बातचीत आगे चलानी उचित नहीं है। यह बंद ही कर देनी चाहिए। यह विषय ही उठाना ठीक नहीं है। क्योंकि अगर सिद्ध करने जाओ, तो आदमी के चेहरे और चांद में कोई संबंध नहीं सिद्ध हो सकता। लेकिन फिर भी कभी कोई चेहरा चांद की याद दिलाता है। और कभी चांद किसी चेहरे की भी याद दिलाता है। लेकिन वह कोई और ही बात है सौंदर्य की। उसका गणित से कोई संबंध नहीं है, माप से कोई संबंध नहीं है।

ईश्वर को जब भी हम मापने चलते हैं, तभी हम आकार देते हैं। और जब भी हम पूछते हैं, कहां है ईश्वर? कैसा है ईश्वर? क्या है उसका रूप? क्या है उसका रंग? क्या है उसकी आकृति? तब हम गलत सवाल पूछ रहे हैं। सब आकृतियां जिसकी हैं, और सब रूप जिसके हैं, वही है ईश्वर।

इसे हम ऐसा समझें कि आप सागर के किनारे खड़े हो जाएं। आपने सागर कभी देखा न होगा। आप कहेंगे, बिलकुल कैसी पागलपन की आप बात कर रहे हैं! हम सब सागर के किनारे ही रहने वाले लोग, सागर हम रोज देखते हैं। लेकिन मैं आपसे कहता हूं, सागर आपने कभी नहीं देखा। सिर्फ आपने सागर के ऊपर की उठती हुई लहरें देखी हैं। लहरें सागर नहीं हैं। लहरों में सागर है, लहरें सागर नहीं हैं। क्योंकि सागर बिना लहरों के भी हो सकता है, लहरें बिना सागर के नहीं हो सकतीं।

लेकिन आप लहरों को देखकर लौट आते हैं और सोचते हैं, सागर को देखकर लौट आए। हर लहर में सागर है, सब लहरों में सागर है। लेकिन सागर लहरों के पार भी है, लहरों से गहरा भी है। लहरें सागर के ऊपर ही डोलती रहती हैं। सागर बहुत बड़ा है। हमने लहरें ही देखी हैं। इसलिए कोई यह भी पूछ सकता है कि किस लहर को आप सागर कहते हैं?

हमने आदमी देखे हैं। पौधे देखे हैं। पशु देखे हैं। पक्षी देखे हैं। हम पूछते हैं कि किसको आप भगवान कहते हैं? कौन है ईश्वर? ये सब लहरें हैं उसी एक सागर की। इन सबके भीतर जो है, इन सबके नीचे जो है, जिस पर ये लहरें उठती हैं और जिसमें ये लहरें विलीन हो जाती हैं, वह सागर परमात्मा है। वह हमने नहीं देखा, हम लहरें ही देख पाते हैं।

मैं आपको देखता हूं लेकिन उसको नहीं देखता, जो आपके पहले भी था, आपके भीतर भी है अभी; और कल आप गिर जाएंगे, तब भी होगा। आप तो सिर्फ एक लहर हैं, जो उठी जन्म के दिन और गिरी मृत्यु के दिन, और कभी जवान थी और आकाश को छूने का सपना देखा। आप सिर्फ एक लहर हैं। लेकिन जब आप नहीं थे, आपकी आकृति नहीं थी, तब भी आप सागर में थे। और कल आपकी आकृति गिरकर लीन हो जाएगी, तब भी आप सागर में होंगे। सागर सदा होगा।

जो सदा है, वही परमात्मा है। जो कभी है, वही लहर है, और कभी नहीं हो जाता है। इसलिए परमात्मा को तो यह भी कहना ठीक नहीं है कि वह है। क्योंकि जितनी चीजों को हम कहते हैं है, वे सभी नहीं हो जाती हैं। सभी नहीं हो जाती हैं। जिसको भी हमने कहा है। कल वह नहीं हो जाएगी। और परमात्मा कभी भी नहीं नहीं होता। तो हमारा है शब्द भी बहुत छोटा पड़ जाता है।

इसलिए बुद्ध ने तो कहा कि मैं वक्तव्य ही न दूंगा। क्योंकि वक्तव्य देता हूं तो भूल हो जाती है। अगर मैं कहूं ईश्वर नहीं है, तो भी गलत है। और अगर मैं कहूं ईश्वर है, तो भी गलत है। इसलिए उचित है कि मैं चुप ही रहूं कुछ भी न कहूं।

अगर कोई आपसे सागर के किनारे पूछने लगे कि सागर किस लहर जैसा है? तो आप भी सोचेंगे कि उचित है, चुप ही रहूं जवाब न दूं। अगर आप यह कहें कि इस लहर जैसा है, तो भी गलती हो जाती है। अगर आप कहें कि सब लहरों जैसा है, तो भी गलती हो जाती है। क्योंकि सब लहरों से बड़ा है। और अगर आप कहें, किसी लहर जैसा नहीं, तो भी गलती हो जाती है, क्योंकि सभी लहरों में वही है। यह है तकलीफ।

कृष्ण कहते हैं, मेरे विस्तार का कोई अंत नहीं है। तो संक्षेप में तुझे कुछ लहरों के प्रतीक मैंने दिए हैं। उन लहरों के प्रतीक से भी अगर तू नीचे झांकेगा, तो तू सागर में पहुंच जाएगा।

लेकिन खतरा एक है। अगर आप लहर में डुबकी लगाएं, तो आप सागर में पहुंच जाएं। लेकिन अगर किनारे पर बैठकर लहर का चिंतन करें, तो आप कभी सागर में नहीं पहुंच सकते। और हम सब लहर का चिंतन करते हैं। और सोचते हैं कि चिंतन करते—करते कभी तो सागर में पहुंच जाएंगे। डुबकी लगानी पड़ेगी। लहर में डुबकी लगानी पड़ेगी।

कृष्ण ने जो प्रतीक दिए हैं, अगर किसी में भी डुबकी लग जाए, तो परमात्मा से संबंध जुड़ जाए। लेकिन अगर आप बैठकर चिंतन करने लगें, तो आप किनारे पर बैठ गए। विचार किनारा है जगत का। अनुभूति, कहें ध्यान, कहें समाधि, छलांग है सागर में।

इसलिए हे अर्जुन, जो—जो भी विभूतियुक्त, ऐश्वर्ययुक्त, कांतियुक्त, शक्तियुक्त है, उस—उस को तू मेरे तेज के अंश से उत्पन्न जान।

जहां—जहां तुझे कोई अभिव्यक्ति अपनी चरम स्थिति को छूती हुई मालूम पड़े, कोई शिखर जहां गौरीशंकर बन जाता हो, कोई फूल जहां पूरा खिल जाता हो; जहां भी तुझे लगे ऐश्वर्य, जहां भी तुझे लगे कांति, जहां भी तुझे लगे विभूति, जहां भी तुझे लगे कि कुछ असाधारण घटित हुआ है, जहां भी तुझे लगे कि कोई चीज अपनी चरमता को पहुंच गई, अपनी ऊंचाई को छू ली..?।

अमेरिका के बहुत बड़े मनोवैज्ञानिक इरिक फ्रोम ने एक शब्द ईजाद किया है, और प्रचलित हो गया है और कीमती शब्द है। इरिक फोम ने कहा है कि जहां भी पीक एक्सपीरिएंस, कोई शिखर अनुभव हो, वहीं व्यक्तित्व उस रहस्यमय के करीब पहुंचता है।

पीक एक्सपीरिएंस! कोई भी अनुभव जहां शिखर पर हो, जहां से आपको लगे कि इसके पार जाना कहां संभव है, जहां आपको लगे कि इसके पार नहीं जाया जा सकता, वहीं आप समझना...।

एक घटना आपसे कहूं तो खयाल में आए।

अकबर को निरंतर लगता था कि तानसेन से पार जाना, संगीत में, असंभव है। था भी। ऐश्वर्य था वहां, जैसे तानसेन की अंगुलियों से ईश्वर बरसता हो। तानसेन से और आगे भी कोई जा सकता है, इसकी कल्पना भी तो मुश्किल है। यह इनकसीवेबल है। इसकी धारणा नहीं बनती।

अकबर ने एक दिन तानसेन को आधी रात विदा करते वक्त सीढ़ियों पर कहा कि तानसेन, बहुत बार मन में ऐसा होता है, तुझसे पार जाना असंभव है, कल्पना भी नहीं कर पाता हूं। कभी सपने में भी मैं सुनता हूं संगीत, तो भी तुझसे फीका होता है। सपने में भी तुझसे ऊपर नहीं जा पाता। आज अचानक तुझे सुनते—सुनते एक अजीब—सा खयाल मेरे मन में आया कि तेरा भी तो कोई गुरु होगा। तूने शायद किसी से सीखा हो। अगर तूने सीखा है, तो एक बार तेरे गुरु के दर्शन की इच्छा मन में पैदा हो गई है। कौन जाने, तेरा गुरु तुझसे आगे जाता हो!

तानसेन ने कहा, बड़ी मुश्किल बात है। गुरु मेरे हैं। पर बड़ी मुश्किल बात है।

अकबर ने कहा, क्या मुश्किल है? कुछ भी खर्च करना पड़े, हम अपने खजाने लुटाने को तैयार हैं, लेकिन तेरे गुरु को सुनना होगा। तानसेन ने कहा, यही मुश्किल है, कि मेरे गुरु को दरबार में नहीं लाया जा सकता। कोई कीमत नहीं है जिससे दरबार में लाया जा सके। ऐसा नहीं है कि वे कोई जिद्दी हैं या अहंकारी हैं। झोपड़े में भी चले जाते हैं, यहां भी आ जाएंगे।

तो अकबर ने कहा, फिर क्या कठिनाई है? तानसेन ने कहा, कठिनाई यह है कि चेष्टा से, प्रयत्न से, वे कभी वाद्य नहीं छूते हैं। जब उनके प्राण ही आंदोलित होते हैं, तभी छूते हैं। कभी! कुछ कहा नहीं जा सकता। सहज स्फुरणा जब उन्हें होती है तभी। कोई फरमाइश नहीं हो सकती है। कहा नहीं जा सकता कि आप बजाइए, कि आप गाइए।

अकबर ने कहा, फिर क्या रास्ता है?

तो उसने कहा, मैं पता लगाऊंगा। क्योंकि कभी—कभी वे सुबह ब्रह्ममुहूर्त में प्रभु की स्तुति करते हैं, कभी। तो हम झोपड़े के पीछे छिप जाएं उनके। क्योंकि वे तो एक फकीर हैं। उनका नाम था हरिदास, वे एक फकीर थे। जमुना के किनारे रहते हैं झोपड़े में। हम पीछे छिप जाएं आधी रात चलकर। पता नहीं, चार बजे, तीन बजे, पांच बजे, कब वे बजाए, तो हम सुन लें।

संभवत: कभी दुनिया के इतिहास में कोई सम्राट किसी फकीर को ऐसा चोरी से सुनने नहीं गया। अकबर गया। रात दो बजे से वे झोपड़ी के बाहर छिपकर अंधेरे में बैठे रहे। एक—एक क्षण मुश्किल था। कोई चार बजे हरिदास ने अपनी वीणा बजानी शुरू की। अकबर के आंसू ठहरते ही नहीं हैं। वीणा बंद हो गई और अकबर को फिर भी सुनाई पड़ती रही!

फिर तानसेन ने हिलाया कि बहुत समय हो गया, वीणा तो बंद हो चुकी। अब हम चलें भी। और अब जल्दी ही सूरज निकलने के करीब है। लेकिन अकबर उठकर ऐसा ही चलने लगा, जैसे अभी भी खोया हो किसी और ही लोक में। रास्ते भर वह तानसेन से नहीं बोला। सीढ़ियां चढ़ते अपने महल के उसने तानसेन से कहा कि यह तो बड़ी मुश्किल हो गई। मैं तो सोचता था, तेरा कोई मुकाबला नहीं है। लेकिन अब मैं सोचता हूं, तेरे गुरु से तेरा क्या मुकाबला! तू कुछ भी नहीं है। क्यों इतना अंतर है लेकिन? इतना फर्क क्यों है?

तो तानसेन ने कहा, फर्क बहुत साफ है। सीधा उसका गणित है। मैं कुछ पाने के लिए बजाता हूं। और उन्होंने कुछ पा लिया है, इसलिए बजाते हैं। मैं कुछ पाने के लिए बजाता हूं। मेरा बजाना एक व्यवसाय है। मेरी नजर तो उस पुरस्कार पर होती है, जो बजाने के बाद मुझे मिलेगा। मेरा धंधा है। उनके लिए संगीत आत्मा है। कुछ पाने को नहीं बजाते। कुछ पाने को उन्हें है भी नहीं। लेकिन जो पा लिया है

भीतर, कभी—कभी वही ओवरफ्लो, कभी वही ऊपर से बहने लगता है और संगीत बन जाता है। कभी—कभी वही जो भीतर अतिरेक से हो जाता है, वही उनका संगीत बन जाता है।

अकबर ने तानसेन से कहा कि पहली दफा मैंने संगीत में ऐश्वर्य देखा है, दि पीक, शिखर देखा है।

कृष्ण कहते हैं, जहां—जहां ऐश्वर्य है, जहां—जहां अभिव्यक्ति अपनी आखिरी चोटी को छू लेती है, वहीं—वहीं मैं हूं वहीं—वहीं मेरा ही अंश प्रकट होता है।

इसे ठीक से समझ लेना। इसका अर्थ यह हुआ, जैसे सूरज किसी से कहे...। क्योंकि सूरज को सीधा देखना बहुत मुश्किल है। दस करोड़ मील दूर है सूरज, फिर भी हम आंख गड़ाकर देख नहीं सकते, आंखें मुश्किल में पड़ जाती हैं। अगर सूरज के सामने ही खड़े हों, तो आंखें अंधी हो जाएंगी। यह बड़े मजे की बात है। सूरज के बिना सारी पृथ्वी पर अंधेरा हो जाता है। सूरज के बिना हम सब अंधे हो जाते हैं। और सूरज को सामने से देखें, तो भी हम अंधे हो जाएंगे। सूरज को सीधा नहीं देखा जा सकता।

लेकिन कोई आदमी सूरज के सामने खडा हो, सूरज को तो देख नहीं सकता सीधा, आंखें बंद हो जाएंगी। करीब—करीब अर्जुन वैसे ही कृष्ण के सामने खड़ा है। वह भी नहीं देख पा रहा है। वह भी नहीं देख पा रहा है कि कौन सामने है, किससे वह पूछ रहा है, किससे वह समझ रहा है। वह भी नहीं देख पा रहा है, वह भी नहीं समझ पा रहा है। ठीक है, मित्र है, बुद्धिमान है, आदर योग्य है, और कभी—कभी किसी क्षण में रहस्यपूर्ण है। कुछ जानता है। सीखा जा सकता है उससे। लेकिन अभी वह सूर्य नहीं दिखाई पड़ रहा है जो कृष्ण हैं। वे आंखें बंद हैं।

वह पूछता है कि मैं कहां—कहां आपको देखूं? जो सामने खड़ा है, वहां न देखकर वह पूछता है, कहां—कहां आपको देखूं? जैसे कोई सूरज से पूछे, तो सूरज कहे, जहां—जहां कोई दीया तुझे दिखाई पड़े, जो अंधेरे को तोड़ता हो, तो जानना कि वहां—वहां मैं हूं। तो जहां—जहां भी कोई दीया चमके और भभककर प्रकाश कर दे, वहां— वहां समझना, मेरी ही ज्योति है, मेरा ही तेज है।

यह जो कृष्ण कहते हैं, जहां—जहां ऐश्वर्य तुझे दिखाई पड़े..। अगर ईश्वर नहीं दिखाई पड़ता, तो बेहतर है कि तू ऐश्वर्य को देख। अगर सूरज नहीं दिखाई पड़ता, तो बेहतर है कि तू प्रकाश को देख। जहां—जहां तुझे चमकदार प्रकाश दिखाई पड़े, समझना कि मेरा ही अंश, मेरा ही तेज प्रकट हो रहा है।

सूरज का तेज तो हम देख सकते हैं दीयों में, वह बड़ी कठिन बात नहीं है। छोटे—से आपके घर में भी दीये की जो ज्योति जलती है, वह सूरज का ही हिस्सा है। वह सूरज का ही हिस्सा है।

एकदम से समझना कठिन होगा। अगर आप मिट्टी का तेल जला रहे हैं, तो आपको पता नहीं होगा कि मिट्टी का तेल निर्मित इसीलिए हुआ है कि लाखों—लाखों साल में पृथ्वी के द्रव्यों ने सूरज की किरणों को पीया है। और वे ही किरणें आपको वापस आपके मिट्टी के तेल से आपके दीये में वापस उपलब्ध हो जाती हैं। जब आप एक लकड़ी को रगड़कर जलाते हैं—जैसा कि पुराने जमाने में रिवाज था—दो लकड़ियों को रगड़कर या दो चकमक पत्थरों को रगड़कर आप जब किरण पैदा करते हैं, तो आपको खयाल न होगा, अरबों—अरबों वर्षों में पत्थर सूरज को पी गए हैं। वही पुन: प्रज्वलित हो जाता है।

लकड़ी के भीतर भी सूरज छिपा है और आपके भीतर भी। जहां भी ज्योति है, वहां सूरज की किरण है। वह कब पी ली गई होगी, यह दूसरी बात है। कब छिप गई होगी, यह दूसरी बात है। लेकिन वह सूरज की किरण है। सूरज प्रतिपल अपनी रोशनी दे रहा है। वह हजारों—हजारों जगह इकट्ठी हो रही है, संगृहीत हो रही है। वही रोशनी आप पुन: पा लेते हैं।

लेकिन सूरज को सीधे देखना मुश्किल है। दीये को आप मजे से सीधा देख सकते हैं। दीया बहुत अंश में सूरज है, लेकिन तेज उसका ही है।

तो कृष्ण कहते हैं, जहां—जहां ऐश्वर्य, जहां—जहां विभूति, जहां— जहां कांति, जहां—जहां शक्ति दिखाई पड़े, वहां—वहां मेरे ही तेज के अंश से उत्पन्न है, ऐसा तू जानना।

जो शब्द चुने हैं, एक तो है ऐश्वर्य, विभूति, कांति, शक्ति, वे सब संयुक्त हैं। शक्ति का अर्थ है, ऊर्जा, एनर्जी। एक छोटे—से बच्चे में शक्ति दिखाई पड़ती है। एक के में शक्ति क्षीण हो गई होती है, उस अर्थों में जैसी बच्चे में दिखाई पड़ती है।

इसलिए जो शक्ति की खोज कर रहे हों, बेहतर है कि बच्चे में खोजें, के में खोजने न जाएं। वहां शक्ति तो क्षीण होने लगी है। जो शक्ति की खोज कर रहे हों, बेहतर है कि सुबह के सूरज में खोजें, सांझ के सूरज में खोजने न जाएं, क्योंकि वहां तो ढलने लगा सब। शक्ति तो

जितनी नई हो, उतनी तीव्र और गहन होती है। जो शक्ति को खोजने चलेंगे, उनके लिए बच्चे ईश्वरीय हो जाएंगे; वहां शक्ति अभी नई है, अभी फव्वारे की तरह फूटती हुई है। अभी उबलता हुआ है वेग, अभी सागर की तरफ दौड़ेगी यह गंगा। अभी यह गंगोत्री है, छोटी है, लेकिन विराट ऊर्जा से भरी है।

यह बड़े मजे की बात है। गंगोत्री में जितनी शक्ति है, उतनी जब गंगा सागर में गिरती है, तब नहीं होती है। बड़ी तो हो जाती है गंगा बहुत, लेकिन की भी हो जाती है। विशाल तो हो जाती है, लेकिन शक्ति का विशालता से कोई संबंध नहीं है। शक्ति तो, सच है कि जितना छोटा अणु हो, उतनी गहन होती है।

इसलिए आज विज्ञान अणु में सर्वाधिक शक्ति को उपलब्ध कर पाया है। परमाणु में, क्षुद्र परमाणु में, अति क्षुद्र परमाणु में, उसमें जाकर शक्ति का स्रोत मिला है।

छोटे—से बच्चे में भी, पहले दिन के बच्चे में जो शक्ति है, फिर वह रोज कम होती चली जाएगी। शक्ति को देखना हो, तो नये में खोजना। इसलिए जो भी समाज नये होते हैं, वे बच्चों का आदर

करते हैं। जो समाज शक्तिशाली होते हैं, वे बच्चों का आदर करते हैं, सम्मान करते हैं।

लेकिन अगर ऐश्वर्य खोजना हो, तो के में खोजना, वृद्ध में खोजना। क्योंकि ऐश्वर्य अनुभव का निखार है, वह बच्चे में कभी नहीं होता। उसमें शक्ति होती है अदम्य। लेकिन अगर ऐश्वर्य खोजना हो, तो वह वृद्ध में खोजना।

रवींद्रनाथ ने कहा है कि जब सच में ही कोई आदमी वृद्ध होता है— सच में! हम सब भी बूढ़े होते हैं, लेकिन हमारा का होना वृद्ध होना नहीं है, सिर्फ क्षीण होना है, दीन होना है, दरिद्र होना है। हमारा वार्धक्य एक उपलब्धि नहीं है, सिर्फ एक लंबी गवाई है, कमाई नहीं है। लंबा हमने गंवाया है। खोया है, खोया है। क्षीण हो गए। जर्जर हो गए। सब चुक गया।

रवींद्रनाथ ने कहा है, जब सच ही कोई बूढ़ा होता है, तो उसके शुभ्र बाल वैसे ही हिमाच्छादित हो जाते हैं, जैसे हिमालय के पर्वत। उसके शुभ्र बालों में वैसी ही शीतलता और वैसा ही ऐश्वर्य आ जाता है, जैसे कभी जब गौरीशंकर पर बर्फ जमी होती है।

अगर कोई व्यक्ति ठीक से जीया है, तो वार्धक्य उसका ऐश्वर्य को उपलब्ध हो जाता है। एक कांति, एक दीप्ति जो के में ही होती है, बच्चे में नहीं हो सकती। बच्चे में एक अदम्य वेग होता है, शक्ति होती है, जो कुछ बन सकती है, नष्ट भी हो सकती है। अगर का उसे कुछ बनाने में समर्थ हो जाए, और वह जो शक्ति बच्चे में दिखाई पड़ी थी, अगर ठीक—ठीक यात्रा करे, तो ऐश्वर्य बन जाती है अंत में। अनुभव से यात्रा करके शक्ति ऐश्वर्य बनती है।

इसलिए जो समाज के होते हैं, उनमें ऐश्वर्य देखा जा सकता है। जैसे अगर शक्ति देखनी हो, तो पश्चिम में देखनी चाहिए। और अगर ऐश्वर्य देखना हो, वह आभा देखनी हो जो वार्धक्य को उपलब्ध होती है, तो पूरब में देखनी चाहिए। इसलिए जो समाज पुराने होते हैं, वे के को आदर देते हैं, बच्चे को नहीं। उनका आदर ऐश्वर्य के लिए है, चरम के लिए है, आखिरी के लिए है, अंतिम जो शिखर होगा, उसके लिए है।

शक्तिशाली समाज बच्चों और जवानों पर निर्भर करेगा। ऐश्वर्यशाली समाज वृद्ध पर, वार्धक्य पर निर्भर करेगा। इसलिए हमने तो अपने मुल्क में के हो जाने को ही काफी आदर की बात समझा है। जरूरी नहीं है कि का आदर के योग्य हो। लेकिन फिर भी हमने ऐसे वृद्ध देखे हैं कि उनके कारण सभी के आद्दत हो गए। और वृद्ध ही पा सकते हैं उस अंतिम बात को, उस सौम्यता को।

एक तो भभक है आग की, और एक सिर्फ आभा है। ऐसा समझें कि जब सांझ सूरज डूब जाता है और रात नहीं आई होती है, तब जो प्रकाश फैल जाता है; या सुबह जब सूरज नहीं निकला होता, रात जा चुकी होती है, तब जो प्रकाश, जो आलोक फैल जाता है, वह आभा है, वह ऐश्वर्य है। शक्ति जला देती है, ऐश्वर्य केवल आलोकित करता है। शक्ति आग है; ऐश्वर्य केवल प्रकाश है और शीतल है। ऐश्वर्य में कोई दंभ और दर्प नहीं है, शक्ति में होगा। शक्ति से प्रारंभ होता है जीवन का, ऐश्वर्य पर उपलब्धि होती है। कांति से यात्रा है। अगर शक्ति कांति से गुजरे, तो ही ऐश्वर्य को उपलब्ध होती है। अगर कोई व्यक्ति अपनी जीवन—ऊर्जा का उपयोग क्षुद्र को खरीदने में करता रहे, तो कांतिहीन हो जाता है।

हम कई बार हीरे—जवाहरातों को देकर रोटी के टुकड़े खरीद लाते हैं। कई बार कहना ठीक नहीं, अधिक बार, ज्यादातर जीवन में जो श्रेष्ठतम है, उसे गंवाकर हम क्षुद्र को खरीद लेते हैं। पूरा जीवन हमारा इसी नासमझी में बीतता है। बस, काफी धंधा किया, काफी लेन—देन किया, इसका भर सुख होता है।

कांति का अर्थ है, जो व्यक्ति अपनी जीवन—ऊर्जा को निरंतर श्रेष्ठ के लिए समर्पित कर रहा है। उस व्यक्ति को कांति उपलब्ध होती है, जो जितनी शक्ति देता है, उससे ज्यादा पाता है। जो हमेशा लाभ में है, एक आंतरिक लाभ में। अगर एक इंचभर अपनी शक्ति खोता है, तो इसीलिए कि कोई विराट का द्वार खुल रहा है, अन्यथा नहीं खोता। इसे हम ऐसा समझें, जैसा मैंने पीछे आपको कहा। काम ऊर्जा है, सेक्स एनर्जी है। आप उसे केवल शरीर के तथाकथित सुख में गंवा सकते हैं जीवनभर, सारी कांति खो जाएगी। आपके चारों तरफ जो एक मंडल चाहिए व्यक्तित्व का, वह सिकुड़ जाएगा।

कभी आपने खयाल किया है, काम—ऊर्जा के क्षीण होते ही आपको एक सिकुडाव का अनुभव होता है। कोई चीज सिकुड़ गई भीतर, आप दीन हुए। आपने कुछ खोया, पाया कुछ भी नहीं।

ठीक इससे विपरीत स्थिति उस व्यक्ति को उपलब्ध होनी शुरू होती है, जिसकी काम—ऊर्जा ऊर्ध्वगामी होती है और प्रभु के चरणों में समर्पित होने लगती है, और जिसकी काम—ऊर्जा व्यक्तियों और दूसरे व्यक्तियों की तरफ प्रवाहित नहीं होती, वरन अपनी अंतरात्मा की तरफ प्रवाहित होने लगती है। हर इंच पर उसे लगता है, जीवन विराट हुआ, और बड़ा हुआ।

ब्रह्मचर्य शब्द हम सब सुनते हैं, बात करते हैं, लेकिन आपको खयाल न होगा कि इसका अर्थ क्या होता है! इसका अर्थ होता है, ब्रह्म जैसी चर्या। और ब्रह्म का आपको अर्थ पता है? ब्रह्म का अर्थ होता है, विस्तार। ब्रह्म का अर्थ है, जो विस्तीर्ण है, जो फैलता ही चला गया है, जिसका ओर—छोर नहीं है।

तो जिस दिन आपकी चर्या उस विस्तार की तरफ बढ़ने लगती है, और आपके भीतर कुछ फैलता चला जाता है और फैलता ही चला जाता है, सब सीमाएं छूट जाती हैं और आपके भीतर कोई फैलता ही चला जाता है, जिस दिन आपके भीतर चांद—सूरज घूमने लगते हैं, जिस दिन आपको लगता है कि आप फैल गए सारे आकाश में और आकाश से एक हो गए, उस दिन ब्रह्मचर्य उपलब्ध होता है।

लेकिन यह होगा, जब हमारी ऊर्जा, हमारी शक्ति निरंतर श्रेष्ठ के प्रति समर्पित हो रही हो। अपने से नीचे का कुछ खोजना, कांति को खोना है। अपने से ऊपर के लिए शक्ति को नियोजित करना, कांति को उपलब्ध होना है। कांति सिर्फ एक खबर है, आपके चेहरे से, आपकी आंखों से, आपके हाथों से, आपके व्यक्तित्व से, एक खबर है कि भीतर ऊर्जा ने कुछ ऊर्ध्वगमन शुरू किया है।

बड़ी मुश्किल की बात है। इस कांति की तरफ खयाल ही नहीं है। इसलिए जवान आदमी...। मैंने कहा, बच्चा होता है शक्तिशाली, का होता है ऐश्वर्ययुक्त, जवान हो सकता है कांतियुक्त। बच्चा शक्तिशाली होता है, यह नैसर्गिक है। जवान कांतियुक्त हो, यह चुनाव है। और जवान अगर कांतियुक्त न हो सके, तो बुढ़ापा एक दीनता होगी, एक दरिद्रता होगी, एक बोझ।

हम इस मुल्क में पच्चीस वर्ष तक युवकों को आश्रमों में रखकर कांति की कला सिखाते थे। इसके पहले कि शक्ति क्षीण होनी शुरू हो जाए, उसको रूपांतरण देना जरूरी है। इसके पहले कि शक्ति नीचे से बहनी शुरू हो जाए, उसके पहले उसे ऊपर के मार्ग पर चला देना जरूरी है। क्योंकि एक बार शक्ति नीचे की तरफ बहने लगे, तो हर चीज हैबिट फार्मिंग है, हर चीज की आदत बन जाती है। फिर रिपिटीटिव, फिर पुनरुक्ति होने लगती है।

और जीवन एक ऐसी बाल्टी की तरह हो जाता है, जिसे हम पानी में डालते हैं भरने के लिए, लेकिन उसमें इतने छेद होते हैं कि शोरगुल बहुत होता है, पानी भरता भी मालूम पड़ता है, लेकिन आखिर में जब बाल्टी बुढ़ापे में हमारे हाथ आती है, तो उसमें कुछ भी नहीं होता, एक बूंद भी पानी की नहीं होती; सब बीच में गिर गया होता है। बुढ़ापे में जिस व्यक्ति की कुएं की बाल्टी भरी हुई आ जाए, समझना कि ऐश्वर्य उपलब्ध हुआ।

लेकिन यह तभी संभव होगा, जब जवानी में छिद्र व्यक्तित्व में पैदा न हों, और जवानी में छिद्रों से बचा जा सके, जो कि अति कठिन है। क्योंकि शक्ति अगर ऊपर रूपांतरित न हो, तो शक्ति बोझ बन जाती है, उसको फेंकना जरूरी हो जाता है।

इसलिए पश्चिम में एक नया विचार लोगों को पकड़ा है और वह यह है कि सेक्स इज जस्ट ए रिलीज, ए रिलीफ। कामवासना, सिर्फ एक शक्ति भारी हो जाती है, तनाव हो जाता है, उससे छुटकारा है। पश्चिम में एक बहुत क्षुद्र खयाल काम—ऊर्जा के बाबत आया है। वे कहते हैं, काम—ऊर्जा छींक जैसी है। छींक ली, तो राहत मिलती है। छींक आ गई, तो राहत मिलती है। नहीं तो नाक में सनसनाहट और तकलीफ मालूम पड़ती है। सब काम—ऊर्जा भी इसी तरह की है। उसको फेंक दी बाहर, तो राहत मिलती है।

शक्ति भारी हो जाती है, अगर काम में न लाई जाए, फिर उसे फेंकना ही पड़ेगा। केवल वे ही लोग शक्ति को फेंकने से बच सकते हैं, जो उस कला को सीख लेते हैं, जिसमें शक्ति रोज काम में आती चली जाती है, बचती ही नहीं फेंकने के लिए।

डायोजनीज से किसी ने पूछा था कि तुमने विवाह क्यों न किया? तो डायोजनीज ने कहा, दो पत्नियां एक साथ रखना बहुत मुश्किल होगा। जिसने पूछा था, वह तो पूछ रहा था, विवाह क्यों न किया? वह बड़ा हैरान हुआ कि दो पत्नियां हैं तुम्हारी! डायोजनीज ने कहा, नहीं, जिस

दिन से परमात्मा को खोजने में लग गए, उस दिन से सारी शक्ति तो उसी में लग गई, अब दूसरी पत्नी रखना बहुत मुश्किल होगा। ये दोनों बातें एक साथ करना जरा मुश्किल होगा। सारी शक्ति लग जाए एक तरफ, तो दूसरी तरफ प्रवाहित रहने को कुछ बचता नहीं। और तभी कांति उपलब्ध होती है, जब ऊपर की ओर शक्ति उठने लगे।

कांति का अर्थ है, ऊपर की ओर उठती हुई शक्ति। शरीर से भी झलकने लगती है। शरीर से भी उसकी सुगंध आने लगती है। शरीर भी एक अनूठे सौंदर्य से आच्छादित हो जाता है।

ऐश्वर्ययुक्त, कांतियुक्त, शक्तियुक्त जो भी है, वहीं मेरी विभूति है, वहीं मैं प्रकट हुआ हूं? वहीं तू मुझे देख लेना। और जहां भी यह घटित हो, समझना कि मेरे तेज के अंश से ही उत्पन्न हुआ है, मेरी ही ज्योति वहां प्रज्वलित हो रही है; मेरे ही अमृत की धार वहां बहती है; मेरे ही स्वरों का संगीत है वहां; मेरी ही सुवास है; मेरे ही हृदय की धड़कन वहां भी धड़कती है।

अथवा हे अर्जुन, इस बहुत जानने से तेरा प्रयोजन ही क्या है!

अगर तू मुझे ऐश्वर्य में भी न देख सके, कांति में भी न देख सके, शक्ति में भी न देख सके, और इतने जो मैंने तुझे प्रतीक कहे, इनमें तुझे कोई खयाल न आए, तो फिर बहुत जानने से कोई प्रयोजन नहीं है। अब मैं तुझे कितना ही कहता रहूं उससे कुछ हल न होगा। तू देखना शुरू कर।

पूछते हैं हम बिना फिक्र किए कि क्या प्रयोजन है। मैं रोज ऐसे लोगों के संपर्क में आता हूं जो कुछ भी पूछते चले आते हैं। जिन्हें यह भी पता नहीं कि वे क्यों पूछ रहे हैं। शायद उन्हें पूछना भी खाज या खुजली जैसा है। खुजा लेते हैं, थोड़ी—सी राहत मिलती है। भला नाखून लग जाते हैं, लहू निकल आता है, तकलीफ होती है, लेकिन खुजा लेते हैं। खुजाते वक्त लगता है कि कुछ कर रहे हैं।

आपका प्रश्न, आपकी जिज्ञासा अगर खुजली जैसी हो, तो बीमारी है। कुछ भी पूछते रहने का कोई अंत नहीं है। पूछते चले जाएं जन्मों—जन्मों तक! और जो भी उत्तर आपको मिलेंगे, उनसे केवल नये प्रश्न निर्मित होंगे, और कुछ भी न होगा।

कभी आपने खयाल किया, कि जो भी उत्तर आपको मिलते हैं, उनसे और दस प्रश्न खड़े हो जाते हैं। दर्शनशास्त्र पांच हजार साल में न मालूम कितने सवाल पूछा। एक भी सवाल हल नहीं हुआ। एक भी सवाल हल नहीं हुआ! अगर हम पांच हजार साल का फिलासफी का इतिहास देखें, तो एक भी सवाल हल नहीं हुआ। यह बड़े मजे की बात है। इतने उत्तर दिए गए और एक भी हल नहीं हुआ। बल्कि और दूसरी घटना घटी। जितने जवाब दिए गए, उनमें से और हजार—हजार प्रश्न खड़े हो गए।

बर्ट्रेड रसेल ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि जब मैं बच्चा था और पहली दफा दर्शन की तरफ उत्सुक हुआ, तो मैं सोचता था कि जब मैं दर्शन में निष्णात हो जाऊंगा, तो मेरे भी कुछ सवाल हल हो गए होंगे, उनके जवाब मुझे मिल गए होंगे। मरने के पहले उसने अपने एक पत्र में लिखा है कि अब मैं का होकर यह कह सकता हूं कि मेरा एक भी सवाल हल नहीं हुआ। और दूसरी बात जो घट गई, जिसकी मुझे कल्पना ही नहीं थी, नये—नये सवाल और खड़े हो गए इस नब्बे साल की जिंदगी में।

बर्ट्रेड रसेल ने पहले तो दर्शनशास्त्र की परिभाषा की थी, मनुष्य के आत्यंतिक प्रश्नों के जवाबों की खोज। और अंत में उसने व्याख्या की है, मनुष्य के आत्यंतिक प्रश्नों के संबंध में और प्रश्नों की खोज। और कुछ नहीं, प्रश्न के बाद प्रश्न! अगर आप पूछने के लिए पूछते चले जाते हैं, तो व्यर्थ है।

कृष्ण कहते हैं, अर्जुन, तेरा इतना सब पूछने का प्रयोजन ही क्या है, अगर तू इशारा न समझ पाए! तो फिर तू पूछता चला जा सकता है और मैं तुझे जवाब देता चला जा सकता हूं उससे कुछ हल न होगा। आज जमीन पर जो इतना कनफ्यूजन, इतना विभ्रम है, वह इसलिए है कि इतने जवाब और इतने सवाल आपके मस्तिष्क में खड़े हो गए हैं कि आज तय करना ही मुश्किल है कि आपका भी कोई प्रश्न है? और प्रश्न आप पूछ रहे हैं, तो कुछ करने का इरादा है या यों ही पूछने चले आए हैं?

एक आदमी मेरे पास अभी दो दिन पहले आए थे। वे पूछने लगे कि सच में ईश्वर है? तो मैंने उनसे पूछा, आपका क्या इरादा है? अगर है, तो आप क्या करिएगा? और अगर नहीं है, तो आप क्या करेंगे? उन्होंने कहा, करना क्या है! ऐसे ही पूछने चला आया हूं। हो, तो भी कोई फर्क नहीं पड़ने वाला है उन्हें। न हो, तो भी कोई फर्क नहीं पड़ने वाला। तो यह प्रश्न किसलिए है? तब यह खुजली के जैसा है। फिर वे मुझसे बोले, और मैं कोई आपसे ही पूछ रहा हूं ऐसा नहीं है। न मालूम कितने महात्माओं से मैं पूछ चुका हूं। एक गांव में तो मैं गया, तो लोग प्रश्न लिखकर देते हैं, एक आदमी ने छपा हुआ प्रश्न मुझे दिया, तब तो मैं बहुत हैरान हुआ। छपा हुआ प्रश्न! मैं पहले ही दिन वहां बोला हूं और बोलकर मैं उठने के करीब हूं कि उसने छपा हुआ प्रश्न दिया कि आप इसका उत्तर दें।

मैंने कहा, तुम इतनी जल्दी छपा कैसे लाए? उन्होंने कहा, जल्दी का क्या सवाल है? यह तो मैंने तीस साल पहले छपाया था। और जो भी इस गांव में आता है, उसे मैं दे देता हूं कि इसका जवाब! मैंने उससे पूछा कि तुम्हें तीस साल में किसी ने जवाब नहीं दिए? उसने कहा,

बहुत जवाब दिए, लेकिन किसी जवाब से तृप्ति नहीं होती। मैंने उसको कहा कि तुम तीस जन्म भी पूछते रहो, तो भी तृप्ति नहीं होगी। क्योंकि जवाब से कहीं तृप्तियां हुई हैं, जब तक कि तुम्हें अपना जवाब न मिल जाए। दूसरे का जवाब क्या तृप्ति देगा!

मगर हमारी तो कठिनाई यह है कि अपना जवाब तो बहुत मुश्किल है, अपना सवाल भी नहीं होता, वह भी उधार होता है।

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, यह हमारा प्रश्न नहीं है। यह मेरे एक मित्र का प्रश्न है। वे आए हैं; मित्र का प्रश्न है! प्रश्न भी हमारे नहीं हैं। वे भी कोई हममें पैदा करवा देता है। फिर किसी के प्रश्न और किसी के जवाब हममें इकट्ठे होते चले जाते हैं। और हम एक कचराघर हो जाते हैं।

कृष्ण पूछते हैं, हे अर्जुन, इस बहुत जानने से फिर क्या प्रयोजन है! सिर्फ जानना ही है या तुझे उतरना भी है? तू कूदना भी चाहता है या सिर्फ सोचता ही रहेगा? तू कुछ करने को आतुर है या सिर्फ एक बौद्धिक कुतूहल है?

इस संपूर्ण जगत को अपनी योग—माया के एक अंश मात्र से धारण करके मैं स्थित हूं।

सारा जगत मेरा ही एक अंश मात्र है। यह बहुत कीमती वचन है। क्योंकि मैंने कहा, सारा जगत ईश्वर है। सारा जगत ईश्वर है, लेकिन सारा ईश्वर जगत नहीं है। सारा जगत ईश्वर है, लेकिन सारा ईश्वर जगत नहीं है। क्योंकि ईश्वर की अनंत संभावनाएं हैं, अनंत जगतों में प्रकट होने की। ईश्वर तो इस पूरे अस्तित्व की मूल संभावना है। उसमें से कभी कोई एक बीज अंकुरित होता है, तो एक जगत निर्मित हो जाता है। उसमें से कभी कोई दूसरा बीज निर्मित होता है, तो दूसरा जगत निर्मित हो जाता है। अनंत जगत हो सकेंगे, और हर जगत उसका एक अंश ही होगा।

पूरा ईश्वर अगर जगत हो, तब ईश्वर भी सीमित हो गया। तब फिर दूसरा जगत नहीं हो सकता। अगर यही जगत सब कुछ हो ईश्वर का, तो फिर आगे कोई गति और कोई विकास नहीं है।

ईश्वर के अनंत होने का अर्थ है, यह जगत उसकी एक अभिव्यक्ति है। उसकी अनेक अभिव्यक्तियां हो सकती हैं। होती रही हैं। होती रहेंगी। इसलिए कहा, एक अंश में ही मेरी योग—माया का उपयोग है।

योग—माया शब्द का ठीक वही अर्थ होता है, जो अंग्रेजी में मैजिक का होता है, जादू का होता है। लेकिन जादू तो जादूगर करता है! पर आपने खयाल किया, जादूगर करता क्या है? वह कहता है कि यह रहा, यह आम का झाडू होने लगा। और हाथ का इशारा करता है और एक आम का झाडू उगना शुरू हो जाता है। छोटे—से झाडू में आम के फल लगने शुरू हो जाते हैं। वह आम का एक फल तोड़कर आपको दे देता है। बड़ा चमत्कार है!

जादूगर कर क्या रहा है? जो नहीं है, वह आपको दिखाई पड़ने लगे, इस कला का नाम जादू है। मैजिक का अर्थ है, जो नहीं है, वह आपको दिखाई पड़े।

ईश्वर की भारतीय जो धारणा है, वह यह है कि जगत भी है नहीं, केवल ईश्वर चाहता है, इसलिए दिखाई पड़ता है। यह है नहीं, केवल ईश्वर चाहता है, इसलिए दिखाई पड़ता है। इसका होना केवल उसकी धारणा है, उसका विचार है।

अगर आपने कभी सम्मोहन का कोई प्रयोग देखा है, हिप्नोटिज्म का कोई प्रयोग देखा है, तो आपको खयाल में होगा। एक आदमी को बेहोश कर दिया जाए और फिर उससे कहा जाए कि तू अब पुरुष नहीं है, स्त्री हो गया। इस कोने से उस कोने तक स्टेज पर चल। तो उसकी चाल स्त्री जैसी हो जाएगी। वह स्त्री जैसा चलेगा।

उसे क्या हो गया है? एक खयाल! उसको सम्मोहित करने वाला एक खयाल उसके मन में डालता है कि तू स्त्री है। यह खयाल सक्रिय हो जाता है। वह स्त्री जैसा चलने लगता है।

लेकिन यह बहुत कठिन बात नहीं है। जो सम्मोहित व्यक्ति है, गहरे सम्मोहन में गया है, उसके हाथ में आप एक फूल रख दें और कहें कि यह आग का अंगारा है, तो चीख मारकर वह फूल को फेंक देगा। लेकिन यह भी बड़ी बात नहीं है, क्योंकि यह भाव है। बड़ी बात तो यह है कि उसके हाथ पर फफोला भी आ जाएगा—फूल रखने से!

क्या हुआ? हमने अंगारा तो रखा नहीं, सिर्फ कहा था, अंगारा है! उसने मान लिया। बेहोशी में उसके हृदय में संदेह नहीं उठता। श्रद्धा पूरी होती है। तर्क सोया होता है। विचार यह नहीं कहता कि फूल दिखाई पड़ रहा है, अंगारा कैसे! यही मतलब है सम्मोहित होने का कि उसकी जो बुद्धि है, सोचने का ढंग है, तर्क है, संदेह है, वह सो गया है। उसका अचेतन मन काम कर रहा है, चेतन मन बंद हो गया है।

उसका अनकाशस हिस्सा काम कर रहा है। उससे जो भी कहें, वह मान लेता है। वह पूर्ण श्रद्धा में है इस वक्त। आपने कहा अंगारा, तो अंगारा हो जाता है हाथ पर। और जब प्राण समझ लेते हैं, अंगारा है, तो हाथ में फफोला आ जाता है।

सूफी फकीर इसी तरह जलती हुई आग पर नाचते हैं। उस नाचने में कुछ और नहीं है। सूफी फकीर प्रार्थनायुक्त होकर प्रभु से कह देता है कि अंगारे भी, हम तेरा नाम लेकर जाते हैं, तो फूल रहेंगे। यह इतने गहरे में कही गई बात होती है कि अंगारे फिर जला नहीं पाते, क्योंकि शरीर मानता ही नहीं कि वे अंगारे हैं।

यह सब हिम्मोटिज्म भी व्यक्तिगत प्रयोग है योग—माया का। परमात्मा के लिए सारा का सारा विराट जो विस्तार है, यह वास्तविक सृजन नहीं है, यह केवल उसके विचार का फैलाव है।

बहुत बड़े वैज्ञानिक एडिंगटन ने लिखा है कि जब मैं नया—नया विज्ञान के जगत में प्रविष्ट हुआ था, तो मैं सोचता था कि जगत एक वस्तु की भांति है, जस्ट लाइक ए थिंग। अंतिम जीवन के दिनों में एडिंगटन ने कहा है, जब वह नोबल प्राइज पा चुका था और जगत विख्यात हो गया था, तो उसने कहा है कि अब जितना ही मैंने अनुभव किया है, दि यूनिवर्स लुक्स मोर लाइक ए थाट, दैन लाइक ए थिंग—एक विचार की भांति मालूम पड़ता है यह जगत, एक वस्तु की भांति नहीं।

लेकिन किसका विचार?

एडिंगटन वैज्ञानिक आदमी है, वह यह नहीं कह सकता, ईश्वर का विचार। क्योंकि ईश्वर का उसे कोई पता नहीं है।

कृष्ण कहते हैं, यह सारा जगत मेरी योग—माया के एक अंश का विस्तार है, मेरे विचार का, मेरे खयाल का।

यह सारा अस्तित्व एक स्वप्न है गहन, उस मूल ऊर्जा का एक स्वप्न। उस मूल ऊर्जा का एक भाव, और जगत निर्मित हो जाता है। उस मूल ऊर्जा का भाव क्षीण होता है, और जगत खो जाता है।

इसका यह मतलब नहीं है कि आप पत्थर पैर पर मारेंगे, तो खून नहीं निकलेगा। इसका यह मतलब नहीं है कि आप नहीं हैं। आप हैं। लेकिन आपके होने का जो घटक है, जो बुनियादी तत्व है, जिससे आप निर्मित हैं, वह वस्तु नहीं है, विचार है। आप विचार का एक जोड़ हैं, अनंत विचारों का एक जोड़ हैं।

यह सारा जगत अनंत विचारों का एक जोड़ है।

अगर हम भौतिकवादी और गैर— भौतिकवादी विचारों में भेद करना चाहें, तो वह यही होगा कि भौतिकवादी, मैटीरियलिस्ट कहता है कि जगत की जो बुनियादी इकाई है, वह पदार्थ है; और अध्यात्मवादी कहता है, जगत की जो मौलिक इकाई है, वह विचार है। जगत जिन ईंटों से बना है, वे इटइं विचार की हैं। और अगर पदार्थ भी हमें दिखाई पड़ता है, तो वह विचार की सघनता है, डेंसिटी आफ थाट। और जिसे हम अपने भीतर विचार कहते हैं, उसमें और बाहर पड़े हुए पत्थर में जो फर्क है, वह गुण का नहीं है, मात्रा का है, डिग्रीज का है। अगर विचार ही गहन सघन हो जाए, तो पत्थर भी मौजूद हो सकता है, मैटीरिअलाइज हो सकता है।

कृष्ण कहते हैं, यह मेरी योग—माया का एक अंश है और इस अंश पर ही मैं सारे जगत को धारण करके ठहरा हुआ हूं इसलिए मेरे को ही तत्व से जान। तू और विस्तार में मत पड़। तू सीधा मुझको ही तत्व से जान। मैं ही आधारभूत हूं या जो आधारभूत है, वही मैं हूं। विस्तार में तू खो सकता है।

बहुत लोग डिटेल्स में खो जाते हैं। बहुत लोग इतने विस्तार में खो जाते हैं कि उन्हें पता ही नहीं रहता है कि वे किसकी खोज के लिए निकले थे। कई बार जंगल में खो जाने की वजह से जिस वृक्ष की तलाश में हम निकले थे, उसकी स्मृति ही उठ जाती है।

इसलिए अंतिम वचन में कृष्ण ने याद दिलाया कि यह मैंने तुझसे थोड़े से विस्तार की बातें कही हैं, लेकिन इस विस्तार में खो जाने की जरूरत नहीं है। यह मैंने कहा ही इसलिए, ताकि सब तीर मेरी तरफ इशारा कर सकें। और तू मुझको ही सारी खोज का अंत जान, सारी खोज का केंद्र जान।

जो व्यक्ति भी ईश्वर की तरफ अपनी सारी खोज के तीरों को झुका देता है, जो अपनी सारी कामनाओं को, सारी इच्छाओं को, सारी प्रार्थनाओं को, सारी अभीप्साओं को, सारी आकांक्षाओं को एक ही ईश्वर की तरफ झुका देता है, उसे बहुत देर नहीं है कि वह पा ले।

हम अगर खोते हैं उसे, भूलते हैं उसे, विस्मरण करते हैं उसे, नहीं जान पाते उसे, तो उसका कारण केवल इतना ही है कि कभी हमने समग्रता से उसे चाहा ही नहीं, पुकारा ही नहीं। कभी समग्रता से हमने जाना ही नहीं कि वही एक पाने योग्य है। अगर हमने कभी उसे पाना भी चाहा है, तो वह हमारे हजारों पाने वाली चीजों में एक आइटम वह भी है। और वह भी आखिरी, वह भी आखिरी फेहरिस्त पर। जैसे कोई बाजार में सामान खरीदने निकला हो, तो निन्यानबे चीजें उसने सब लिख हों— नोन, तेल, लकड़ी— और आखिर में सौवां ईश्वर भी लिखा हो। ऐसे हम हैं। जब सब, तब आखिरी!

ईश्वर को जो अपनी जिंदगी की खोज में आखिरी रख रहा है, वह उसे पाने में आखिरी सिद्ध होगा। जो उसे प्रथम रखता है, वही उसे पाता है।

लेकिन हम क्षुद्र को ऊपर रखे रहते हैं। अगर अभी कोई आपको मिले और कहे कि एक कार दिए देते हैं या ईश्वर का दर्शन। क्या इरादा है? तो आप कहेंगे, ईश्वर का दर्शन तो कभी भी हो जाएगा, शाश्वत चीज है। कार पहले ले लें, इसका क्या भरोसा! क्षणिक का भरोसा भी नहीं है, इसको आज ले लें। ईश्वर को तो कल भी ले सकते हैं, अगले जन्म में भी ले सकते हैं। यह कोई जल्दी की बात नहीं है। आप पहले क्षुद्र को चुनेंगे।

कृष्ण कहते हैं, विस्तार में तू मत जा। मैं तेरे सामने खड़ा हूं। तू मुझको ही तत्व से जान, उसकी ही आकांक्षा कर।

अंतिम बात। कृष्ण ने बहुत—से प्रतीक कहे। वे सब प्रतीक इशारे हैं। कोई भी प्रतीक प्रतिमा नहीं है। कोई भी प्रतीक पूजा के लिए नहीं है। सभी प्रतीक केवल समझ के लिए सहारे हैं। जो प्रतीकों की पूजा में लग जाता है, वह भटक जाता है। प्रतीक पूजा के लिए नहीं होता; प्रतीक इशारे के लिए होता है।

एक आदमी रास्ते से गुजर रहा है। और किनारे पर पत्थर लगा है, मील का पत्थर लगा है और उस पर तीर लगा है। वह मील का पत्थर बैठकर पूजा करने के लिए नहीं है, वह बैठने के लिए नहीं है। वह तीर यह कह रहा है कि यहां से आगे बढ़ो। अगर मंजिल तक पहुंचना है, तो पत्थरों पर मत रुकना। यह तीर कह रहा है, आगे चलो।

ये जितने प्रतीक कृष्ण ने लिए हैं, यह उस महायात्रा के किनारे पर लगे हुए पत्थर हैं। इन पर रुकना नहीं है।

बोकोजू एक मंदिर में ठहरा हुआ था। बौद्ध—मंदिर था जापान का, लकड़ी की ग्रतइत्यां थीं बुद्ध की। रात बहुत उसे सर्दी लगी। उसने एक मूर्ति उठाकर जला ली और आच ताप ली। मंदिर का पुजारी घबड़ा गया, नींद खुली। आग देखकर मंदिर में, घबड़ाया हुआ आया। और उसने कहा, यह क्या कर रहे हो? पागल हो तुम! तुम्हें मैंने ठहराकर कौन—सा पाप किया! तुम आदमी सीधे—सादे मालूम पड़ते थे। यह तुम भगवान बुद्ध को जला रहे हो?

बोकोजू ने कहा, भगवान बुद्ध! बड़ी भूल हो गई। पास पड़ी एक छोटी—सी लकड़ी को उठाकर वह राख को कुरेदने लगा। उस पुरोहित ने पूछा, अब क्या कर रहे हो? उसने कहा, मैं भगवान की अस्थियां खोज रहा हूं। उस पुरोहित ने कहा, तू बिलकुल पागल आदमी है। लकड़ी की मूर्ति जलाकर और अस्थियां खोज रहा है! तो बोकोजू खिलखिलाकर हंसा और उसने कहा कि तुम भी जानते तो हो कि लकड़ी की मूर्ति है। तो फिर रात अभी बहुत बाकी है और सर्द बहुत ज्यादा है। और भीतर जो बुद्ध हैं, उनको बहुत सर्दी लग रही है। तुम दो मूर्तियां और उठा लाओ, तो रात बड़े आनंद से गुजर जाए!

उस पागल को रात ही निकालना पड़ा। सर्द बहुत थी रात और उसने कहा भी था कि भीतर बुद्ध हैं, फिर भी भीतर के बुद्ध की कौन फिक्र करता? मूर्ति जलाने का गहन अपराध तो हो ही गया था। उसे रात ही बाहर कर दिया उस मंदिर के। उसने बहुत कहा कि तुम क्या कर रहे हो? बुद्ध को बाहर किए दे रहे हो? लेकिन कौन उसकी सुनने को राजी था! दरवाजे बंद कर उसे बाहर फेंक दिया गया और रातभर सर्दी में बाहर ठिठुरता पड़ा रहा।

सुबह जब मंदिर के द्वार खुले, तो उन्होंने देखा कि वह बाहर जाकर सड़क के किनारे एक पत्थर पर दो फूल रखकर पूजा कर रहा है। तब तो उस पुजारी को फिर परेशानी हुई। उसने जाकर कहा कि तुम आदमी किस भांति के हो? रात भगवान की मूर्ति जला दी, और अब सड़क के किनारे पड़े हुए पत्थर की बैठकर पूजा कर रहे हो?

बोकोजू ने कहा, पूजा करनी हो, तो कोई भी प्रतीक काम दे जाता है। कोई भी प्रतीक काम दे जाता है! और पागल बनना हो, तो लोग प्रतीकों को प्रतिमाएं बना लेते हैं और भटक जाते हैं। सुबह के लिए मान लिया कि बुद्ध यहां हैं। बुद्ध की पूजा करनी है, इस पत्थर पर भी की जा सकती है। यह सिर्फ प्रतीक है, यह केवल एक डिवाइस है। लेकिन तेरी मूर्तियां बहुत वजनी हो गई हैं। तूने जिंदा बुद्ध को बाहर फेंक दिया और लकड़ी की मूर्तियों को तूने भारी समझा। और जब मैं अस्थियां खोजने लगा, तब तुझे भी पता चल गया कि अस्थियां वहां मिलेंगी नहीं, क्योंकि लकड़ी है। तेरी पूजा झूठी है। तू प्रतीक को प्रतिमा बना रहा है।

यह आखिरी बात इस अध्याय में याद रखें, क्योंकि यह पूरे प्रतीक का अध्याय है।

प्रतीक प्रतिमा नहीं है, इशारा है। सब प्रतीक उपयोगी हैं—मंदिर के, मस्जिद के, चर्च के, गुरुद्वारे के। सब प्रतीक उपयोगी हैं। कोई प्रतीक अंतिम नहीं है। प्रतीक से गुजर जाना, प्रतीक पर रुक मत जाना। प्रतीक पर ठहरना, उसका उपयोग करना और पार हो जाना। तो एक दिन विस्तार खो जाएगा, और केंद्र उपलब्ध हो जाता है।